भाग २

विद्यापीठ

काशी विद्यापीठकी त्रैमासिक पत्रिका

आश्विन, १९८६

राज-धर्म-शास्त्रका अन्तिम रहस्य[१]

धर्म-व्यवस्थापक-सभाके सदस्योंकी योग्यता क्या होनी चाहिये

अच्छे कानून तभी बनेंगे जब बनानेवाले अच्छे हों।

भारतवासी आर्योंकी मूल धर्मस्मृति मनुस्मृति है। उसके अन्तिम (१२) अध्यायके अन्तिम श्लोकोंमें, सब कुछ कह चुकनेके पीछे, यह कहा है,

१. २२ दिसंबर सन् १९२८ से १ जनवरी सन् १९२९ (७ पौषसे १७ पौष १९८५) तक कलकत्तेमें भारतवर्षके स्वराज-विधानकी योजना करनेके लिये सर्वदल-सम्मेलन हुआ। धर्मपरिषदोंके सदस्योंकी योग्यताके विषयमें योजनामें संशोधनका प्रस्ताव करते समय श्री भगवान्‌दास ने १ जनवरी १९२९ (१७ पौष १९८५) को जो भाषण किया उसका अधिकांश इस लेखमें ग्रथित है।

मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ।
अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः ॥

अर्थात्, जब यह संशय उत्पन्न हो कि इस नयी अवस्थामें क्या नया धर्म, क्या कायदा क़ानून, होना चाहिये, तो शिष्ट ब्रह्मज्ञानी लोग जो कुछ निर्णय करदें, वही धर्म माना जाय—यही इस समस्त मानव-शास्त्रका, मानवोंके हित करनेवाले शास्त्रका, मनुके कहे हुए शास्त्रका, परम रहस्य है, सार है, मूलतत्त्व और अन्तिम सिद्धांत है ।

इस पुराने वाक्यका नये शब्दोंमें अर्थ खोलनेका यत्न आगे किया जाता है ।

"डेमोक्रेटिक सेल्फगवर्मेन्ट",[१] "लोकतन्त्रात्मक स्वराज", "सङ्घ-राज्य" का सार इतना ही है कि जनताने स्वयं जिनका नियोजन, निर्वाचन, वरण, किया हो, वे ही सज्जन कानून बनावें, धर्मव्यवस्थापक सभा जनताकी नियोजित हो । संवत् १९८५ (सन् १९२८) में भारतवर्षकी सर्वदलसमितिने जो स्वराज-योजना बनायी, उसका भी हृदय कहिये, सार कहिये, यही है । धर्म-व्यवस्थापक सभा, "लेजिस्लेचर", वह सभा जो उन कानूनोंको बनाती है जिनके अनुसार देशमें जनताको अपना जीवन चलाना पड़ता है, वही राष्ट्रकी सच्ची शासक, अथवा राजा कहिये, या केंद्रीय शक्ति कहिये, होती है । और जनताके चुने हुए आदमी ही कानून बनावें, यह इच्छा की जाती है, क्योंकि यह विश्वास स्वाभाविक भी है और गहिरी दृष्टिसे सत्य भी है, कि जनताके चुने और माने हुए आदमी ही जनताकी भलाई साधने वाले कानून बनावेंगे ।

राष्ट्रकी, जनसमुदायकी, समाजकी, समृद्धिका एकमात्र आश्रय कानूनोंकी उत्तमता पर है ।

धर्म एव हतो हंति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

कानून ही उनके समग्र जीवनका नियमन नियंत्रण करते हैं । पर अच्छे कानून तभी बन सकते हैं जब बनानेवाले अच्छे, अनुभवी,

१. Democratic self-government.

परार्थी, विवेकी, धीमान्, सुधी, तत्त्वज्ञ, दानिशमंद, नेकनीयत, दुनिया-दोस्त, मुहक़्क़िक़्, हों। अतः स्पष्ट है, और सब तरहके राजनीतिक विचारवाले, सभी सज्जन, इस एक बातको तो निर्विवाद स्वीकार कर लेंगे, कि राज और समाजकी सुख-समृद्धि, उनके धर्मव्यवस्थापक पुरोहितोंकी आर्यता, सद्बुद्धिता, विवेकिता, परार्थिता, सज्जनता पर सर्वथा आश्रित है। उक्त सब गुण पुराने दो शब्दोंमें आजाते हैं, तपस्वी और विद्वान्।

पुरः, अग्रे, धर्मकार्येषु, धर्म-निर्माण-कार्येषु,
धर्म-व्यवसान-परिकल्पन-व्यवस्थापन-कार्येषु,
लोकैः स्वहिताय, लोकहिताय, हितः,
प्रहितः, विहितः, निहितः, प्रणिहितः,
प्रतिनिहितः, प्रेषितः, स्थापितः, पुरोहितः॥

इस रीतिसे "निर्वाचित व्यवस्थापक", "इलेक्टेड् लेजिस्लेटर", तथा "लीडर"[१] इत्यादि शब्दोंके पर्यायके रूपसे प्राचीन उत्तम "पुरोहित" शब्दका प्रयोग किया जाय तो उसपर जो मल जम गया है वह हटै और उसका जौहर खुलै।

राजा प्रजानां स्वामी स्यात् राज्ञः स्वामी पुरोहितः।

यह सिद्धान्त शुक्रनीतिका है। इसका अर्थ यही है कि "लेजिस्लेचर" के द्वारा "एक्सिक्यूटिव"[२] का नियमन नियन्त्रण हो। "प्रणिधि" और "प्रतिनिधि" शब्दोंका प्रयोग भी, ऐसे अवसरपर, पुराने ग्रंथोंमें मिलता है।

विद्वान् और तपस्वी पुरोहित कैसे मिलें ?

ऐसी अवस्थामें, प्रायः सब सज्जन अंगीकार करेंगे कि यह प्रश्न परम गरिमाका है, कि यथासंभव परिपक्व प्रज्ञा और निःस्वार्थ हृदयके अच्छे अनुभवी सज्जनोंका वरण, पुरोधान, निर्वाचन, धर्मसभाके लिये कैसे हो ? राजनीतिके समग्र शास्त्र और समग्र प्रयोगका, सब नय और

१. Elected legislator ; Leader, २. Legislature ; Executive.

सब चार, सब सिद्धान्त और सब व्यवहार, सब थियरी और सब प्रैक्टिस्[१] का सार इतना ही है। इस महाप्रश्नके ही उचित रीतिसे उत्तीर्ण होनेपर समाजके सब विभिन्न प्रकृतियों, शक्तियों, रोजगारों, वयःक्रमों, अवस्थाओं, और साम्प्रदायिक धर्म्मोंके मनुष्योंके सुखका आसरा है।

प्रश्न बहुत कठिन है। तो उसके समाधानमें, उत्तरणमें, और भी अधिक जोर लगाना चाहिये। यह तो मूल सींचनेकी बात है, अन्य सब बातें भारतीय स्वराजविधानकी, अथ च अन्य सब पृथ्वीमंडलके शासन-विधानोंकी, केवल शाखा पल्लव धोनेकी बातें हैं। पश्चिम देशोंने इस प्रश्नको अबतक पार नहीं कर पाया, तो पूर्व देशको और भी अधिक आवश्यकता है कि इसके उत्तरको अपनी प्राचीन सूत्रात्माके, और शास्त्रीय आगमोंके, भीतर गहिरा गोता लगाकर खोज निकाले।

प्राचीन सूत्रात्माका निर्णय, इस महाप्रश्न पर।

इस्लामधर्मका इस राजनीतिक प्रश्नपर कहना है कि,

खुदातर्स रा बर रअय्यत गुमार।
कि मेमारि मुल्कस्त परहेज़गार॥

"खुदाको चाहनेवाले, तथा खुदासे डरनेवाले, (फ़ारसीके तर्स धातुका, जो संस्कृत के तृष्, तर्ष्, का ही रूपांतर जान पड़ता है, दोनों ही अर्थ हैं) धर्मभीरु, विवेकी, त्यागी, निस्वार्थी मनुष्यको ही प्रजाके कार्यका प्रबंध करनेके लिये तैनात करो। क्योंकि ऐसा ही मनुष्य राष्ट्रकी इमारतको बनाता है, बिगाड़ता नहीं।"

सनातनधर्मके स्मृति-ग्रन्थोंमें पुनः पुनः कहा है कि जनताके हित-चिन्तक, सदुपदेशक, ऋषिकल्प, तपस्वी और विद्वान्, परार्थी और धीमान्, मनुष्य ही धर्मका परिकल्पन करें। मनुके मतकी सूचना ऊपर कर दी गयी है। बिस्तारसे आगे कहा जायगा।

१. Theory ; practice.

पूर्व देश ही में उत्पन्न जीसस् क्राइस्टके प्रवृत्त किये क्रिस्चियन धर्मके शब्दोंमें जिस पदार्थको "पृथ्वीपर स्वर्गराज्य"[१] कहते हैं, वह राजनीतिकी सीधी सादी सरल भाषामें "तपस्वी निःस्वार्थी विद्वानोंके बनाये धर्मों, कानूनों, के अनुसार राज्यशासन" ही है।

बहुत वर्षोंके पीछे यह सौभाग्यका अवसर आया है कि भारतवर्ष अपने स्वराजका विधान करनेको सन्नद्ध हुआ है। बहुत अप्रमत्त और सचेत रहना चाहिये, कि ऐसा न होने पावे कि स्वराजकी नींव ही अशुद्ध पड़ जाय। इसका दृढ़ और निश्चित प्रबन्ध करना चाहिये कि भारतवर्षका स्व-राज, भारतजनताके (अधम "स्व" का राज नहीं, प्रत्युत) उत्तम "स्व" का शासन, उत्तम-धर्म-परिकल्पन द्वारा, हो, पुश्त दर पुश्त भारतके सबसे अधिक अनुभवी और सबसे अधिक निस्स्वार्थी और लोकहितैषी सपूत ही, यहाँके धर्मों कानूनोंका परिकल्पन, व्यवसान, व्यवस्थापन करें। यदि इस गंभीर विषयके सम्बन्धमें स्वराजकी नींव अशुद्ध डाल दी गयी तो फिर पीछे उसका शुद्ध करना बहुत कठिन होगा, और अशुद्ध नींवपर जो भौम (मंज़िल) खड़े किये जायँगे वे सभी अशुद्ध होंगे।

इन हेतुओंसे अत्यंत आवश्यक है कि कठिनताके कारण इस राष्ट्रप्राण-सम्बन्धी प्रश्नसे मुँह न मोड़ा जाय, बल्कि इसपर बहुत ध्यान दिया जाय और परिश्रम किया जाय, और जबतक इसका उत्तर न मिले तबतक इसको छोड़ा न जाय। अन्यथा इस समयकी अतित्वराका फल आगे चलकर अतिदुःखमय चिरविलम्ब हमारे राष्ट्रकी प्रगतिमें अवश्य होगा। बड़े खेदका स्थान है कि जितना समय आज काल निर्वाचितोंके साम्प्रदायिक धर्मों और संख्याओंकी बहसमें गँवाया जाता है, उसका दशमांश समय भी उनकी बुद्धि और हृदयकी, दिल और दिमाग़की, योग्यतापर विचार करनेमें नहीं लगाया जाता। साम्प्रदायिक प्रणिधान प्रतिनिधान ("काम्यूनल रेप्रेज़ेंटेशन")[२] पर ज़ोर देना व्यर्थ है,

१. "The kingdom of heaven on earth."

२. Communal representation.

सर्वांगीण, आंगिक, समाजके मुख्य अंगोंके, जीविकाओं, वृत्तियों, रोजगारों, व्यापारोंके, प्रणिधान प्रतिनिधान ("फंक्शनल, आक्यूपेशनल, वोकेशनल, रेप्रेजेंटेशन)[१] की फिक्र करना चाहिये। यदि ऐसा किया जाय तो साम्प्रदायिक संख्याओंके झगड़े आपसे आप सब नीरस होकर मिट जायँगे।

यदि भारतवर्षने इस प्रश्नका ठीक उत्तर खोज निकाला तो वह न केवल अपने स्वराजकी नींव शुद्ध और गहिरी और अटल डालेगा, किन्तु राजनीतिशास्त्रका संशोधन और उत्कर्ष करके पृथिवीमंडल भरके मनुष्यसमुदायकी सुखवृद्धिमें सहायक होगा।

महात्मा गांधीको जो अंतर्विकास और दैवी प्रेरणा हुई उसका अनुगमन करके भारतवर्षने इधरके समयमें संसारको राजनीतिक युद्धके नये शान्तिमय प्रकारोंके नमूने दिखाये हैं। चाहिये कि देशबंधु चित्तरंजनदासके अंतर्विकास और दैवी प्रेरणाकी सहायतासे अब वह संसारके राजनीतिक सिद्धान्तोंमें, राजनीतिके शास्त्रमें, एक अति प्राचीन होते हुए भी अति नवीन सिद्धान्तकी वृद्धि करे। भारतवर्षकी सूत्रात्मामें जो अहिंसा और तपस्के, परहेज, और जोहदके निषेधात्मक अंश हैं, उनका विकास और प्रयोग गांधीजीने किया। उसी सूत्रात्मामें विद्या और लोकहित और भूतदयाके, इल्म और हुब्बुल्-इन्सानीके, जो विध्यात्मक अंश हैं, उन्होंने देशबन्धुको प्रेरित किया। ये अंश साध्यस्थानी हैं, अहिंसा और तपस् साधनस्थानी हैं। अतः, इस लेखके समग्र प्रतिपाद्यका मूलसूत्र इतना ही है कि धर्मपरिषत्के पार्षद, कानून बनानेवाली मजलिसके मेम्बर, राजनीतिक पुरोहित, में अहिंसाबुद्धि और तपस् भी हो, तथा विद्या और लोकहितैषिता भी हो, इसके उपाय खोजना चाहिये।

निर्वाच्योंके लिये शर्तें योग्यताकी लगाना चाहिये।

भारतवर्षकी स्वराज योजनामें और जो कुछ हो या न हो,

१. Functional representation; occupational representation; vocational representation.

निर्वाचनके उम्मेद्वारोंके, वरणाकांक्षियोंके, लिये कुछ विशेष गुणोंकी, योग्यताओंकी, शर्तें लगा दी जानी चाहिये।

पच्छिमके देशोंमें, राजनीतिके इतिहासमें, निर्वाचकोंकी योग्यतापर तो बहुत विचार किया गया है, पर, जहाँतक मालूम पड़ता है, निर्वाच्यों और निर्वाचितोंकी क्या विशेष योग्यता होनी चाहिये, इसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। सद्धर्मपरिकल्पनका, अच्छे कानून बनानेका, काम बहुत नाजुक, बहुत कठिन, बड़ी जोखिमका, है। इस कामके लिये बहुत आगे पीछे देखनेकी, कार्यकारणके सम्बन्धोंके बहु-ज्ञानकी, बहुदर्शिता और दूरदर्शिताकी, बहुत आवश्यकता है। यदि एक भी धर्म, एक भी प्रभूत कानून, दोषवान् बन गया, तो उसके असरसे, प्रभावसे, उसके कार्यरूप, बहुतसे दोष दूर दूर तक पैदा होंगे। इसलिये आवश्यक है कि धर्मसभामें, "लेजिस्लेचर" में, समाजके सब मुख्य मुख्य विभागोंके विशिष्टतम ज्ञान और अनुभव रखनेवाले मनुष्य एकत्र होकर सब विभागोंके हितकारी धर्म बनावें। निर्वाचकताके अधिकारको फैलानेके लिये निर्वाचकताकी योग्यता यहाँ तक कम की गयी है कि बहुतेरे अन्य देशोंमें, तथा उक्त सर्वदलसमितिकी बनायी भारतवर्षीय स्वराजयोजनामें, केवल इक्कीस वर्षकी उमर ही पर्याप्त मान ली गयी है। पर निर्वाचितकी योग्यताकी, जिसकी आवश्यकता निर्वाचककी योग्यता-की अपेक्षा बहुत अधिक है, कुछ चर्चा ही नहीं की है। जिन कानूनोंका प्रभाव दूर दूर, समाजके जीवनके अंग-प्रत्यंगपर, सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल बातोंमें, पड़ने वाला है, उन कानूनोंके बनानेवालेका चुनाव प्रायः अनभिज्ञ जनसमूहकी समझपर छोड़ दिया गया है, और उस समझको अच्छा रास्ता दिखानेका, ऐसी सलाह देनेका, कि जिससे अच्छे आदमी चुननेमें उसको सहायता मिले, कुछ भी यत्न नहीं किया गया है। प्रत्युत, अच्छी सलाह, सद्दिग्दर्शन, सन्मार्गोपदेश, के स्थानमें, प्रसिद्ध है कि, इस महा-जन-समूहको, निर्वाचनके दिनोंमें, दुरुपदेश दिया जाता है, साम-दान-दण्ड-भेद सभी नीतियोंका प्रयोग किया जाता है, झूठी बातें बतायी

जाती हैं, प्रलोभन और धोखा और धमकी दी जाती है, तरह तरह-का धन और शक्तिका अपव्यय और दुरुपयोग करके उनसे अयोग्य व्यक्ति चुनवाये जाते हैं, निर्वाचकोंके भी और निर्वाचितोंके भी स्वभाव और आचार बिगाड़े जाते हैं, और दोनोंमें स्वार्थ और अनाचारकी वृद्धि होती है, जिससे चिरकालके लिये परस्पर द्रोह, आपसकी दुश्मनियाँ, पैदा हो जाती हैं, वर्ग वर्गका घोर विरोध अधिकाधिक बढ़ता है, और दुष्ट धर्मोंका, नाक़िस कानूनोंका, परिकल्पन धर्म सभामें होता है।

सर्वदलसमितिने भी अपनी रिपोर्टमें, इंग्लिस्तानके निर्वाचनोंके सम्बन्धमें इन महादोषोंकी चर्चा की है, पर भारतवर्षमें भी उसी प्रकार-के निर्वाचनका प्रचार करनेका परामर्श देते हुए भी, इन अति हानि-कर किल्बिषोंके प्रतीकारका कोई भी उपाय बतानेका यत्न तक नहीं किया है[1]।

---

१ पश्चिम देशोंमें भी इस ओर ध्यान झुक रहा है, इसके लिये दो नमूने नीचे दिखाये जाते हैं।

"How to reconcile representative institutions with good government has become the great political problem of the day." (p. 117) "Unless means are provided for insuring an active disposition to use opportunity on public account, it will most cetainly be employed mainly for private advantage, and representative institutions will in that case tend to become a vast system of plunder, to escape which public opinion will at last plunge desperately towards some sort of dictatorship". (p. 199) "Systematic traffic in legislation...Sale of political influence.......The whole machinery of popular election of representatives is deeply corrupted..." (p. 239). Henry J. Ford, *Representative Government* (1925)

इस ग्रन्थमें अमेरिकाके युनाइटेड स्टेट्सके लेजिस्लेचरके भारी दोष विस्तार-से कहे हैं। और अनेक ग्रन्थोंमें दूसरे लेखकोंने भी। इंग्लिस्तानके बारेमें, श्री जी० बी० शा महाशय, प्रसिद्ध सोशलिस्ट, लिखते हैं,

"If democracy is not to ruin us we must at all costs find some trustworthy method of testing the qualifications of

इस भयंकर आपत्तिको यथाशक्ति रोकनेके लिये, और स्वयं सर्व-दलकमेटीके निवेदनपत्रमें सूचित घोर आशाभंगसे बचनेके लिये, स्वराजविधानमें कुछ इस प्रकारके नियम रख देना चाहिये, यथा,

योग्यतानिश्चायक उपाय।

(१) प्रत्येक निर्वाच्य, वरणीय, पुरोधेय, के पास नीचे लिखी योग्यता (गुण) होनी चाहिये,

(क) समाजके इन चार मुख्य धर्मों (अंगों, कार्यों) में से किसी एकका वह विशिष्ट अनुभवी हो, (१) ज्ञान विज्ञान, (२) शासन कर्म (रक्षा और प्रबंध कर्म), (३) धन-धान्योत्पादन, अर्थात्, कृषि, शिल्प (कर्मांत[1], यंत्रकर्म, कारुकर्म, उद्योग, धंधा) वाणिज्य व्यापारादि, (४) शारीरश्रम (श्रमजीविता, मजदूरी),

(ख) सामाजिक जीवनके किसी विभागमें उसने अच्छा काम किया हो, और सद्बुद्धिता, आर्यबुद्धिता (ईमानदारी, नेकनीयती), और लोकहितैषिता (लोकसेवा) का सुयश (नेकनामी) कमाया हो।

---

candidates before we allow them to seek election. When we have done that we may have great trouble in persuading the right people to come forward. We may even be driven to compel them; for those who fully understand how heavy are the responsibilities of government and how exhausting its labor are the least likely to shoulder them voluntarily. As Plato said, the ideal candidate is the reluctant one." G. B. Shaw, *Guide to Socialism and Capitalism*, p. 454-455. श्री शा-ने स्वयं कोई योग्यताके विशेषरूप, उनके परीक्षणीय लक्षण और योग्योंको कार्यभार उठानेके लिये राज़ी करनेके उपाय बताया नहीं, आवश्यकता ही दिखाई। देशबंधु चित्तरंजनदास और भगवान्दासकी बनाई हुई स्वराज-योजना (सन् १९२३) में इन तीनोंकी सूचना की है, यथा इसलेखमें भी आगे की जायगी।

1. Factory work, manufacture by machines or otherwise.

(ग) उसके पास इतना अवकाश (फ़ुर्सत) हो कि धर्मसभाके कामको अच्छी तरहसे कर सके, और जीविकासाधन (रोटी कमाने) अथवा धनसंचयनके कार्योंसे निवृत्त हो चुका हो, पर ऐसी निवृत्ति अनिवार्य न होगी।

(२) "केन्वेसिङ्ग[१]" वोट[२] मांगना, साक्षात् अथवा परोक्ष रूपसे (व्याजसे), अयोग्यताका हेतु समझा जायगा (अर्थात् उमेदवारीसे खारिज, च्युत, पतित, कर देगा), पर निर्देशकों (नामज़द करनेवालों) को अधिकार होगा कि निर्दिष्ट (निर्वाच्य) के गुणोंकी घोषणा कर दें।

(३) धर्मसभाके किसी सदस्यको कोई नक़दी पुरस्कार या वेतन सभाका काम करनेके बदलेमें न दिया जायगा, पर उस कार्यके लिये उसका जो कुछ विशेष व्यय हो, यथा सफ़र ख़र्च, मकानका किराया, आदि, वह सब उसको सरकारी ख़ज़ानेसे, राष्ट्रकोषसे, दिया जायगा, और विशेष सम्मानके चिह्न भी उसको दिये जायंगे।

नियमोंके हेतु।

इन शर्तोंके हेतु तो प्रायः स्वयंप्रकाश हैं। मानव समाज मात्रके जो मुख्य चार प्राकृतिक अंग हैं उनमेंसे प्रत्येकके अधिकतम अनुभव रखनेवाले और भद्रतम सज्जन धर्मसभामें जायँ। और धनके लोभसे, ऐश्वर्य और अधिकारके लोभसे, विनोद और मनबहलावकी आशासे, वर्गप्रशंसिता और अपने ही वर्गकी वृद्धिकी इच्छासे, राजनीतिको एक रोज़गार बना लेनेके लिये, अथवा अन्य ऐसी किसी एषणासे प्रेरित होकर, न जायँ। किन्तु एकमात्र लोकसेवाभावसे, जनताके सब अंगोंका हित साधनेकी इच्छासे, देशका बोझ उठानेकी बुद्धिसे, जायँ। और इस बड़े कार्यके बदलेमें, वृद्धोचित विशेष आदर सम्मान, उनके हृदयके तर्पण आप्यायनके लिये, उनको अवश्य दिया जाय। यही उनको गुरु-कार्यभार उठानेके लिये प्रलोभन, प्रोत्साहन, आराधन, राज़ी करने, का उपाय है।

---

१. Canvassing. २. Vote; वरणी।

प्राचीन विचार

इस विषयमें भारतवर्षका प्राचीन विचार, निगम और आगम, माकूलात व मनकूलात, वेद और स्मृति, क्या था, इसकी सूचनाके लिये आर्ष ग्रंथोंसे कुछ वाक्योंका उद्धरण इस स्थानपर किया जाता है।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्,
ये तत्र श्रेयांसो ब्राह्मणाः अलूक्षाः संमर्शिनः धर्मकामाः स्युः,
यथा ते तत्र वर्त्तेरंस्तथा तत्र वर्त्तेथाः। (तैत्तिरीय उपनिषत्)

अर्थात्, जब, क्या करना चाहिये, कैसे बरतना चाहिये, इस अवस्थामें क्या धर्म है, ऐसी शंका उत्पन्न हो, तो श्रेष्ठ ज्ञानवान् और सच्चरित्रवान् सज्जन, जो अलूक्ष, अरूक्ष, रूखे, नहीं आर्द्र कोमल अनुकम्पक हृदयवाले, और अ-मर्शी (र्षी) नहीं, संमर्शी (र्षी) मर्षणशील, मर्शनशील, विचार करनेवाले और सहन करनेवाले, रवादार और ग़ौर पसंद, "टालरंट" और "थाटफुल"[१] भी हों, वे जैसा ऐसे मौकेपर करनेको कहें और करें वैसा ही करना चाहिये।

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद् भवेद्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥
दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्कीनैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद् दशावरा॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाऽज्ञानामुदितोऽयुतैः॥
अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥

(मनु, अ० १२)

१. Tolerant; thoughtful.

वक्ष्यामि तु यथा ऽमात्यान्यादृशांश्च करिष्यसि ।
चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकान् शुचीन् ॥
क्षत्रियान् दश चाष्टौ च बलिनः शस्त्रपाणिनः ।
वैश्यान् वित्तेन संपन्नान् एकविंशतिसंख्यया ॥
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके ।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा ॥
पंचाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकं ।
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम् ॥ (म० भा०, शांति० अ० ८५)

अष्टप्रकृतिभिर्युक्तो दशभिर्वा नृपः स्मृतः ।
विना प्रकृतिसन्मंत्राद्राज्यनाशो भवेन्मम ॥
निरोधनं भवेदेवं राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ।
न बिभेति नृपो येभ्यः तैः किंस्याद्राज्यवर्धनं ।
यथालंकारवस्त्राद्यैः स्त्रियो भूष्यास्तथा हि ते ॥
न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ।
ब्रह्मणस्तु समुत्पन्ना सर्वे ते किं नु ब्राह्मणाः ॥
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्मं तेजः प्रपद्यते ।
ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः ।
शांतो दांतो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः ॥
लोकसंरक्षणे दक्षः शूरो दांतः पराक्रमी ।
दुष्टनिग्रहशीलो यः स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
क्रयविक्रयकुशला ये नित्यं पण्यजीविनः ।
पशुरक्षाकृषिकराः ते वैश्या कीर्त्तिता भुवि ॥
द्विजसेवार्चनरताः शूराः शांता जितेंद्रियाः ।
सीरकाष्ठतृणवहाः ते नीचाः शूद्रसंज्ञकाः ॥
त्यक्तस्वधर्माचरणाः निर्घृणाः परपीड़काः ।
चंडाश्च हिंसका नित्यं म्लेच्छास्ते ह्यविवेकिनः ॥
(शुक्रनीति, अ० १ और २)

अर्थात्, जब आम्नात धर्मसे, श्रुतिस्मृत्यादिमें उपलब्ध धर्मसे, काम न चले, नये धर्मका प्रयोजन हो, तो शिष्ट ब्राह्मणोंकी परिषत् जो निर्णय कर दे वही धर्म माना जाय। शिष्ट वे हैं जो सच्चरित्र हों, विविध वेद विद्या आदिको पुराण इतिहास सहित जानते हों, और श्रुतिको, सुनी बातको, प्रत्यक्ष कर दे सकें, कहेको कर दिखावें। (जैसा आयुर्वेद प्रकाशमें कहा है,

अध्यापयंति यदि दर्शयितुं क्षमंते सूतेंद्रकर्मगुरवो गुरवस्त एव।
शिष्यास्त एव रचयंति पुरो गुरूणां शेषाः पुनस्तदुभयाभिनयं भजंते॥

चिकित्साशास्त्रमें पारद आदि रसोंके जारण मारण शोधन आदि क्रियाओंकी शिक्षा देनेके योग्य गुरु वे ही हैं जो सब क्रियाओंको करके दिखा दें, और योग्य शिष्य भी वे ही हैं जो उन क्रियाओंको दुहरा दें। अन्यथा गुरु शिष्य दोनों चिकित्साका अभिनय करनेवाले नटमात्र हैं, सच्चे वैद्य नहीं।) दस सज्जनोंकी परिषत् हो सकती है जिसमें विविध शास्त्रके विद्वान् हों, और एक ब्रह्मचारी, एक गृहस्थ, और एक वानप्रस्थ हो। कमसे कम तीन सज्जनोंकी भी परिषत् हो सकती है। संकटकी अवस्थामें एक भी अध्यात्मवित्तम जो निर्णय कर दे वही धर्म माना जाय।[१] व्रतहीन,

१ इंग्लिस्तानके "हौस आफ़ लार्ड्ज़" की पूरक संख्या, "कोरम", तीन है। तथा "हौस आफ़ कामन्स" की चालीस है। पूर्ण संख्या प्रत्येककी प्रायः छः सौ है।

(१. House of Lords २ Quorum. ३. House of Commons.)

"No government by a democracy or a numerous aristocracy ....ever did or could rise above mediocrity, except in so far as the sovereign many have let themselves be guided (which in their best time they have always done) by the counsels and influence of a more highly gifted and instructed one or few". J. S. Mill, "Of Individuality". "Let themselves be guided......by a......gifted one or few": इन शब्दोंमें बहु निर्वाचक और अल्प निर्वाचित, दोनोंके गुणों और कर्त्तव्योंका समन्वय हो जाता है। पश्चिमकी धर्म परिषदोंमें भी, प्रसिद्ध है कि, सोचने विचारने वाले, बहस और निर्णय करनेवाले, सौ में पाँचसे अधिक नहीं होते, बाकी

मंत्रहीन, विचाररहित, जातिमात्रोपजीवी, ज्ञानशून्य जन, चाहे सहस्रोंकी संख्यामें भी मिलकर, यदि कुछ कह दें, तो वह धर्म नहीं हो सकता।[१]

राजाके सलाहकार, मंत्री, आठ या दस होने चाहियें। ऐसे जो राजाको न्यायके मार्ग पर रख सकें, कुराहसे रोक सकें, जिनके कोपसे राजा डरै। नहीं तो वे राष्ट्रका वर्धन नहीं कर सकेंगे।

धर्मपरिषत्‌की संख्या और पारिषदोंकी योग्यताके विषयमें, देश-काल अवस्थाके भेदसे, अनेक विकल्प हो सकते हैं। एक यह है कि, उसमें चार सज्जन सांगोपांग वेदज्ञ वैद्य हों, सब वेदोपवेदादि विद्याओं-की शिरोमणि आत्मविद्या और शरीरविद्याको जानते हों, जो आत्मा-का और देहका, अन्तःकरणका और बहिष्करणका, मनुष्यकी सम्पूर्ण प्रकृतियों विकृतियोंका, हाल जानते हों; अठारह सज्जन क्षत्रिय हों, जो अस्त्र शस्त्रके द्वारा राष्ट्रकी रक्षा करनेके कार्यके सब अंगोंमें दक्ष हों; इक्कीस सज्जन वैश्य हों, जो वित्तसे, विविध प्रकारोंके धनधान्यसे, "प्रोडक्शन आफ वेल्थ"[२] से राष्ट्रको सम्पन्न करनेके उपायोंके अनुभवी हों (वित्तशब्द भी अनेकार्थपूर्ण विद् धातुसे ही निकला है जिससे वेद शब्द निकलता है); तीन सज्जन जो शुचिता और विनीतता और सर्वसहायताके नित्य कर्मका, सब कर्मोंसे पूर्व कर्मका, जिसके बिना और कोई कर्म पूरा हो नहीं सकता, उसका नमूना हों[३];

पंचानवेकी भर्त्ती मतलबी कारणोंसे की जाती है, और वे वरणी (वोट) गिननेके समय ही काम आते हैं।

१. "The secret of sound administration is a knowledge of the particular facts of the general method of human behaviour", i. e., psychology, *adhyatma-vidya.* "As Anatole France says, 'sovereignty resides in science, and not in the people. Foolishness repeated by thirty-six million mouths is none the less foolishness'......" George E. G. Catlin, *The Science and method of Politics.* p. 348 (pub: 1927).

२. Production of wealth.

३. आजकाल पश्चिमके राष्ट्रोंमें प्रायः दो सभा मिलकर धर्मव्यवसान करती हैं—एकमें ब्राह्मण-क्षत्रिय-स्थानीय और एकमें वैश्य-शूद्र-स्थानीय सज्जन

तथा एक सज्जन सूत, अर्थात् विविध इतिहास पुराणके पूर्ण ज्ञाता, जो सद्यः बता सकें कि अमुक समय, देश, राष्ट्रमें, अमुक कृत्यसे, अमुक सुफल अथवा दुष्फल हुआ, जो बुद्धिके आठों गुणोंसे, शुश्रूषा श्रवण-ग्रहण-धारण-ऊहन-अपोहन-विज्ञान (तात्त्विक परमार्थ)-ज्ञानसे, सम्पन्न हों। सूतका, तथा अन्य सदस्योंका, वयस् प्रायः पचास वर्षका होना चाहिये। क्योंकि धर्मपरिकल्पनके गुरु-कार्यके लिये, कच्ची उमर और कच्ची बुद्धिके नहीं, पक्की उमर और पक्की बुद्धिके मनुष्य चाहियें। ऊपर वर्णवाचक शब्द कहे तो याद रखना चाहिये कि (यह शुक्रका साक्षात् वचन है) जातिसे, जन्मसे, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-म्लेच्छ नहीं होते, गुण-कर्मसे ही इनका परस्पर भेद होता है। ब्रह्मासे उत्पन्न सभी जीव ब्राह्मण हैं। रूप रंगसे, अथवा बपौतीसे, वर्णोचित तेजस् आदि गुण नहीं होता। जो सात्विक ज्ञान-कर्म-उपासनामें सात्विक देवशक्तियोंकी, ब्रह्मकी, परमतत्वकी, तथा ज्ञानकी, आराधना साधनामें, सदा रत रहे, शांत हो, दान्त हो, दयालु हो, वही ब्राह्मण है[1]। जो लोककी रक्षामें

प्रायः पाये जाते हैं। यथा इंगिलस्तानके "हौस आफ़ लार्ड्ज़" में "क्लर्जी" और "नोबिलिटी", और "हौस आफ़ कामन्स" में "कैपिटलिस्ट्स" और "लेबरर्स"।

"At present most political issues are economic in nature, and parties represent common interests in *occupations*......The landed classes, the capitalists, the labor party, socialists, free traders, free silverites, and similar groupings are typical". Gettell, *Political Science*, p. 291. स्पष्ट है कि पहले तीन वर्ग, इनमेंसे, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र स्थानीय हैं, अन्य उपवर्ग हैं। जिनका समावेश इनमें तथा ब्राह्मण वर्गमें हो सकता है।

१. अंग्रेज़ीमें "डिवाइन्-स "divine-s", इब्रानीमें "रब्बी" (Rabbi-s), अरबी फ़ारसी में "मौलवी", शब्दोंका भी ठीक वही अर्थ है जो "ब्राह्मण" का; "डीयस्, थीयास्", "रब", "मौला", सब देववाचक, ब्रह्मवाचक, शब्द हैं, सबका अर्थ ईश्वरविषयक ज्ञान रखने वाला और उपासना करने वाला, ब्रह्म वाला, डीयस वाला, रब वाला, मौला वाला।

निपुण है, दान्त है, शूर और पराक्रमी है, दुष्टोंका निग्रह करनेकी इच्छा और शक्ति रखता है, वही क्षत्रिय है। कृषि, पशुपालन, विविध द्रव्यों के क्रयविक्रय आदि पण्य कार्यमें, जो कुशल है, वही वैश्य है। तीनों द्विजोंकी सहायता करने वाला, शांत, शूर, जितेंद्रिय, पर बुद्धिमें कम, नम्र, हल चलाने आदिके कार्यमें कुशल, जो हो, वह शूद्र है। सब धर्मोंसे विमुख, निर्घृण, परपीड़क, चंड, हिंसक, वही म्लेच्छ है।

ऐसे श्लोकोंका आशय थोड़ेमें यही है कि सब आश्रमों और सब वर्णोंके कृत्योंका अनुभव रखनेवाले परिपक्व बुद्धिके लोक-हितैषी सज्जन ही, यथासंभव धर्मव्यवस्थापक सभाके सभ्य होने चाहियें।

शांतिपर्वके अ० ८३–८५ में विस्तारसे वर्णन किया है कि सभासद्, अमात्य, मंत्री, में कौन कौन गुण होने चाहियें और कौन कौन दोष न होने चाहियें।

श्रेयसो लक्षणं चैतद् विक्रमो यस्य दृश्यते।
कीर्त्तिप्रधानो यश्च स्यात्समये यश्च तिष्ठति॥
पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः।
योद्धा नयविपश्चिच्च स मंत्रं श्रोतुमर्हति॥ इत्यादि

निष्कर्ष यह कि पुरवासी और जनपदवासी जनतामें जिसकी सत् कीर्त्ति हो, और जिस पर उनका विश्वास हो, और जो कीर्त्तिका ही विशेष अभिलाषी हो, धनका नहीं, वह मंत्री, सभासद्, होना चाहिये। शुक्रनीतिमें भी श्लोक है,

उत्तमा मानमिच्छंति धनमानौ तु मध्यमाः।
अधमा धनमिच्छंति मानो हि महतां धनम्॥

"धनमानौ" के स्थान पर 'आज्ञाशक्ति" पढ़ें, तो उपनिषदुक्त लोकैषणा, अर्थात् सम्मानेच्छा, ऐश्वर्यैषणा जिसमें दारसुतैषणा अंतर्गत है, और वित्तैषणा से इस श्लोकका सामंजस्य हो जाय। संन्यासीके लिये सम्मानैषणा भी उचित नहीं। इसीलिये संन्यासीको धर्मपरिषत्में स्थान भी नहीं। पर जो व्यवहारसे सर्वथा पृथक् नहीं हुआ है, उसको "यशसि चाभिरुचिः" अनुचित नहीं। और भी, यदि वह स्वयं सम्मान

न भी चाहै, तौ भी जो लोग उससे काम लेने हैं, उसपर धर्मविचारका बोझ रखते हैं, उनका तो कर्त्तव्य है कि उसको सम्मान दें, "अवमंता विनश्यति", और उससे प्रार्थना करैं कि आप हम लोगोंका काम सम्हालिये। इसीमें दोनोंकी शोभा है। न यह कि उलटे वह उनसे प्रार्थना करे कि हमको काम सौंपिये। यदि ऐसा करै तो अवश्य स्वार्थी है, और काम बिगाड़ैगा, उसकी नीयत छोटी और खराब है। "याचकस्तृणादपि लघीयान्।"[१]

रूस देशकी दशा।

इस स्थानपर उचित होगा कि नयी पुश्तका ध्यान रूस देशकी नयी व्यवस्थाके एक अंशपर दिलाया जाय। क्योंकि उस देशका जो हालका वृत्तांत है, जो बड़े परिवर्त्तन वहाँकी राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक व्यवस्थामें हुए हैं, उनका प्रभाव स्वभावतः इस देशकी नयी पुश्तके हृदयपर बहुत पड़ा है। रूस देशके नये संघराज्यका नाम क्या रखा गया है इसको विचारिये। "दी वर्कर्स, सोल्जर्स, एण्ड पेज़ेन्ट्स सोवियेट आफ रशिया"—यह नाम है। अर्थात् "रूसके कर्मकारों, योद्धाओं, और किसानोंकी पंचायत।" कर्मकारोंके निसर्गतः दो अवांतर विभाग होते हैं। एक बुद्धिसे काम करनेवाले, और दूसरे शरीरसे। तो अब देखिये कि वे ही चार मुख्य सनातन अंग समाज-शरीरके फिर

१. "The original theory of representation was that it should be regarded as a duty, and not as a gainful employment...that representatives are paid in honor and not in money ..The practice of salary payment cannot fail to sap the independence of the assembly...Some observers note a new spirit of submissiveness in parliament since salaries were introduced... It is certain that paid service to the public cannot compare in dignity and independence with unpaid service...... Some money allowance (should be made) to cover some necessary expenses involved by the representative function." Henry J. Ford, *Representative Government*, pp. 203-205, see also Gettell, *Political Science*, p 248.

यहाँ भी, रूसकी रिपब्लिकमें भी, विवश होकर माने ही गये। और नाम भी उनके पुरानेसे ही हैं। नाम भी नये नहीं मिले। इस्लाम धर्मकी सभ्यताके शब्दोंनें इनको (१) आलिम, (२) आमिल, (३) ताजिर, (४) मददगार कह सकते हैं। संस्कृतके नाम अपने सत्यार्थसे कालके प्रवाहमें इतनी दूर बह गये और बहक गये हैं, कि अति प्रसिद्ध होते हुए भी उनको अब निषिद्ध ही समझना अच्छा है। शिक्षक, रक्षक, पोषक, सहायक; अथवा ज्ञानी, शूर, दानी, समर्थक; अथवा ज्ञानद, त्राणद, अन्नद, सहायद; अथवा शास्त्री, शस्त्री, धनी, अनुचारी; अथवा लोकैषी, बलैषी, वित्तैषी, विनोदैषी; अथवा शांत, शुष्मी, कर्मी, दुःखी (वायु पुराण) ऐसे कुछ नये नाम बनाये जायँ तो स्यात् वर्णव्यवस्थाका तात्त्विक सात्त्विक धार्मिक अभिप्राय और लक्ष्य पुनः प्रकाशित हो, जो अब नितरां अन्धकारसे आच्छन्न है।

शंकासमाधान।

एक स्वाभाविक शंकाका समाधान कर देना चाहिये। कैसे निर्णय होगा, कौन निर्णय करेगा, कि निर्दिष्ट व्यक्तिमें उक्त गुण और योग्यता है या नहीं है? इस विषयके धर्मका, कानूनका, प्रवर्त्तन, प्रणयन, आचारण, कैसे किया जायगा? इसका "सैंक्शन्", दंडात्मक प्रतिभू, क्या होगा? उसका प्रयोग कैसे होगा?

इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि अन्य देशोंके स्वराज्य विधानों, "कांस्टिट्यूशन"[१] के अनेक अंशोंके संबंधमें ठीक यही शंका की जा सकती है, तथा भारतीय स्वराजयोजनाकी महिमाशाली प्रभूतार्थ धारा चारके कई अंशोंके सम्बन्धमें भी जिनमें जनताके नैसर्गिक अधिकार (फंडामेंटल राइट्स्)[२] की परिगणना की है, तथा भावी पार्लिमेंटको, धर्मसभाको, आदेश किया है कि इस प्रकारके धर्म, कानून, बनाना। किन्तु उनपर किसीने भी ऐसी शंका नहीं उठायी। बात यह है कि, "काँस्टिट्यूशन", स्वराजविधान, धर्मों, कानूनों, का मूल है, उद्भवस्थान, उत्पत्तिकारण, है, स्वयं उनके समान साधारण कानून, धर्म, नहीं है। मामूली

१. Constitutions. २. Fundamental rights.

कानूनोंके समान उसका प्रवर्तन करनेका यत्न नहीं करना चाहिये। मामूली धर्मोंका भी सर्वथा आचारण, प्रवर्त्तन, नहीं ही हो सकता। दण्डविधान (पीनल कोड) हैं, पर पाप (जुर्म) भी होते ही रहते हैं। और, चाहे कुछ भी प्रबन्ध किया जाय, बहुत सा भरोसा अधिकारियों, काम करने वालों, "सरकारी नौकरों" "राज्य-भृत्यों", की सद्बुद्धिता और आर्यता-पर करना ही पड़ता है। कानूनका अमल उनकी अकल और नीयतपर मुनहसर रहता ही है, उनके विवेक और निर्णयपर छोड़ा ही जाता है। अधिकारी चाहे तो कड़ाईसे, चाहे तो ढिलाईसे, चाहे ईमानदारीसे, चाहे बेईमानीसे, लापरवाहीसे या होशसे, कानूनका बर्ताव कर सकता है। एकही नियमका चाहे सदुपयोग चाहे दुरुपयोग करता है। धर्मविधानों, "लाज़", "ऐक्ट्स" के शब्दोंकी व्याख्या इसके इख़्तियारमें है[१]। यह कथा साधारण कानूनोंकी है। स्वराजविधानका विशेष यह है कि उसके निर्माता, और उसके निर्माणका प्रकार, सामान्य धर्मोंके निर्माण प्रकार और निर्माताओंसे भिन्न होते हैं। स्वराजविधान तो "एक्ट आफ लेजिस्लेशन",[२] धर्मपरिकल्पन रूपी कर्म, नहीं है, धर्मव्यवसान-क्रिया, नहीं है, किन्तु स्वयम्भवन, प्रादुर्भवन, नये राष्ट्रका आत्मव्यञ्जन, स्व-सर्जन रूपी आदिम कर्म है। पच्छिमके राजनीतिशास्त्रके किसी किसी ग्रंथकारने ऐसी क्रियाको "एक्ट आफ रेवोल्यूशन",[३] अर्थात "विप्लवन क्रिया", कहा है। स्वराजविधान ही तो

---

१. मैकौले (Macaulay) ने "इंडियन पीनल कोड" (Indian Penal Code) के हेतुविवरणमें, चोरी किसको कहते हैं इसको बहसमें, तथा अपने लिखे इंग्लिस्तानके इतिहास (History of England) के नवें (९) अध्यायके आरम्भमें, राजाके विरुद्ध युद्ध करना किस अवस्थामें उचित है, इस विषयपर वादके संबन्धमें, बहुत सरस शब्दोंमें बहुत उचित विचार किया है। Gettell's *Political Science* में भी पदे पदे दिखाया है कि राजधर्मादिके किसी विषयका भी पूरा व्यंजन, "इदमित्थमेव", नहीं हो सकता। pp. 348-9,371, etc. २. Act of legislation.

३. Act of revolution (Gettell, *Introduction to Politica Science*, p. 196).

प्रथमतः उस उपकरणका, धर्मसभाका, निर्माण करता है जो आगे चलकर धर्मोंका परिकल्पन करेगी। और वही उन उपकरणोंका, "सैंक्शनों"का, शासकवर्गका, राष्ट्रभृत्यसमूहका, अधिकारिव्यूहका, भी निर्माण करता है, जो इन धर्मोंका प्रवर्त्तन करेंगे। स्वराज-विधायक धर्म स्वयंभूः, स्वतःप्रमाण, होता है, अन्य सब पश्चात्कृत धर्म परतोभूत, परतः-प्रमाण, होते हैं। इसीलिये भारतवर्षका परम प्राचीन, आदिम, मूल, स्वराजविधानात्मक धर्म, स्वयंभू-कृत "वेद" की संहिता (जिसमें "स्व-राज्य"–सूक्त विद्यमान है) और ऐतरेयब्राह्मण आदिमें तथा स्वायम्भुव-मनु-कृत "स्मृति" में लिखा हुआ है। ऊपर जो उपाय कहे हैं उनके प्रवर्त्तनका उपकरण, विशेष विशेष अधिकारियोंकी नहीं, किन्तु निर्वाचक समूहकी शिक्षित बुद्धि और बुद्धिनीत शक्ति ही होगी। अंश क्या सकल स्वराजविधानका "सैंक्शन", प्रतिभूः, स्वराजविधाता सकल जनसमुदायका स्थिर बुद्धि-बल और दृढ़ व्यवसाय-बल ही हो सकता है, दूसरा नहीं।

स राजा पुरुषो दंडः...धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः। मनु०

माना कि यदि कोई व्यक्ति धर्मके विरुद्ध आचरण करै तो स्वराज विधानके अनुसार नियुक्त अधिकारी उसका नियमन नियंत्रण करै। और यदि अधस्तन अधिकारी उचित कार्य न करै तो उपरितन अधि-कारी उसका दमन दंडन करै। और उपरितम अधिकारी, राजा या प्रधान, "प्रेसीडेंट",[1] उत्पथ चलै तो धर्मपरिषत् उसका निग्रह करै। शुक्रनीति (अ० २, श्लोक ७८–८९) में कहा है,।

यत्कोपभीत्या राजाऽपि धर्मनीतिरतो भवेत्।
सैवाचार्यः पुरोधाः यः शापानुग्रहयोः क्षमः॥

पुरोहित वही जो राजाका भी निग्रह और अनुग्रह यथोचित कर सकै, जिसके कोपके भयसे राजा धर्मनीति पर ही, कानूनके, मर्यादाके, अनुसार ही, चलै। मनुने भी कहा है,

१. President.

क्षत्रस्याति प्रवृद्धस्य ब्राह्मणानतिवर्त्ततः ।
ब्रह्मैव संनियंतृ स्यात् क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥

यदि कर्मप्रधान अधिकारिवर्ग मिलिटरिज़मपर उतारू हो जाय, और ज्ञानप्रधान पुरोहित वर्गका अतिवर्त्तन करै, ("अतिवर्त्तमानस्य"के स्थानपर "अतिवर्त्ततः" का प्रयोग आर्ष है), उनका कहना न मानै, तो पुरोहित वर्ग हीको उसका दमन करना होगा, क्योंकि ज्ञान-से ही कर्मकी, ज्ञानिवर्गसे ही राष्ट्रादि कर्म्मिवर्गकी, उत्पत्ति हुई है ।

भागवत, १ स्कं०, १८ अध्याय, श्लो० ३४, में भी कहा है ।

ब्राह्मणैः क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो नियोजितः ॥

प्रजाके ज्ञानिवर्गने राजा आदि कर्म्मिवर्गको प्रजाकी रक्षाके लिये चौकीदार, पहरुआ, द्वारपाल, मुकर्रर किया है । यह सब माना । पर यदि पुरोहितवर्ग, ज्ञानिवर्ग, भी काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सरादिसे अंध हो जाय, पथभ्रष्ट, निर्मर्याद, पाषण्डी, बकव्रती, बिड़ालव्रती, दुष्ट-बुद्धि हो जाय, और ज्ञानको स्वार्थका दास बना दे, यदि ब्रह्म और क्षत्र, "चर्च और स्टेट", "टेम्पोरल पावर और स्पिरिचुअल पावर"[१] आपसमें मिलकर प्रजाकी यमयातना करने लगें, तब क्या उपाय है ? कौन प्रतिभू , "सैंक्शन", काम करैगा ? पहरेदारपर पहरा कौन देगा ?[२] अंततो गत्वा, जनतासमूहमें व्याप्त अव्यक्त बुद्धि और अव्यक्त शक्ति ही को, जिसीने नया राष्ट्र और नया राष्ट्रविधान बनाया, उसीको फिरसे धर्मसंस्थापनार्थ नये रूपमें अवतार लेकर, नया "रिवोल्यूशन" विप्लवन करके[३], ब्रह्म-क्षत्र-विट्-शूद्र सबका पुनः संशोधन करना पड़ेगा, समाजका और राष्ट्र विधानका जीर्णोद्धार करना पड़ैगा । निष्कर्ष यह कि प्रस्तुत विषयमें प्रतिभूके लिये आग्रह नहीं करना, बालकी खाल नहीं निकालना ।

---

१. Church and State; temporal power and spiritual power. See Wells *Outline of History*, I, 142, *et seq;*, Gibbon's *Rome*, ch. III; von Hammer's *History of the Assassins*, by Swami Shraddhananda.

२. *Quis custodiet custodes.* ३. Revolution.

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ (गीता)

स्वराजविधानमें, महाजन-समूहके व्यूढ़, संग्रथित, संगृहीत सामाजिक जीवनके आदर्शोंका, लक्ष्योंका, सन्निवेश किया जाता है। उसमें कानूनी मसलोंका, मैमांसिक न्यायोंका, ही नहीं, किन्तु उत्कृष्ट सदाचार और सभ्यताके आदर्शोंका भी संग्रह किया जाता है। जो जनसमुदाय उसका विधान करता है उसके आध्यात्मिक गुणों और श्रद्धाओं और अभीष्टोंका उल्लेख उसमें किया जाता है, यथा सर्वदलसमितिकी योजनाकी उक्त धारा चारमें अंशतः किया गया है। और याद रखनेकी बात है कि आध्यात्मिक उत्कर्ष करना और सदाचारकी श्रद्धा जगाना, मानवसमाजके सर्वांगीण सुखसाधनके लिये, दंडविधानों (पीनल् कोड्ज़[1]) की अपेक्षा, बहुत अधिक आवश्यक और उपयोगी है। यदि ये हैं, तो दंडविधान, अनुचर रूपसे, इनकी कुछ सहायता कर सकता है। यदि ये नहीं हैं, तो दंडविधान नितरां व्यर्थ है। शिक्षाद्वारा आत्मोत्कर्षण, आत्मोद्धरण, मनुष्यका बनाना, पहिले; दंडसे संशोधन, बिगड़ेका सुधारना, पीछे।

स्वराजविधानमें ऊँचे आदर्शके रख देनेसे जनताका उत्तम शिक्षण।

इन कारणोंसे यह सर्वथा उचित है कि स्वराजविधानमें धर्मपरिकल्पक पुरोहितके ऊँचे प्रतिमानका सन्निवेश कर दिया जाय, अर्थात् यह कि उसको ऊँची काष्ठाका परार्थी भी और अनुभवी धीमान् भी होना चाहिये, क्योंकि वही प्रजाके समग्र सुखका विश्वस्त निक्षेपधारक और संरक्षक है। ऐसे संनिवेशका कमसे कम इतना फल अवश्य होगा कि यह आदर्श निर्वाचकोंके सामने सदा उपस्थित रहेगा, उनको अंधकारमें दीपकका काम देगा, चुननेवालोंके लिये सबसे आवश्यक जो शिक्षा है, अर्थात् ठीक चुनाव कैसे करना, किसका करना, और जिस शिक्षाको वे

१. Penal Codes.

सहजमें ग्रहण भी कर सकते हैं, वह शिक्षा उनको निरंतर देता रहेगा। क्रमशः, यह आदर्श उनके हृदयोंमें प्रवेश करेगा, और उनके निर्वाचन-कर्मपर प्रभाव डालेगा। अनायासेन, अंतर्बोधहीसे, वे अच्छे योग्य व्यक्तियोंका प्रतिनिधान करने लगेंगे, जो व्यक्ति समाजके अन्योन्याश्रित चार अंगोंमेंसे किसी न किसीके धर्म कर्मके अच्छे अनुभवी भी होंगे, और निस्स्वार्थ, सर्वलोकहितैषी भी होंगे, और बड़ी चिंतना और पूर्वापरविचारके साथ ऐसे कानून बनावेंगे, जो समाजके सब वर्गोंके योग-क्षेमकी वृद्धि करें। याद रहे कि प्रत्येक सभ्य और समृद्धिशाली मानव-समाजमें, राष्ट्रमें, ये चारो परस्पराश्रित अंग वैसे ही वर्त्तमान हैं जैसे जीवत्शरीरमें प्रसिद्ध चारो अंग, सिर, जिसमें ज्ञानेंद्रिय हैं, बांह, जिसमें क्रियाशक्ति है, धड़, जिसमें अन्नसंचयशक्ति (इच्छाशक्ति) है, पैर, जो सबका बोझ सम्हालते हैं।

तथा स्वराजविधान द्वारा इस आदर्शके प्रचारका और भी सुफल होगा। जैसे व्यापारके स्थूललोकमें जिस सौदेकी माँग अधिक होती है वह बहुतायतसे बाजारमें एकत्र भी हो जाता है, वैसे ही सूक्ष्मलोक-में भी। जो समाज हृदयसे चाहता है कि हमें ऐसे व्यक्ति मिलें जो धर्मपरिकल्पनके योग्य हों, उसके बीचमें अधिकाधिक मात्रासे ऐसे योग्य व्यक्ति उत्पन्न होंगे।

एक और बड़ा आनुषंगिक गुण।

स्वराज-विधानमें उक्त प्रकारकी शर्तें निर्वाच्योंके विषयमें रख देनेसे व्यवहारमें भी तत्काल एक भारी लाभ होगा। यह बात प्रायः सब लोग मानते हैं कि भारतवर्षके राजनीतिक स्वाधीनताके नियुद्धमें शान्तिमय असहयोगसे, इस देशकी जितनी प्रगति हुई, उतनी किसी दूसरे इसके पहिलेके उद्योगसे नहीं हुई। और यह भी प्रायः मानी बात है कि यदि इस असहयोगके द्वारा जितनी कार्यसिद्धि होनी चाहती थी वह नहीं हुई तो उसका मूल कारण यही हुआ कि कार्यकर्त्ताओंमें "विनयन" और "व्यूहन" (डिसिप्लिन और आर्गेनिजेशन[1])

[1] Discipline; organisation.

पर्याप्त मात्रामें नहीं था। अब विचारनेकी बात है कि इस विनयाभाव और व्यूहाभावका क्या कारण था। सूक्ष्म अन्वेषणसे निश्चय होगा कि इस अभावका मुख्य कारण, जनताके मनमें स्वराजके तत्वके ज्ञानका अभाव था। कॉंग्रेसने इस तत्वका निरूपण नहीं किया, न जनताको उसके बताने सिखानेका प्रयत्न किया, न कॉंग्रेसके कार्यकर्त्ता-व्यूहमें इसका स्पष्ट रूपसे बुद्धिपूर्वक व्यावहारिक उपयोग किया गया, कि "स्वराजका सच्चा अर्थ जनताके उत्तम 'स्व' का राज, जनताके भद्रतम, विज्ञतम, लोकहितैषितम, परार्थितम, पुरोहित, निर्वाचित, चुने हुए, सज्जनोंके द्वारा धर्मोंका परिकल्पन, है।" स्वराजके इस तात्विक सात्विक सत्य अर्थका प्रचार कॉंग्रेसकी ओरसे नहीं किया गया। फल यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिने मनमाना समझ लिया कि स्वराजका अर्थ प्रत्येक व्यक्तिका राज, जिसका जो जी चाहे वह करे। यह परम मिथ्या भाव ही विनयाभाव और व्यूहाभावका, तथा अन्य सब प्रकारकी अनर्थपरंपराका, परम मूल कारण है।

यदि स्वराजविधानके द्वारा स्वराजके इस सत्यार्थका प्रकाश और प्रचार कर दिया जाय, धर्म-व्यवस्थापकोंके लिये ऊपर कही हुई शर्तें लगा दी जायँ, जिससे सबको स्पष्ट विदित हो जाय कि इनको देशके उत्तम-"स्व"के स्थानीय होना चाहिये, तो इस भावका प्रभाव कॉंग्रेसके व्यूहनकार्यपर अवश्य पड़ेगा। यह भाव काममें लाया जायगा।

आज तक यह दशा रही है कि किसी किसी तरहसे यदि एक दिन कोई आदमी "लीडर", नेता, बनाया गया, तो दूसरे ही दिनसे अनुगयियोंमें, तथा समकक्ष नेताओंमें, उसका दोषगान आरंभ हो जाता है, निरन्तर ईर्ष्याद्वेषकी बौछार उसपर पड़ने लगती है, थोड़े ही दिनोंमें बेकार कर दिया जाता है, और क्रमशः लीडरीसे अलग होता है या किया जाता है। दूसरा खड़ा किया जाता है, और फिर वह गिराया और नीचा दिखाया जाता है। गोया बच्चोंके खिलौनोंका खेल हो गया है, रोज एक जोड़ा जाय, रोज एक तोड़ा

फोड़ा जाय। यह अनुयायियोंका, नीतोंका व्यवहार है। नेता भी कितने ही ऐसे ही प्रायः देख पड़ते हैं, जिनको नेता बननेकी उत्कट इच्छा रहती है, योग्यता नहीं। तरह तरहकी चालोंसे इस इच्छाको पूरी करते हैं। और इसी कारणसे पीछे उनको दुर्दशा भोगनी पड़ती है। पुराना नियम यह रहा है कि सच्ची योग्यताका पुरुष तो, जिसकी योग्यता वर्षोंसे उसके जीवनके प्रकारसे सिद्ध हो चुकी है, नेतृत्वके गुरु भारसे भागना चाहता है, पर लोग अपनी भलाईके लिये उसका अनुनय-विनय करके अपना बोझ उसके कंधेपर रखें, और उस बोझको ढोनेके लिये उसकी खुशामद-बरामद, आदर-सत्कार, करके उसको राज़ी करें। न यह कि वह कहे कि मैं बड़ा बुद्धिमान् और होशियार और लायक हूँ, लाओ अपने कामका बोझ मेरे सपुर्द करो, देखो मैं किस खूबीसे उसको उछालते हुए ले चलता हूँ।

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अपमानस्य चाकांक्षेदमृतस्येव सर्वदा॥
सुखं शेते ह्यवमतः सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्, अवमंता विनश्यति॥ (मनु)

यदि स्वराजका यह तत्त्व, उसका यह सच्चा अर्थ और आदर्श, देशमें फैलाया जाय तो अवश्य इसका यह फल होगा कि सच्चे आर्य बुद्धिके, आर्य हृदय वाले, आदरके "अर्हत्", संमानार्ह, अनुभवी, लोकहितैषी, सज्जन ही नेता माने और प्रार्थनापूर्वक बनाये जायँगे, और सब प्रकारके लोग उनपर विश्वास और श्रद्धा करेंगे। इसका फल यह होगा कि आपसके नित्य नित्यके द्वेष, ईर्ष्या, और कलह बहुत कम हो जायँगे। साम्प्रदायिक द्रोह भी कम होगा। क्योंकि लोकहितैषिताका अर्थ ही साम्प्रदायिक संकुचितताका अतिक्रमण करके सब विविध सम्प्रदायोंके लोगोंका हितचिंतन है। और लोकहितैषीके ऊपर सब सम्प्रदाय वालोंका विश्वास होगा। जब ईर्ष्याद्वेषजनित कलह मिटै, और नेताओं और नीतोंके आपसमें परस्पर विश्वास हो, तो अवश्य ही कर्मकर्त्ताओं, कार्यनिर्वाहकों, का व्यूहन, संहनन, दृढ़ और सर्वकार्यक्षम

होगा, और उनमें विनयनका भाव (विशेषेण नयनं, "डिसिप्लिन") उत्तम रीतिसे उत्कर्ष पावेगा। विनयका, विनयनका, "डिसिप्लिन" का, अर्थ ही यह है कि नेता, वि-नेता, जैसा आदेश करे तत्काल तदनुसार ठीक ठीक वि-नीत, अनुयायी, वैसा कार्य करे, यथा "सुविनीताः अश्वाः"। और जब देशमें विनयन और व्यूहनके भाव व्याप्त हो जायंगे तब उस देशकी जनता जिसी कार्यको उठावैगी उसीका विजय कर लेगी, स्वराज सिद्ध भी होगा, और आगेके लिये स्थिर भी होगा।

नये विचार।

देशकी नई पुश्त अपने विश्वजनीन भाव और उदार हृदयके कारण ऐसे कुछ आर्थिक आदर्शोंकी ओर झुक रही है जो अंग्रेजीके कम्यूनिज्म और सोशलिज्म[१] शब्दोंसे, अर्थात् साम्यवाद और समाजवादसे, सूचित होते हैं, और जो वैयक्तिक सम्पत्ति (परिग्रह, "प्रैवेट प्रापर्टी"[२]) के माननेवाले इंडिविज्युअलिज्म[३] अर्थात् व्यक्तिवादके विरुद्ध पड़ते हैं। तथा राजनीतिके क्षेत्रमें यह पुश्त "डोमिनियन स्टेटस"[४] को नापसन्द करती है और "इंडिपेन्डेन्स"[५] अर्थात् "अनधीनता" को चाहती है।

पुरानी पुश्तकी ओरसे भी यह कहनेका साहस किया जा सकता कि वह भी इन्हीं आदर्शोंको अपनाये हुए है। ये आर्थिक आदर्श, उक्त भारतीय स्वराजयोजनाकी धारा ४ में कथंचित् रखे गये हैं। कौन नहीं चाहता कि हमारे राष्ट्रका निर्माण ऐसा सुन्दर हो, हमारे समाजका व्यूहन ऐसी बुद्धिमत्ता और कार्यकुशलतासे किया जाय, कि, जहांतक भी संभव हो, उसके भीतर बसनेवाले प्रत्येक मनुष्यको पर्याप्त अन्न, पर्याप्त वस्त्र, पर्याप्त शिक्षा, पर्याप्त गार्हस्थ्यसुख, पर्याप्त (जीविकासाधक) कार्य, और पर्याप्त विनोद मिले? अवश्य सभी ऐसा चाहते हैं। यदि मतभेद कुछ भी है तो इस विषय पर है कि इसके उपाय क्या हैं,

---

१. Communism; Socialism. २. Private Property.
३. Individualism. ४. Dominion Status. ५. Independence.

और यह लक्ष्य कहाँतक, किस हद्तक, सध सकता है। पर याद रखना चाहिये कि यदि यह कुछ भी साध्य है, तो अच्छे और विवेकी, युक्तियुक्त, उपयुक्त कानूनोंके द्वारा ही साध्य है, और ऐसे कानून तभी बन सकेंगे जब कानून बनानेवाले अच्छे और विवेकी और सर्वहित-चिंतक होंगे। ऐसे सर्वहितसाधक राष्ट्रनिर्माण और समाजव्यूहनका एकमात्र प्रकार यही जान पड़ता है कि 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्तके अनुसार समाज रचा जाय और कर्मवृत्ति-एषणा-तोषणा आदिका विभाग कानून द्वारा किया जाय।

अधीनता अथवा अन्योऽन्याधीनता।

ऐसे ही, राजनीतिक आदर्शके विषयमें, अनधीनता, अथवा स्वाधीनता, ("सेल्फ-डिपेंडेंस"[१] जो अनधीनतासे अधिक अच्छा और अर्थद्योतक शब्द है) कौन नहीं चाहता? पशु तक तो उसे चाहते ही हैं। फिर भारतीय मनुष्य क्यों न चाहेंगे? पर यहाँ भी, जो मतभेद नयी और पुरानी पुश्तके बीचमें है वह इस बातमें है कि कहाँतक और किस रूपमें यह लक्ष्य सध सकता है। पच्छिममें भी, राजनीति शास्त्रके ग्रंथकार मानते हैं कि आत्यंतिक अनधीनता तो अत्यंतासत् अभाव रूप पदार्थ है। कोई बलिष्ठ और महिष्ठ राष्ट्र भी ऐसा अत्यन्त अनधीन नहीं है। यदि उसने किसी भी दूसरे, छोटेसे छोटे, राष्ट्रसे भी, किसी भी प्रकारकी सन्धि की, तो उस सन्धिकी शर्तों, समयों, से वह अन-धीनता, दोनोंकी अवच्छिन्न हो जाती है। और आज ऐसा कोई बड़ेसे बड़ा, सभ्य राष्ट्र नहीं है जिसने दूसरोंके साथ बहुविध सन्धियाँ न कर रखी हों।[२]

असल बात यह है कि "डोमिनियन स्टेटस" के नामसे, और इंग्लिस्तानसे कुछ भी सम्बन्ध बने रहनेकी बातसे, हमारी नयी पुश्त

---

१. Self-dependence.

२. See Gettell, *Political Science*, pp. 13, 95, 146. यह सब "अव्यक्तं कारणं", और "वैशेष्यात् तद्वादः", और "सर्वं सर्वेण संबद्धं" के उदाहरण हैं।

इसलिये क्रुद्ध हो रही है कि भारतमें जो इस समय आंग्ल शासन है उसने भारतकी जनताके साथ ऐसे उद्वेजक तिरस्कारात्मक व्यवहार किये हैं जो कृतघ्नता और विश्वासघात और भक्तिराहित्य और प्रजाद्रोहसे भरे हैं, और "ब्रिटिश एम्पायर"[१] का नाम ही औद्धत्य और गर्वसे भरा है। पर जब यह पद और पदार्थ बदलकर उसके स्थानमें मैत्रीमय सौमनस्यपूर्ण "इण्डो-ब्रिटिश" अथवा "ब्रिटिश-इण्डियन कामनवेल्थ"[२] स्थापित हो जायगी, तब यह सब उत्तेजनाका कारण मिट जायगा, न एक ओर तिरस्कार रहेगा, न दूसरी ओर रोष, प्रत्युत दोनों ओर भ्रातृभाव और परस्पर सहायकता और शुभचिंतन। और इस "कामनवेल्थ", राष्ट्रसङ्घ, के अवयवभूत सभी राष्ट्र—अनधीन नहीं, प्रत्युत तुल्य रूपसे अन्योन्याधीन, पराधीन नहीं, प्रत्युत परस्पराधीन—एक साथ मानव जातिके उस उत्तम और अन्तिम लक्ष्यकी ओर बढ़ेंगे जिसका रूप यह है कि समस्त पृथ्वीमण्डलके सब राष्ट्रोंका एक महासंघ हो जाय। "वसुधैव कुटुम्बकं"। "नैशनलिज्म" नहीं, प्रत्युत "ह्यूमनिज्म"।[३]

जैसे एक एक पृथक् पृथक् राष्ट्रके भावसे, कई राष्ट्रोंके एक सङ्घका भाव गुरुतर है, वैसे इस प्रकारके एक राष्ट्रसङ्घके भावसे "लीग आफ नेशन्स" का भाव (जिसमें कई राष्ट्रसङ्घ तथा पृथक् पृथक् राष्ट्र भी शामिल हैं) गुरुतर है। यद्यपि अबतक यूरोपकी "लीग आफ नेशन्स" ने अन्य देशोंमें बसनेवाली दुर्बल जातियोंके साथ बहुत अन्याय और बदनीयतीसे ही काम किया है, तो भी वह आनेवाले सुकालकी पेशखेमा है, शकुन रूप है, जब यह कुटिल बुद्धि मिट जायगी, और पूर्व और पश्चिमके सभी देश एक बड़े पृथ्वीतलव्यापी महासङ्घके अङ्ग होकर सब परस्पर शुभचिन्तन और हितवर्धन करेंगे और वह महासङ्घ सबको तुल्यरूपसे शरण देगा। "बुद्धं, बुद्धिमन्तं, सद्धर्मविधातारं शरणं गच्छामि; धर्मं, सद्बुद्धिविहितं, प्रबुद्धजनपरि-

१. British Empire.

२. Indo-British or British-Indian Commonwealth.

३. Nationalism; humanism.

कल्पितं, सर्वलोकरक्षकं, सद्धर्मं शरणं गच्छामि; सङ्घं, तत्सद्धर्मानुसारेण संहितं, सर्वराष्ट्रांतर्गतसमस्तमानवजातिमहासङ्घं, शरणं गच्छामि"।

ऐसे विचारोंसे यही सिद्ध होता है कि पूर्ण अनधीनता खपुष्प और शशश्रृंग मात्र है। अन्योऽन्यतन्त्रता ही प्राकृतिक वास्तव पदार्थ है। यदि हमलोगोंको, इण्डो-ब्रिटिश अथवा ब्रिटिश-इण्डियन राष्ट्रसङ्घके भीतर, परस्पर समानता और आदरके साथ, प्रजाकी ओरसे शान्तिमय पर दृढ़ निश्चयमय दबावको अधिकारिवर्गके ऊपर डालनेसे, स्थान मिल जाय, तो जो कुछ भी हमारे देशकी सच्ची सम्पन्नताके लिये, तथा मानव संसारके उत्कृष्टतम राजनीतिक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये, अभीष्ट है, वह सब सिद्ध हो जायगा।

अच्छे धर्मपरिकल्पक सभी अवस्थामें चाहिये।

पर यह याद रखनेकी बात है कि ऐसी तुल्य परस्पराधीनताकी अवस्थामें भी भारतवर्षके भीतरका प्रबन्ध निर्वाचित धर्मसभाके द्वारा होगा, तथा दूसरे राष्ट्रोंसे जो कुछ सन्धिद्वारा सम्बन्ध होगा वह भी इस धर्मसभाकी अनुमतिसे ही होगा, और इंग्लिस्तानसे जो पारस्परिक सम्बन्ध रहेगा वह भी सन्धिवत् होगा, चाहे स्वराजविधानमें पहिलेसे ही उल्लेख कर दिया जाय, चाहे पीछेसे हमारी धर्मसभा उसको मंजूर करे।

कहनेका तात्पर्य यह है कि, चाहे जो भी नाम या प्रकार इष्ट समझा जाय, अनधीनता, अथवा डोमिनियन स्टेटस, अथवा तुल्य परस्पराधीनता, सभी दशामें अच्छे कानूनोंकी आवश्यकता है, और इनके बनानेके लिये अच्छे धर्मपरिकल्पकोंकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता सबसे पहिली है। सच्चे स्वराजका हृदय, परम मर्म, यही है। दूसरे राष्ट्रोंसे क्या सम्बन्ध होगा, "किंङ्", "गवर्नर जनरल", "गवर्नर",[१] आदि शब्द, हमारे स्वराजविधानकी धर्मसभाओंके निरूपणमें शामिल किये जाने चाहिये या नहीं—यह सब बातें भी अवश्य बड़े गौरवकी हैं, पर इनका गौरव द्वितीय काष्ठाका है, धर्मपरिकल्पकोंकी

१. King; governor-genral; governor.

उत्तमताका गौरव ही प्रथम काष्ठाका है। इसीलिये इस भारतवर्षके आदिम स्वराजविधाता तथा अवान्तरधर्मविधाता स्वायंभुव मनुने सब विधान करके अपने सन्तानभूत मानववंशके कल्याणके लिये, अन्तमें, सब धर्मशास्त्रको उपनिषत्, रहस्य, मूल सिद्धान्त, (धर्मान् मेहुति, वर्षति इति) धर्ममेव मन्त्र, "प्रिंसिपल आफ लिविङ् लेजिस्लेशन्"[१] यह लिख दिया कि, यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः। शिष्ट सज्जनोंका बनाया जो धर्म हो वही धर्म है, और उसीकी रक्षा और प्रचारसे लोक-रक्षा है। मनुके वंशका मुख उज्ज्वल करनेवाले, लोकरावक रावणका दमन करनेवाले, मर्यादापुरुष, "प्रतिमानं महीभुजां", राजाओंके आदर्श और प्रतिमान, "स्टैंडर्ड"[२], राम ऐसे ही धर्मके लिये वसीयतनामा लिख गये हैं,

दुःखेनायं निर्मितो धर्मसेतुः नित्यं यत्नैः रक्षणीयो भवद्भिः।
नत्वा सर्वान् भाविनो भूमिपालान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः॥

---

१. Principle of living legislation. २. Standard.

बौद्धोंका त्रिकायवाद ।

स्थविरवादियोंके अनुसार भगवान् बुद्ध लोकोत्तर थे । बुद्धने स्वयं कहा था कि मैं लोकमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हूँ और सब सत्वोंमें अनुत्तर हूँ । एक बार द्रोण ब्राह्मण बुद्धके पादोंमें सर्वाकार परिपूर्ण चक्रोंको देखकर चकित हुआ । उसने बुद्धसे पूछा कि आप देव हैं, यक्ष हैं, गन्धर्व हैं, क्या हैं ? भगवान्ने कहा—मैं इनमेंसे कोई नहीं हूँ । द्रोण बोला—फिर क्या आप मनुष्य हैं ? बुद्धने उत्तर दिया—मैं मनुष्य भी नहीं हूँ; मैं बुद्ध हूँ—जिससे देवोत्पत्ति होती है, जिससे यक्षत्व या गन्धर्वत्वकी प्राप्ति होती है उन सब आसवोंका मैंने नाश किया है । हे ब्राह्मण ! जिस प्रकार पुण्डरीक जलसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मैं लोकसे उपलिप्त नहीं होता[1] । दीघनिकायके[2] अनुसार बोधिसत्त्वकी यह धर्मता है कि जब वह तुषितकायसे च्युत हो माताकी कुक्षिमें अवक्रान्त होते हैं तब सब लोकोंमें अप्रमाण अवभासका प्रादुर्भाव होता है । यह अवभास देवताओंके तेजको भी अभिभावित कर देता है । लोकोंके बीच जहाँ अन्धकार ही अन्धकार है, जहाँ चन्द्रमा और सूर्य ऐसे महानुभावोंकी भी आभा नहीं पहुँचती वहाँ भी अप्रमाण अवभासका प्रादुर्भाव होता है । बोधिसत्त्व महापुरुषोंके बत्तीस लक्षणोंसे और अस्सी अनुव्यञ्जनोंसे समन्वागत होते हैं[3] । एक स्थलपर[4] भगवान् आनन्दसे कहते हैं कि दो कालमें तथागतका छविवर्ण परिशुद्ध होता है । (१) जिस रात्रिको भगवान् सम्यक्-

---

१. अङ्गुत्तर निकाय भाग २, चतुक्कनिपात, चक्कवग्ग, पृष्ठ ३८ ।

२. भाग २, पृष्ठ १२, महापदान सुत्तन्त । ३. दीघनिकाय, भाग २, पृष्ठ १६ ।

४. दीघनिकाय, भाग ३, पृष्ठ १३४ ।

सम्बोधि प्राप्त करते हैं और (२) जिस रात्रिको भगवान् अनुपधिशेष-निर्वाणमें प्रवेश करते हैं। पालिनिकायके अनुसार जब बोधिसत्त्वने गर्भावक्रान्ति की, तब मानुष और अमानुष परस्पर हिंसाका भाव नहीं रखते थे और सब सत्त्व हृष्ट और तुष्ट थे। भगवान्के यह सब अद्भुत धर्म त्रिपिटकमें वर्णित हैं। पर इन सब अद्भुत धर्मोंसे समन्वागत होते हुए भी स्थिरवादी बुद्धको इसी अर्थमें लोकोत्तर मानते थे कि वह लोकको अभिभूत कर स्थित हैं। अर्थात् लोकसे अनुपलिप्त होकर विहार करते हैं। जहाँ दूसरे बुद्धके बताये हुए मार्गका अनुसरण कर अर्हत अवस्थाको प्राप्त करते हैं और उनको मार्गका अन्वेषण नहीं करना पड़ता वहाँ बुद्ध स्वयं अपने उद्योगसे निर्वाण मार्गका उद्घाटन करते हैं यही उनकी विशेषता है। पर स्थविरवादी मनुष्यलोकमें बुद्धकी स्थितिको स्वीकार करते थे। वे उनके जीवनकी घटनाओंको सत्य मानते थे और इसपर उनका पूरा विश्वास था कि बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए, लोकमें ही उन्होंने सम्यक् ज्ञानकी प्राप्ति की और लोकमें ही उन्होंने धर्मका उपदेश किया। स्थविरवादी बुद्धके व्यक्तित्वको स्वीकार करते हुए उनकी शिक्षापर अधिक ज़ोर देते थे। परिनिर्वाणके पूर्व स्वयं बुद्धने अपने शिष्य आनन्दसे कहा था[१]—हे आनन्द, तुममेंसे किसीका यह विचार हो सकता है कि शास्ताका प्रवचन अतीत हो गया, अब हमारा कोई शास्ता नहीं है। पर ऐसा विचार उचित नहीं है। जिस धर्म और विनयका मैंने तुमको उपदेश किया है, मेरे पीछे वह तुम्हारा शास्ता हो। बुद्धने यह भी कहा[२] है कि जो धर्मको देखता है वह मुझको देखता है और जो मुझको देखता है वह धर्मको देखता है। इसका यही अर्थ है कि जिसने धर्मका तत्व समझ लिया है उसीने

१. दीघनिकाय, भाग २, पृष्ठ १५४, महापरिनिब्बान सुत्त।

२. धम्मं हि सो भिक्खवे भिक्खु पस्सति, धम्मं पस्सन्तो मं पस्सति' ति—इतिवुत्तक, वग्ग ५, सुत्त ३, पृष्ठ ९१।

यो खो वक्कलि धम्मं पस्सति सो मं पस्सति, यो मं पस्सति, सो धम्मं पस्सति—संयुत्तनिकाय, भाग ३, पृष्ठ १२०।

वास्तवमें बुद्धका दर्शन किया है। बुद्धके निर्वाणके पश्चात् यही धर्म शास्ताका कार्य करता है। बुद्धका बुद्धत्व इसीमें है कि उन्होंने दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिके लिये धर्मका उपदेश किया। बुद्ध केवल पथप्रदर्शक हैं। उनके बताये हुए धर्मकी शरणमें जानेसे ही निर्वाणका अधिगम होता है। बुद्ध कहते हैं 'हे आनन्द, तुम अपने लिये स्वयं दीपक हो; धर्मकी शरणमें जाओ; किसी दूसरेका आश्रय न खोजो।" धर्मकी प्रधानताको मानते हुए भी स्थविरवादी बुद्धके व्यक्तित्वको स्वीकार करते थे। पर बुद्धके निर्वाणके पश्चात् श्रद्धालु श्रावक बुद्धको देवातिदेव मानने लगे और यह मानने लगे कि बुद्ध सहस्रकोटि कल्पसे हैं और उनका आयुष्प्रमाण अनन्त कल्पका है। बुद्ध लोकके पिता और स्वयम्भू हो गये जो सदा गृध्रकूटपर निवास करते हैं[1] और जब धर्मका उपदेश करना चाहते हैं तब भ्रूमध्यके ऊर्णाकोशसे एक रश्मि प्रसृत करते हैं जिससे अठारह सहस्र बुद्धक्षेत्र अवभासित होते हैं। बुद्धोंकी •संख्या भी अनन्त हो गयी। महायान-सूत्रोंमें इस प्रकारके विचार प्रायः पाये जाते हैं। सद्धर्मपुण्डरीक वैपुल्यसूत्रोंमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें तथागतायुष्प्रमाणपर एक अध्याय है। इस अध्यायमें भगवान् बुद्ध कहते हैं कि सहस्र कोटिकल्प व्यतीत हुए, जिसका प्रमाण नहीं है जब मैंने सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और मैं नित्य धर्मका उपदेश करता हूँ[2]। भगवान् कहते हैं कि "मैं सत्वोंकी शिक्षाके लिये उपायका निदर्शन करता हूँ और उनको निर्वाणभूमिका दर्शन कराता हूँ। मैं स्वयं निर्वाणमें प्रवेश नहीं करता और निरन्तर धर्मका प्रकाश करता रहता हूँ। पर विमूढ़चित्त पुरुष मुझको नहीं देखते। यह समझकर कि मेरा परिनि-

---

१. एमेव हं लोकपिता स्वयंभूः चिकित्सकः सर्वप्रजान नाथः।
विपरीतमूढांश्च विदित्व बालान् अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि ॥२१॥
सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ३२६.

२. अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यो यासां प्रमाणं न कदाचि विद्यते।
प्राप्ता मया एष तदाग्रबोधिर्धर्मं च देशेम्यहु नित्यकालम् ॥ १ ॥
सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ३२३

र्वाण हो गया है वह मेरे धातुकी विविध प्रकारसे पूजा करते हैं, पर मुझको नहीं देखते। उनमें एक प्रकारकी स्पृहा उत्पन्न होती है जिससे उनका चित्त सरल हो जाता है। जब ऐसे सरल और मृदु सत्त्व शरीरका उत्सर्ग करते हैं तब मैं श्रावक-सङ्घको एकत्र कर गृध्रकूट-पर्वतपर उनको अपना दर्शन कराता हूँ और उनसे कहता हूँ कि मेरा उस समय निर्वाण नहीं हुआ था। यह मेरा केवल उपाय-कौशल था; मैं जीवलोकमें बार बार आता हूँ[1]।"

प्रज्ञापारमिता सूत्रके भाष्यमें नागार्जुन कहते हैं कि तथागत सदा धर्मका उपदेश करते रहते हैं, पर सत्त्व अपने पाप कर्मके कारण उनके उपदेशको नहीं सुनते और न उनकी आभाको देखते हैं जैसे बहरे वज्रके निनादको नहीं सुनते और अन्धे सूर्यकी ज्योतिको नहीं देखते। ललित-विस्तरमें एक स्थलपर आनन्द-बुद्धका संवाद है। भगवान् आनन्दसे कहते हैं कि "भविष्यकालमें कुछ भिक्षु अभिमानी और उद्धत होंगे। वे बोधिसत्त्वकी गर्भावक्रान्ति-परिशुद्धिमें विश्वास न करेंगे। वे कहेंगे कि यह किस प्रकार सम्भव है कि बोधिसत्व माताकी कुक्षिसे बाहर आते हुए गर्भमलसे उपलिप्त नहीं हुए। वे नहीं जानते कि तथागत देवतुल्य हैं और हम मनुष्य-मात्र हैं और उनके स्थानकी पूर्त्ति करनेमें समर्थ नहीं हैं। उनको समझना चाहिये कि हमलोग भगवान्की

---

१. निर्वाणभूमिं चुपदर्शयामि विनयार्थं सत्त्वान वदाम्युपायम्।
न चापि निर्वाम्यहु तस्मि काले इहैव चो धर्मु प्रकाशयामि ॥ ३ ॥
तत्रापि चात्मानमधिष्ठहामि सर्वांश्च सत्त्वान तथैव चाहम्।
विपरीतबुद्धी च नरा विमूढाः तत्रैव तिष्ठन्तु न पश्यिषू माम् ॥ ४ ॥
परिनिर्वृतं दृष्ट्व ममात्मभावं धातूषु पूजां विविधां करोन्ति।
मां च अपश्यन्ति जनेन्ति तृष्णां ततोर्जुकं चित्त प्रभोति तेषाम् ॥ ५ ॥
ऋजू यदा ते मृदु मार्दवाश्च उत्सृष्ट कामाश्च भवन्ति सत्त्वाः।
ततो अहं श्रावकसंघ कृत्वा आत्मान दर्शेम्यहु गृध्रकूटे ॥ ६ ॥
एवं च हं तेष वदामि पश्चात् इहैव नाहं तद आसि निर्वृतः।
उपायकौशल्य ममेति भिक्षवः पुनः पुनो भोम्यहु जीवलोके ॥ ७ ॥
सद्धर्म पुण्डरीक, पृ० ३२३-३२४.

इयत्ता या उनके प्रमाणको नहीं जान सकते; वह अचिन्त्य हैं।" करण्डक-व्यूहमें अवलोकितेश्वरके गुणोंका वर्णन है। इस ग्रन्थमें लिखा है कि आरम्भमें आदिबुद्धका उदय हुआ। इनको स्वयम्भू और आदिनाथ भी कहा है। इन्होंने ध्यान द्वारा संसारकी सृष्टि की। अवलोकितेश्वरकी उत्पत्ति आदिबुद्धसे हुई और उन्होंने सृष्टिकी रचनामें आदिबुद्धकी सहायता की। अवलोकितेश्वरकी आँखोंसे सूर्य और चन्द्रमाकी सृष्टि हुई, मस्तकसे महेश्वर, स्कन्धसे ब्रह्मा और हृदयसे नारायण उत्पन्न हुए।

सुखावतीव्यूहमें लिखा है कि यदि तथागत चाहें तो एक पिण्डपातपर कल्पशत सहस्र तक और इससे भी अधिक काल तक रह सकते हैं और तिसपर भी उनकी इन्द्रियाँ नष्ट न होंगी, उनका मुख विवर्ण न होगा और उनके छविवर्णमें परिवर्तन न होगा। यह बुद्धका लोकोत्तर भाव है[1]। सुखावती लोकमें अमिताभ तथागत निवास करते हैं। अमिताभकी प्रभा अनुपम है, उसका प्रमाण नहीं है। इसी कारण उनको "अमिताभ" 'अमितप्रभ' आदि नामसे संकीर्तित करते हैं। यदि तथागत कल्पभर अमिताभके कर्मका प्रभासे आरम्भ कर वर्णन करें तो उनकी प्रभाका गुण पर्यन्त अधिगत न कर सकें क्योंकि अमिताभकी प्रभागुणविभूति अप्रमेय, असंख्येय, अचिन्त्य और अपर्यन्त है। अमिताभका श्रावक सङ्घ भी अनन्त और अपर्यन्त है। अमिताभकी आयु अपरिमित है। इसलिये उन्हें 'अमितायु' भी कहते हैं। साम्प्रत कल्पगणनाके अनुसार इस लोकधातुमें अमितायुको सम्बोधि प्राप्त किये दशकल्प व्यतीत हो चुके हैं। समाधिराजमें लिखा है कि बुद्धका ध्यान करते हुए श्रावकको किसी रूपकायका ध्यान न करना चाहिये क्योंकि बुद्धका धर्म शरीर है, बुद्धकी उत्पत्ति नहीं होती, वह

---

१. आकांक्षन्नानन्द तथागत एकपिण्डपातेन कल्पं वा तिष्ठेत्कल्पशतं वा कल्पसहस्रं वा कल्पशतसहस्रं वा यावत्कल्पकोटीनियुतशतसहस्रं वा ततो वोत्तरि तिष्ठेत् न च तथागतस्येंद्रियाण्युपनश्येयुर्न मुखवर्णस्यान्यथात्वं भवेन्नापि च्छविवर्ण उपहन्येत।

सुखावती व्यूह। पृ० ४.

बिना कारणके कार्य हैं और वह सबके आदिकारण हैं, उनका आरम्भ नहीं है। सुवर्णप्रभाससूत्रमें भी बतलाया है कि बुद्धका जन्म नहीं होता; उनका सच्चा शरीर 'धर्मकाय' या 'धर्मधातु' है। इसीलिये सुखावती-व्यूहमें बुद्धको 'धर्मस्वामी' और बुद्धचरितमें 'धर्मराज' कहा है। महायान श्रद्धोत्पादशास्त्रका कहना है कि बुद्धने निर्वाणमें प्रवेश नहीं किया; उनका काय शाश्वत है।

ऊपरके उद्धरणोंसे ज्ञात होगा कि धीरे धीरे बुद्धको अलौकिक गुणव्यूहसम्पत्तिसे समन्वागत ही नहीं किया गया पर उनका व्यक्तित्व ही नष्ट कर दिया गया। बुद्ध अजन्मा, प्रपञ्चविनिर्मुक्त, अव्यय और आकाशप्रतिसम हो गये। स्थविरवादियोंने इस विचारका विरोध किया जैसा कथावत्थुसे स्पष्ट है। कथावत्थुके अठारहवें वर्गमें इसकी स्थापना की गयी है कि बुद्ध मनुष्यलोकमें थे और इस पूर्वपक्षका खण्डन किया गया है कि उनकी स्थिति मनुष्यलोकमें न थी। पूर्वपक्षका खण्डन करते हुए पिटक ग्रन्थोंसे बुद्ध वचन उद्धृत कर यह दिखाया गया है कि बुद्धके संवादोंसे ही यह सिद्ध है कि बुद्धकी स्थिति मनुष्यलोकमें थी। बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए थे, सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर उन्होंने धर्मचक्रका प्रवर्तन किया था और उनका परिनिर्वाण हुआ था। इसी वर्गमें इस पूर्व पक्षका भी खण्डन किया गया है कि बुद्धने धर्मका उपदेश नहीं किया। स्थविरवादी पूछता है कि यदि बुद्धने धर्मका उपदेश नहीं किया तो फिर किसने किया। पूर्वपक्ष इसका उत्तर देता है कि 'अभिनिर्मित'ने धर्मदेशना की और यह 'अभिनिर्मित' आनन्द था। सिद्धान्त बताते हुए सूत्रोंसे उद्धरण दिये गये हैं जिनसे मालूम होता है कि बुद्धने स्वयं सारिपुत्रसे कहा था कि मैं संक्षेपमें भी और विस्तारसे भी धर्मका उपदेश करता हूँ; इसलिये यह स्वीकार करना पड़ता है कि भगवान् बुद्धने स्वयं धर्मदेशना की थी।[1]

---

१. न वत्तब्बं बुद्धो भगवा मनुस्सलोके अट्ठासीति। आमन्ता —हञ्चि भगवा लोके जातो लोके सम्बुद्धो लोकं अभिभुय्य विहरति अनुपलित्तो लोकेन, नो वत रे वत्तब्बे बुद्धो भगवा मनुस्सलोके अट्ठासीति। मनुस्सलोककथा।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि त्रिपिटकमें ही बुद्धके धर्मकायकी सूचना मिलती है। बुद्धने स्वयं कहा है कि जो धर्मको देखता है वह मुझको देखता है और जो मुझको देखता है वह धर्मको देखता है। दिव्यावदानकी कोटीकर्णकी कथामें भगवान्के रूपकाय और धर्मकायका उल्लेख है। कोटीकर्णने अभिधर्मका अध्ययन कर कात्यायनसे कहा—हे उपाध्याय, मैंने आपकी कृपासे भगवान्का धर्मकाय देखा है, रूप काय नहीं। मैं भगवान्का रूपकाय देखने जाता हूँ।[1] कोटीकर्णने श्रावस्ती जाकर भगवान्का दर्शन किया। यहाँ 'धर्मकाय' से आशय बुद्धकी शिक्षासे है। उसने बुद्धकी शिक्षाका अधिगम किया था पर बुद्धका साक्षात् दर्शन नहीं किया था। धर्मकायका अर्थ बोधिचर्यावतारकी टीकाके अनुसार 'धर्मसमूह' है। इस प्रकार त्रिपिटकमें ही हम बुद्धके दो कायका उल्लेख पाते हैं— (१) रूपकाय, अर्थात् बुद्धका पार्थिवशरीर जो अशाश्वत है और (२) धर्मकाय अर्थात् धर्मसमूह जिसका बुद्धने उपदेश किया। यह बुद्धका ज्ञान शरीर है।[2] यह अपार्थिव और शाश्वत है। यह कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त होगा कि बुद्धका 'रूपकाय' बुद्धका वह शरीर है जो लक्षण तथा अनुव्यंजनोंसे समन्वागत है और जिसको वह बोधिसत्वकी अवस्थासे ही धारण करते हैं और उनका ज्ञान जो शाश्वत और प्रपञ्चविनिर्मुक्त है, जो अभिधर्म कोश व्याख्याके शब्दोंमें 'अनास्रव धर्मसन्तान है' वह

न वतब्बं बुद्धेन भगवता धम्मो देसितोति आमन्ता।
केन देसितोति? अभिनिम्मितेन देसितोति।
केन देसितोति? आयस्मता आनन्देन देसितोति।
तेनहि बुद्धेन भगवता धम्मो देसितोति।
धम्मदेसना कथा।
कथावत्थु। वग्ग १८। १, २. पृ० ५५९–५६१.

१. दृष्टो मयोपाध्यायानुभावेन स भगवान् धर्मकायेन नो तु रूपकायेन, गच्छाम्युपाध्याय रूपकायेनापि तं भगवन्तं द्रक्ष्यामि। दिव्यावदान। पृ १९.

२. धर्मकायज्ञानशरीराय—दशभूमिकसूत्रम् पृ० ३.

बुद्धका धर्मकाय है। यह धर्मकाय अचिन्त्य है और सब तथागतों द्वारा समान रूपसे अधिकृत है। अष्ट साहस्रिका प्रज्ञापारमिताके अनुसार वास्तवमें बुद्धका यही शरीर है; रूपकाय सत्काय नहीं है। धर्म-शरीर ही भूतार्थिक शरीर है[1]। आर्यशालिस्तम्ब सूत्रके अनुसार धर्म-शरीर अनुत्तर है। वज्रच्छेदिकाका कहना है कि बुद्धका ज्ञान धर्म द्वारा होता है क्योंकि बुद्ध धर्मकाय हैं पर धर्मता अविज्ञेय है[2]। धर्म क्या है? आर्यशालिस्तम्बसूत्रके अनुसार प्रतीत्य समुत्पाद ही धर्म है। जो इस प्रतीत्य समुत्पादको यथावत् अविपरीत देखता है और जानता है कि यह अजात, अभ्युपशमस्वभाव है वह धर्मको देखता है[3]। यह प्रतीत्य समुत्पाद बुद्धके मध्यम मार्गका सार है। इसको भगवान्ने गम्भीर नय कहा है। तत्वज्ञान, अधिगम धर्मके कारण ही बुद्धत्वकी प्राप्ति होती है। 'तत्वज्ञान' को 'धर्म' और 'प्रज्ञा' दोनों कहते हैं। इसलिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है जो बुद्ध स्वभावको 'धर्म' या 'प्रज्ञा' कहा गया है। अष्टसाहस्रिकामें प्रज्ञा पारमिताको बुद्धका धर्मकाय बताया है।

---

१. यथापि नाम तथागतनेत्रीचित्रीकारेण एतद्धि तथागतानां भूतार्थिकशरीरं। तत्कस्यहेतोः। उक्तं ह्येतद्भगवता धर्मकाया बुद्धा भगवन्तः। मा खलु पुनरिमं भिक्षवः सत्कायं कायं मन्यध्वं। धर्मकायपरिनिष्पत्तितो मां भिक्षवो द्रक्ष्यन्त्येष च तथागतकायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता। अपि नु खलु पुनर्भगवन्नतः प्रज्ञापारमितातो निर्जातानि तथागतशरीराणि पूजां लभन्ते।

अष्ट साहस्रिका प्रज्ञापारमिता। पृ० ९४.

२. धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः।
धर्मता चाप्यविज्ञेया न सा शक्या विजानितुम्॥

वज्रच्छेदिका पृ० ४३

३. यदुक्तं भगवता धर्मस्वामिना सर्वज्ञेन यो भिक्षवः प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यति स धर्मं पश्यति, यो धर्मं पश्यति स बुद्धं पश्यति……य इमं प्रतीत्यसमुत्पादं सततसमितं निर्जीवं यथावदविपरीतमजातमभूतमसंस्कृतम् प्रतिघमनालम्बनं शिवमभयमहार्यमव्युपशमस्वभावं पश्यति स धर्मं पश्यति। सोऽनुत्तरं धर्मशरीरं बुद्धं पश्यति।

(बोधिचर्यावतारपञ्जिका पृ० ३८६)

प्रज्ञाको एक स्थानपर तथागतोंकी माता भी कहा है। यह धर्मकाय रूपकायके असदृश सर्वप्रपञ्चव्यतिरिक्त है। यह 'शुद्धकाय' है क्योंकि यह प्रपञ्च या आवरणसे रहित और प्रभास्वर है। इसको 'स्वभावकाय' भी कहा है[1]। क्सोमाके अनुसार चार काय हैं और 'स्वभावकाय' धर्मकायसे भिन्न तथा और भी अनुत्तर शरीर है। अमृतकणिकाका भी यही मत है कि धर्मकाय स्वाभाविक कायसे भिन्न है। तत्वज्ञानसे ही निर्वाणका अधिगम होता है। इसलिये कहीं कहीं धर्मकायको 'समाधि-काय' भी कहा है। यह तत्वज्ञान या बोधि ही परमार्थ सत्य है। संवृति सत्यकी दृष्टिसे इसको शून्यता, तथता, भूतकोटि और धर्मधातु कहते हैं[2]। सब पदार्थ निःस्वभाव अर्थात् शून्य हैं; न उनकी उत्पत्ति है और न निरोध। यही परमार्थ सत्य है। नागार्जुन माध्यमिक सूत्रमें कहते हैं:—

अप्रतीत्य समुत्पन्नो धर्मः कश्चिन्न विद्यते।
यस्मात्तस्मादशून्योऽहि धर्मः कश्चिन्न विद्यते॥

प्रकरण २४। श्लो० १९

अर्थात् कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसका उत्पाद हेतुप्रत्ययवश न हो। इसलिये अशून्य धर्म कोई नहीं है; सब धर्म शून्य हैं अर्थात् निःस्वभाव हैं क्योंकि यदि भावोंकी उत्पत्ति स्वभावसे हो तो स्वभाव हेतुप्रत्ययनिर-पेक्ष होने के कारण न उत्पन्न होता है और न उसका उच्छेद होता है। यदि भावोंकी उत्पत्ति हेतु-प्रत्ययवश होती है तो उनका स्वभाव नहीं होता। इसलिये स्वभावकी कल्पनामें अहेतुकत्वका आगम होता है और इससे कार्य, कारण, कर्ता, करण, क्रिया, उत्पाद, निरोध और

---

१. सर्वप्रपञ्चव्यतिरिक्तो भगवतां स्वाभाविको धर्मकायः स एव चाधिगम-स्वभावो धर्मः। बोधिचर्यावतारपञ्जिका, पृ० ३।

२. बोधिर्बुद्धत्वमेकानेकस्वभावविविक्तमनुत्पन्नानिरुद्धमनुच्छेदमशाश्वतं सर्वप्रप-ञ्चविनिर्मुक्तमाकाशप्रतिसमं धर्मकायाख्यं परमार्थतत्वमुच्यते। एतदेव च प्रज्ञापारमिताशून्यतातथताभूतकोटिधर्मधात्वादिशब्देन संवृतिमुपादाया-भिधीयते।

बोधिचर्यावतारपञ्जिका। अ० ९। श्लो० ३८ की टीका।

फलकी बाधा होती है। पर जो स्वभावशून्यतावादी है उसके लिये किसी कार्यको बाधा नहीं पहुँचती क्योंकि जो प्रतीत्य समुत्पाद है वही शून्यता है अर्थात् स्वभावसे भावोंका अनुत्पाद है। भगवान् कहते हैं—

य: प्रत्ययैर्जायति सह्यजातो न तस्य उत्पादु स्वभावतोऽस्ति।
य: प्रत्ययाधीनु स शून्य उक्तो य: शून्यतां जानति सोऽप्रमत्त:॥

मध्यमक वृत्ति। पृ० ५०४

अर्थात् "जिसकी उत्पत्ति प्रत्ययवश है वह अजात है; उसका उत्पाद स्वभावसे नहीं है। जो प्रत्ययके अधीन है, वह शून्य है। जो शून्यताको जानता है वह प्रमाद नहीं करता"। माध्यमिक सूत्रके अठारहवें प्रकरणमें नागार्जुन कहते हैं कि शून्यता अर्थात् धर्मता चित्त और वाणीका विषय नहीं है। यह निर्वाणके सदृश अनुत्पन्न और अनिरुद्ध है।[1] शून्यता एक प्रकारसे सब दृष्टियोंका निःसरण है। माध्यमिककी कोई प्रतिज्ञा नहीं है। जो शून्यताकी दृष्टि रखते हैं अर्थात् जिनका शून्यतामें अभिनिवेश है उनको बुद्धने असाध्य बताया है।[2] अब शून्यतावादीके अनुसार बुद्धकायकी परीक्षा करनी चाहिये। माध्यमिक सूत्रमें 'तथागत परीक्षा' नामका एक प्रकरण है। नागार्जुन कहते हैं कि निष्प्रपञ्च तथागतके सम्बन्धमें कोई भी कल्पना सम्भव नहीं है। तथागत न शून्य है, न अशून्य, न उभय और न न-उभय। जो प्रपञ्चातीत तथागतके सम्बन्धमें विविध प्रकारके परिकल्प करते हैं वे मूढ़ पुरुष तथागतको नहीं जानते अर्थात् तथागतकी गुणसमृद्धिके अत्यन्त परोक्षवर्ती हैं।[3] जिस प्रकारसे जन्मसे अन्धा सूर्यको नहीं देखता उसी प्रकार वह बुद्ध को नहीं देखते। नागार्जुन आगे चलकर कहते हैं कि तथागतका जो स्वभाव

---

१. निवृत्तमभिधातव्यं निवृत्ते चित्तगोचरे।
अनुत्पन्नानिरुद्धा हि निर्वाणमिव धर्मता॥ माध्यमिक वृत्ति। पृ० ३६४

२. शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः।
येषां तु शून्यता दृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे॥
माध्यमिक सूत्र। प्रकरण १३। ८

३. प्रपञ्चयन्ति ये बुद्धं प्रपञ्चातीतमव्ययं।
ते प्रपञ्चहताः सर्वे न पश्यन्ति तथागतम्॥ माध्यमिक सूत्र। प्रकरण २२।१५

है वही स्वभाव इस जगत्‌का है, जैसे तथागत निःस्वभाव हैं उसी प्रकार यह जगत् भी निःस्वभाव है।[1] प्रज्ञापारमितामें कहा है कि सब धर्म मायोपम हैं। सम्यक् सम्बुद्ध भी मायोपम हैं, निर्वाण भी मायोपम है और निर्वाणसे भी विशिष्टतर यदि कोई धर्म हो तो वह भी मायोपम है; माया और निर्वाण अद्वय हैं। एक सूत्रमें कहा है कि तथागत अनास्रव कुशल धर्मके प्रतिबिम्ब हैं; न तथता है, न तथागत, सब लोकोंमें बिम्ब ही दृश्यमान है[2]। इस सबका आशय यही है कि शून्यतावादीके मतमें बुद्ध निःस्वभाव हैं अर्थात वस्तुनिबन्धनसे मुक्त हैं और परमार्थ सत्यकी दृष्टिसे तथागत और जगत्‌का यही असली रूप है। अब विज्ञानवादके अनुसार बुद्धकायकी परीक्षा करनी है। विज्ञानवादीका कहना है कि शून्यता लक्षणोंका अभाव है और तत्वतः यह एक अलक्षण 'वस्तु' है क्योंकि शून्यताकी सम्भावनाके लिये दो बातोंका मानना आवश्यक है—(१) उस आश्रयका अस्तित्व जो शून्य है और (२) किसी वस्तुका अभाव जिसके कारण हम कहते हैं कि यह शून्य है पर यदि इन दोनोंका अस्तित्व न माना जावे तो शून्यता असम्भव हो जायगी। शून्यताको विज्ञानवादी 'वस्तुमात्र' मानते हैं और यह वस्तुमात्र 'चित्त' 'विज्ञान' या 'आलय विज्ञान' है जिसमें सास्रव और अनास्रव बीजका संग्रह रहता है। सास्रव बीज प्रवृत्तिधर्मोंका और अनास्रव बीज निवृत्तिधर्मोंका हेतु है। जो कुछ है वह चित्तका ही आकार है। जगत् चित्तमात्र है। चित्तके व्यतिरिक्त अन्यका अभ्युपगम विज्ञानवादीको नहीं मान्य है। इस चित्तके दो प्रभास हैं—(१) रागादि आभास, (२) श्रद्धादि आभास। चित्तसे पृथक् धर्म और अधर्म नहीं

१. तथागतो यत्स्वभावस्तत्स्वभावमिदं जगत्।
तथागतो [निः स्वभावो] निःस्वभावमिदं जगत्॥
माध्यमिक सूत्र। २२। १६।

२. तथागतो हि प्रतिबिम्बभूतः कुशलस्य धर्मस्य अनास्रवस्य।
नैवात्र तथता न तथागतोऽस्ति बिम्बं च संदृश्यति सर्वलोके॥
माध्यमिक वृत्ति, पृ० ४४९.

हैं। सब कुछ मनोमय है। संसार और निर्वाण दोनों चित्तके धर्म हैं। परमार्थतः चित्तका स्वभाव प्रभास्वर और अद्वय है तथा वह आगन्तुक दोषसे विनिर्मुक्त है। इसे 'व्यवदान' कहते हैं। पर रागादिमलसे आवृत होनेके कारण चित्त संक्लिष्ट हो जाता है जिससे आगन्तुक धर्मोंका प्रवर्तन होता है और संसारकी उत्पत्ति होती है। यही प्रवृत्ति धर्म या विज्ञानका संक्लेश संसार कहलाता है और विज्ञानका व्यवदान ही निर्वाण है। यही शून्यता है। विज्ञानवादीके अनुसार तथता, भूत-तथता, धर्मकाय सत्यस्वभाव है। प्रत्येक वस्तुका स्वभाव शाश्वत और लक्षणरहित है। जब लक्षणयुक्त हो जाता है तब उसे माया कहते हैं और जब वह अलक्षण है तब वह शून्यके समान है। बुद्धत्व ही धर्मकाय है क्योंकि बुद्धत्व विज्ञानकी परिशुद्धि है और यदि विज्ञान वास्तवमें संक्लिष्ट होता तो वह शुद्ध न हो सकता। इस दृष्टिमें बुद्धत्व प्रत्येक वस्तुका शाश्वत और अपरिवर्तित स्वभाव है। त्रिकायस्तव नामका एक छोटासा स्तोत्र-ग्रन्थ है। इसमें स्रग्धरा छन्दके सोलह श्लोक हैं। नालन्दाके किसी भिक्षुने सन् १००० ईसवी (= विक्रम सं० १०५७) के लगभग इस स्तोत्रको चीनी अक्षरोंमें लिपिबद्ध किया था। फाहियानने चीनी लिपिमें उसको लिखा था। तिब्बती भाषामें इसका अनुवाद पाया जाता है और पहिले बारह श्लोकोंका संस्कृत पाठ भी वहाँ सुरक्षित है। धर्मकायके सम्बन्धका श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस श्लोकमें धर्मकायकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की गयी है। कुछ लोगोंका अनुमान है कि त्रिकायस्तव नागार्जुनका है।

यो नैको नाप्यनेको स्वपरहितमहासम्पदाधारभूतो
नैवाभावो न भावः खमिव समरसो निर्विभावस्वभावः।
निर्लेपं निर्विकारं शिवमसमसमं व्यापिनं निष्प्रपञ्चम्
वन्दे प्रत्यात्मवेद्यं तमहमनुपमं धर्मकायं जिनानाम्॥

"धर्मकाय एक नहीं है क्योंकि वह सबको व्याप्त करता है और सबका आश्रय है; धर्मकाय अनेक भी नहीं है क्योंकि वह समरस है। यह बुद्धत्वका आश्रय है। यह अरूप है। न इसका भाव है न अभाव।

आकाशके समान यह एकरस है; इसका स्वभाव अव्यक्त है; यह निर्लेप, निर्विकार, अतुल्य, सर्वव्यापी और प्रपञ्चरहित है। यह स्वसंवेद्य है। बुद्धोंका ऐसा धर्मकाय अनुपम है।"

तान्त्रिक ग्रन्थोंमें धर्मकायको वैरोचन, वज्रसत्व या आदिबुद्ध कहा है। यह धर्मकाय बुद्धका सर्वश्रेष्ठ काय है।

बुद्धका रूपकाय 'निर्माणकाय' या निर्मितकाय कहलाता है। सुवर्ण प्रभासमें कहा है कि भगवान् न कृत्रिम हैं और न उत्पन्न होते हैं। केवल सत्वोंके परिपाकके लिये निर्मितकायका दर्शन कराते हैं। अस्थि और रुधिर रहित कायमें धातु (अस्थि) की कहाँ सम्भावना है? भगवान्‌के सर्षप मात्र भी धातु नहीं है। केवल सत्वोंका हित करनेके लिये वह उपाय कौशल द्वारा धातुका निर्माण करते हैं। वेतुल्यकोंका यह विचार था कि बुद्ध संसारमें जन्म नहीं लेते, वह सदा तुषितलोकमें निवास करते हैं पर संसारके हितके लिये निर्मित रूपमात्र लोकमें भेजते हैं। सद्धर्मपुण्डरीकमें एक स्थलपर तथागत-मैत्रेयका संवाद है जिसमें मैत्रेय पूछते हैं कि इन असंख्य बोधिसत्वोंका जो पृथिवी विवरसे निकले हैं समुद्गम कहांसे हुआ। उस समय जो सम्यक् सम्बुद्ध अन्य असंख्य लोकधातुओंसे आये हुए थे और शाक्यमुनि तथागतके निर्मित थे और अन्य लोकधातुओंमें धर्मका उपदेश करते थे शाक्यमुनिके चारों ओर पर्यंकबद्ध हो आसनोपविष्ट हुए। यहाँ अन्य लोकधातुके तथागतोंको शाक्यमुनि तथागतका निर्मित कहा है[1] अर्थात् वह उनकी लीला या मायामात्र हैं। कथावत्थुमें भी इस मतका उल्लेख पाया जाता है। दिव्यावदानमें हम 'बुद्धनिर्माण' और निर्मितका प्रयोग पाते हैं। प्रातिहार्य सूत्रावदानमें यह कथा वर्णित है कि एक समय भगवान् राजगृहमें विहार करते थे। उस समय पूरणकश्यप आदि छै तीर्थिक राजगृहमें एकत्र हुए और कहने लगे कि जबसे श्रमण

---

१. तेन खलु पुनः समयेन ये ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा अन्येभ्यो लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेभ्यो ऽभ्यागता भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्य निर्मिता ये ऽन्येषु लोकधातुषु सत्वानां धर्मं देशयन्तिस्म

सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ३०७

गौतमका लोकमें उत्पाद हुआ है तबसे हमलोगोंका लाभ-सत्कार सर्वथा समुच्छिन्न होगया है; हम लोग ऋद्धिमान् और ज्ञानवादी हैं, श्रमण गौतम अपनेको ऐसा समझते हैं. उनको चाहिये कि हमारे साथ ऋद्धि प्रातिहार्य दिखलावें, जितने प्रातिहार्य वह दिखलायँगे उसके दुगने हम दिखलायँगे। भगवान्ने विचारा कि अतीत बुद्धोंने किस स्थानपर प्राणियोंके हितके लिये महाप्रातिहार्य दिखलाया था। उनको ज्ञात हुआ कि श्रावस्तीमें। तब वह भिक्षु सङ्घके साथ श्रावस्ती गये। तीर्थिकोंने राजा प्रसेनजित्से प्रार्थना की कि आप श्रमण गौतमसे प्रातिहार्य दिखलानेको कहें। राजाने बुद्धसे निवेदन किया। बुद्धने कहा कि मेरी तो शिक्षा यह है कि कल्याणको छिपाओ और पापको प्रकट करो। राजाने कहा कि आप ऋद्धि प्रातिहार्य दिखलावें और तीर्थिकोंकी निर्भर्त्सना करें। बुद्धने प्रसेनजित्से कहा कि आजसे सातवें दिन तथागत सबके समक्ष महाप्रातिहार्य दिखलायँगे। जेतवनमें एक मण्डप बनाया गया और तीर्थिकोंको सूचना दी गयी। सातवें दिन तीर्थिक एकत्र हुए। भगवान् मण्डपमें आये। भगवान्के कायसे रश्मियाँ निकलीं और उन्होंने समस्त मण्डपको सुवर्ण वर्णकी कान्तिसे अवभासित किया। भगवान्ने अनेक प्रातिहार्य दिखला कर महाप्रातिहार्य दिखलाया। ब्रह्मादि देवता भगवान्की तीन बार प्रदक्षिणा कर भगवान्के दक्षिण ओर और शक्रादि देवता बाईं ओर बैठ गये। नन्द, उपनन्द नागराजाओंने शकटचक्रके परिमाणका सहस्रदल सुवर्ण कमल निर्मित किया। भगवान् पद्मकर्णिकामें पर्यङ्कबद्ध हो बैठ गये और पद्मके ऊपर दूसरा पद्म निर्मित किया। उसपर भी भगवान् पर्यङ्कबद्ध हो बैठे दिखाई पड़े। इस प्रकार भगवान्ने बुद्ध पिण्डी अकनिष्ठ-भवनपर्यन्त निर्मित की। कुछ बुद्धनिर्माण शय्यासीन थे, कुछ खड़े थे, कुछ प्रातिहार्य करते थे और कुछ प्रश्न पूछते थे। राजाने तीर्थिकोंसे कहा कि तुम भी ऋद्धि प्रातिहार्य दिखलाओ पर वे चुप रह गये और एक दूसरेसे कहने लगे कि तुम उठो, तुम उठो पर कोई भी नहीं उठा। पूरणकश्यपको इतना दुख हुआ कि वह गलेमें बालुकाघट बांध कर शीत पुष्करिणीमें कूद पड़ा और मर

गया। इस कथासे ज्ञात होता है कि बुद्ध प्रातिहार्य द्वारा अनेक बुद्धोंकी सृष्टि कर लेते थे। इनको 'बुद्ध निर्माण' कहा है। तथागतकी यह धर्मता है कि महाप्रातिहार्य करनेके पश्चात् वह अपनी माता मायाको अभिधर्मका उपदेश करनेके लिये स्वर्गलोकको जाते हैं। उनको प्रतिदिन भिक्षाके लिये मर्त्यलोकमें जाना पड़ता था। इसलिये अपनी अनुपस्थितिमें शिक्षा देनेके लिये उन्होंने अपना प्रतिरूप निर्मित किया था। वर्षामें भगवान् स्वर्गमें रहे। जब वह उतरने वाले थे तब शक्रने विश्वकर्मासे त्रिपद सोपान बनवाया जिसका अधोपाद सांकाश्य नगरके समीप रखा गया। भगवान्का सांकाश्यके समीप स्वर्गलोकसे अवतरण हुआ। यहां सब बुद्ध स्वर्गसे उतरे हैं। बुद्ध अनेक प्रकारका रूप सर्वत्र धारण कर सकते हैं। इसलिये 'निर्माणकाय' को 'सर्वत्रग' कहा है। त्रिकायस्तवमें कहा है कि सत्वोंके परिपाकके लिये बुद्ध अनेक रूप धारण करते हैं। विज्ञानवादियोंके अनुसार बुद्धके अनेक निर्मित रूप ही निर्माण काय नहीं हैं किन्तु समस्त जगत् बुद्धका निर्माण काय कहा जा सकता है। शून्य और प्रकृति-प्रभास्वर विज्ञान धर्मकाय है। निर्माण काय इस धर्मकायके असत् रूप हैं। जब विज्ञान वासनासे संक्लिष्ट होता है तब वह रूपलोक और कामलोकका निर्माण करता है।

धर्मकाय और निर्माणकायके अतिरिक्त एक और कायकी भी कल्पना की गयी है। यह है 'सम्भोगकाय'। इसे 'विपाककाय' भी कहते हैं। स्थविरवादियोंके ग्रन्थोंमें सम्भोगकायकी कोई सूचना नहीं मिलती। वैसिलीफ़[1] का कहना है कि सौत्रान्तिक धर्मकाय और सम्भोगकाय दोनोंको मानते थे। सम्भोगकाय वह काय है जिसको बुद्ध दूसरोंके कल्याणके लिये बोधिसत्वके रूपमें अपने पुण्यसम्भारके फलस्वरूप तबतक धारण करते हैं जबतक निर्वाणमें प्रवेश नहीं करते। महायान ग्रन्थोंमें हम बार बार इस विचारका उल्लेख पाते हैं कि बुद्धत्व ज्ञानसम्भार और पुण्यसम्भारका फल है। महायान

1. Wassilief.

ग्रन्थोंमें ऐसे बुद्धोंकी सूचना मिलती है जो शून्यतामें प्रवेश नहीं करते, जो दूसरोंका कल्याण चाहते हैं और जो सबको सुखी करनेके लिये ही बुद्धत्वकी आकांक्षा करते हैं। वह एक उत्कृष्ट प्रणिधानकी रचना करते हैं जो प्रणिधान अन्तमें सफल होता है। वह फलस्वरूप एक बुद्ध-क्षेत्रके अधिकारी हो जाते हैं जो नाना प्रकारकी प्रचुर दिव्य सम्पत्से समन्वागत होता है। उस बुद्धक्षेत्रमें अपने पार्षदोंके साथ वह सुशोभित होते हैं। सुखावती व्यूहमें वर्णित है कि धर्माकर भिक्षुने ऐसे ही प्रणिधानका अनुष्ठान किया था और सुखावती लोक उनका बुद्धक्षेत्र हुआ। वहाँ अमिताभ नामके बुद्ध निवास करते हैं। भगवान्के मुखसे धर्माकर भिक्षुकी प्रणिधान-सम्पत्तिको सुनकर आनन्द बोले—क्या धर्माकर भिक्षु सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर परिनिर्वाणमें प्रवेश कर गये अथवा अभी सम्बोधिको प्राप्त नहीं हुए अथवा अभी वर्तमान हैं और धर्मदेशना करते हैं? भगवान् बोले—वह न अतीत और न अनागत बुद्ध हैं। वह इस समय वर्तमान हैं। सुखावती लोकधातुमें अमिताभ नामके तथागत धर्मदेशना करते हैं। उनके बुद्धक्षेत्रकी सम्पत्ति अनन्त है। उसकी प्रभा अमित है; उसकी इयत्ताका प्रमाण नहीं है। अनेक बोधिसत्व अमिताभका दर्शन करने, उनसे परिप्रश्न करने तथा वहाँके बोधिसत्वगण और बुद्धक्षेत्रके गुणालङ्कारव्यूहको देखने सुखावती जाते हैं। बुद्ध अपनी पुण्यराशिसे यहाँ शोभित हैं। अमिताभके पार्षद अवलोकितेश्वर और महास्थामप्राप्त हैं। अमिताभके नामश्रवणसे ही जिनको चित्त-प्रसाद उत्पन्न होता है, जो श्रद्धावान् हैं, जिनमें संशय और विचिकित्सा नहीं हैं, जो अमिताभका नाम-कीर्त्तन करते हैं वह सुखावतीमें जन्म लेते हैं। अमिताभ बुद्धका सम्भोगकाय है। यह सुकृतका फल है जैसा कि त्रिकायस्तवमें कहा है—

लोकातीतां अचिन्त्यां सुकृतशतफलां आत्मनो यो विभूतिम्,
पर्षन्मध्ये विचित्रां प्रथयति महतीं धीमतां प्रीतिहेतोः।
बुद्धानां सर्वलोकप्रसृतमविरतोदारसद्धर्मघोषम्,
वन्दे संभोगकायं तमहमिह महाधर्मराज्यप्रतिष्ठम्॥

भगवान् इस कायके द्वारा अपनी विभूतिको प्रकट करते हैं।

धर्मकायके असदृश यह काय रूपवान् है पर यह रूप अपार्थिव है। चन्द्रकीर्ति सम्भोगकायके लिये 'रूपकाय'का प्रयोग करते हैं और उसकी तुलना धर्मकायसे करते हैं। मध्यमकावतारकी टीकामें वह कहते हैं[१] कि ज्ञानसंभार अर्थात् ध्यान और प्रज्ञासे धर्मकाय होता है जिसका लक्षण 'अनुत्पाद' है और पुण्यसम्भार रूपकायका हेतु है। इस 'रूपकाय' को 'नानारूपवाला' कहा है क्योंकि सम्भोगकाय अपनेको अनेक रूपोंमें (निर्माणकाय) प्रकट करनेकी शक्ति रखता है।

बोधिचर्यावतारमें सम्भोगकायको 'लोकोत्तर काय' कहा है।[२]

चीनके बौद्धसाहित्यमें भी हम त्रिकायका उल्लेख पाते हैं। इस साहित्यके अनुसार 'त्रिकाय' बुद्धके इन तीन रूपोंका भी सूचक है— (१) शाक्यमुनि (मानुषीबुद्ध) जिनका इस लोकमें उत्पाद हुआ। यह कामधातुमें निवास करते हैं। यही निर्माणकाय है। (२) लोचन। यह ध्यानी बोधिसत्व हैं। यह रूपधातुमें निवास करते हैं। यह सम्भोग काय है। (३) वैरोचन (या ध्यानीबुद्ध)। यह धर्मकाय है। यह अरूपधातुमें निवास करते हैं। ध्यानीबुद्धकी हैसियतसे वह चतुर्थ बुद्ध-क्षेत्रका आधिपत्य करते हैं। इस बुद्धक्षेत्रमें सब सत्व शान्ति और प्रकाशकी शाश्वत अवस्थामें रहते हैं। ध्यानी बोधिसत्वकी हैसियतसे वह तृतीय बुद्ध-क्षेत्रके अधिकारी हैं जहाँ भगवान्का धर्म सहज ही स्वीकृत होता है और जहाँ सत्व इस धर्मके अनुसार अनायास ही पूर्णरूपेण आचरण करते हैं। मानुषी बुद्धकी हैसियतसे बुद्ध द्वितीय और प्रथम क्षेत्रके अधिकारी हैं। द्वितीय क्षेत्रमें अकुशल नहीं है। यहाँ सब सत्व श्रावक और अनागामिन्की अवस्थाको प्राप्त होते हैं। प्रथम क्षेत्रमें शुभ और अशुभ, कुशल और अकुशल दोनों पाये जाते हैं।[३]

---

१. तत्र यः पुण्यसम्भारः स भगवतां सम्यक्सम्बुद्धानां शतपुण्यलक्षणवतोऽद्भुताचिन्त्यस्य नानारूपस्य रूपकायस्य हेतुः, धर्मात्मकस्य कायस्य अनुत्पाद-लक्षणस्य ज्ञानसम्भारो हेतुः। मध्यमकावतार टीका, पृ० ६२–६३.

२. पृ० ३२३

३. Hand-book of Chinese Buddhism by Ernest J. Eitel p. 178, p. 3.

संक्षेपमें यदि कहा जाय तो बुद्धत्वकी दृष्टिसे त्रिकायकी व्याख्या इस प्रकार होगी। बुद्धका स्वभाव बोधि या प्रज्ञापारमिता या धर्म है। यही परमार्थसत्य है। इस ज्ञानसम्भारके लाभसे निर्वाणका अधिगम होता है। इसीलिये धर्मकाय निर्वाण-स्थित या निर्वाण-सदृश समाधिकी अवस्थामें स्थित बुद्ध हैं। बुद्ध जबतक निर्वाणमें प्रवेश नहीं करते तबतक लोककल्याणके लिये वह पुण्यसम्भारके फलस्वरूप अपना दिव्यरूप सुखावती या तुषितलोकमें बोधिसत्वोंको दिखलाते हैं। यह सम्भोगकाय है। मानुषी बुद्ध इनके निर्माणकाय हैं जो समय समयपर संसारमें धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये आते हैं।

दार्शनिक दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो धर्मकाय शून्यता है या अलक्षण विज्ञान है। सम्भोगकाय धर्मकायका सत्, चित्; आनन्द या करुणाके रूपमें विकासमात्र है। यही चित् जब दूषित होकर पृथक् जनके रूपमें विकसित होता है तब वह निर्माणकाय कहलाता है।

त्रिकायकी कल्पना हिन्दू धर्ममें नहीं पायी जाती। पर यदि सूक्ष्म रूपसे विचार किया जाय तो विदित होगा कि वेदान्तका परब्रह्म, विष्णु और विष्णुके मानुषी अवतार (जैसे राम, कृष्ण) क्रमशः धर्मकाय, सम्भोगकाय और निर्माणकायके समान हैं। जिस प्रकार बौद्धग्रन्थोंमें धर्मकायको निर्लेप, निर्विकार, अतुल्य, सर्वव्यापी और प्रपञ्चरहित कहा है उसी प्रकार उपनिषदोंमें ब्रह्मको अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, शान्त, शिव, प्रपञ्चोपशम, निर्गुण, निष्क्रिय, सूक्ष्म, निर्विकल्प, और निरञ्जन कहा है[1]। दोनों मन और वाणीके विषय नहीं हैं

---

१. अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। माण्डूक्योपनिषत् ॥ अहेयमनुपादेयमनाधेयमनाश्रयम्। निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥ अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम् ॥ अध्यात्मोपनिषत् ॥ निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने। अद्वितीये परे तत्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ न विरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

और दोनोंके स्वरूपका निरूपण नहीं हो सकता। जिस प्रकार विष्णु करुणाके रूप हैं उसी प्रकार बुद्ध भी करुणाके रूप हैं। पुराणोंमें तथा श्री रामानुजाचार्य रचित श्री वैकुण्ठगद्यमें विष्णुलोकका जो वर्णन हमको मिलता है उसकी तुलना सुखावती लोकके वर्णनसे करने पर कई बातोंमें समानता पायी जाती है। दोनों लोक दिव्य हैं और प्रचुर दिव्य सम्पत्तिसे समन्वागत हैं। दोनों लोकोंमें सब वस्तु इच्छा-मात्रसे ही सुलभ हैं। दोनोंका तेज अनन्त है। विष्णु और अमिताभ परिजनोंसे परावृत हैं। विष्णुके शेष, शेषाशनादिक पार्षद हैं। यह नित्य मुक्त हैं। लोग दोनोंका स्तुति-पाठ करते हैं। दोनों लोकोंमें आये हुए जीव सुखपदको प्राप्त करते हैं और वहाँसे फिर नहीं लौटते।[1] अनन्य भक्ति द्वारा ही दोनों लोकोंकी प्राप्ति होती है।[2] दोनों विशुद्ध-सत्वसे निर्मित हैं। इसीलिये दोनों ज्ञान और आनन्दके वर्धक हैं। दोनों अत्यद्भुत वस्तु हैं। विष्णु और अमिताभकी प्रभासे समस्त जगत् उद्भासित हो जाता है। जिस प्रकार बौद्धागममें आदिबुद्ध शब्दका व्यवहार पाया जाता है उसी प्रकार त्रिपाद्विभूतिमहानारा-यणोपनिषन्में 'आदिनारायण' का प्रयोग मिलता है। जिस प्रकार मानुषी बुद्ध सम्भोगकायके निर्माणकाय हैं उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि विष्णुके अवतार हैं। यह धर्मकी स्थापनाके लिये संसारमें समय समयपर भेजे जाते हैं।

ईसाई धर्ममें भी ईसाके व्यक्तित्वके बारेमें कुछ इसी प्रकारके विचार पाये जाते हैं। ईसाइयोंमें भी कुछ मत ऐसे प्रकट हुए जो यह शिक्षा देते थे कि ईसाका पार्थिव शरीर न था, वह माताके गर्भमे उत्पन्न

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥ (माध्यमिक सिद्धान्तसे इसकी तुलना कीजिये)। आत्मोपनिषन्॥

1. तस्मिन्बन्धविनिर्मुक्ताः प्राप्यन्ते सुसुखं पदम्। यं प्राप्य न निवर्त्यन्ते तस्मात् मोक्ष उदाहृतः॥ पद्मपुराण। उत्तर खण्ड। २९ अध्याय।

2. एकेन द्वयमन्त्रेण तथा भक्त्या त्वनन्यया, तद्रम्यं शाश्वतं दिव्यं प्रपद्ये वै सनातनम्। ३० अध्याय।

नहीं हुए थे, देखनेमें ही वह मनुष्य मालूम होते थे, यह उनका माया-निर्मित शरीर था। वह उनके लोकमें उत्पादको तथा उनकी मृत्युको एक सत्य घटना नहीं मानते थे। इनमेंसे कुछ ऐसे भी थे जो ईसाके शरीरका अस्तित्व तो मानते थे पर उसको पार्थिव न मानकर दिव्य मानते थे और उनका यह विश्वास था कि ईसा सुख और दुःखके अधीन न थे। इस प्रकारके विचारोंको 'डोसेटिज्म'[१] कहते हैं।

पारसियोंके अवस्तामें जिन चार स्वर्गोंका उल्लेख मिलता है उनमें से एकका नाम 'अनन्त प्रभा वाला' है। इससे इलियट महाशय अनुमान करते हैं कि अमिताभकी पूजा बाहरसे भारतमें आयी।[२] जैनियोंका सत्पुर भी सुखावतीलोकसे मिलता जुलता है।[३]

नरेन्द्रदेव

---

१ Docetism.

२. Eliot: Hinduism and Buddhism, Vol. II, pp. 28-29.

३. उपमितभवप्रपञ्चा कथा, पृ० ६७७ आदि।

महाभाष्य और तत्कालीन सामाजिक अवस्था

पातञ्जल महाभाष्यका महत्त्व भारतीय साहित्यमें कई दृष्टियोंसे अत्यधिक है। यह ग्रन्थ कुछ उन प्राचीन ग्रन्थोंमेंसे एक है जिनका समय लगभग निश्चित है। अधिकतर विद्वानोंके मतके अनुसार इसका समय ईसवी सन्‌से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्वका है। यद्यपि कई युक्तियोंके अनुसार इसका समय इसके बादका भी कहा जा सकता है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ उक्त समयसे पूर्वका नहीं हो सकता। समयकी प्रायःनिश्चितताके साथ साथ, इस बृहद्ग्रन्थकी शैलीमें वह अपूर्व स्वाभाविकता है जो, संस्कृत साहित्यमें ही क्या, शायद संसारके किसी भी साहित्यमें अतुलनीय है। इन सब कारणोंसे भारतीय धर्म, साहित्य, समाज आदिकी तत्कालीन अवस्थाके जाननेके लिये जो अधिक सामग्री इस विशाल ग्रन्थसे इकट्ठी की जा सकती है उसका मूल्य बहुत ही बढ़ जाता है।

इस छोटेसे लेखमें हम इसी महत्वपूर्ण ग्रन्थके एक ऐसे स्थलपर विचार करना चाहते हैं जिससे उत्तरीय भारतकी (या कमसे कम उसके मध्य-भागकी) तत्कालीन सामाजिक अवस्थाका कुछ अनुमान किया जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि गत दो सहस्र वर्षोंमें हमारा समाज कितना बदल चुका है और उसकी दृष्टियोंमें कैसे कैसे परिवर्तन हो चुके हैं।

महाभाष्यमें ऐसे अनेक स्थल हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक अवस्थाका आज कलकी अवस्थासे बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। उन सबका विचार यहाँ थोड़ेसे स्थान में नहीं हो सकता। यहाँ हम केवल एक ही स्थलपर विचार करेंगे। शेष स्थलोंका विचार अवसर और अवकाशके मिलनेपर पुनः किया जायगा।

आज हम पाणिनिके 'शूद्राणामनिरवसितानाम्' (२।४।१०) इस सूत्रके महाभाष्यको लेते हैं। वह इस प्रकार है:—"अनिरवसितानामित्युच्यते कुतोऽनिरवसितानाम् । आर्य्यावर्तादनिरवसितानाम् । कः पुनरार्यावर्तः । प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनाद् दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम् । यद्येवं किष्किन्धगन्दिकम्, शकयवनम्, शौर्यक्रौञ्चमिति न सिध्यति ॥ एवं तर्ह्यार्यनिवासादनिरवसितानाम् । कः पुनरार्यनिवासः । ग्रामो घोषो नगरं संवाह इति । एवमपि य एते महान्तः संस्त्यायास्तेष्वभ्यन्तराश्चण्डाला मृतपाश्च वसन्ति तत्र चण्डालमृतपा इति न सिध्यति ॥ एवं तर्हि याज्ञात्कर्मणोऽनिरवसितानाम् । एवमपि तक्षायस्कारम् रजकतन्तुवायमिति न सिध्यति ॥ एवं तर्हि पात्रादनिरवसितानाम् । यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यति तेऽनिरवसिताः । यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति ते निरवसिताः ॥"

इसका अनुवाद यह है:—

१. "(सूत्रमें) 'अनिरवसितोंका' (= अबहिष्कृतोंका) कहा है। किससे अबहिष्कृतोंका ? आर्यावर्तसे अबहिष्कृतोंका । आर्यावर्त क्या (अर्थात् कितना) है ? आदर्शसे पूर्व. कालकवनसे पश्चिम, हिमवान्‌से दक्षिण (और) पारियात्रसे उत्तर । यदि ऐसा है (तो) किष्किन्धगन्दिकम्, शकयवनम्, शौर्यक्रौञ्चम् यह (द्वन्द्वोंका एकवद्भाव) सिद्ध नहीं होता ।

२. ऐसा (है) तो आर्यनिवाससे अबहिष्कृतोंका । आर्यनिवास क्या है ? ग्राम, घोष, नगर (और) संवाह[1] (= मंडी)—यह । ऐसा होने पर भी जो ये बड़े बड़े संस्त्याय (= बस्तियाँ) हैं उनके अन्दर चण्डाल और मृतप रहते हैं वहाँ (= उनके द्वन्द्व समासमें) 'चण्डालमृतपाः' ऐसा सिद्ध नहीं होता ।

१ देखो कैयट (२।४।१०):—ग्रामः प्रसिद्धः । घोषो गोमहिष्यादिनिवासः । संवाहो वणिक्प्रधानः ॥ ७।३।१४ पर कैयट में लिखा है:—संस्त्यायो निवासः । ब्राह्मणकर्षकपुरुषप्रधानो देशो ग्रामः । गोमहिष्यादियुक्तो घोषः । प्राकारपरिखान्वितं श्रेणीधर्मयुक्तसंस्थानं नगरम् । प्राकारपरिखायुक्तश्रेणिधर्मान्वितो देशः संवाहः ।

३. ऐसा (है) तो याज्ञिक कर्मसे अबहिष्कृतोंका। ऐसा होनेपर भी 'तक्षायस्कारम्' (और) 'रजकतन्तुवायम्'—ऐसा सिद्ध नहीं होता।

४. ऐसा (है) तो पात्रसे अबहिष्कृतोंका। जिनके खानेपर पात्र संस्कारसे शुद्ध हो जाता है वे अबहिष्कृत हैं। जिनके खानेपर पात्र संस्कारसे भी शुद्ध नहीं होता वे बहिष्कृत हैं।"

उपर्युक्त ग्रन्थके चार अंश हैं। पहले पक्षमें जो दोषापत्ति की है उसका यही अर्थ है कि उस समय जितने देशको आर्यावर्त समझा जाता था उससे किष्किन्ध, गन्दिक (या गान्धिक), शक, यवन, शौर्य और क्रौञ्च ये जातियाँ बाहर रहने वाली थीं। कैयटने भी इन जातियोंके विषयमें कहा है—"एतेषामार्यावर्ताद् बाह्यत्वादिति भावः'। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जहाँ एक ओर पाणिनिके 'जनपद-शब्दात्क्षत्रियादञ्' (४।१।१६८) इस प्रकरणके अनुसार शक, यवन आदि जातियोंको क्षत्रिय समझा जाता था वहाँ महाभाष्यकारके समय-में उनको शूद्र समझा जाने लगा था। यह दृष्टि मनुस्मृतिके

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
...............कम्बोजा यवनाः शकाः। (१०।४३-४)

इन श्लोकोंके भावके अनुसार ही है। इसलिये मनुस्मृतिका कमसे कम उपर्युक्त कथन, स्पष्टतया पाणिनिके समयसे पीछेका प्रतीत होता है। इस दृष्टिभेदके कारणका विचार हमने आश्विन संवत् १९८५ की 'सुधा' में 'जातिभेद और वर्णभेदका सम्बन्ध' शीर्षक लेखमें किया है।

इसी प्रसंगमें दूसरी विचारणीय बात आर्यावर्तकी परिभाषा है। इस जगहके अतिरिक्त 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०९) इस सूत्रके भाष्यमें भी आर्यावर्तकी परिभाषा पतञ्जलिने इन्हीं शब्दोंमें दी है। 'वासिष्ठधर्मसूत्र' (१।८)[1] और 'बौधायनधर्मसूत्र' (१।१।२५)[2]

१. 'आर्यावर्तः प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालकवनादुदक् पारियात्राद् दक्षिणेन हिमवतः' कुछ हस्तलिखित पोथियोंमें 'प्रागादर्शनात्' पाठ है। ब्युहलर महाशयने 'प्रागदर्शनात्' पाठ माना है।

२. 'प्रागदर्शनात्प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक् पारियात्रमेतदार्याव-र्तम्'। कहीं कहीं "प्राग्विनशनात्' पाठ है।

में जो आर्यावर्तकी परिभाषाएँ दी हैं उनसे महाभाष्यकी परिभाषा लगभग शब्दशः मिलती है। इन परिभाषाओंकी मनुस्मृतिके आर्यावर्त[1] और मध्यदेश[2] की परिभाषाओंके साथ तुलना करनेसे यही प्रतीत होता है कि मनुस्मृतिका मध्यदेश और महाभाष्यादिका आर्यावर्त एक ही है। साथ ही मनुस्मृतिका आर्यावर्त महाभाष्यादिके आर्यावर्तसे कहीं अधिक विस्तृत है। मनुस्मृतिके 'विनशन' और बौधायनधर्मसूत्रके 'अदर्शन' का एक ही अर्थ प्रतीत होता है। मनुस्मृतिके 'विनशन' शब्दका अर्थ टीकाकारोंने 'विनशनं सरस्वत्या अन्तर्धानदेशः' (मेधातिथि) या 'विनशनात् कुरुक्षेत्रात्' (राघवानन्द) किया है। 'आदर्श'[3] शब्द भी वास्तवमें 'विनशन' के समानार्थक 'अदर्शन' से ही संबन्ध रखनेवाला प्रतीत होता है।

ऊपर महाभाष्यादिमें आर्यावर्तकी पूर्वीय सीमा 'कालकवन' तक बतलायी है। यह स्पष्ट नहीं कि कालकवनसे क्या अभिप्राय है। तो भी यह देखते हुए कि मनुस्मृतिके मध्यदेशकी शेष तीनों सीमाएँ महाभाष्यादिके आर्यावर्तकी उन तीनों सीमाओंके समान हैं यही प्रतीत होता है कि मनुस्मृतिकी चौथी सीमा प्रयागका और महाभाष्यादिके कालकवनका लगभग एक ही अभिप्राय है। वाल्मीकि-रामायणके अयोध्याकाण्ड (सर्ग ५४, ५५) के देखनेसे प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें प्रयागके समीपमें ही एक बड़ा जंगल था। सर्ग ५४ के द्वितीय श्लोक ('यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते। जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥') में एक 'सुमहद्वनं' का और सर्ग ५५ के अष्टम श्लोक ('क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं द्रक्ष्यथ काननम्। पलाशबदरीमिश्रं रम्यं वंशैश्च यामुनैः ॥') में 'नील कानन'

---

१. (२।२२) 'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥'

२. (२।२१) 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥'

३. देखो 'बृहत्संहिता' (१४।२५)।

का वर्णन है। मालूम होता है कि ये सुमहद्वन और नील कानन और कालकवन लगभग एक ही वनके नाम हैं जो कभी प्रयागके समीपमें था। वासिष्ठधर्मसूत्र (१।१२) और बौधायनधर्मसूत्र (१।१।२६) की 'गङ्गा और यमुनाके बीचके देशको आर्यावर्त कहते हैं' एतदर्थक आर्यावर्तकी दूसरी परिभाषासे भी यही प्रतीत होता है कि उपर्युक्त परिभाषाओंमें आर्यावर्तकी पश्चिमीय और पूर्वीय सीमाएँ गंगा यमुनाके दुआबसे अधिक दूर नहीं थीं।[१]

ऊपरके लेखसे यह स्पष्ट है कि महाभाष्यका आर्यावर्त और मनुस्मृतिका मध्यदेश दोनों एक ही हैं। बौधायनधर्मसूत्रमें इसी प्रकरणके 'आवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः। उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः॥ आरट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वङ्गान् कलिङ्गान् प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा। (१।१।२९-३०)' इत्यादि सूत्रों से यह स्पष्ट है कि उस समय पूर्वमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग आदि, और पश्चिममें सिन्धु, सौवीर आदि कई देश आर्यावर्तसे बाहर माने जाते थे। पीछेसे ज्यों ज्यों आर्योंकी सभ्यताका विस्तार बढ़ता गया त्यों त्यों आर्यावर्तकी सीमा भी बढ़ती गयी।

ऊपरके लेखसे यह स्पष्ट है कि मनुस्मृतिकी आर्यावर्तकी परिभाषा महाभाष्यादिकी परिभाषासे बादकी है। इसीलिये बहुत करके वर्तमान मनुस्मृति महाभाष्यके पीछेकी प्रतीत होती है। इसमें और कई प्रमाण हैं जिनका वर्णन हम फिर कभी करेंगे।

द्वितीय पक्षके ग्रहणसे यह ध्वनित होता है कि उन दिनों आर्य लोग आर्यावर्तसे बाहर भी बसे हुए थे और आर्यावर्तके समीपवर्ती शक-यवन-प्राय देशोंमें भी उनके निवास थे। दूसरे, उन बस्तियोंमें आर्य लोग शक आदिके साथ इकट्ठे होकर इसी तरह बसे हुए थे जैसे आजकल भारतवर्षमें प्रायः हिन्दू मुसल्मान रहते हैं। उस समय

---

१ देखोः—कनिङ्घम कृत Ancient Geography of India, ed, सुरेन्द्रनाथ मजुमदार शास्त्री (१९२४), भूमिका पृ० ४१।

अलग रहनेका कोई भाव उनमें नहीं था। द्वितीय पक्षके ऊपर जो आपत्ति की गयी है उसका यही अभिप्राय है कि चण्डाल और मृतप जैसी अछूत जातियाँ उन दिनों भी बड़ी बड़ी बस्तियोंमें बीच बीचमें रहती थीं। यह आवश्यक नहीं था कि वे सदा नगरोंके बाहर ही बसायी जावें।

तीसरे पक्षके ग्रहणसे यह प्रतीत होता है कि शक यवन आदिको 'याज्ञिक कर्म' से बहिष्कृत नहीं समझा जाता था। 'याज्ञकर्म' से वस्तुतः क्या अभिप्राय है यह निश्चित रूपसे यहाँ नहीं कहा जा सकता। तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'याज्ञकर्म' के संबन्धमें जो सामाजिक स्थिति तक्षा, अयस्कार, रजक और तन्तुवाय जैसी जातियोंकी उस समय थी उससे कहीं उच्च शक यवन आदिकी थी। जहाँ तक्षा, अयस्कार आदि 'याज्ञकर्म' से बहिष्कृत थे वहाँ शक यवन आदि उससे अबहिष्कृत थे। इन जातियोंका 'याज्ञकर्म' से अबहिष्कृत समझा जाना एक प्रकारकी 'शुद्धि' का ही फल हो सकता है। इससे उस समयके आर्योंकी धार्मिक उदारता ही प्रतीत होती है। इसी उदारताका आजकलके हिन्दुओंमें कैसा अभाव दिखलाई देता है! कमसे कम इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि ईसाई मुसल्मान आदि अहिन्दू जातियोंके प्रति जो बहिष्कारकी प्रवृत्ति आजकल हिन्दुओंमें पायी जाती है उसकी उस समय गन्ध भी नहीं थी। 'न नीचो यवनात्परः' जैसे वाक्योंकी कदाचित् उन दिनों तक सृष्टि भी नहीं हुई थी।

चौथे पक्षसे, जो सिद्धान्त रूपसे प्रतिपादित किया गया है, और भी अधिक विचित्र तथा मनोरञ्जक बातें सिद्ध होती हैं। यहाँ 'संस्कार' से क्या अभिप्राय है इस विषयमें कुछ मतभेद हो सकता है। हमें तो यही प्रतीत होता है कि यहाँ संस्कारसे अभिप्राय साधारण मिट्टी राख आदिसे मार्जनका ही हो सकता है। अग्निसे शुद्धिको भी यदि संस्कार माना जायगा तब तो हमारी समझमें ऐसा संस्कार चण्डाल और मृतपके उच्छिष्ट पात्रका भी हो सकता है। आधुनिक हिन्दू रिवाज ऐसा ही प्रतीत होता है। इस विषयमें आधुनिक धर्मशास्त्रियोंका क्या मत है

यह हम ठीक ठीक नहीं कह सकते।[1] टीकाकारों[2] ने तो प्रायः यही अर्थ लिया है।

यदि हमारा विचार ठीक है तो उपर्युक्त सिद्धान्तपक्षसे निम्न-लिखित (आधुनिक हिन्दू समाजके लिये) विचित्र बातें सिद्ध होती हैं:—

जैसे आजकल ऊँचे समझे जानेवाले शूद्रोंको पीतल आदि धातुओंके पात्र भोजनार्थ दिये जा सकते हैं और उनकी शुद्धि मिट्टी आदिसे साधारणतया मार्जनसे हो जाती है, इसी प्रकार उन दिनों शक यवन आदि जातियोंके साथ तथा रजक और तन्तुवाय (जो आजकल प्रायः अछूत समान समझे जाते हैं) के साथ भी बर्ताव होता था।

मङ्गलदेव शास्त्री

---

१. देखो 'याज्ञवल्क्यस्मृति' का द्रव्यशुद्धिप्रकरण (१।१८२—१९७) और 'मनुस्मृति' (५।११०—१३७)।

२. पदमञ्जरी (२।४।१०): 'संस्कारेणापीति। भस्मना शुध्यते कांस्यमित्यादिना स्मृतिकारैरुक्तेन......' ॥ शब्दकौस्तुभ (२।४।१०): 'भस्मना शुध्यते कांस्य-मित्यादिस्मृतिकारोक्तसंस्कारेण··· ।'

मधुसूदन सरस्वतीका कालनिर्णय

कुछ दिनोंसे मधुसूदन सरस्वतीके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी आलोचना प्रकाशित हो रही है। मधुसूदनकी असामान्य प्रतिभा, निर्मल वैराग्य, तीक्ष्ण धीशक्ति और अपूर्व रचना-कौशलने देश विदेश सर्वत्र उनकी ख्यातिको बढ़ाया है। उनके समान मनीषी हमारे देशमें एकान्त दुर्लभ है। वाचस्पति मिश्र, अप्पय्य दीक्षित और मधुसूदन सरस्वती एक श्रेणीके पण्डित हैं। वे शुष्कज्ञानी और केवल योगी न थे। संन्यासी होते हुए भी उनके कोमल अन्तःकरणमें विमलवाहिनी भक्ति-गङ्गाकी पुण्य-धारा प्रवाहित होती थी। भक्तिरसायन और भगवद्गीताके भाष्यकी टीकाकी अच्छी तरह आलोचना करने पर विदित होता है कि वह भक्तिको ज्ञानकी अपेक्षा किसी अंशमें निकृष्ट नहीं मानते थे। ज्ञानमार्ग और रसात्मिका भक्तिमार्गका स्वरूपज्ञान उनमें जिस प्रकार पाया जाता है उस प्रकारका ज्ञान अन्यान्य संन्यासी सम्प्रदायमें मिलेगा ऐसा नहीं मालूम पड़ता। भक्तिचन्द्रिकाकार नारायणतीर्थस्वामी गौड़ ब्रह्मानन्दके गुरु थे। उनमें भी भक्तिकी प्रधानताको प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न पाया जाता है किन्तु वह मधुसूदनके परवर्ती और उनके अनुगामी थे। द्वैतमार्गके प्रतिष्ठापक व्यासराजस्वामीके न्यायामृतका खण्डन करनेके लिये मधुसूदनने जिस प्रणालीसे अद्वैतसिद्धि नामक ग्रन्थका निर्माण किया वह प्रणाली पण्डितसमाजमें वादके सम्बन्धमें अद्वितीय है। तर्कशास्त्रकी जटिल विचार-पद्धतिमें समधिक प्रवेश न होनेसे अद्वैतसिद्धिका अर्थ लगना असम्भव है। वेदान्तकल्पलतिका, सिद्धान्तविन्दु, अद्वैतरत्न-रक्षण, संक्षेपशारीरकटीका प्रभृति समस्त ग्रन्थोंमें उनके असाधारण

पाण्डित्यका निदर्शन पाया जाता है। मधुसूदन बंगाली तथा भारतवर्षके गौरव हैं। उनकी आलोचना जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है।

किन्तु इस प्रकारके सुप्रसिद्ध आधुनिक ग्रन्थकारका भी समय ठीक ठीक निश्चित नहीं हुआ है। हम वर्तमान प्रबन्धमें यथासम्भव संक्षेपमें मधुसूदनके आविर्भाव–कालका निर्णय करनेकी चेष्टा करेंगे। पण्डित आर. कृष्णस्वामी शास्त्रीने सम्प्रति एक प्रबन्ध[1] में यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि मधुसूदन सत्रहवीं शताब्दी (= विक्रम सं० १६५८-१७५७) के तृतीय पादमें वर्तमान थे। शास्त्री महाशयका प्रबन्ध पढ़कर हम उनका मत ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं। इसीलिये अलगसे इस प्रबन्धके लिखनेकी आवश्यकता पड़ी।

मधुसूदनने परिमलकार अप्पय्य दीक्षितको "सर्वतन्त्र स्वतन्त्र" वेदान्ताचार्य कह कर सम्मानित किया है। सुतरां अप्पय्य दीक्षितकी प्रतिष्ठा और उनके ग्रन्थोंसे मधुसूदन परिचित थे इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु अप्पय्य दीक्षितका काल भी मधुसूदनके समयकी तरह संशयाच्छन्न है। तब भी इस संशयको दूर करनेका उपाय है। अप्पय्यने स्वरचित अनेक ग्रन्थोंमें अपने संरक्षकका नामोल्लेख किया है। इससे उनके कालका ज्ञान यत्किञ्चित् हो सकता है।

अप्पय्यका काल, महालिङ्ग शास्त्रीके निर्देशानुसार, १५२०-१५९२ ईसवी (= वि० सं० १५७७-१६४९) मान लेनेसे कुछ विशेष क्षति न होगी। आचार्यको इससे अर्वाचीन मानना भी कठिन है। कारण यह है कि आचार्य नृसिंहाश्रमके समकालीन थे। नृसिंहाश्रम सोलहवीं शताब्दी (= वि० सं० १५५८-१६५७) के एक प्रकाण्ड वैदान्तिक आचार्य थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह दीर्घजीवी थे। उनका वेदान्ततत्त्वविवेक १५४७ ईसवी (= वि० सं० १६०४) में रचा गया। किंवदन्ती है कि नृसिंहाश्रम नर्मदातटवर्ती अपने आश्रमसे सुदूर दक्षिण देशको पैदल गये और अप्पय्य दीक्षितसे मुलाकात की। उस समय

१. द्रष्टव्य—जर्नल आव ओरियण्टल रिसर्च, मदरास, भाग २, पृष्ठ ९७-१०४. Journal of Oriental Research, Madras, Vol. II, pp. 97-104.

अप्पय्यका यश-सौरभ चारों ओर फैला हुआ था। वह सर्वशास्त्रवेत्ता और अनेक ग्रन्थोंके रचयिता होते हुए भी श्रीकण्ठसम्मत शैवविशिष्टाद्वैतवादके ही अनुरागी थे। वेदान्तसूत्रके श्रीकण्ठभाष्यपर उनकी लिखी हुई टीका भी है। यह अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है। किन्तु नृसिंहाश्रम घोर अद्वैतवादी थे। भेदधिक्कार, अद्वैतदीपिका प्रभृति उनके समस्त ग्रन्थोंमें इसका बार बार निदर्शन पाया जाता है। सुना जाता है कि नृसिंहमुनिके प्रभावसे अप्पय्यने मत-परिवर्तन किया। उस समय उन्होंने निर्विशेषाद्वैतवादका अवलम्बन कर ब्रह्मसूत्रपर न्यायरक्षामणिटीका और अमलानन्दकृत वेदान्तकल्पतरु (भामतीव्याख्या) पर परिमल नामकी अभिनव टीका रची थी। मधुसूदनने अद्वैतसिद्धिमें परिमलका उल्लेख किया है। सुतरां नृसिंहाश्रम और अप्पय्य दीक्षितका साक्षात्कार अद्वैतसिद्धिकी रचनासे बहुत पहिलेकी घटना है इसमें सन्देह नहीं। किन्तु कितने पहिलेकी घटना है इसके ठीक ठीक जाननेका उपाय नहीं है। तब भी यह जाना जाता है कि मधुसूदन नृसिंहाश्रमके समकालीन थे। प्रयोगरत्नकार नारायणभट्टने वाग्युद्धमें मधुसूदन सरस्वती, नृसिंहाश्रम और उपेन्द्राश्रमको पराजित किया था यह गाधिवंशानुचरितमें वर्णित है। नारायणकी वृत्तरत्नाकर-टीका १५४५ ई० (=वि०सं० १६०२) में लिखी गयी। नृसिंहाश्रमका भी यही काल है। यह हम पहिले देख चुके हैं। सुतरां मधुसूदनकी समकालीनताके सम्बन्धमें गाधिवंशके साक्ष्यपर अविश्वास करनेका कोई हेतु नहीं दिखलाई पड़ता।

इस प्रकार यह मालूम होता है कि अप्पय्य, नृसिंह और मधुसूदन यह तीनों षोडश शताब्दी (=वि० सं० १५५८-१६५७) के हैं। तब भी शायद मधुसूदन अपेक्षाकृत तीनोंमें नवीन थे।

मधुसूदन सत्रहवीं शताब्दी (=वि० सं० १६५८-१७५७) के नहीं हो सकते इसका एक और प्रधान प्रमाण यह है कि उनकी सिद्धान्तविन्दु नामकी एक पुस्तक १५३९ शकाब्द (नवाग्निवाणेन्दुमिते शकाब्दे) अर्थात् १६१७ ईसवीमें लिखी गयी थी। यह पुस्तक इस समय इण्डिया

आफिस लाइब्रेरीमें वर्तमान है। जिस पुस्तकका लिपिकाल १६१७ ई० (= वि० सं० १६७४) है उसका रचना-काल और भी पहिले होगा, इसमें क्या सन्देह है। जब हम सत्रहवीं शताब्दी (= वि० सं० १६५८-१७५७) के प्रारम्भमें मधुसूदनके ग्रन्थका प्रचार पाते हैं तब इस शताब्दीके तृतीय पादमें उनकी स्थिति स्वीकार करनेका कारण कहां है?

कृष्णस्वामी शास्त्री महाशयकी एक और युक्ति यह है कि मधुसूदनकृत 'अद्वैतरत्नरक्षण' शङ्कर मिश्रके 'भेदरत्न' का प्रतिवाद है और जब शङ्करका काल १५२९ ई० (= विक्रम सं० १५८५) का परवर्ती है तब मधुसूदनके कालका षोडश शताब्दी (= वि० सं० १५५८-१६५७) में निर्देश करना सम्भवपर नहीं मालूम होता। शास्त्री महाशयकी यह युक्ति विचारसङ्गत नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि 'अद्वैतरत्नरक्षण' भेदरत्नका खण्डन है। वर्तमान लेखकने बहुत पहिले ही इस बातको दिखलाया था[१]।

मध्ययुगमें द्वैतवाद और अद्वैतवादके सम्बन्धमें बहुत शास्त्रार्थ और ग्रन्थ-रचना हुई थी। शङ्करने वैशेषिक सूत्रोपस्कार, कणाद रहस्य, आत्म तत्त्वविवेककल्पलता, चिन्तामणिमयूख, कुसुमाञ्जल्यामोद प्रभृति न्याय वैशेषिकशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थरचना द्वारा द्वैतवादकी पोषकता की थी। यद्यपि यह ठीक है कि उन्होंने खण्डनखण्डखाद्यकी टीकामें वेदान्त पक्षका ग्रहण किया था तथापि वह उनके निजका मत नहीं है। उन्होंने पिताके निकट खण्डनखण्डखाद्यका अध्ययन करते समय जो पाठ सुना था उसका संरक्षण तथा प्रचार करना ही इस टीकाका उद्देश्य जान पड़ता है। उन्होंने भेदरत्नमें वेदान्तियोंको अद्वैतरत्नका अपहारक और अपनेको उसका रक्षक कहा है। जिस तीव्र भाषामें

---

१. "Dr. Ganganath Jha in his Preface to the Vadivinoda, pp. 1-2 places Sankara about Samvat 1585 But in view of the positive evidence adduced above it is no longer possible to hold this date as true." (द्रष्टव्य— The Princess of Wales Saraswati Bhavan Studies, Vol III, p. 151)

भेदरत्नका ग्रन्थ लिखा गया है वह केवल शास्त्रीय द्वैतवादके समर्थनके लिये नहीं हो सकती। शङ्करकी तरह अभिनव वाचस्पति मिश्रने भी द्वैत-वादके समर्थनका उद्योग किया था। उस युगमें माध्व सम्प्रदायके न्यायामृत, भेदोज्जीवनादि अनेक ग्रन्थोंमें अद्वैतवादके विरुद्ध पक्षका अवलम्बन किया गया था। मधुसूदनके समान वेदान्तवादी दार्शनिक पण्डित शङ्करके अद्वैत-खण्डनको मौनभावसे स्वीकार करेगा इसकी सम्भावना कहाँ है ? उन्होंने अद्वैतसिद्धिमें व्यासराजके न्यायामृतका और अद्वैतरत्नरक्षणमें शङ्करमिश्रके भेदरत्नका निराकरण कर एक बार फिर अद्वैतवादकी विजय-पताका उड़ायी थी। भेदरत्न और अद्वैत-रत्नरक्षणको पास रखकर आद्योपान्त पढ़नेसे यह बात और भी स्पष्ट रूपसे जानी जा सकती है कि द्वितीय ग्रन्थ प्रथम ग्रन्थके प्रतिवादमें लिखा गया है। मधुसूदनके समकालीन नृसिंहाश्रम भी उस समयके शास्त्रयुद्धसे न बच सके। उनका भेदधिक्कार भेदवादके खण्डनके निमित्त ही रचा गया था। इसके अतिरिक्त मन्ननावाराध्य नामके एक आचार्यने भेदरत्नके खण्डनके लिये अभेदरत्न नामक एक ग्रन्थ निर्माण किया था। इसपर नृसिंहाश्रमकी एक टीका है। जो हो, मधु-सूदनका ग्रन्थ शङ्करमिश्रके बादका है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

किन्तु ऐसा होते हुए भी मधुसूदनको षोडश शताब्दी (= वि० सं० १५५७-१६५८) के बाद रखनेकी आवश्यकता नहीं है। महा-महोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा महाशय शङ्करमिश्रकृत वादिविनोदकी भूमिकामें लिखते हैं कि "संवत्सरस्य च षोडशशतकस्यान्त्ये भागेऽयं मिथिलामहीमण्डलं मण्डयामास।"

शङ्कर अपने रसार्णवमें पुरुषोत्तम नामके राजाका उल्लेख करते हैं। डाक्टर झाका कथन है कि पुरुषोत्तमका दूसरा नाम गरुड़ नारायण था और वह १५८५ विक्रमाब्दके उपरान्त मिथिलामें राज्य करते थे। इसको महामहोपाध्याय परमेश्वर झाका मत कहकर उन्होंने स्वीकार किया है। सुतरां यह सिद्ध होता है कि शङ्कर मिश्र १५२९ ई० (संवत् १५८५) के बादके थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि

डाक्टर झाके इस मतका कृष्णशास्त्री महाशयने ग्रहण किया है। किन्तु यह मत ठीक नहीं है। कारण यह है कि शङ्करमिश्रके भेदरत्न-की एक हस्तलिखित पोथीके लिखनेका समय १५१९ संवत् (= १४६२ ई०) दिया है।[१] शङ्करमिश्र पन्द्रहवीं शताब्दी (= वि० सं० १४५८–१५५७) के लेखक थे इसके माननेके लिये और भी कारण हैं। मधुसूदन शङ्करके परवर्ती और सोलहवीं शताब्दी (= वि० सं० १५५८-१६५७) के थे।

कृष्णशास्त्री महाशयने व्यासराजका समय १४४६ से १५३९ ई० (वि० सं० १५०३-१५९६) निर्द्धारित किया है। यह ठीक हो सकता है। इसके थोड़ा बाद भी व्यासराजका समय माना जा सकता है। सर भाण्डारकरने माध्वसम्प्रदायके आचार्योंकी गुरु-परम्परा प्रकाशित की है। उसमें व्यासाचार्य या वेदव्यासतीर्थका मृत्युकाल १४८१ शकाब्द (= १५५९ ई०) उल्लिखित है।

मधुसूदनने संक्षेपशारीरकटीकामें रामतीर्थकृत टीकाकी प्रतिकूल समालोचना अनेक स्थलोंमें की है। यह रामतीर्थ कृष्णतीर्थ नामक एक संन्यासीके शिष्य थे। पण्डित कृष्णशास्त्रीके मतमें यह रामतीर्थ पहिले अनन्त देवके गुरु थे। यदि इसको सत्य मान लिया जाय तब भी मधुसूदनको सोलहवीं शताब्दी (वि० सं० १५५८-१६५७) का माननेसे रामतीर्थके मतका खण्डन असम्भव नहीं है। मधुसूदनको परवर्ती माननेकी आवश्यकता नहीं है। द्वितीय अनन्त देवका समय १६१६–१६५० ईसवी (वि० सं० १६७३-१७०७) के बीचमें पड़ता है। इसका कारण यह है कि उन्होंने कमलाकर भट्टका उल्लेख किया है। कमलाकरकृत निर्णयसिन्धुकी रचनाका काल १६१२ ईसवी (= वि० सं० १६६९) है। प्रवीण मीमांसक खण्डदेवने अपनी भाट्टदीपिका और मीमांसाकौस्तुभमें द्वितीय आपदेव और द्वितीय अनन्तदेवकी

१. द्रष्टव्य—F. Hall—"A Contribution towards an Index to the Bibliography of the Indian Philosophical Systems" (p. 85, No. LXXXVII).

समालोचना की है। खण्डदेवके शिष्य शम्भुभट्टने प्रभावती नामक अपनी भाट्टदीपिकाकी टीकामें मीमांसान्यायप्रकाश और भट्टालङ्कारके खण्डदेवकृत खण्डनकी कथाका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है। यह खण्डदेव पण्डितराज जगन्नाथके पिता पेरुभट्टके गुरु थे[1] और १६६६ ईसवी (=वि० सं० १७२३) में उनकी मृत्यु हुई। द्वितीय अनन्तदेव राजा बाजबहादुरके आश्रित थे। बाजबहादुर सम्भवतः १६४४ से १६६४ ईसवी तक (=वि० सं० १७०१–१७२१) वर्तमान थे। १६४४ ईसवी (=वि० सं० १७०१) में अनन्तदेव जीवित थे, ऐसा हम मान सकते हैं। इस प्रकार कल्पना करनेसे अनन्तदेवके सम्बन्धमें कमलाकरका उल्लेख और खण्डदेवकृत अपना उल्लेख दोनों सम्भव होजाते हैं। जब बाजबहादुरके अनुरोधसे अनन्तदेव स्मृतिकौस्तुभ लिखनेमें प्रवृत्त हुए उस समय यदि बाजबहादुर राजकुमार वर्तमान होते तो ऐसा होने पर इस समयको कुछ और पहिले रखना होगा। १६४४ ईसवी (=वि० सं० १७०१) को ठीक मानकर यदि हम गणना करें तो मीमांसान्यायप्रकाश और वेदान्तसारटीकाकार द्वितीय आपदेवका काल प्रायः १६०० ईसवी (=वि० सं० १६५७) एवं वेदान्तसिद्धान्तरत्नकार प्रथम अनन्तदेवका काल १५७० ईसवी (= वि० सं० १६२७) कहा जा सकता है। इन अनन्तदेवके गुरु और संक्षेपशारीरकके टीकाकार रामतीर्थका समय और बीस वर्ष पहिले अर्थात् १५५० ईसवी (=वि० सं० १६०७) में रखा जा सकता है। मधुसूदन सोलहवीं शताब्दी (वि० सं० १५५८-१६५७) के अन्तिम समय पर्यन्त वर्तमान थे और उनकी संक्षेपशारीरकटीकाको परिणत वयसमें रची हुई माननेसे, उनके द्वारा रामतीर्थके मतका खण्डन करना असम्भव नहीं हो सकता।

मधुसूदनके शिष्योंमें बलभद्र भट्टाचार्य, पुरुषोत्तम सरस्वती और शेषगोविन्दके नामोंका पता चलता है। शङ्कराचार्यके सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहकी टीकामें शेषगोविन्दने मधुसूदनको अपना विद्यागुरु लिखा

१. "देवादेवाध्यगीष्ट स्मरहरनगरे शासनं जैमिनीयम्" (रसगङ्गाधर, पृ० २)

है। यह शेषगोविन्द कौन हैं इसका पता नहीं चलता। यह अपनेको शेषपण्डितका पुत्र बताते हैं। कुछ लोग इन शेषपण्डितको प्रसिद्ध शेषकृष्ण समझते हैं। यदि यह सत्य हो तो शेषकृष्ण और मधुसूदनका समकालीन होना स्पष्टरूपसे सिद्ध हो जायगा। शेषकृष्ण सोलहवीं शताब्दी (वि० सं० १५५८-१६५७) के अन्तिम भागमें थे।

श्रीगोपीनाथ कविराज

कोरियाका प्रश्न

एशियाके पूर्व भागमें चीनके उत्तर-पूर्व कोरिया (या शोसेन) एक प्रायद्वीप है। उसका क्षेत्रफल ८५२२८ वर्गमील अर्थात् जापानके मुख्य द्वीपके लगभग बराबर है। उत्तरमें यालू और तुमेन यह दो नदियाँ तथा पाईक-तु-सान (श्वेतपर्वत) उसे मंचूरिया और साईबेरियासे अलग करते हैं। दक्षिणमें शोसेनकी खाड़ीके उस पार जापानका सुषीमा द्वीप केवल तीस मीलकी दूरीपर है। पूर्वमें पीत समुद्र और पश्चिममें जापान समुद्रसे वह वेष्टित है। बीचमें बहनेवाली तादाँग नदीसे कोरिया साधारणतः दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। उत्तरी पहाड़ों तथा सघन जंगलोंसे वह भरा हुआ है। दक्षिण भागमें कांगोका प्रसिद्ध शिखर (२९००० फुट ऊँचा)—जो अपने सुन्दर दृश्यों और अपूर्व बौद्ध मन्दिरोंके लिये प्रसिद्ध है—उत्तर-पूर्वकी ओर दिखाई देता है। मोटे तौरपर कोरियामें पर्वतीय भाग अधिक है और कोई मैदान नहीं है। यहाँका जलवायु साधारणतः सम और स्वास्थ्यकर होते हुए भी उत्तरकी ओर जाड़ेमें कड़ी सरदी पड़ती है।

जमीन, विशेषतः दक्षिण-पश्चिमका भाग, बहुत उर्वर है। सब प्रकारके अनाज और फलादि यहाँ पैदा होते हैं। लोगोंका मुख्य अन्न चावल है परन्तु दाल, जौ, गेहूँ, कपास, शकरकन्द आदिकी भी खेती अच्छी होती है। लगभग ४४ लाख 'चो' (जमीनकी एक नाप) जमीनमेंसे सोलह लाखमें चावल पैदा होता है। १९०५ ई० (= वि० सं० १९६२) में कपासकी खेती शुरू करनेके लिये एक समिति क़ायम हुई थी जिसका प्रयत्न बहुत कुछ सफल हुआ। वहाँ अमेरिकन जातिकी कपास बोयी जाती है और दिन ब्दिन इसकी खेती बढ़ानेका प्रयत्न

हो रहा है। १९२६ ई० (=वि० सं० १९८३) में डेढ़ लाख "चो" कपास बोयी गयी। रेशम भी अब काफी पैदा होता है। इसका अधिकांश चीन भेजा जाता है। सेब, नाशपाती, आड़ू आदि फल भी होते हैं। उनकी रफ़तनी मंचूरिया और साईबेरियाको होती है। तथापि कोरियाकी खेती उतनी अच्छी नहीं है जितनी चीन या जापानकी और बहुतसी खेतीके योग्य ज़मीन अब भी ख़ाली पड़ी हुई है।

खनिज सम्पत्तिमें भी देश सम्पन्न है। सोना, कोयला, लोहा और ग्रैफ़ाइटकी उत्पत्ति छै लाख येन[1] से ढाई करोड़ तक बढ़ी है। १९२६ ई० (=वि०सं० १९८३) में कुल उत्पत्ति २४१३०३५० येन थी। मछली आदि सामुद्रिक चीजोंकी उत्पत्ति ३४१२९३७३ येन सन् १९२६ ई० (=वि० सं० १९८३) के अन्तमें थी। जंगलकी आय कोरियाकी आयका बड़ा हिस्सा है। लगभग ७१ फी सदी जमीन जंगल है। पहिले उसकी विशेष रक्षा नहीं की जाती थी। अब जंगलकी रक्षाके लिये विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। १९०७ ई० (=वि० सं० १९६४) में जापानने एक ख़ास जंगल-विभाग स्थापित किया। इसके अलावा बेंत, बाँस, चमड़ा आदि कई उद्योग-धंधे कोरियामें प्रचलित हैं। बिजली और लोहेके कारखाने भी बढ़े हैं। १९२७ ई० (=वि० सं० १९८४) में बिजली पैदा करनेके ७२ कारखाने काम कर रहे थे और उनकी पूंजी १९६०५३५०० येन थी। कोरियामें जापानसे बहुत कम मज़दूरी मिलती है। मज़दूरको साधारणतः एकसे डेढ़ येन और कारीगरको दो ढाई येन मिलता है।

सन् १८९७ ई० (=वि० सं० १९५४) में पहिले पहिल मर्दुम शुमारीका प्रयत्न किया गया। उस समय जनसंख्या लगभग एक करोड़ बीस लाख थी। १९२५ ई० (=वि० सं० १९८२) की मर्दुम शुमारीके अनुसार कोरियाकी जनसंख्या १९५२२९४५ है। इसमें जापानी ४२४७४० और दूसरे विदेशी ४७४६० थे। जापानियोंकी संख्या दिन बदिन बढ़ रही है।

1. येन लगभग सवा रुपयेके बराबर होता है।

कोरिया जातिकी उत्पत्तिके बारेमें भिन्न भिन्न और अनिश्चित मत हैं। मुगल जातिकी विशेषताएँ उनमें अधिक दिखाई देती हैं लेकिन मलाया और आर्यके भी कुछ लक्षण उनमें हैं। उनकी भाषा तुरानी शाखाकी मानी जाती है। उसमें ११ स्वर और १४ व्यंजन हैं। लिपिको 'एनमुन' कहते हैं। अधिकांश यही मालूम पड़ता है कि कोरियाके आदिम निवासियोंका मुग़लिस्तान, चीन और कई आर्य जातियोंसे बहुत प्राचीन कालमें सम्मिश्रण हुआ। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सम्मिश्रणके बाद जातीय एकता और राष्ट्रीयताका भाव वर्तमान इतिहासके बहुत पूर्व कोरियामें बन चुका था। एक बात ध्यानमें रखना आवश्यक है कि कई बातोंमें चीन और जापानसे साम्य होते हुए भी कोरियाकी जाति और संस्कृति दोनोंसे बिलकुल भिन्न हैं। एक लेखकके शब्दोंमें जापान खड्गधारियोंका और कोरिया कलम बहादुरोंका देश है। इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि कोरियाके लोग बहादुर नहीं हैं या जापानी अच्छे लेखक नहीं हैं।

कोरिया और चीन दोनोंके परम्परानुसार प्राचीन कालमें कोरियामें जंगली गुफानिवासी लोग रहते थे, और ईसाके पूर्व ११२२ (=वि० पू० १०६५) के लगभग चीनके तीसरे राजवंशके मन्त्री कीत्सेने कई हजार चीनियोंके साथ इस देशमें प्रवेश किया। इस तिथिके पूर्व भी कोरियामें सभ्यता होनेकी सम्भावना है परन्तु उसका कोई इतिहास या चिन्ह नहीं मिलता। कीत्से राजा चुना गया और सब लोग उसे कोरियाकी संस्कृति और समाजका संस्थापक मानते हैं। उसने राज्यका पुनःसङ्गठन किया, कानून बनवाये और चीनी रीतिरिवाज प्रचलित किये। देशका नाम 'शाओ-सिरान' रखा गया। परम्पराके अनुसार उसका वंश ईसाके पूर्व चौथी शताब्दीमें समाप्त हुआ।

उस समयसे ई० सन्‌की दसवीं शताब्दी (=वि० सं० ९५८-१०५७) तक कोई विशेष वंश प्रधान न रहा। बीच बीचमें देशके कई विभाग होकर छोटी रियासतें बनती रहीं। इसी बीच सन् ३८४ ई० (=वि० सं० ४४१) में बौद्ध (महायान) धर्म यहाँ पहुँचा और यहींसे उसका

जापानमें प्रचार हुआ। इस कालमें कोरिया साहित्य और संस्कृतिका अच्छा केन्द्र था। चीनी साहित्य और धर्म यहाँसे जापानमें गये। सन् ९१३ ई० (= वि० सं० ९७०) के लगभग वगने सारे देशको जीतकर अपना एकछत्र राज्य स्थापित किया। बौद्धधर्म राजधर्म बना और देशका नाम बदलकर 'कोराई' हुआ। इसका वंश १३९२ ई० (= वि० सं० १४४९) के लगभग समाप्त हुआ। इसी समय चंगेजखाँ और उसके मुगलोंका प्रलय समान प्रवाह चारों ओर बहने लगा और उससे इस देशको भी बड़ी क्षति पहुँची। दूसरी दृष्टिसे भी यह काल कोरियाके इतिहासमें महत्वका मानना होगा। ना-तैजो (या लितन) ने अपना नया राजवंश इस समय स्थापित किया जो अभी हालतक कोरियापर राज्य कर रहा था। उसने चीनकी अधीनता स्वीकार की। चीनी संवत् प्रचलित हुआ। देशकी राज्य-व्यवस्थामें बहुतसे सुधार हुए। लितनने कानफ्यूशसके धर्मको राजधर्म बनाया। कानफ्यूशसकी स्मृति, आचार बिचार, शिक्षा आदिका कोरियामें प्रचार हुआ जो अभीतक कोरियापर अपना प्रभुत्व रखते हैं। चीनी साहित्यको भी बहुत उत्तेजना दी गयी। लितन या उसके उत्तराधिकारीने वर्तमान कोरियाकी पोशाक शुरू की।

आरम्भसे जापान और कोरियामें कभी विशेष मित्रता नहीं रही; प्राय: विरोध ही रहा। जापानी सामुद्रिक लुटेरे हमेशा मौका मिलनेपर कोरियाके किनारोंपर लूटपाट किया करते थे। खासकर कमज़ोर राजाओंके जमानेमें यह हमले बढ़ जाते थे। जापान स्वयम् कोरियाको दबानेकी कोशिशमें रहता था। सन् १५९२ (= वि० सं० १६४९) में रिजेंट हिदेयोशीने तीन लाख सेनाके साथ कोरियापर आक्रमण किया। इस विकट समयपर कोरियाको चीनसे बहुत सहायता मिली। तब भी छ सात साल भयंकर युद्ध होनेके बाद जापानी वापस लौटे। इस युद्धमें जापानियोंने जो अत्याचार और लूटपाट की उसका पूरा वर्णन देना कठिन ही है। लाखों निरपराध लोग तबाह हुए। पुस्तकालय तथा चित्रागार जलाये गये और इमारतें जला दी गयीं। सारा देश

उजाड़ हो गया। इस युद्धसे कोरिया-जापानकी शत्रुता तीव्रतर और स्थायी हो गयी। इस प्रलयके बाद शताब्दियोंतक कोरिया दुनियासे अलग रहा। सन् १८६० ई० (=वि० सं० १९१७) में रूसको चीनसे उसुरीका प्रान्त मिलनेपर कोरियाकी सरहदपर पहिले पहिल एक यूरोपीय राष्ट्रका आगमन हुआ। २६ फरवरी १८७६ (=१४ फाल्गुन वि० सं० १९३२) को जापानने चीनकी सम्मतिसे एक सुलह-नामेकी मंजूरी कोरियासे जबरदस्ती करवा ली जिसके अनुसार फूसनका बन्दर जापानियोंके व्यापार और उनके बसनेके लिये खोला गया। १८८० ई० (=वि० सं० १९३७) में गेनसन और शेमलेपो भी खोले गये। यह एक प्रकारसे जापानका कोरियामें चञ्चु-प्रवेश था।

इधर चीनने अधिकांश पश्चिमी राष्ट्रोंसे व्यापारिक सन्धि कर ली और उनके दबावसे १८९० ई० (=वि० सं० १९४७) के बाद कोरियाने भी कई राष्ट्रोंसे इस प्रकारकी शर्तोंपर सुलह कर ली। चीनके समान कोरियामें भी विदेशियोंको कई बन्दरगाहोंमें खास अधिकार मिले। परन्तु इन राष्ट्रोंमें कोरियाके लिये सबसे हानिकर जापानका प्रभाव रहा। जापानका उद्देश धीरे धीरे कोरियापर अपना अधिकार स्थापित करना था। उसके लिये बहाना भी शीघ्र ही मिल गया। कोरियामें बीच बीचमें कई विद्रोह हुए जिसकी वजहसे राजाको बार बार चीनकी सहायता लेनी पड़ी। १८९४ ई० (=वि० सं० १९५१) की मईमें एक बड़ा विद्रोह हुआ। उसके दमनके लिये चीनने राजाकी मदद की। यह मौका पाकर जापानने १२०० सेना कोरियामें भेजी, सुलहनामेसे बन्दरगाह और राजधानीपर अधिकार कर लिया, और कोरियाके सुधारके लिये तीन प्रस्ताव पेश किये। परन्तु चीनने इनकार करते हुए उत्तर दिया कि अपने मामलोंमें कोरियाको स्वतन्त्र रहना चाहिये, और किसी सुधारकी बातचीत होनेके पूर्व जापानी सेनाको यहाँसे हट जाना चाहिये। इसी बातपर चीन और जापानमें युद्ध छिड़ा। चीनकी हार हुई। इस हारके परिणामस्वरूप कोरिया चीनके प्रभुत्वसे हटकर जापा-नके प्रभुत्वमें आया। जापानने अधिकांश शासनविभागोंपर अधिकार

जमा लिया। शासनविधानमें कई परिवर्तन हुए जिनको जापानी 'सुधार' कहते थे। परन्तु जापानी प्रभुत्वको कोरियाकी रानी मिनमें एक प्रबल विरोधी मिला। जापानी अधिकारियोंने उसको अपने पक्षमें मिलानेकी बहुत कोशिश की। अन्तमें असफल होनेपर अपने उद्देशकी पूर्तिके लिये रानीकी हत्या करनेका निश्चय हुआ। साम्राज्य-विस्तारके उद्देशमें नीतिका खयाल करना आवश्यक नहीं है। जापानियोंने ताई-वाँ-कुन नामके राजवंशके एक राजपुत्रको आगे करके अपना काम पूरा किया। चीन और जापानकी सुलहके अठारह महीने बाद ही ८ अक्तूबर १८९५ (= २२ आश्विन १९५२) को जापानी राजदूत वायकाउंट मिउराके आदेशानुसार कोरियाकी कुछ फौजके साथ पेशेवर जापानी हत्यारे राजमहलमें घुसे, और उन्होंने रानीको तथा और कोरियाके एक दो प्रमुख अधिकारियोंको मार डाला। दूसरे दिन राजासे एक सुलहनामा बलपूर्वक लिखवाया गया जिसके अनुसार जापानी प्रभावमें रहनेवाले लोगोंके हाथमें राज्यसूत्र दिये गये।

जापानकी ओरसे यह दिखलानेकी कोशिश की गयी और की जाती है कि यह काम वास्तवमें ताई-वाँ-कुनका रहा, और जापानने इसलिये सहायता दी कि रानी देशहितके विरुद्ध कार्य कर रही थी, वह अनियन्त्रित शासन स्थापित करना चाहती थी, और अठारह महीनेमें जापानने जो अच्छा काम किया उसको मिटानेका प्रयत्न कर रही थी। लेकिन अगर रानीने अपने राज्यमें कुछ किया तो वास्तवमें जापानसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। और सब प्रेक्षकोंकी गवाहीसे—जिनमें कुछ यूरोपीय भी थे—यही सिद्ध होता है कि जापानी हत्यारोंने रानीको मारा। यह समाचार, दबानेकी कोशिश होने पर भी, कुछ दिनोंके बाद यूरोपीय अखबारोंमें छप गया। वायकाउंट मिउराने अब इस कर्मकी जिम्मेदारी दूसरोंपर डालनेका प्रयत्न किया। हिरोशिमामें जापानी अदालतने एक दिखावटी मुक़दमा भी चलाया, जिसमें सब निर्दोष छूटे। इस देशभक्तिके कृत्यके लिये मिउराको जापानमें राष्ट्रीय वीर ('हीरो') कहकर पुकारा गया। अदालतमें मिउरा और

उसके साथियोंकी ओरसे वकीलने यह बयान दिया कि यह कार्य जापानके कल्याणके लिये था और यह एक बड़ी भारी राष्ट्रीय विजय थी। जापानियोंका चाहे जो मत रहा हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस घृणित कर्मने यूरोप और अमेरिकामें जापानकी इज्जत गिरा दी। अपनी गलतीको समझकर जापानी सरकारने तुरन्त शान्त और नम्र भाव धारण किया। कोरियाके राजाको पूर्ववत् अधिकार दिया गया और हस्तक्षेप भी बहुत कम हुआ। रूससे २५ एप्रिल १८९८ (= १२ वैशाख १९५५) और इंग्लैंड से ३० जनवरी १९०२ (= १७ माघ १९५८) को जापानकी जो सन्धियाँ हुईं उनमें कोरियाकी स्वतन्त्रता खास तौरपर मान ली गयी और दोनों पक्षोंने यह एलान किया कि कोरियामें हम किसी प्रकारका हस्तक्षेप करना या अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहते। १९०४ ईसवी (= वि० सं० १९६०–६१) में रूस-जापानके युद्धके समय २३ फरवरी (११ फाल्गुन) को कोरिया और जापानमें सन्धि हुई। उसमें स्पष्ट रूपसे जापानने कोरियाकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली, और उसकी रक्षाके लिये सहायताका वचन दिया। इसके एवजमें कोरियाने जापानको इस युद्धमें अपने देशका उपयोग करनेका अधिकार दिया। परन्तु यह केवल जापानका ढोंग सिद्ध हुआ। वास्तवमें कोरियाकी जब्तीका पहिले ही निश्चय हो चुका था और कोरियाके भोले अधिकारियोंने ही जापानके इस विश्वासघाती नाटकसे धोखा खाया। रूसी युद्धके बहाने जो सेना १९०४ ईसवा (= वि० सं० १९६०) में कोरियामें आयी वह फिर वापस नहीं गयी। लेकिन जापान नहीं चाहता था कि यह उसका कोरियापर जबरदस्ती कब्जा कहा जाय। वह दुनियाको दिखलाना चाहता था कि कोरियाने स्वयम् अपना अधिकार जापानको दे दिया। पहली अगस्त १९०४ (= १६ श्रावण, वि० सं० १९६१) को जापानने कोरियासे यह कबूल करवाया कि विदेशोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेमें, सुलह करनेमें या विदेशी राष्ट्रोंको सहूलियतें देनेमें पहले जापानसे सलाह ली जायगी। एप्रिल १९०५ (वैशाख १९६२) में डाक, तार और टेलिफोन विभाग जापानको दे

दिये गये और उस सालके आंग्ल-जापानी सन्धि-पत्रमें यह घोषित हुआ कि कोरियामें जापानका सबसे अधिक सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थ है। रूसने भी युद्धमें हारनेके बाद कोरियापर जापानका अधिकार मान लिया। नवम्बरमें जापानी सम्राट्के ख़ास दूत मार्किस इटो राजासे मिलने आये। उन्होंने जो प्रस्ताव पेश किये उनका सारांश यह था कि विदेशी विभाग और बन्दरगाह जापानके अधिकारमें रहेंगे, एक रेसिडेंट-जनरल जापानकी ओरसे राजधानीमें रहेगा और जापान कोरियाके राजवंशकी रक्षा और आदरका ज़िम्मा लेगा। इन प्रस्तावोंको सुनकर सम्राट् और मन्त्री आश्चर्य चकित हुए। उन्होंने इन शर्तोंको स्वीकार करनेसे बिलकुल इनकार किया। इटोने मन्त्रियों और राजाको साम, दान, दण्ड, भेद आदि सब प्रकारसे स्वीकृति देनेके लिये मजबूर करनेका प्रयत्न किया पर सफलता न मिली। जापानी सेनाने सब शहरों और ख़ास मौक़ोंपर कब्जा कर लिया। राजमहल तथा कचहरियोंके चारों ओर सेना घूमने लगी। १७ नवम्बर (१ मार्गशीर्ष) को इस मामलेपर विचार करनेके लिये मन्त्रिमण्डल-की बैठक हुई। महलको चारों ओरसे जापानी सेनाने घेर लिया। राजाने मार्किस इटोसे मिलनेसे इनकार किया। मन्त्री राज़ी नहीं हो रहे थे। अन्तमें जापानी सेनाके अफ़सरोंने प्रधान मन्त्रीको, जो सबसे प्रबल और बुद्धिमान् था, पकड़कर एक कमरेमें बन्द किया, और डरा धमका कर तीन मन्त्रियोंसे उस सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर करवा लिये। यह समाचार सुनकर जनता आग बबूला हुई। कई स्थानोंमें विद्रोह हुआ परन्तु वह तुरन्त बड़ी क्रूरतासे दबाया गया। लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि यह सन्धि रद्द की जाय। प्रार्थनाओंका कुछ व्यावहारिक परिणाम नहीं हो सकता था, कारण जापानके पास सबसे प्रभावशाली उत्तर था—सेना। १९०७ (=वि० सं० १९६४) में कोरियाके सम्राट्ने गुप्तरूपसे हेगकी अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्में अपने देशके स्वातन्त्र्यकी कहानी भेजी। उसका कोई परिणाम नहीं हुआ पर जापानको दमनके लिये मौक़ा मिला। डरा धमका कर बुड्ढे सम्राट्को पदत्याग करने और गद्दी अपने पुत्रको

देनेके लिये मजबूर किया गया। राजपुत्र दिमाग़से कमज़ोर और पागलसा था। उसको कब्जेमें रखना आसान था। उसको गद्दीपर बिठानेके चार पाँच दिन बाद ही जापानने एक सन्धिपत्र प्रकाशित किया। उसके अनुसार जापान कोरियाका अभिभावक बन गया। कोरियाकी अवस्था भारतके एक तीसरे दर्जेकी देशी रियासतके समान हुई। रेसिडेंट-जनरलकी सलाहसे सब अधिकारी नियुक्त होंगे, शासन उसीकी देखरेखमें चलेगा और शासनमें किसी प्रकारका परिवर्तन उसकी रायके बिना नहीं होगा। एक शर्त यह भी लिखी गयी कि कोरियाके राजवंशका सम्मान ज्योंका त्यों रहेगा। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें जापानने इस शर्तको ताकपर रख दिया। सारी दुनियाको जापानने यह जाहिर किया कि हम केवल शान्ति स्थापित करनेके लिये यहाँ स्थायी रूपसे हैं। १९०८ ईसवी (= वि० सं० १९६५) में रेसिडेंट-जनरल प्रिन्स इटोने यही बात स्पष्ट रूपसे दोहरायी, लेकिन दो ही साल बाद जापानको यह आवश्यक मालूम हुआ कि कोरिया जब्त किया जाय। २९ अगस्त १९१० (= १३ भाद्र वि० सं० १९६७) की सन्धिसे जापानने घोषित किया कि कोरिया अब जापानी साम्राज्यके एक प्रान्तमें परिणत हुआ। सेनापति सीकी-तिरोची नामक सैनिक गवर्नरजनरलकी इस प्रान्तपर नियुक्ति हुई।

इस घटनाको गौरसे देखा जाय तो यही स्पष्ट होता है कि जापानकी नीति पूर्णरूपसे घृणित साम्राज्यवादकी रही। 'दाई-निपान' का साम्राज्य और शक्ति बढ़े, चाहे वह झूठ बोलनेसे, विश्वासघातसे या और किसी कुकर्मसे हो। वास्तवमें कोरिया जापानका मित्र था। हर सुलहनामेमें यह घोषित होता रहा। कोरियाने कभी जापानपर आक्रमण करनेकी बात नहीं सोची थी। लेकिन जापानी मन्त्रियोंका हमेशा यही ख्याल था कि अपना साम्राज्य बढ़ाना हमारा प्रथम कर्तव्य है। ईसापकी कहानीके भेड़ियेने जिस प्रकार 'तुमने नहीं तुम्हारे बापने गाली दी होगी' कहकर भेड़को खाया उसी प्रकार जापानने कोरियाका भक्षण किया।

जापान कोरियाको अपने व्यापारका गोदाम बनाना चाहता है और अपने व्यवसायके लिये वहाँकी उत्पत्तिपर प्रभुत्व चाहता है।

उसकी यह भी इच्छा है कि जापानकी बढ़ती हुई जनसंख्याके लिये वहाँ उपनिवेश बनें और जापानी लोगोंको नौकरी दिलानेमें सुविधा हो। ठीक यही उद्देश भारतमें अंग्रेज़ोंके रहे। यदि संयोगवश अपने देशका जलवायु इतना गर्म न होता तो इसको भी इंग्लैंड अपना उपनिवेश बना लेता। इस उद्देशके मार्गमें घनी जनसंख्या और विस्तृत देश एक कठिनाई हो सकती है। कोरियामें जनसंख्या काफ़ी है लेकिन देश छोटा है। वहाँ जापानने उसी नीतिका अनुसरण करना शुरू किया जो यहाँ अंग्रेज़ोंकी रही। प्रधान प्रधान और अधिकाँश छोटे पद भी जापानियोंको दिये गये। अच्छी ज़मीन छल कपटसे या डरा धमकाकर खरीदी गयी और जापानियोंको दी जाने लगी। पर्याप्त संख्यामें कोरियामें बसनेमें जापानियोंका एक उद्देश यह भी था कि कोरियाके राष्ट्रीय आन्दोलनका विरोध करनेके लिये वहाँ एक शक्ति बनी रहेगी। कोरियानिवासी और जापानीके लिये वेतनका ब्योरा अलग है। जेलमें भी दोनोंके लिये अलग अलग इन्तज़ाम है। जापानीके लिये जेलोंमें काफ़ी व्यय किया जाता है और अच्छी व्यवस्था होती है परन्तु कोरिया निवासीके लिये जो व्यवस्था की जाती है उसको यदि देखा जाय तो वह नरकका एक छोटासा नमूना मालूम होगा। जापानी और कोरियाके निवासियोंके लिये अलग अलग कानून है। मैजिस्ट्रेटको बहुत ज्यादह अधिकार हैं और भारतके समान पुलिसको सर्वाधिकार प्राप्त है। उनके अत्याचार यहाँसे भी अधिक हैं। जापानका अधिकार होनेपर सरकारी भाषा भी जापानी हो गयी। राजनैतिक अपराधोंका अनुसन्धान बड़ी कड़ाईसे होता है। जिस बर्बरता और क्रूरताके साथ अपने देशकी स्वतन्त्रता चाहनेवाले कोरियाके लड़के और लड़कियोंको मारा गया उसका वर्णन पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और जापानके प्रति घृणा और तिरस्कारका भाव पैदा होता है। कोरियाके राजनैतिक जीवनकी एक विशेषता वहाँके युवक और युवतियोंका महत्वपूर्ण प्रभाव है। अधिकांश आन्दोलनोंमें इन्हीं लोगोंका नेतृत्व रहा और यही अत्याचारके विशेष शिकार बने। खासकर जिस संख्यामें

लड़कियोंने देशके लिये आन्दोलन किया और अत्याचार सहे उससे भारतवासियोंको सबक सीखना चाहिये ।

जापानने यह दिखलानेकी कोशिश की कि जबसे कोरिया हमारे अधिकारमें आया तबसे उसकी आर्थिक उन्नति बहुत हुई है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि जापानके अधिकारमें कोरियाकी खनिज सम्पत्ति बढ़ी, कारखाने बढ़े, अच्छी सड़कें बनीं, लेकिन इसका उद्देश कोरियाकी जनताको लाभ पहुँचाना नहीं था । यह सब जापानके व्यापार और प्रभुत्वको अखण्ड रखनेके साधन हैं । यात्रियोंको ऐसी वीरान जगहोंमें भी सुन्दर सड़कें देखकर बड़ा आश्चर्य होता है जहाँ पगडण्डी-की भी शायद ही जरूरत हो । लेकिन वह सीऊलसे सरहद्‌तक सेना ले जानेके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं । रेलकी भी यही कैफियत है । कोरियाकी व्यापारिक उन्नति वास्तवमें जापानी व्यापारियोंकी उन्नति है । जापानने कोरियाके व्यापारसे विदेशियोंको तङ्ग करके निकाल दिया । अब सारा व्यापार पूर्णरूपसे जापानके हाथमें है । उसमें देश-वासियोंका अंश नगण्य है । यदि वे व्यापार करनेका प्रयत्न करते हैं तो उनके मार्गमें सब तरहकी बाधाएँ डाली जाती हैं जिससे अन्तमें तङ्ग आकर उनको अपना विचार छोड़ देना पड़ता है ।

बौद्धिक दासताके बिना किसी राष्ट्रको बहुत दिनों तक दबाना कठिन है । इस सिद्धान्तको जापान अच्छी तरहसे जानता है । आरम्भ ही में जापानने कोरियाके इतिहास और संस्कृतिकी पुस्तकें जला डालीं और उनका रखना जुर्म समझा गया । सब समाचार पत्र बन्द कर दिये गये, और पुस्तक तथा समाचारपत्रके प्रकाशनके लिये ऐसे विचित्र नियम बनाये गये जिससे स्वतन्त्र विचारका पत्र निकालना असम्भव हो गया । सरकारकी ओरसे एक एक परीक्षक नियुक्त हुआ जिसे सब लेख और समाचार छपनेके पहले दिखलाना होता था और उसकी स्वीकृति लेनी होती थी । थोड़ासा नियम भंग होनेपर पत्र जब्त होता था । सीऊल-से प्रकाशित होने वाला एक राष्ट्रीय दैनिक पत्र (कोरिया डेलीन्यूज) छः महीनेमें तेइस बार जब्त हुआ और अन्तमें सितम्बर १९२०(१९७७) में

बन्द हुआ। उसके सम्पादक राजद्रोहके लिये जेल भेजे गये। मिशनरियोंके धार्मिक अखबारोंमें भी ऐसा उल्लेख नहीं आना चाहिये जिससे खींच तानकर भी लोगोंको राजनैतिक विचार मिलें। एक बार एक मिशनरी पुस्तक इसलिये जब्त हुई कि उसमें अपने भीतरसे शैतानको निकालनेका उपदेश दिया गया था। शैतानमें सरकारको राजद्रोहकी बू आयी। सब पाठशालाएँ सरकारी नियन्त्रणमें रखी गयी हैं। ग़ैरसरकारी पाठशाला भी आज्ञा लेनेपर ही खुल सकती है और उसपर भी कुछ हदतक सरकारी नियन्त्रण रहता है। प्रत्येक पाठशालामें कुछ जापानी शिक्षक रखना अनिवार्य है। पाठ्य पुस्तकोंमें कोरियाकी बुराई और जापानकी श्रेष्ठताका वर्णन किया जाता है। कोरियाकी सभ्यता और संस्कारको उद्गमस्थान जापान ही है यह दिखलानेके लिये तरह तरहकी झूठी बातें लिखी जाती हैं। सरकारको इसकी विशेष चिन्ता रहती है कि राजनैतिक या मामूली उन्नतिके विचार लोगोंमें प्रवेश भी न करने पावें। पुलिसकी आज्ञाके बिना कोई भी सभा नहीं हो सकती और राजनैतिक सभाका तो एक प्रकारसे होना ही असम्भव है। इसके अतिरिक्त कोरियानिवासी और जापानीके लिये अलग अलग पाठशालाएँ हैं।

इन दोनों देशोंके सामाजिक संस्कार तथा रीतिरवाज बिलकुल भिन्न हैं। कई बातें जो जापानमें आमतौरपर प्रचलित हैं कोरियामें बुरी समझी जाती हैं। उदाहरणार्थ, स्त्री पुरुषोंका सार्वजनिक तालाब और नदियोंमें एक साथ नंगे स्नान करना; या वेश्यागमन जिसको जापानी एक अच्छी और आवश्यक सार्वजनिक संस्था मानते हैं। लेकिन जापानने इनका कोरियामें बलपूर्वक प्रचार किया है। वेश्याओंकी संख्या और उनकी वृत्तिका प्रचार देशमें बहुत बढ़ गया। सरकारने जापानसे भी वेश्याओंको लाकर यहाँ बसाया है। जेलोंमें स्त्री पुरुषोंको एक साथ नंगे स्नान करना पड़ता है। इन रवाजोंके प्रति कोरियाके लोगोंकी कितनी घृणा होगी इसका भारतीय जनताको अन्दाज ही हो सकता है। अपना शासन केवल बलके आधारपर होनेसे

जापानका कोरियाके लोगोंपर हमेशा सन्देह बना रहता है। वे सब प्रकारके बन्धनोंसे जकड़े हुए हैं। खुफिया विभागकी काक दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण है। प्रत्येक मनुष्यको अपना नाम, पेशा और स्थान रजिस्टरमें दर्ज कराना पड़ता है और फिर उसको एक नम्बर दिया जाता है जो पुलिस-थानेमें दर्ज रहता है। अपने गाँवके बाहर जानेके लिये भी उसे पुलिसको सूचना देनी होगी और कार्य तथा स्थानका भी पूरा विवरण देना होगा। जिस किसीपर राजनैतिक विचार करनेका सन्देह हुआ उसको हर प्रकारसे सताया जाता है और ऐसे बहुतसे लोग गायब कर दिये जाते हैं। जो लोग देश छोड़कर भाग जाते हैं उनके सम्बन्धियोंको सताकर पुलिस उनका पता लगाती है। लगभग सभी राजनैतिक विचार करनेवाले या तो जेलमें भेजे गये या देश छोड़कर चले गये।

यद्यपि जापानका शासन लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध और केवल सेनाके सहारे चल रहा है तथापि कुशल अखबारनवीसों तथा संवाद-दाताओंकी सहायतासे उसने यह आभास पैदा किया है कि जापानने जंगली कोरियापर दया करके उसको सुधारनेका प्रयत्न किया है। साथ साथ कड़े सैनिक कानूनसे और दमनसे लोगोंके राष्ट्रीय भावके दबानेका प्रयत्न किया है। परन्तु उन्होंने आन्तरिक या बाह्य रूपसे जापानका प्रभुत्व कभी नहीं माना। १९०७ ईसवी (= वि० सं० १९६४) के बाद लगातार आजतक बहादुर सिपाहियोंने और उन लोगोंने जो जापानी प्रभुत्वको किसी हालतमें माननेके लिये तैयार नहीं हैं, जंगलों और पहाड़ोंके सहारे युद्ध जारी रखा है। जापानी सरकार समाचार-पत्रोंमें इनको मंचूरियाके चीनी डाकू घोषित करती है।

अधिकांश कोरियाके नेताओंकी यह स्पष्ट धारणा हो गयी कि सैनिक बलसे कोरिया स्वतन्त्र नहीं हो सकता और जापानकी संख्या और सैनिक सङ्गठनका कोरियाके लोग मुक़ाबला नहीं कर सकते। उनको जनतामें राष्ट्रीय भाव भरनेकी और सब प्रकारसे उनको सङ्गठित करनेकी जरूरत मालूम हुई। कोरिया और जापानके वास्तविक सम्बन्धके बारेमें प्रकाश डालकर सभ्य राष्ट्रोंकी सहानुभूति प्राप्त करना

उनको आवश्यक मालूम हुआ। जापानके दमनसे कोरियाके राष्ट्रीय भाव और उद्दीपित हुए। जापानसे स्वतन्त्र होकर संसारमें अन्य राष्ट्रोंके बराबरका स्थान पानेकी उनकी अभिलाषा बढ़ गयी।

इन राष्ट्रीय भावोंको यूरोपीय महायुद्धसे एक नयी उत्तेजना मिली। प्रेसिडेन्ट विलसनके आत्मनिर्णयके सिद्धान्तका पूर्वके दलित राष्ट्रोंपर जादूसा असर हुआ। विलसनने पेरिसकी शान्ति परिषद्में यह घोषित किया कि हम हर राष्ट्रको अपनी शासन-पद्धति चुननेका अधिकार देना चाहते हैं। इससे कोरियामें जो स्वतन्त्रताकी आशा जागृत हुई उसको जापानकी जल्दबाजीसे मूर्त स्वरूप मिला। जापानको यह भय हुआ कि शायद कोरियाकी फ़रयाद भी पेरिस पहुँचेगी। इसलिये सारे कोरियामें उसने एक प्रार्थनापत्र हस्ताक्षरके लिये घुमाया। उसमें जापानके शासनकी स्तुति की गयी और यह दिखलाया गया कि कोरियाके लोग जापानके अधिकारमें बने रहना चाहते हैं। इस प्रार्थनापत्रके घुमानेके पूर्व किसीके मनमें भी यह विचार नहीं आया था कि पेरिसमें कोरियाकी ओरसे कुछ प्रयत्न किया जाय, क्योंकि लोगोंको सुनवाईकी आशा नहीं थी। परन्तु सरकारने अपने कार्यसे उन्हें मार्ग दिखला दिया और उनमें नये भाव जागृत किये। प्रमुख सज्जनोंसे ज़बर्दस्ती हस्ताक्षर कराया गया। परन्तु कोरियाके पुराने सम्राट्ने हस्ताक्षर करनेसे साफ इनकार किया। उसपर कई प्रकारका दबाव भी डाला गया लेकिन उसका कोई असर न हुआ। वह २० जनवरी १९१९ (=७ माघ सं० १९७५) को मारा गया। लोगोंकी धारणा है कि सम्राट्को जहर देकर मारा गया। सरकारने किसी विदेशी या देशी डाक्टरको लाशकी परीक्षा नहीं करने दी। जहर देकर मारनेके सम्बन्धमें पहले तो अफ़वाह ही फैली थी, परन्तु पीछेसे इनके जिन नौकरोंने इस कृत्यको प्रत्यक्ष देखा था उन्होंने इसके सत्यताकी गवाही भी दी।

सरकारने पहले तो इस समाचारके दबानेकी कोशिश की, परन्तु जब यह देखा कि खबर चारों ओर फैल रही है तब घोषित किया कि बुड्ढा सम्राट् मिरगीसे मर गया पर किसीको इस घोषणापर विश्वास

नहीं हुआ। सच्चा समाचार फैलनेपर कोरियामें एक बिजली सी दौड़ी। यद्यपि भूतपूर्व सम्राट्ने अपने जीवनके उत्तरकालमें कोई बहादुरीका कार्य नहीं किया था, तथापि उसके अन्तिम समयके देशप्रेमसे सब हिल गये और पुराने कोरियाकी स्मृति जाग उठी।

राष्ट्रीय नेताओंने इस मौकेसे लाभ उठानेका निश्चय किया। पेरिसकी परिषद्के सामने अपना कथन रखनेके लिये उन्होंने प्रतिनिधि पहलेसे भेज दिये थे। स्वतन्त्रताके आन्दोलनके लिये देश भरमें जो सङ्गठित सभाएँ बनी थीं उनके द्वारा इस समय काम शुरू किया गया। पुराने सम्राट्की मृत्युके उपलक्ष्यमें कोरियाकी प्राचीन प्रथाके अनुसार सब लोगोंको एकत्रित होकर मातम मनानेके लिये जापानी सरकारने भी इजाजत दे दी। यह पहला ही मौका था जब जापानने इस प्रकार सार्वजनिक सभा करनेकी स्वतन्त्रता दी हो। शायद यह खयाल हुआ कि इस प्रकार भाव प्रदर्शनसे शान्ति स्थापित होगी। इस कार्यके लिये तीन मार्च (१९ फाल्गुन) का दिन निश्चित हुआ। नेताओंकी राय हुई कि इस दिन कोरियाकी राष्ट्रीयताकी पुनर्जागृतिके लिये कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिये। युद्ध और शान्तिमय आन्दोलन इन दो पक्षोंपर बहुत देर तक बहसहोनेके बाद शान्तिमय आन्दोलनकी विजय हुई और निश्चय हुआ कि उस दिन कोरियाके स्वतन्त्रताकी घोषणा की जाय, कोरियाका राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और कौमी नारे लगाकर संसार-को बतलाया जाय कि कोरिया जापानकी दासता स्वीकार नहीं करता। इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिये देशभरमें सूचनाएँ भेजी गयीं। तैंतीस प्रमुख नेताओंने घोषणापत्रपर हस्ताक्षर किये।

यद्यपि यह सब गुप्त रूपसे हो रहा था तब भी अधिकारियोंको इसकी कुछ न कुछ आहट लग ही गयी। कमसे कम उनको सन्देह अवश्य हुआ कि उस दिन कुछ होने वाला है। उन्होंने तीन तारीखको सावधान रहनेके लिये पुलिस और सेनाको सूचना दी। इसपर नेताओंने तारीख बदल कर पहली रखी। उस दिन (१ मार्च १९१९ = १७ फाल्गुन सं० १९७५) दो बजे कोरियाके हर नगरमें स्वातन्त्र्य-

घोषणा जनसमूहको सुना दी गयी, राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया और जयघोष हुआ। घोषणामें आन्दोलनके शान्तिमय और हिंसाविरुद्ध तरीकेपर विशेष जोर दिया गया था। यह एक आश्चर्यजनक संयोग कहना चाहिये कि इसके एक महीने बाद ही छः अप्रैल (२३ चैत्र) को भारतमें लगभग इसी प्रकारका देश-व्यापी शान्तिमय आन्दोलन शुरू हुआ। घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले दो सज्जन संसारभरमें इस आन्दोलन-का समाचार प्रकाशित करनेके लिये चीन भेजे गये और तीस निश्चित तिथिको एक प्रसिद्ध होटलमें एकत्र हुए। स्वतन्त्रताकी घोषणा पढ़कर कोरियाकी जयजयकार मनायी गयी और इसके बाद पुलिसको बाका-यदा इसकी सूचना दी गयी। पुलिसने तुरन्त सबको गिरफ्तार कर लिया। जेल जाते समय रास्तेमें असंख्य जनसमूहने उनका स्वागत किया।

यह आन्दोलन हर ग्राम और नगरमें फैला। इतना उत्तम खुफिया विभाग रहते हुए भी सरकारको इस देशव्यापी आन्दोलनके सूत्रपातका पता नहीं लगने पाया। हर स्थानमें सभाएँ हुईं जहाँ स्वतन्त्रताका घोष-णापत्र पढ़ा गया और नेताओंके भाषण हुए। झण्डा फहराया गया और जयध्वनि हुई। सब श्रेणीके लोग इसमें सम्मिलित थे। दूकानदारोंने दूकानें बन्द कीं। विद्यार्थी पाठशाला छोड़कर चले आये। किसान अपने देहातोंमें एकत्र हुए। रेलवे और ट्रामके कर्मचारियोंने सहानुभूति-में काम बन्द किया। सरकारी नौकरोंने नौकरी छोड़ दी, यहाँ तक कि कई पुलिसके कर्मचारी वर्दी फेंक कर आन्दोलनमें सम्मिलित हुए। दो वृद्ध सरदारोंने भी सरकारके पास प्रार्थनापत्र भेजा कि इस स्थितिमें सहानुभूतिसे काम लिया जाय।

इस आन्दोलनका उत्तर सरकारने घोर दमनसे दिया। पुलिस और सेनाको आज्ञा दी गयी कि जहाँ जहाँ सभा हो वहाँ वहाँ लोगोंको गोली और तलवार चलाकर तितर बितर दें। सिपाही हर जलूसपर हमला कर बड़ी निर्दयतासे लोगोंको मारते थे। सैकड़ों मारे जाते, काटे जाते और जख्मी होते, लेकिन पुनः अविचल भावसे एकत्र होकर लोग जलूस निकालते थे। यह भयानक नाटक हर जगह खेला गया। हजारों

आदमी जेलमें भेजे गये। अन्तमें जेलोंमें जगह नहीं रही। अत्याचार और खूँरेजीकी हद हुई। खूँख्वार मुगल और स्पेनिश इनक्विजिशनके राक्षसी सञ्चालक भी इन यन्त्रणाओंको देखकर खुश हो जाते। जेलमें लड़कों और पुरुषोंकी उँगलियां गरम तारमें लपेटी गयीं। उनका मांस काँटोंसे कोंचा गया और गरम लोहेसे दागा गया। नाखून उखाड़े गये। लोगोंको बहुत तङ्ग सन्दूकमें बन्द करके दबा दिया गया। उनकी नाकमें उबलता हुआ लाल मिर्चका पानी छोड़ा गया। उनको इतना पीटा गया कि अधिकांश बेहोश हुए और बहुतसे मर भी गये। इससे भी भयङ्कर यन्त्रणाएँ देकर लोगोंको घुला घुला कर मारा गया। लड़कियों और स्त्रियोंके साथ इससे भी अधिक घृणित व्यवहार किया गया। इस आन्दोलनमें स्त्रियोंने, विशेषतः लड़कियोंने, पुरुषोंके बराबर भाग लिया था। उनको जेलमें नङ्गा कर अत्यन्त बुरी तरहसे पीटा गया। बाल पकड़ कर तलवार और बन्दूकसे मारते हुए उनको सड़क पर घसीटते हुए ले जाते थे। अदालतमें उनको नङ्गा खड़ा किया जाता था और अधिकारी और जेलके कर्मचारी उनपर थूकते थे और अश्लीलसे अश्लील गालियाँ देते थे। शारीरिक यन्त्रणाओंके देनेमें स्त्री या पुरुषका कोई भेद नहीं था। जिस प्रकार पुरुषोंको उसी प्रकार स्त्रियोंको मारा, पीटा और जलाया गया। इस सम्बन्धमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इन लोगोंमेंसे किसीने जापानके विरुद्ध शस्त्र नहीं उठाया था, न उठानेकी कोई बात चीत ही की थी। उनका अपराध केवल यही था कि उन्होंने राष्ट्रीय घोषणा पढ़ी और कोरियाकी जय मनायी।

अत्याचार और हत्याकाण्डोंसे लोगोंकी हिम्मत घटनेके बजाय बढ़ गयी। जापानके प्रति घृणा और क्रोध द्विगुणित हुआ। २३ अप्रैल १९१९ (१० वैशाख सं० १९७६) को हर प्रान्तके प्रतिनिधियोंने एकत्र हो कर कोरियाको एक प्रजातन्त्र घोषित किया। एक व्यवस्थित शासनदल बना और डॉ सिङ्ग-मनही अध्यक्ष चुने गये। इधर दमन और कत्लका जोर बढ़ही रहा था। जापानी सिपाही जलाने, लूटने और मारनेका ताण्डव नृत्य देश भरमें कर रहे थे।

इस समाचारको अधिक दिनोंतक बाहरी संसारसे छिपा रखना असम्भव था। जापान चाहता था कि कमसे कम पेरिस-परिषद्की समाप्तितक यह समाचार दबा रहे। लेकिन अमरीकाके अखबारोंने, खासकर मिशनरी पत्रोंने, इन हत्याकाण्डोंका पूरा विवरण छापा और जापानके घृणित शासनको रोकनेका प्रयत्न करनेके लिये अपनी सरकार-से प्रार्थना की। अब खबरोंका दबाना जापानके लिये असम्भव हो गया और संसारके सामने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये उसे यह घोषित करना पड़ा कि कोरियाके शासनमें सुधार किया जायगा।

यह प्रसिद्ध सुधार १ सितम्बर १९१९ (= १६ भाद्र, सं० १९७६) से कार्यान्वित हुए। उनका विश्लेषण करनेपर यह मालूम करना कठिन है कि पहलेके शासनमें और नवीन विधानमें क्या अन्तर है। केवल सैनिकके स्थानपर मुल्की गवर्नर-जनरल आया। यह तो केवल नाममात्रका भेद है। वास्तवमें शासनके भाव और प्रकारमें कोई भी अन्तर नहीं हुआ है। वही पुराने अत्याचार जारी हैं। राष्ट्रीयताका दमन उसी प्रकारसे हो रहा है। व्यक्तिगत या विचार-स्वातन्त्र्यको कोई स्थान नहीं है। पुलिस और सेनाका अबाधित राज्य है।

इस समय दुनियाँमें साम्राज्यवादका आधिपत्य है। उसीका एक नग्न और नृशंस उदाहरण कोरिया है। इस समय एशियाका आधेसे अधिक हिस्सा दासताके बन्धनमें जकड़ा हुआ है। इसलिये कोरिया-की अवस्थाकी ओर एशियाके राष्ट्रोंका विशेष ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। कोरियामें जापानको जितना लाभ हो रहा है उतना कोरिया-के स्वतन्त्र रहने पर भी मिल सकता था। परन्तु निपानकी महत्त्वाकांक्षाके मार्गमें वह सबसे बड़ा कण्टक है। जापान एशिया-पर दाई निपानका एकछत्र साम्राज्य स्थापित करनेका स्वप्न देख रहा है और इस दिग्विजयके लिये कोरियाको अपना मुख्य कर्म-स्थल बनाना अत्यावश्यक है। अतः कोरियाको गुलाम रहना पड़ेगा। इसी नीतिको भारत, मलायाद्वीप और एशियाके दूसरे देशोंके साथ यूरोपीय राष्ट्र बरत रहे हैं और उन्हें अपने एकछत्र साम्राज्यकी ईंटें

बना रहे हैं। इसका अन्त तभी हो सकता है जब एशियाके सब राष्ट्र स्वतन्त्र होनेका दृढ़तापूर्वक निश्चय करके आगे बढ़ें। उनके लिये कोरियाके लोगोंका अद्भुत साहस और स्वार्थत्याग मार्गदर्शक होगा। यद्यपि कोरियाके लोग यह जानते हैं कि हम बहुत थोड़े हैं और जापानको किसी प्रकारसे हरा नहीं सकते तब भी अपने आदर्शकी सचाईके ऊपर विश्वास रखकर वे इस घोर युद्धमें लगे हुए हैं। परन्तु कोरियाकी स्वतन्त्रताकी उस समयतक कोई आशा नहीं दिखाई देती जबतक एशियाके मुख्य देश भारत और चीन पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र होकर जापानके नृशंस शासन और महत्वाकांक्षाको दबा न दें। अर्थात् कोरियाकी वर्तमान गुलामी और भविष्यका भाग्य-निर्णय कुछ अंशमें इस देशकी नीति पर निर्भर है।

बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

जिनेवा और एलसिनोरके शिक्षा-सम्मेलन

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके सेण्ट्रल हिन्दू-स्कूल-बोर्ड तथा शिक्षा-समितियोंके अखिल भारतीय सङ्घकी ओरसे प्रतिनिधि बनकर मुझे जिनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड) और एलसिनोर (डेनमार्क) के शिक्षा-सम्बन्धी सम्मेलनोंमें उपस्थित होनेका सुअवसर मिला था। जिनेवामें २५ जुलाईसे ३ अगस्त (९ श्रावणसे १८ श्रावण १९८६) तक शिक्षा-समितियोंके विश्व-सङ्घकी बैठकें होती रहीं और एलसिनोरमें ८ अगस्तसे २१ अगस्त (२३ श्रावण से ५ भाद्र १९८६) तक नवीन शिक्षा-समितिके सम्मेलनकी बैठकें हुईं। अन्यान्य प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त अखिल भारतीय सङ्घने सुप्रसिद्ध स्काउट-कमिश्नर पं० श्रीराम बाजपेयी और काशीकी आर्य-विद्या-सभाके मन्त्री बाबू गौरीशङ्कर प्रसादको भी प्रतिनिधि बनाकर इन सम्मेलनोंमें भेजा था। हम लोगोंकी यात्रा साथ साथ हुई। इसी समय श्री प्यारेलालजी रस्तोगी, पी० सी० यस० भी हम लोगोंमें आ मिले। ये सम्मेलनमें एक सदस्यके नाते उपस्थित हुए थे। १५ मई (१ ज्येष्ठ १९८६) को हम लोगोंने स्वदेश छोड़ा था—उसी दिन कोलम्बोसे चलकर हम लोग २९ मई (१५ ज्येष्ठ १९८६) को नेपिल्स पहुँचे। हम लोगोंके मनमें आया कि अच्छा हो यदि इङ्गलैण्डकी शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंका पर्य्यवेक्षण करके, उनकी स्थितिका सम्यक् अध्ययन कर लेनेके बाद, हम लोग इन सम्मेलनोंकी बैठकोंमें भाग लें। इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर हम लोग पहले इङ्गलैण्ड गये।

इङ्गलैण्डमें जो लोग शिक्षाके समुन्नायक हैं उनके कर्त्तव्य-ज्ञान और उनकी दायित्व-भावनासे मैं बहुत ही प्रभावान्वित हुआ। प्रत्येक

पाठशालामें हमने देखा कि अध्ययन और उल्लास, समुन्नति और सौजन्यका एक अपूर्व वातावरण फैला हुआ था।

हम लोग २२ जुलाई (६ श्रावण १९८६) को सायंकाल जिनेवा पहुँचे। सब लोगोंको एकत्र करनेके उद्देश्यसे भारतीय प्रतिनिधियोंकी एक सभा की गयी। अध्यापक कर्वे सभाध्यक्ष चुने गये और पं० श्रीराम बाजपेयी मन्त्री। २८ और ३१ जुलाई (१२ और १५ श्रावण १९८६) को अन्यान्य प्राच्य देशोंके प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गये। सर्व-सम्मतिसे यह निश्चित हुआ कि शिक्षा-समितियोंके अखिल एशियासङ्घका आगामी अधिवेशन १९३० ई० (संवत् १९८६-८७) में काशीमें हो। जापानके काउण्ट हयाशीने इस प्रस्तावमें बड़ी दिलचस्पी दिखायी।

जिनेवा अन्तर्राष्ट्रीय यज्ञकी भूमि है। झीलों और पहाड़ियोंने इसे अत्यन्त मनोरम और आकर्षक बना रखा है। इसलिये यह बिलकुल आश्चर्यकी बात नहीं थी कि जिनेवाके सम्मेलनमें इतने स्त्री-पुरुष आ जुटे थे कि उनकी ठीक ठीक गणना भी नहीं की जासकी। अनुमान किया जाता है कि संसारके विभिन्न देशोंसे आये हुए प्रतिनिधियोंकी संख्या दो हजारसे कम न थी, किन्तु स्वास्थ्य-शिक्षण-विभागके अध्यक्ष डॉ० टर्नरके शब्दोंमें, वहाँ अमरीका वालोंका तो "अविराम आक्रमण" था। महिलाओंकी उपस्थिति सभाओंकी गरिमा और सुषमाको और भी बढ़ाये देती थी। मेरा विश्वास है कि स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे अधिक थी और सम्मेलनके विचार-कार्योंमें उन्होंने जो बौद्धिक सहयोग पहुँचाया वह बहुत ही ऊँचे दर्जेका था। हमारे सौभाग्यसे श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय वहाँ उपस्थित थीं और उन्होंने भारतका नाम ऊँचा किया।

सम्मेलन उन्नीस विभागोंमें बटा हुआ था और मुख्यतः इन्हींके द्वारा सम्मेलनकी समस्त कार्यवाहियाँ होती थीं। उन विभागोंके नाम हैं (१) घर और पाठशाला, (२) स्वास्थ्य-शिक्षण, (३) व्यावहारिक शिक्षा, (४) शिक्षक-समितियाँ, (५) अन्तर्राष्ट्रीय-सद्भाव, (६) पाठशालाओंमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, (७) शिक्षकोंकी तैयारी, (८) बच्चोंका सदाचार, (९) ग्राम्य जीवन और ग्रामीण शिक्षा,

(१०) प्राक् पाठी शिशु (प्रि-स्कूल चाइल्ड), (११) शिक्षा-द्वारा समाज-संस्कार, (१२) शिक्षा और समाचार-पत्र, (१३) पुस्तकालयकी सेवाका अन्तर्राष्ट्रीय अङ्ग, (१४) पाठशालासे उद्यमकी ओर, (१५) प्रारम्भिक शिक्षा, (१६) माध्यमिक शिक्षा (सेकण्डरी एडूकेशन) (१७) कालेज और विश्वविद्यालय, (१८) प्रौढ़-शिक्षा और (१९) अनक्षरता।

इनके अतिरिक्त 'हरमन-जॉर्डन' नामक पाँच और सभाएँ थीं जिनके नाम थे (१) शान्तिके लिये शिक्षा, (२) देश-भक्ति और इतिहासकी शिक्षा, (३) अन्तर्राष्ट्रीय खेल-कूद, (४) सैनिक शिक्षा और कटिबद्धता और (५) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका सर्वसाधारण यन्त्र। इन समस्त सभाओं और विभागोंमें स्त्रियोंका बड़ा ही सबल प्रतिनिधित्व था और कभी कभी तो मैंने यह देखा कि पति-पत्नी एक दूसरेको सभा-कार्य्यमें सहायता पहुँचा रहे थे। स्वास्थ्य-शिक्षण-विभाग तथा 'गृह और पाठशाला' विभागकी एक संयुक्त सभामें मुझे स्कॉटलैण्डके सर लेज्ली और श्रीमती मैकेन्जीसे भेंट करनेका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमती मैकेन्जीने उस सभामें एक बहुत ही प्रभावोत्पादक तथा ज्ञानवर्द्धक निबन्ध पढ़ सुनाया और सर लेज्लीने एक बहुत ही सुन्दर विचारोत्पादक भाषण दिया। एक जर्मन अध्यापक सदैव अपनी ही भाषामें वक्तृता देते थे और उनकी सहधर्मिणी उन वक्तृताओंका अंगरेजी अनुवाद कर दिया करती थीं; किन्तु सभी सभाओंमें जर्मन, अँगरेजी और फ्रेञ्च भाषाओंमें ही भाषण दिये जाते थे—केवल प्रो० बोवेट ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जर्मन, अँगरेजी, फ्रेंच और एसपरेन्टो-इन चारों भाषाओंमें अपना स्वागत-सम्भाषण किया था। मुझे ऐसे अनेक व्यक्ति मिले जो तीन भाषायें बोल लेते या कमसे कम समझ लेते थे। और भाषाओंकी अपेक्षा फ्रेंचका अधिक प्रचार है। मेरे जो देशवासी योरपमें वाणिज्य या शिक्षा-सम्बन्धी परिभ्रमण करने जायँ उन्हें मैं सलाह दूँगा कि वे यहाँसे प्रस्थान करनेके पहले फ्रेंच और हो सके तो जर्मन भाषाका कामचलाऊ ज्ञान अवश्य प्राप्त करलें।

मैंने समझा कि स्वास्थ्य-शिक्षा-विभागमें शारीरिक-शिक्षण-पद्धति-

पर विचार किया जायगा। इसीलिये मैं इसकी पहली बैठकमें सम्मिलित हुआ। किन्तु देखा गया कि सभामें उपस्थित किये जानेवाले विषयोंकी सीमा इतनी विस्तृत थी, उनका क्षेत्र इतना व्यापक था, कि सभाध्यक्ष महोदयको निर्धारित बैठकोंके अतिरिक्त और भी कितनी ही सभाएँ बुलानी पड़ीं। इसलिये मुझे और और विभागोंकी सभामें जानेका समय नहीं मिल सका। कार्य-विवरण-तालिकापर सभाका समय, स्थान, वक्ताओंके नाम, उपस्थित होनेवाले विषय, दो भाषाओंमें छपवा कर पहले हीसे प्रतिनिधियोंमें बाँट दिये गये थे। वक्ताओंमें कुछ तो ऐसे थे जिन्हें सार्वभौमिक यश प्राप्त है। कहते हुए खेद होता है कि हमारे जिन भारतीय वक्ताओंके नाम पहले हीसे घोषित कर दिये गये थे उनमेंसे कुछ तो सभामें गये ही नहीं और जो गये भी उन्होंने बड़ी उदासीनताके साथ वक्तृता दी। हाँ, अध्यापक कर्वेने जो सदैव महिला-विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें ही भाषण देते हैं, अपने उमङ्ग भरे शब्दोंमें अच्छी वक्तृता दी। जिन भारतीयोंके नाम पहले हीसे वक्ताओंकी सूचीमें नहीं छपे थे उनमेंसे कुछ लोगोंने श्रोताओंके ऊपर अपना बहुत ही अच्छा प्रभाव डाला और उन्हें भारतकी वास्तविक संस्कृतिका मर्म समझनेमें बड़ी सहायता पहुँचायी। भविष्यमें जो भारतीय सज्जन इन सम्मेलनोंमें जाकर कुछ कहना चाहें उन्हें चाहिए कि वे पहले हीसे इसकी सूचना सम्मेलनके अधिकारियोंको दे दें और उन्हें स्पष्ट बता दें कि वे किस विभागमें जाकर अपने मनोभावोंकी अभिव्यक्ति किया चाहते हैं। उन्हें अपने विषयपर अच्छी तरह तैयार होकर जाना चाहिए। इन शिक्षा सम्मेलनोंमें सार्वभौमिक प्रसिद्धि वाले वक्ता भी अपने लिखित भाषणोंको ही पढ़ते थे और उनपर खूब वाद-विवाद होता था। मुझे यह कहते हुए बहुत ही प्रसन्नता होती है कि जिन भारतीय प्रतिनिधियोंने वाद-विवादमें भाग लिया उनकी बातें बड़ी श्रद्धा, सहानुभूति और प्रशंसाके साथ सुनी गयीं।

इन महत्वपूर्ण वक्तृताओंके अतिरिक्त कई सार्वजनिक भाषण भी हुए जो सर्वसाधारणकी रुचिसे सम्बन्ध रखते थे। अध्यापक गिलबर्ट मरेने

"शिक्षाका अन्तर्राष्ट्रीय अङ्ग" पर, फ्रॉउ गरट्रूड बाउमरने "साधारण संस्कृति तथा व्यावसायिक शिक्षाका पारस्परिक सम्बन्ध" पर, और डॉ० पाल मुनरोने "प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षण-पद्धति और दोनोंमें एक दूसरेके लिये कौन कौन बातें सीखने योग्य हैं" पर वक्तृताएँ दी थीं।

"अपङ्ग शिशु शिक्षाकी अन्तर्राष्ट्रीय समिति"का भी एक अधिवेशन हुआ जिसमें मैं २९ जूलाई (१३ श्रावण १९८६) को उपस्थित था। ३० जूलाई (१४ श्रावण १९८६) को डा० शिवरामका भाषण 'सङ्गीत-भवन' में हुआ। उपस्थिति अच्छी थी और सभापतिके आसनपर डा० जिम्मर्न बैठे थे।

अब मैं सर्वसाधारणकी रुचिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंका थोड़ासा वर्णन करूँगा। इनमें सबसे पहली चीज़ है—

प्रदर्शनी

इसमें लोगोंको अपनी ओर खींचनेकी बड़ी शक्ति थी। अनेक संस्थाओंने इसमें अपने यहाँकी चीजें भेजा थीं। देखते ही बनता था कि पश्चिमने अपनी शिक्षाके क्षेत्रमें कैसी अद्भुत उन्नति की है। यह सम्भव नहीं है कि मैंने जो जो वस्तुएं वहाँ देखीं उनका संक्षिप्त विवरण भी यहाँ दे सकूँ। हाँ, इतना ही कह सकता हूँ कि सैकड़ों मानचित्र, तस्वीरें, छायाचित्र, खिलौने, चित्रकारियाँ, नक्शे, किण्डर गार्टन स्कूल तथा कमज़ोर बच्चोंकी पाठशालाओंमें व्यवहृत होने वाली सामग्रियाँ, तथा और भी ऐसी ही बहुतसी आकर्षक और उपयोगी वस्तुएँ उस प्रदर्शनीकी शोभा बढ़ा रही थीं। उनमें बहुतसी ऐसी सामग्रियाँ थीं जो न केवल बौद्धिक-शिक्षाको ही परमार्जित करती हैं प्रत्युत जिनके सहारे कलाकी सूक्ष्म भावना और कल्पनाके वैभवकी भी प्रचुर वृद्धि होती है। मैं कह नहीं सकता इन वस्तुओंको कभी भारत-महासागर पार करनेका मौका मिला है या नहीं, पर इतना तो निश्चित है कि हमारे बड़ेसे बड़े अध्यापकोंमें भी ऐसे कितने ही हैं जिनके दृष्टि-पथपर ये चीजें कभी न आयी होंगी।

आमोद-प्रमोद

समय समयपर मनोरञ्जनकी व्यवस्था भी होती रही। जेक्स-डालक्रोजे[1] नृत्य-कला सिखानेके लिये बहुत ही विख्यात हैं। उन्होंने २७ और २८ जुलाई (११ और १२ श्रावण १९८६) को सदस्योंके सामने अपनी कलाका प्रदर्शन किया। भारतमें 'नृत्य' शब्दके साथ एक बहुत ही रूढ़ और अप्रिय भावना मिली हुई है। इस शब्दका उच्चारण करते समय हम अपनी सुरुचि और सहानुभूतिकी अभिव्यक्ति नहीं करते। किन्तु योरपके ये नृत्य सचमुच अद्भुत हैं। इनमेंसे कुछ तो नियमबद्ध व्यायामकी तरह हैं—ऐसे हैं कि जिनको करते समय हमारे देशके बालकोंकी भी हड्डी-पसली टूट जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु वहाँ ऐसे व्यायामोंमें सुकुमार बालिकाएँ भी सम्मिलित होती हैं और वहाँकी प्रफुल्ल जातियाँ इन्हें 'नृत्य' के नामसे पुकारती हैं। भारतमें हम इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि योरपके स्त्री-पुरुष कितना अधिक शारीरिक व्यायाम किया करते हैं। उदाहरणके लिये मैं जिनेवा-झीलका दृश्य उपस्थित किये देता हूँ जिसमें सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंको हमने तैरते हुए देखा। साथ ही लन्दनकी 'काउन्टी काउन्सिल-हाई स्कूल' नामक एक बालिका-विद्यालयकी भी बात बताये देता हूँ जहाँकी बालिकाओंके गठे हुए सुदृढ़ शरीर तथा उनके व्यायाम करनेकी स्वस्थ और सुन्दर प्रणाली देखकर हम लोग गद्गद हो उठे।

१ अगस्त (१६ श्रावण १९८६) स्विटजरलैण्डका राष्ट्रीय दिवस था। उस दिन सारे काम-काज बन्द रहे। सम्मेलनके अधिकारियोंने कृपा कर एक जलविहारकी व्यवस्था की। हम लोग ठीक साढ़े नौ बजे सबेरे नौकामें जा बैठे। मॉनट्रो[2] में दोपहरका भोजन किया। यह एक अत्यन्त मनोरम स्थान है। 'शिलों'[3] का गढ़ देखा और इसी तरह सारा दिवस आमोद-प्रमोदमें बीत गया। लौटते समय विभिन्न देशोंके प्रतिनिधियोंने अपने अपने राष्ट्रीय गीत गाये। उधर नौका सङ्गीत-

---

१. Jacques-Dalcroze. २. Montreux ३. Castle of Chillon.

लहरीपर थिरक रही थी और इधर जिनेवाकी उल्लासमयी नगरी रात्रिके अनुपम आलोकसे जगमगा रही थी।

योरपके लोग बड़े हँसमुख हैं। काम करते समय वे कठोर परिश्रमसे नहीं घबराते और जीवनका आनन्द लूटते समय वे हृदयकी समस्त आकांक्षाओंको सन्तुष्ट कर देते हैं। अतएव सम्मेलनमें जहाँ एक ओर गम्भीरताका अखण्ड साम्राज्य फैला रहता था वहाँ दूसरी ओर उल्लासकी चहल-पहल भी मची रहती थी। २४ जुलाई (८ श्रावण १९८६) को हम लोग "शामोनी" भी देखने गये। इसी तरह एकाध और मनोरम स्थानोंका दर्शन किया, कई भोजोंमें सम्मिलित हुए, सङ्गीत सुने तथा छोटी छोटी आमोद-वर्द्धनी यात्राएँ कीं।

राष्ट्र-सङ्घ तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सङ्घ

सम्मेलनके अधिकारियोंने कृपा कर इसका प्रबन्ध कर दिया था कि प्रतिनिधि इन संस्थाओंमें जाकर वहाँका काम भी देख सकें। २ अगस्त (१७ श्रावण १९८६) को हम लोगोंने इन्हें देखा। कार्यालयके पदाधिकारियोंमें थोड़ेसे भारतीय सज्जन भी हैं। बच्चोंके लिये वहाँ क्या काम किया गया है यह जाननेको हम विशेष रूपसे उत्सुक थे। सच पूछिये तो वही हमारी स्वाभाविक रुचिका केन्द्र भी था। हमारी उत्सुकता विशेष कर उस वस्तुकी ओर झुकी हुई थी जिसे लोग "जिनेवाकी घोषणा" या "बच्चोंकी अधिकार घोषणा" के नामसे पुकारते हैं। सन् १९२४ (संवत् १९८१) ई० में राष्ट्र-सङ्घने इस "घोषणा" को जन्म दिया था। इसमें मानव-जातिके हित और कामकी बातें हैं इसलिये मैं इसका रूप यहाँ दिखा देना चाहता हूँ। वह इस तरहका है:—

(१) बच्चोंको, उनके आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक विकासके लिये, सारे साधन दिये जाँय।

(२) भूखे बच्चेको भोजन दिया जाय; रुग्ण बच्चेकी सेवा की जाय; पिछड़े हुए बच्चेको आगे बढ़नेके लिये सहायता पहुँचायी जाय; अपराधी बच्चे सुधारे जाँय; अनाथ और परित्यक्त बच्चोंको आश्रय मिले और उनकी पूरी सहायता की जाय।

(३) आपत्ति-कालमें सबसे पहले बच्चोंका बचाव किया जाय।

(४) बच्चेकी स्थिति ऐसी बना दी जाय जिसमें रहकर वह अपनी जीविका उपार्जन कर सके और हर प्रकारके अपहरण-व्यवसायसे उसकी सदैव रक्षा की जाय।

(५) भरण-पोषण करते समय बच्चेको सदैव इस बातके लिये चैतन्य रखना चाहिये कि उसकी सारी क्षमता उसके बन्धु-बान्धवोंकी सेवामें खर्च की जायगी।

सम्मेलनमें ऐसी सभाएँ बहुत ही कम थीं जिनमें समस्त प्रतिनिधियोंकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाय। पहले दिन, २५ जुलाई (९ श्रावण) को योंही एक जमावड़ा हुआ। कोई विशेष काम तो था नहीं, साधारण जलपान हुआ और लोग एक दूसरेसे जान-पहचान कर सके। दूसरे दिन, २६ जुलाई (१० श्रावण) को, जिनेवाके नागरिक एवं साङ्घिक सरकारके अधिकारियों-द्वारा समस्त प्रतिनिधियोंका स्वागत किया गया। २९ और ३१ जुलाई (१३ और १५ श्रावण) को भिन्न-भिन्न देशोंके प्रतिनिधियोंने अपने-अपने सन्देशे सुनाये। भारतकी ओरसे अध्यापक कर्वे बोले थे। इतने हीमें प्रत्येक विभागसे प्रस्ताव और विवरण भी आगये और उनपर सम्यक् रूपसे विचार करनेके लिये २ अगस्त (१७ श्रावण) की रात वाली तथा ३ अगस्त (१८ श्रावण) की सबेरे वाली छोटी छोटी सभाएँ पर्याप्त ही नहीं आवश्यकतासे अधिक भी थीं। अपने यहाँ हम जिस दुष्ट तर्क, नोच-खसोट और हो-हल्लाके आदी हैं उनका उन सभाओंमें कहीं पता ही नहीं था।

भारत और जिनेवा-सम्मेलन

इस अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घको चलानेके लिये इस समय चौदह सदस्योंकी एक सञ्चालक-सभा है। इन चौदह सदस्योंमेंसे पाँच हैं युनाइटेड किङ्डमके, तीन हैं अमेरिकाके (सभापति और मन्त्री भी इन्हीं लोगोंमेंसे हैं), दो भारतके, एक चीनके, एक जापान के, एक कनाडाके, और एक जर्मनीके। श्री शेषाद्रि साहब और श्री इनामदार साहब भारतीय सदस्य हैं। यह परितापकी बात है कि शेषाद्रि साहब सभाकी एक भी बैठक में उपस्थित न हो

सके। यदि वे ना पाते तो भारतीय पक्षका बड़ी योग्यताके साथ समर्थन करते। श्री इनामदार साहबने शायद सभी बैठकोंमें भाग लिया। उनके हृदयमें भारतकी भलाईका भाव है इसमें सन्देह नहीं; किन्तु फिर भी वे केवल एक ही देशी राज्यके प्रतिनिधि हैं चाहे वह देशी राज्य कितना ही उन्नतिशील क्यों न हो। हमारे देश भाइयोंके हृदयमें रह रह कर यह भावना उमड़ रही थी कि उस सभामें एक और भारतीय सदस्य रखे जायँ। मैं समझता हूँ, इनामदार साहबने किसी बैठकमें इस भावनाकी अभिव्यक्ति भी की थी पर परिणाम कुछ न निकला। वहाँ "यूरोपीय-प्रतिनिधि" के नामसे एक पदाधिकारी है और एशियावालोंका यह कहना है कि वहाँ "एशियाई प्रतिनिधि" के लिये भी एक पदकी सृष्टि की जाय। मेरा विश्वास है कि भारतीयोंका ही नहीं बल्कि समस्त एशिया-वासियोंका दावा बहुत ही मजबूत है और पर्याप्त तत्परता, शक्ति तथा उत्साहके साथ इसका समर्थन करना चाहिये।

एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रके प्रति कैसी धारणा रखनी चाहिये, इसके सम्बन्धमें अबतक जिस इच्छाका आभास मिल रहा है वह मलिन नहीं कही जा सकती, उसमें पवित्र भावनाकी कमी नहीं है। किन्तु यह पवित्र इच्छा अभीतक व्यावहारिक क्षेत्रसे दूर है, इसे अभीतक वह रूप नहीं दिया जा सका है जिसके सहारे पूर्व और पश्चिमकी पारस्परिक समताका बोध हो सके। प्राच्य विश्व-विद्यालयोंमें पश्चिमी संस्कृतिके लिये जितनी गद्दियाँ स्थापित हैं, पाश्चात्य-विश्व-विद्यालयोंमें पूर्वीय संस्कृतिके लिये उतनी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, न तो अध्यापकों और पुस्तकोंका पारस्परिक आदान-प्रदान है और न पूर्व और पश्चिमके बीच संस्कृति -सम्बन्धी सम्मेलन ही हैं। हम लोगोंने जिन पाश्चात्य विश्वविद्यालयोंके पुस्तकालय देखे उनमें भारतीय विषयोंपर लिखे हुए ग्रन्थ बहुत ही कम दिखाई पड़े। हाँ दक्षिण-जर्मनीमें, सेण्ट बेनिडिक्टीकी ब्वाएरों मोनेस्ट्रीमें हमें अलबत्ता आश्चर्यचकित हो जाना पड़ा जहाँ हमने सामवेदकी एक प्रति देखी। प्राचीन भारतसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ और पुस्तकें भी यहाँ देखीं।

एलसिनोरका शिक्षा-सम्मेलन

५ अगस्त (२० श्रावण) को हम लोगोंने डेन्मार्कके लिये प्रस्थान किया। भावनगर-स्टेटके शिक्षा-सञ्चालक श्री० बी० एम० मेहता भी हमारे साथ थे। इन सम्मेलनोंको देखनेके लिये ये अपने राज्यसे भेजे गये थे। प्राय: प्रत्येक अवसरपर ये धोती पहने हुए दिखाई पड़े और सिरमें पगड़ी तो बाँधे रहते ही थे। ६ अगस्त (२१ श्रावण) को हम लोग हैम्बर्गमें उतर पड़े और ७ (२२ श्रावण) को 'एलसिनोर' पहुँचे। हालसिंगबर्गमें (स्वीडन)—एक बड़े स्कूलके शयनागारमें—हमारे ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था। सम्मेलनमें सम्मिलित होनेके लिये हमें प्रति दिन डेनमार्क आना पड़ता था। हम लोगोंके सिवा, हमारे शयनागारमें इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, और अमेरिका आदि स्थानोंके अध्यापकगण थे। भारतीय केवल हमी लोग थे। तीन भाषाओंमें छपी हुई कार्य-विवरणतालिका हमें दी गयी। उसमें भिन्न भिन्न "कोर्स" और "ग्रूप" के विषय दिये हुये थे जिनमें सम्मेलनका सारा कार्य्य ही केन्द्रीभूत था। वे "कोर्स" और "ग्रूप" इस तरह थे:—

"ग्रूप"—(१) वैयक्तिक मनोविज्ञान और उसके प्रकार, (२) बौद्धिक परीक्षा, (३) बच्चोंका सुधार, (४) न्यू स्कूल्स इन ऐक्शन-प्राइवेट, (५) न्यू स्कूल्स इन ऐक्शन-स्टेट, (६) समुदाय शिक्षण-इसकी समस्या और समुन्नति, (७) न्यू स्कूल्स इन ऐक्शन; अबोध बच्चोंकी पाठशाला और किण्डरगार्टन, (८) न्यू स्कूल्स इन ऐक्शन; प्रौढ़-पाठशाला, (९) सङ्गीत और कलाके सहारे क्रियात्मक अभिव्यक्ति, (१०) नयी शिक्षा, माँ-बाप और शिक्षक, (११) शिक्षकोंकी शिक्षा, (१२) नयी शिक्षाका तत्व, (१३) अन्तर्राष्ट्रीय धारणाकी शिक्षा, (१४) बच्चे और धर्म, (१५) पाठशालाके पुनर्निर्माणसे सम्बन्ध रखनेवाली सामाजिक अवस्थाएँ और (१६) काम-शिक्षा।

"कोर्स":—(१) पाठक्रमका पुनर्निर्माण, (२) मौन्टेसरी-प्रणाली, (३) डेक्रोली-प्रणाली, (४) डाल्टन-प्रणाली, (५) विनेट्का-

टेकनीक, (६) उद्देश्यपूर्ण कार्य्यके लिये शिक्षा, (७) व्यक्तिके विकासमें अचेतनकी महत्ता, (८) नृत्य, (९) मिलकर गाना।

दसवाँ "कोर्स"—बच्चोंकी कला—प्रो० सिजेककी अस्वस्थताके कारण कार्य्यक्रमसे अलग कर दिया गया। किन्तु हम लोगोंने उक्त प्रोफेसर साहबकी अद्भुत कलाका परिदर्शन ३० सितम्बर (१४ आश्विन) को वियेनामें किया।

किन किन बातोंमें यह सम्मेलन जिनेवा-सम्मेलनके साथ सादृश्य रखता था और किन किन बातोंमें विभिन्नता, यह नीचे लिखी पंक्तियोंसे अवगत हो जायगा।

(१) सम्मेलनके उद्देश्य और क्षेत्र

न्यू-फेलोशिप-कान्फ्रेंसमें कोई प्रस्ताव नहीं हुआ। यह शिक्षण-नीति तथा उसके सञ्चालन-कार्य्यपर अधिक ध्यान न देकर शिक्षाकी बौद्धिक उपलब्धिपर ही विशेष जोर देता है। यहाँ सदस्य-शुल्कमें दो पाउण्ड दो शिलिङ्ग लिये गये। जिनेवामें केवल दस शि० लिये गये थे। "कोर्स"-के लिये शुल्क अलग लिया गया था। ये "कोर्स" इतनी अच्छी तरह सङ्गठित किये गये थे कि जो सदस्य शिक्षा ही द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं उन्हें इनसे बड़ा लाभ हुआ। कल्पना कीजिये कि वह अवसर कितना अनमोल था जब डॉ० मौन्टिसोरी और डॉ० डेक्रोली स्वयं अपनी अपनी प्रणालीकी व्यावहारिक व्याख्या कर रहे थे और सो भी एकाध घण्टेके लिये नहीं, पूरे सप्ताह भर-बल्कि उससे भी अधिक। कुमारी हेलेन भी वहाँ उपस्थित थीं। सम्मेलनकी दूसरी विशेषता यह थी कि वहाँ मनोविज्ञान तथा और और विषयोंपर एक व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध किया गया था। उन वक्तृताओंके सारांश विभिन्न भाषाओंमें छपवा कर बेचे गये। एलसिनोरकी परीक्षा-अनुसन्धान समितिकी कार्य्यवाहियोंके फलस्वरूप वहाँ परीक्षासम्बन्धी कुछ सिद्धान्त स्थिर किये गये। मेरी रायमें, अखिल भारतीय शिक्षा सङ्घको भी, भारतीय परिस्थितिको सामने रखकर, इस ओर ध्यान देना चाहिये।

एलसिनोरके आमोद-प्रमोद भी शिक्षा सम्बन्धी महत्त्वोंसे खाली नहीं थे। प्रायः प्रति दिन छायाचित्रों द्वारा अमेरिका, इंगलैण्ड, जर्मनी, आदि स्थानोंके पाठशाला-जीवन तथा वहाँके कार्योंका प्रतिबिम्ब दिखलाया जाता था। कुमारी मारजोरी गुलनने भी अपने सांध्य-सङ्गीतोंसे लोगोंका मनोरञ्जन किया। उनका सङ्गीत बहुत ही अच्छा था।

डेन्मार्क अपने फोक हाई स्कूल्स अर्थात् कृषकोंकी पाठशालाओंके लिये बहुत ही विख्यात है। इन संस्थाओंने गाँवके किसानोंको उनके बौद्धिक-विकासमें बड़ी सहायता पहुँचायी है। साथ ही इनके द्वारा प्रौढ़-शिक्षाकी समुन्नतिमें भी बड़ी मदद मिली है। फ्रेडेरिक्सबर्गका फोक-हाई स्कूल" देखनेके लिये, १३ अगस्त (२८ श्रावण) को विशेष प्रबन्ध किया गया। स्कूलमें हर होलगर बेगट्रप (सीनियर और जूनियर) के छोटे छोटे भाषण हुए। फोक हाई स्कूलकी शिक्षाके सम्बन्धमें पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देते समय हर होलगर बेगट्रप (जूनियर) ने अपनी अच्छी योग्यताका परिचय दिया।

१८ अगस्त (२ भाद्र) को वहाँ 'फोक-नृत्य' का एक प्रदर्शन हुआ जिसमें स्कूलके तीन सौ बच्चोंने भाग लिया था। २० अगस्त (४ भाद्र) को, अन्तर्राष्ट्रीय फोक-स्कूलके प्रधानाध्यक्ष मि० मानीकेने कृपाकर ओलस्टेड गाँवमें जानेका प्रबन्ध किया। सायंकाल एक पहाड़ीपर सब प्रतिनिधि एकत्र हुए। इसके एक ओर झील है, दूसरी ओर उत्तरी सागरसे मिली हुई एक नहर। उस छोटी सी पहाड़ीपर कई राष्ट्रके प्रतिनिधि एकत्र थे—चीन और जापानके भी। एक जापानीने अपने यहाँका एक गीत गाया और पं० श्रीराम बाजपेयीने अपने यहाँका। मि० एण्डरसनने दर्शकोंका स्वागत किया और उनके स्वागत सम्भाषणके जर्मन, अँगरेजी तथा भारतीय भाषाओंमें उत्तर दिये गये। दूसरे दिन हम लोग डेअरी देखने गये। चलते समय हमलोगोंने हाथ मिलाये और एक सम्मिलित गीत गाया।

इसी तरह कृषि सम्बन्धी, इतिहास सम्बन्धी, आदि कितनी ही और यात्राओंका प्रबन्ध किया गया था।

ऊपरकी बातोंसे पता चल गया होगा कि यह सम्मेलन जिनेवाके सम्मेलनसे कितना भिन्न था। एलसिनोरमें सदैव अवकाशका-सा वातावरण फैला रहता था। सम्मेलनने अन्तर्राष्ट्रीय गीतोंका एक सङ्ग्रह प्रकाशित किया था। प्रत्येक व्याख्यानके पहले उसी सङ्ग्रहमें का एक गीत गाया जाता था। प्रति दिन प्रातः काल साढ़े आठ बजे, थोड़ी देरके लिये, मौन धारण किया जाता था।

(२) संचालकका व्यक्तित्व और सम्मेलनमें भारतका स्थान

श्रीमती बेट्रीस एन्सोर सम्मेलनकी कार्य्यकारिणी सञ्चालिका थीं। उनमें कार्य्य-सञ्चालनकी अद्भुत प्रतिभा और क्षमता है। अँगरेज महिला होनेके कारण (सम्मेलनका प्रधान कार्य्यालय लन्दनमें है) स्वभावतः वे बहुतसे अँगरेज अध्यापकोंको अपनी ओर आकर्षित करती थीं। उनके भाषणमें प्रवाह और जोर होता है। दूसरे दिन उन्होंने एक सार्वजनिक भाषण द्वारा यह दिखा दिया कि वे एक असाधारण योग्यता रखनेवाली महिला हैं। उन्होंने सभी 'ग्रूपों' के कार्य्यकर्त्ताओंसे मिलने-जुलनेकी पूरी चेष्टा की। १६ अगस्त (३१ श्रावण) को उन्होंने 'निकटपूर्व'[१] के प्रतिनिधियोंको आमन्त्रित किया कि वे लोग मिश्र, टर्की तथा इराककी शिक्षा-समस्याओंपर भाषण दें। मिलते समय तथा बातें करते समय उन्होंने सदैव अपने उस असीम प्रेमकी अभिव्यक्ति की जो भारतीय अध्यात्मवादके लिये उनके हृदयमें घर किये बैठा है। भारतीय प्रतिनिधियोंने उन्हें १७ अगस्त (१ भाद्र) को, अपने निरामिष भोजमें निमन्त्रण देकर बुलाया। सम्मानित अतिथियोंमें डा० मौन्टेसरी तथा मिस हेलेन पैङ्कहर्स्ट भी रहीं।

१९ अगस्त (३ भाद्र), भारतीय-शिक्षापर भाषण देनेके लिये निश्चित किया गया था। श्रीमती एनसोरके साथ समस्त भारतीय प्रतिनिधियोंकी एक तस्वीर उतारी गयी। श्रीमती कमला चट्टोपाध्यायने आर्य्य समाजके शिक्षा-सम्बन्धी कार्य्यों, ब्रह्मसमाजके शिक्षा-सम्बन्धी कार्य्यों तथा राम-

१. Near East

कृष्ण आश्रमके शिक्षा-सम्बन्धी कार्योंपर व्याख्यान दिया। अध्यापक कर्वे अपने महिला विश्वविद्यालयपर बोले। हैदराबादकी मिस पोप, उस्मानिया-विश्वविद्यालयपर बोलीं। मिस लोने 'मद्रासमें शिक्षा' पर भाषण दिया। श्रीयुत मेहता और इनामदार साहब 'देशी-राज्योंमें शिक्षा' पर बोले और मैंने काशी 'हिन्दू विश्वविद्यालय' पर व्याख्यान दिया। उस समय तो प्रश्नोत्तरके लिये समय नहीं था पर उसके बाद मुझसे कितने ही स्त्री-पुरुषोंने, हिन्दू विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें, कई प्रश्न पूछे। उनमेंसे मैं यहाँ तीन प्रश्नोंका उल्लेख किये देता हूँ:—

(१) जब आपका स्वयं अपना विश्वविद्यालय है तब आप अपने यहाँके विद्यार्थियोंको तुलनात्मक भाषाशास्त्र पढ़ने तथा संस्कृतका ऐतिहासिक और आलोचनात्मक अनुसन्धान करनेके लिये योरप क्यों भेजते हैं?

(२) दर्शनशास्त्र, साहित्य तथा धर्मके क्षेत्रमें हिन्दू-विश्वविद्यालयने संसारकी विचार-धाराको कितनी प्रगति दी है?

(३) अपने विश्वविद्यालयमें आप लोग जर्मन और फ्रेंच क्यों नहीं पढ़ाते?

साफ़ मालूम होता है कि प्रश्न कर्त्ताओंको यह याद ही नहीं रहा कि हमारा विश्वविद्यालय अभी कलका बच्चा है।

"सूर्य्य नमस्कार"—व्यायामके सम्बन्धमें मि० इनामदारने कुछ फ़िल्म्स दिखलाये। ऐसे सम्मेलनोंमें भारतीय दर्शक इस प्रकारके भारतीय फिल्मोंसे बहुत काम कर सकते हैं।

जिनेवामें तो भारतीय महिला केवल श्रीमती चट्टोपाध्याय ही थीं। एलसिनोरमें कुमारी कृष्णदेवी और बीनादत्त भी आ मिलीं। आप लोग लन्दनमें पढ़ती हैं और वहींसे आयी थीं। ये लोग सदैव अपनी साड़ियोंको ही पहने रहतीं थीं और इन्हें तस्वीर खींचनेवालोंसे कभी कभी तंग हो जाना पड़ता था।

शहर और राज्यके अधिकारियोंने सम्मेलनको सफल बनानेमें बड़ा सहयोग पहुँचाया। स्वीडनकी राजा-रानी 'ओलिम्पिक स्पोर्ट्स-ग्राउण्ड' में उपस्थित थीं। और भी कितने ही अनुकूल अवसरोंपर डेनमार्कके

प्रधान मन्त्री, शिक्षासचिव, हेलसिङ्गोर और हालसिंगवर्गके मेयर तथा अन्याय अधिकारीवर्ग भी आते रहे।

जिनेवा एक सघन और विस्तृत नगरी है। वहाँकी प्रायः सभी वक्तृतायें और सभायें दो ही स्थानोंमें होती थीं। एलसिनोर एक छोटा सा शहर है। इसलिये वहाँ तेरहसे कम मकान नहीं लिये गये होंगे। इसका परिणाम यह था कि भिन्न भिन्न विषयोंसे रुचि रखनेवाले लोगोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानतक दौड़नेकी जरूरत पड़ती थी। "क्रोनबर्ग कासल" जिसे शेक्सपियरने अमर बना दिया है, इन सब मकानोंमें बड़ा था। इसमें चार बड़े-बड़े कमरे हैं, इसलिये एक ही साथ यहाँ कई सभाएँ हो सकती थीं।

'सोसाइटी आव फ्रेंड्स' (मित्र-समाज), रोमन कैथोलिक तथा लूथर सम्प्रदायने रविवारके दिन उपासनाका आयोजन किया। कितना अच्छा होता यदि हमलोग भी वहाँ वेदोच्चारणके लिये एक सङ्गठन करते जिससे योरपके बहुसंख्यक लोग, जिन्हें भारतीय धर्ममें बड़ी अभिरुचि है, हमारी ओर आकर्षित होते।

जिनेवा और एलसिनोर दोनों जगहोंसे प्रति दिन एक अखबार निकाला जाता था। जिनेवामें तो यह बिना मूल्य मिलता था पर एलसिनोरमें थोड़ी सी क़ीमत देनी पड़ती थी।

यहाँ और हेलसिंग बर्गमें एक प्रदर्शनी खोली गयी थी। पर यह भिन्न-भिन्न मकानोंमें बिखरी हुई थी। 'मौन्टेसरी-कॉंग्रेस' में वे सभी सामग्रियाँ दिखलायी गयी थीं जिनका उनकी शिक्षा-प्रणालीमें उपयोग होता है। नार्वे, स्वीडन, डेन्मार्क, जर्मनी आदि सभी जगहोंकी चीजें अलग अलग दिखलायी गयी थीं। वहाँ किसानोंकी कारीगरी तथा पर्यटकोंकी भी एक प्रदर्शनी थी। अनेक मकानोंमें छितराये होनेके कारण वे चीजें लोगोंको उतना आकर्षित नहीं कर सकीं जितना ये कर सकती थीं।

जिनेवा और एलसिनोरकी यात्राका यह विवरण मुझे अब समाप्त करना चाहिये। इससे आपको ऊपरी तौरपर केवल उन्हीं

बातोंका पता चलेगा जिन्हें मैं वहाँ देख सका। मैंने वहाँ क्या सीखा, इसके बारेमें तो इससे बहुत ही कम बोध हो सकेगा। एक बात, जो रह रह कर मनमें उठा करती थी, यह थी कि हम अपनी सभाओंको सङ्गठित करनेमें बहुत ही पिछड़े हुए हैं और काम करनेकी प्रणालीमें भी हमारा बुरा हाल है। अखिल भारतीय शिक्षा-सङ्घ हमारी सबसे बड़ी शिक्षा-संस्था है। फिर भी कितने कम लोग इसकी सभाओंमें भाग लेते हैं। पहले ही से तैयार की हुई वक्तृताओंकी संख्या कितनी अल्प होती है! ठहरने, आमोद-प्रमोद तथा सैर-सपाटोंके लिये हमारे प्रबन्ध-साधन कितने कम और दुर्बल हैं! केवल सर्व साधारणसे, रेलवे, नगर, तथा सरकारी अधिकारियोंकी ही ओर से नहीं, बल्कि स्वयं शिक्षकोंसे हमें जो उत्तर मिलता है वह कितना निष्प्राण और बलहीन है! हमारे सम्मेलनोंमें आजीवन मैत्रीकी संस्थापना कितनी कम होती है! हमारे निस्स्वार्थ कार्य्यकर्त्ता, सहयोगके अभावमें, अकेले पड़कर, कितने क्लान्त और अव्यवस्थित होजाते हैं! उन्हें और कुछ नहीं तो सहानुभूति भर तो दी जानी चाहिये, पर वह भी कहींसे नहीं मिलती। निस्सन्देह वे लोग बड़े ही गौरवशाली और सम्मानके अधिकारी हैं जो इतनी विघ्न-बाधाओंके रहते हुए भी कभी अपना पैर पाछे नहीं हटाते। आइये, हम सब लोग अपनी अपनी शक्तिके अनुसार, अपने अपने ढंगसे, उन्हें यह भार वहन करनेमें सहायता पहुँचावें। कुछ लोग शिक्षा-सम्बन्धी विषयोंपर व्याख्यान दें, कुछ लोग निबन्ध पढ़ें; कुछ लोग पाठ सङ्गठन करें; कुछ लोग शारीरिक व्याख्यानका प्रदर्शन या ऐतिहासिक सैर-सपाटेका प्रबन्ध करें जिससे हमें अनुभव हो कि हम अपने प्रत्येक अधिवेशनमें कुछ न कुछ उन्नति करते जा रहे हैं और परमात्माने हमें देशके युवक-युवतियोंको शिक्षित बनानेका जो एक महान् गौरवपूर्ण कार्य्य सौंप दिया है हम अपनेको उसके योग्य बना रहे हैं।*

रामनारायण मिश्र

---

* मूल लेख मैंने अँगरेजीमें लिखा था।

विविध विषय

उद्योगवादकी माया

समस्त सभ्य संसारमें आज उद्योगवादकी धूम है। योरप, अमेरिका, जापान, आदि संसारके भूभाग तो उद्योगवादके पूर्ण भक्त हो रहे हैं। इन देशोंके पूंजीवादियोंने तो सारे संसारको अपनी अंगुलियोंपर नचा रखा है। यह बात नहीं है कि इन भूभागोंमें कृषिका व्यवसाय नहीं है, किन्तु अधिक स्वाभाविक और प्राचीन कृषिके व्यवसायको अब संसारमें गौण स्थान मिल रहा है। उद्योगवादने उसे हर तरफसे दबाकर अपने अधीन कर रखा है। किसान अपने खेतमें गेहूँ उपजाता है और जहाजोंमें भर भरकर उद्योगवादी अपने कारखानोंमें ले जाते हैं और मशीनोंमें देकर बहुत बड़े परिमाणमें रोटियों और बिस्कुटका रोजगार करते हैं। गन्ना और चुकन्दर और कपास खेतीकी ही उपज हैं परन्तु उद्योग व्यवसायी पूंजीपति इन्हें ही लेकर शक्कर और कपड़ेका भारी धन्धा करते हैं। तेलहन खेतोंमें ही उपजता है परन्तु भाँति भाँतिके तेलोंका व्यवसाय उद्योगवादी ही करते हैं। बगीचों और जंगलोंके उपजे हुए पदार्थ फल और ओषधियाँ, जड़, छाल, लकड़ी और पत्ते सभी कुछ कच्चे मालके रूपसे उद्योगधन्धोंके दानवाकार यन्त्रोंमें प्रवेश करते हैं और तैयार माल बनकर पूंजीपतियोंकी सम्पत्तिकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। तम्बाकू, अफीम आदिकी तो खेती ही उद्योगवादी पूंजीपतियों द्वारा करायी जाती है। संसारके पूंजीपतियोंने अनेक स्थानोंमें आपसमें एका करके बाजारोंको हथिया लिया है। चांदी, सोना, तांबा, अल्यूमीनियम, निकल, लोहा आदि समस्त धातुएँ और हीरा, पन्ना आदि रत्न पूंजीवादियोंकी मुट्ठीमें हैं। इनके भावोंका

घटाना बढ़ाना संसारभरमें थोड़ेसे पूंजीवादियोंके हाथमें है। यही पूंजीवादी बाजारोंको अपनी मुट्ठीमें करनेकी होड़में संसारमें भयङ्कर तूफान उठाते हैं और अनेक अघटनीय घटनाएँ घटाते हैं। योरपका विगत महासमर इन्हीं पूंजीपतियोंके स्वार्थका खेल था जिसके पीछे संसारके अनेक दरिद्रोंकी जानें कुरबान होगयीं। करोड़ों रुपये रोज स्वाहा हुए। सारा संसार अधिक दरिद्र और दुखी हो गया। विधवाओं और अनाथोंकी संख्या अत्यन्त बढ़ गयी। परन्तु उद्योगवादियोंकी स्वार्थ-पिपासा नहीं घटी। वह आज भी सैनिक उद्योगमें लगे हुए हैं, आगेवाले युद्ध व्यवसायके लिये पूर्णतया यत्नवान् हैं। आज भी शान्तिके पक्षमें ढिंढोरा पीटनेवाले जब सेना घटानेकी बात कहते हैं तो जलयान बढ़ा देनेमें शिथिल नहीं रहते और जब जहाजोंकी संख्या घटानेको राजी होते हैं तो हवाई-जहाजोंके सम्बन्धमें चुप रह जाते हैं। देखनेको तो शान्तिके लिये प्रेमसे हाथ पसारे अङ्कमाल भरते दिखाई देते हैं, पर मखमलके दस्तानेके भीतर अत्यन्त कठोर बघनख और कवच पहने रहते हैं। मुखसे स्पष्ट कहते भी नहीं। वाक्छल द्वारा अपनी गूढ़ कूटनीतिको शब्दाडम्बरमें ऐसा निहित रखते हैं कि समय पड़नेपर कोई यह लाञ्छना भी उन्हें नहीं लगा सकता कि उन्होंने अपना वास्तविक मनशा छिपा रखा था।

ख़ूब परदा है कि चिलमनसे लगे बैठे हैं।
साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं॥

यह उद्योगवादी या पूंजीवादी संसारके उन्हीं दरिद्र मनुष्योंके सगे भाई हैं जिनकी मूर्खता और लाचारीसे लाभ उठाकर इन्होंने अपनेको बलवान् बनाया है। यह अपना माल उन्हीं गरीबोंके हाथ बेंचते हैं जिनके परिश्रमके फलसे यह माल आदिसे अन्ततक तैयार होता है। यह बात नहीं है कि अपने दरिद्र ग्राहकोंको वह लाचार करके लूटते हैं। उनके दरिद्र भाई वा ग्राहक स्वयं मूर्ख हैं और अपनी मूर्खताके वश अपनी रजामन्दीसे लुट जाते हैं। कहते हैं कि जब खुदा मियाँने संसारको बनाया और खेतोंसे अन्न उपजाया तो हल जोतने

वाले बैलोंको बुलवा भेजा और गेहूँ आदि शुद्ध अन्न उनके कठोर परिश्रमके बदले देना चाहा, परन्तु बैल बोले-कि "वाह ! कड़ी मेहनत हमने की और हमीं जरा जरा-से नन्हे दाने खाँय ! हमें तो बड़ी बड़ी घास और डंठल चाहिये ।" इसी तरह कोई समय था कि यह दरिद्र मजूर और किसान बैलकी तरह उद्योग-व्यवसायके निकम्मे भागपर ही सन्तुष्ट हो जानेमें अपना गौरव समझते थे । परन्तु अब इन बैलोंमें भी बुद्धि आगयी है । यह लोग अपनी स्थिति समझने लग गये हैं और अब यह खूब जानते हैं कि अपनी कमजोरीके पीछे हम किस प्रकार ठगे जारहे हैं । अब धीरे धीरे यह भाई सँभल रहे हैं. इनमें अब वह चेतनता आरही है जिससे शायद भविष्यमें पूंजीवादी धीरे धीरे अपने स्वयंदत्त अधिकारोंसे वञ्चित हो जाँय । जो धन अपने पड़ोसियों-को मूर्ख बनाकर उनसे अपहरण करके ले लिया जाता है जब वह समझदार हो जाते हैं तब बहुत कालतक सुभीतेसे अपने अधिकारमें रखा नहीं जा सकता । उद्योगवादकी यह पहिली माया है, पहिला भ्रम है जिसके फेरमें पड़कर संसारके पूंजीपतियोंको कुछ भूभागोंमें पछ-ताना पड़ा है और सर्वत्र कभी न कभी पछताना पड़ेगा ।

प्रत्येक उद्योग-व्यवसायी अधिकसे अधिक किफायतके साथ, अधिकसे अधिक, अच्छेसे अच्छा और सस्तेसे सस्ता माल बाजारमें रखनेका अभिलाषी रहता है । हर एक चाहता है कि दूसरोंका माल मेरे मालके मुकाबले कम आदरणीय ठहरे और बाजारसे निकल जाय । परन्तु फल यह होता है कि माल कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार खपाके उद्योग-व्यवसायी अपना उल्लू सीधा कर लेता है और जब सङ्घर्षके बढ़ जानेसे या और किसी कारणसे माल खप नहीं सकता तो उस मालकी तैयारी कम कर दी जाती है या एकदम बन्द कर दी जाती है और तैयार करनेवाले मजदूर कच्चा माल देनेवाले किसान या खानवाले बेकार हो जाते हैं और भूखों मरने लगते हैं । जबतक दरिद्र गाहक चेते नहीं थे और एकदम भूखों नहीं मर रहे थे और जबतक उनमें खरीदनेकी ताकत थी तबतक खरीदते जाते थे ।

परन्तु जब उन्होंने देखा कि जो माल खरीदते हैं वह हम आप सुभीतेसे तैयार कर सकते हैं या उनके बिना ही हम अपना काम चला सकते हैं तब वह ग्राहक नहीं रह जाते। इस तरहका झगड़ा संसारमें चल रहा है और उद्योगवादी जिन बाजारोंमें अपना माल खपाते थे अब उन्हें मन्दा देखकर और और बाजारोंकी तलाशमें हैं। हम समझते हैं कि अभी उन्हें बाजार मिल जावेंगे। पृथ्वी विपुला है। अभी बहुतसे क्षेत्र अछूते बचे हुए हैं। बहुत सी आबादी काफी मूर्ख है परन्तु काफी दरिद्र नहीं है। ऐसे प्रदेशोंमें ढूँढनेवाले बाजार पाकर ही रहेंगे परन्तु सबल और निर्बलका, धनी और दरिद्रका, चतुर और मूर्खका नाता सदा एकसा बना नहीं रहता। उद्योगवादी बड़ी चतुराईसे उद्योग-व्यवसाय-का प्रचार भी कर रहे हैं। उनकी चतुराई इसमें है कि वह जनतामें उस उद्योग-व्यवसायका प्रचार करते हैं जो पूँजीपर अवलम्बित है। वह पूँजीके छोटे छोटे हिस्से करके एक ओरसे तो यह दिखाते हैं कि हम दरिद्रोंको भी अपने उद्योगमें हिस्सेदार बनाते हैं और दूसरी ओर बड़ी चतुराईसे छोटे छोटे हिस्सोंके रूपमें दरिद्रोंके पासका गाढ़ी कमाई-का आधे पेट खाकर बचाया हुआ धन भी चूसनेका सरल उपाय कर लेते हैं। पर यह बात भूलनेकी नहीं है कि चेते हुए मजूर और किसान अब पूँजीवादसे भड़कने लगे हैं और घरेलू व्यवसायकी ओर उन सबकी निगाहें डटी हुई हैं जहाँ पूँजीवादकी दाल नहीं गल सकती। इसलिये भविष्यमें पूँजीवाद या उद्योगवादके पक्षमें बाजारकी प्रवृत्ति सदा एकसी बनी रहनेकी अधिक सम्भावना नहीं है। उद्योग-वादका पलड़ा अब पूँजीवादकी ओर भारी नहीं रहेगा। संसारके लिये कुशलका मार्ग तो यही है कि दोनों पलड़ोंमें समानताका भाव रहे। इस समय पूँजीवादका पलड़ा जो बहुत भारी है उसे शीघ्र ही गृहोद्योग-के समान हो जाना चाहिये। इसीमें पूँजीवादकी भलाई है। वैयक्तिक उद्योग और व्यवसाय और साथ ही घरेलू धन्धे जब धीरे धीरे पूर्ण विकासको पहुँचेंगे तब पूँजीपतियोंके सामूहिक उद्योगको प्रायः असह्य धक्का लगेगा। दूसरे पक्षकी निर्धनता और बुद्धिहीनता देखकर पूँजी-

वाद इस भ्रममें पड़ा हुआ है कि उद्योगमें हमारे सदा पौबारह रहेंगे परन्तु सब दिन एकसे नहीं जाते। पूँजीपतियोंके उद्योगवादका यह दूसरा भ्रम है।

हर एक उद्योग-व्यवसायी अधिकाधिक माल तैयार करनेमें ही अपना सुभीता समझता है। कोई समय था कि जब माँग देखकर माल तैयार किया जाता था। आज कल तैयार मालके लिये माँग पैदा करनेका पूरा यत्न किया जाता है। परन्तु यह बात अस्वाभाविक है कि संसारमें जितना माल तैयार हो उतनेकी माँग भी अवश्य ही पैदा हो जाय। हमारी इच्छाएँ अपरिमित होसकती हैं परन्तु इच्छित वस्तुओंकी प्राप्तिके साधन अपरिमित नहीं होसकते। प्रत्येक व्यक्तिका सामर्थ्य परिमित है और प्राप्तिके साधन इस सामर्थ्यकी अपेक्षा अधिक परिमित हैं। संसारमें सम्पत्तिके अत्यन्त विषम वितरणके कारण यह क्षमता अत्यधिक जनसमुदायमें अत्यन्त क्षीण सी है। जिनमें यह क्षमता सबसे अधिक है उनकी संख्या अत्यन्त थोड़ी है और वही प्रायः पूँजीवादी उद्योग-व्यवसायी हैं। यह तो बाजारमें उन ग्राहकोंकी दशा हुई जिनके बीच माँग पैदा करनेका प्रयत्न किया जारहा है, परन्तु साथ ही जिनकी ग्राहक-शक्ति बढ़ानेका कोई उपाय नहीं होरहा है। भिन्न भिन्न उद्योगवादी मोहवश अपने पावोंमें आप कुल्हाड़ी मारनेको तैयार हैं। जैसे ढुलाईके उद्योग वाले तैयार मालके ढो लेजानेके लिये, और बिजली आदिके यन्त्रोंके व्यवसाय वाले मालकी अधिकाधिक तैयारी होनेके लिये सदा यत्नवान् रहकर उद्योग-व्यवसायको बढ़ानेमें लगे हुए हैं। इस प्रकार यदि संसारमें उद्योग-व्यवसाय अन्धाधुन्ध बढ़ जाय तो निश्चय ही अत्यधिक माल तैयार होकर गोदामों और दूकानोंमें पड़ा सड़ेगा और अनेक भारी भारी कारखाने लाचार हो बन्द करने पड़ेंगे। जब ग्राहक ही बनानेवाला हो जायगा तब वही बेचनेवाला भी होगा और खरीदनेवाला भी होगा। आजकी तरह जबतक बेचनेवाला और है और खरीदनेवाला और है तभीतक उद्योगवादी व्यवसायीका जीवन है। परन्तु उद्योगवाद ऐसी दशामें तभी पहुँचेगा जब पूंजीवादी उद्योग-

व्यवसायी भविष्यके जोखिमसे बिल्कुल बेपरवाह हो जावेंगे और उनसे बचनेके लिये कोई उपाय न करेंगे। यह उद्योगवादकी बड़ी विषम माया है जिससे बचनेकी कोई आशा नहीं मालूम होती।

भारतवर्ष संसारमें दीन, दुखियों, दरिद्रोंका एक ही बाजार है जिसपर विदेशी पूंजीपतियोंका पूर्ण आधिपत्य है। स्वदेशी पूँजीपति मोहवश उनके उद्योगव्यवसायमें सहायक होकर अपना वैयक्तिक कल्याण भले ही करलें परन्तु देशका कोई कल्याण उनके सहयोगमें नहीं हो सकता। पराधीन भारतीय पूँजीपतियोंका उनसे सहयोग भी उद्योगवादकी एक बड़ी भ्रमात्मिका माया है। असहयोग आन्दोलन यही कह रहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

रामदासगौड़

   

विद्यार्थियोंमें स्वावलम्बनका आन्दोलन

इस बातको प्रायः लोग जानते हैं कि अमरीकामें बहुतसे विद्यार्थी शिक्षा-कालमें मेहनत-मजदूरी करके अपनी पढ़ाईका खर्च बहुत कुछ निकाल लेते हैं। पर अपने देशमें इस बातको बहुत कम लोग जानते होंगे कि योरपके विद्यार्थी-समुदायमें भी स्वावलम्बनका आन्दोलन इस समय जोरोंसे चल रहा है। योरपीय युद्धके पश्चात् योरपके सभी देशोंमें, विशेषकर रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया और पोलेण्डमें, लोगोंकी आर्थिक अवस्था बहुत बिगड़ गयी थी। सिक्केका भाव रोज बरोज गिरता जाता था जिससे आर्थिक कष्ट और भी बढ़ गया था। ऐसी अवस्थामें बहुतसे माता-पिता अपने बालकोंकी शिक्षाका खर्च देनेमें असमर्थ हो गये थे। कहीं कहीं तो ऐसा मालूम पड़ने लगा था कि उच्च शिक्षाके व्ययको

प्रायः विद्यार्थी नहीं उठा सकेंगे। अतः विवश होकर कुछ ऐसे उपाय निकालने पड़े जिससे विद्यार्थी अपनी शिक्षाका खर्च परिश्रम करके निकाल सकें। अमरीकाका उदाहरण उनके सामने था। उन्होंने उनके तरीकोंको अपनाया। जर्मनीमें गवर्नमेण्टकी पूरी सहानुभूति थी; इसलिये उनकी सहायतासे कारखानोंमें विद्यार्थियोंको काम दिलाया गया। योरपमें अमरीकाकी तरह विद्यार्थियोंके लिये रुपया कमानेके पर्याप्त साधन नहीं हैं। योरपमें मजदूरीकी दर भी बहुत कम है। अमरीकाके विद्यार्थी छुट्टियोंमें खेतोंमें काम करते हैं, बागीचोंमें फल तोड़नेका काम करते हैं और पढ़ाईके दिनोंमें होटलोंमें 'वेटरों' का काम करते हैं और इस तरह उनको काफी आमदनी हो जाती है। योरपमें इस प्रकारके सुभीते विद्यमान नहीं थे। पर वहाँके लोगोंने अपनी कठिनाइयोंको दूर करनेका प्रयत्न किया। वहाँ विद्यार्थी मिलकर होटल, रेस्टोराँ, जिल्दसाजीकी दूकान, हज्जामकी दूकान, जूतेकी मरम्मतकी दूकान, दर्जीकी दूकान और कपड़ा धोनेकी दूकान खोलते हैं; और इस प्रकार बहुतसे विद्यार्थियोंकी जीविकाका निर्वाह हो जाता है। जर्मनीमें विद्यार्थियोंने बहुतसे 'मेस' खोल रक्खे हैं, जहाँ हजारों विद्यार्थी नित्य भोजन करते हैं। वहाँ विद्यार्थियोंकी ओरसे एक बैङ्क खुला है, जिसके द्वारा हजारों विद्यार्थियोंको आवश्यकताके समय कर्जा दिया जाता है। इस समय हजारों विद्यार्थी तरह तरहका काम करके कुछ आमदनी कर लेते हैं। पर योरपीय युद्धके पहले योरपमें बहुत कम ऐसे विद्यार्थी थे जो स्वावलम्बी हों। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक कष्टके कारण ही इस आन्दोलनका योरपमें जन्म हुआ। पर धीरे-धीरे साथ-साथ स्वावलम्बनके भावका महत्व बढ़ता गया और मेहनत-मजदूरी करनेवाले विद्यार्थीकी कद्र बढ़ गयी। अब वहाँ हाथसे काम करना बुरा नहीं समझा जाता। ज्यादातर यह समझा जाता है कि विद्यार्थियोंको छुट्टियोंमें ही काम करना चाहिये और बाकी समय अध्ययनमें बिताना चाहिये। बहुतसी ऐसी संस्थाएँ खुल गयी हैं जो विद्यार्थियोंके लिये काम तलाश करती हैं। योरपीय युद्धके बाद जो नये राष्ट्र बने हैं उनके पास इतना धन नहीं था

कि वे अपने देशकी सभ्यता और शिक्षाकी वृद्धिके लिये बड़े-बड़े विश्वविद्यालय खोलें। जो विश्वविद्यालय उन्होंने स्थापित किये उनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी और जो विद्यार्थी वहाँ पढ़ने जाते थे वे भी प्राय: गरीब ही थे। स्वावलम्बन ही उनकी समस्याको हल कर सकता था। यह भी देखा गया कि इस प्रकार विद्यार्थियोंमें उत्तरदायित्वकी भावना जग जाती है और उनको अपने विद्यार्थी-जीवनमें ही जीवनका व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हो जाता है। मजदूरोंकी वास्तविक अवस्था जाननेमें भी उनको सहायता मिलती है। उनमें आत्म-सम्मानका भाव बढ़ जाता है और वे ऐसे व्यवहार-कुशल हो जाते हैं कि कैसी ही विकट परिस्थितिमें क्यों न पड़ जायं वे अपनेको सम्भाल सकते हैं। युवक-आन्दोलनने हाथके कामके महत्वको बतला दिया था और स्काउट आन्दोलनने उनमें सेवाका भाव भर दिया था। यह भी लोगोंका खयाल हो चला था कि केवल बौद्धिक शिक्षा अधूरी है। आदर्श पुरुष वह है जिसका मानसिक विकास भी हुआ हो और जो संसारका व्यावहारिक ज्ञान भी रखता हो। शिक्षाके जिन नये प्रकारोंका आविष्कार हुआ था उनमें भी हाथके कामको शिक्षाके क्रममें उचित स्थान दिया गया था।

अब धीरे-धीरे वहाँके विश्वविद्यालयोंके अधिकारी और राष्ट्रके नेता इस आन्दोलनके महत्वको समझने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीकामें कुछ ऐसे भी कालेज हैं जहाँ इसी आदर्शके आधारपर पाठक्रम निर्धारित किया गया है। वहाँ आधे समय बौद्धिक शिक्षा और आधे समय हाथके कामकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था की गयी है। भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके विद्यार्थियोंको सहायता देनेके लिये 'इण्टरनेशनल स्टूडेण्ट सर्विस'[१] कई वर्षोंसे स्थापित है और इसकी ओरसे संसारके विद्यार्थियोंकी एक कान्फरेन्स सन् १९२७ ई० (वि० सं० १९८४) में प्रथम बार ड्रेस्डन (जर्मनी) में बुलायी गयी थी, जिसमें बाइस देशोंके बिहत्तर प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस कान्फरेन्समें जो विचार हुआ उससे यह स्पष्ट हो गया कि स्वावलम्बनका आन्दोलन सफल हो

१. International Student Service.

रहा है और उसका आदर्श बहुत ऊँचा है। प्रत्येक देशके प्रतिनिधिने अपने अपने देशकी अवस्था बतलायी और आन्दोलनसे सम्बन्ध रखने वाले विविध प्रश्नोंपर विचार हुआ। प्रतिनिधियोंने यह अनुभव किया कि इन विविध प्रश्नोंकी विवेचनाका कार्य इतने महत्वका और इतना कठिन है कि कान्फरेन्स उनका अनुसन्धान ठीक तौरसे नहीं कर सकती; अतः कान्फरेन्सने इस कार्यके लिये एक विशेष संस्था स्थापित की जिसका नाम 'इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फार स्टूडेण्ट सेल्फहेल्प एण्ड कोआपरेटिव आर्गनाइजेशन्स'[१] है। इसका कार्यालय ड्रेस्डनमें है। यह संस्था विद्यार्थियोंको सलाह देती है और जहाँ तक सम्भव होता है, उनका सहायता करती है।

भारतवर्ष एक ग़रीब देश है और अपने देशकी शिक्षा आज इतनी मंहगी हो गयी है कि मध्यम श्रेणीके लोग भी इस बोझको बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमारे यहाँ ऊँची जातिके कहलाने वाले लोग हाथसे काम करना बुरा समझते हैं। हमारी शिक्षा इतनी अधूरी और एकाङ्गी है कि नौकरीको छोड़ कर हमारे युवक कोई दूसरा कार्य स्वतन्त्र रूपसे नहीं कर सकते। यदि उनका बँधा हुआ रोज़गार छूट जाय तो वे कोई नया काम अपने लिये नहीं उठा सकते। अपना देश जब स्वतन्त्र होगा तब हमारा काम केवल यूनिवर्सिटीकी परीक्षा पास किये हुए नवयुवकोंसे नहीं चल सकेगा। हमको राष्ट्र-निर्माणके लिये ऐसे अनेक नवयुवकोंकी आवश्यकता होगी जो लोक-नेतृत्व कर सकें। हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति इतनी निकम्मी है कि हमारे विद्यार्थी पढ़ने-लिखनेके कामको छोड़ कर और किसी मसरफ़के नहीं रह जाते। यदि हमारे यहाँके विद्यार्थी स्वावलम्बनके आन्दोलनको अपनावें तो हमारे ग़रीबसे ग़रीब विद्यार्थी भी स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें और साथ ही साथ वे अपनेमें उन गुणोंका भी पोषण कर सकें जो एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताके लिये अत्यन्त आवश्यक

१. International Institute for Student Self-help and Co-operative Organisations.

हैं। हमको इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे देशके सरकारी और ग़ैरसरकारी विश्वविद्यालय दोनों अपने विद्यार्थियोंको इस कार्यके लिये प्रोत्साहित करें और विद्यार्थियोंको काम दिलानेमें सहायक हों। पूरा लाभ तो तभी होगा, जब इन विश्वविद्यालयोंके सञ्चालक स्वावलम्बनको आदर्श रूपमें अपनावें। कमसे कम राष्ट्रीय विद्यालयों-को तो, जहाँ प्रायः ग़रीब विद्यार्थी ही पढ़ने आते हैं, अवश्य इस बात-का प्रयत्न करना चाहिये कि उनके विद्यार्थी स्वावलम्बी बनें। युवक-सङ्घोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिये। विद्यालयोंकी ओरसे कुछ ऐसा काम होना चाहिये जिससे विद्यार्थी कुछ न कुछ कमा सकें। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी स्वयं आपसमें मिलकर कोआपरेटिव स्टोर, भोजनालय, काग़ज़-पेन्सिल वग़ैरःकी दूकान खोल सकते हैं। समाचार-पत्रोंके सम्पादक, प्रेसोंके मालिक और प्रकाशक भी हमारे विद्यार्थियों-को सहायता दे सकते हैं। विद्यालयोंके सञ्चालक पूंजीसे विद्यार्थियोंकी मदद कर सकते हैं।

पाठक्रममें भी हाथके कामको स्थान देना आवश्यक है जिसमें हमारे यहाँके विद्यार्थियोंको हाथसे काम करनेकी आदत पड़ जाय और उनके हृदयसे यह भाव निकल जाय कि हाथसे काम करना बुरा है। एक और दृष्टिसे भी यदि विचार करें तो हमको मालूम होगा कि पाठक्रममें इस प्रकारके हेरफेर करनेकी बड़ी आवश्यकता है। यदि हम चाहते हैं कि शिक्षाका सर्वसाधारणमें प्रचार हो और हमारे यहाँके मज़दूरपेशा लोग भी शिक्षित और सभ्य बनें तो यह आवश्यक मालूम होता है कि ऊँची श्रेणीके लोग भी, जो केवल बुद्धि-जीवी हैं, हाथसे काम करना सीखें। यदि हम आज हीसे इस बातका प्रयत्न नहीं करेंगे तो जब मज़दूर शिक्षित बन जायंगे तब वे भी ऊँची श्रेणीके लोगोंका अनुकरण कर हाथके कामोंसे भागेंगे और उस समय लोकयात्रा बड़ी कठिन हो जायगी। यदि हम चाहते हैं कि हमारे श्रमजीवी समुदायको शिक्षा और मनोविनोदके लिये अवकाश मिले तो हमको भी मज़दूरका काम थोड़ा बहुत अवश्य करना होगा। जब शिक्षा और सभ्यताको सर्व-

साधारणके लिये सुलभ करना हमारा ध्येय है, तो हाथके कामको भी सबके लिये अनिवार्य करना आवश्यक है।

नरेन्द्रदेव

   

विद्यापीठोंके स्नातक

सरकारी विद्यालयोंकी अपेक्षा राष्ट्रीय विद्यापीठोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या बहुत कम है। इसी न्यूनताके कारण कुछ लोग यह कहा करते हैं कि विद्यापीठोंका प्रयोग असफल हो रहा है। विद्यापीठोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या कम होनेका मुख्य कारण यह है कि यहाँके स्नातकोंको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल सकतीं। लोग समझते हैं कि उनकी जीविकाका कोई बन्दोबस्त ही न हो सकेगा। किन्तु पिछले आठ सालका अनुभव इसके बिलकुल विपरीत है। अबतक इन विद्यापीठोंसे निकले हुए स्नातकोंकी संख्या इस प्रकार है—

काशी विद्यापीठ	५१
गुजरात विद्यापीठ	२९७
बिहार विद्यापीठ	६२
तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	२३१
जामिया मिल्लिया इसलामिया	७१
योग	७१२

हालहीमें इस बातकी जाँच की गयी कि इनमेंसे कितने बेकार हैं और शेष किन किन कार्योंपर लगे हैं। फलस्वरूप जो समाचार मिले उनसे ज्ञात होता है कि सबके सब किसी न किसी काममें लगे हैं। शायद ही कोई बेकार बैठा हो।

काशी विद्यापीठके इक्यावन स्नातकोंमेंसे दो अभी विशेष अध्ययनमें लगे हैं। नौ राष्ट्रीय कालेजों और हाइस्कूलोंमें अध्यापक हैं, चार सम्पादनकार्यमें लगे हैं, तीन खादीका काम कर रहे हैं और ग्यारह कांग्रेस, अछूतोद्धार, मजदूरसङ्गठन आदिके काममें लगे हैं। शेष बाइसमेंसे

सत्रह कृषि, व्यापार आदि स्वतन्त्र पेशोंमें लगे हैं और पांच अन्य स्थानोंपर नौकरी कर रहे हैं।

लगभग एक वर्ष पूर्व गुजरात विद्यापीठके १९२ स्नातकोंके कार्योंका जो पता लग सका था वह इस प्रकार है—अध्यापन कार्यमें ६६, पत्र-सम्पादनमें आठ, देशके रचनात्मक कार्यमें चालिस, स्वतन्त्र पेशोंमें पचीस और नौकरीमें तिरपन।

बिहार विद्यापीठके ६२ स्नातकोंमेंसे सोलहके बारेमें कोई निश्चित सूचना नहीं मिली है। शेष ४६ मेंसे उन्नीस अध्यापन कार्यमें, आठ पत्र-सम्पादनमें, पांच खादी-कार्यमें, एक ग्रामसङ्गठनमें, एक विशेष अध्ययनमें, ग्यारह खेती, व्यापार आदि स्वतन्त्र पेशोंमें और एक नौकरीमें लगे हैं।

तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठके २३१ स्नातकोंमेंसे ७९ के बाबत समाचार मिल सका है। इनमेंसे ४२ अध्यापन कार्यमें, तीन पत्र सम्पादनमें, नौ देशके रचनात्मक कार्योंमें, पन्द्रह स्वतन्त्र पेशोंमें और दस नौकरीमें लगे हैं।

जामिया मिल्लिया इसलामियाके ७१ स्नातकोंमेंसे प्रत्येकका अलग अलग विवरण नहीं मिल सका है। पर वहांके रजिस्ट्रारने लिखा है कि वे सबके सब शिक्षा-कार्य, पत्र-सम्पादन, और व्यापार आदिमें लगे हैं। कुछ विशेष अध्ययनके लिये योरपके देशोंमें गये हैं।

इस प्रकार जामियाको छोड़ कर शेष विद्यापीठोंके स्नातकोंके कार्यों-का जो ब्योरा मिला है वह बतलाता है कि मोटे तौरपर भिन्न भिन्न कामोंमें लगे हुए समस्त विद्यापीठोंके स्नातकोंकी संख्या इस प्रकार है—

अध्यापन और अध्ययन कार्य—	१३९
पत्र सम्पादन कार्य—	२३
राजनैतिक और सामाजिक कार्य—	६९
स्वतन्त्र व्यवसाय—	६८
नौकरी—	६९
	३६८

जो लोग सम्पादन-कार्यमें लगे हैं वे अपने अपने प्रान्तके

मुख्य मुख्य साप्ताहिक और दैनिक पत्रोंका काम सफलताके साथ सम्हाल रहे हैं। राजनैतिक और सामाजिक कार्योंमें लगे हुए स्नातक देशके रचनात्मक कार्यको ज़िम्मेदारीके साथ पूरा कर रहे हैं। काशी विद्यापीठके पाँच स्नातक लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित 'सर्वेण्ट्स आफ़ दी पीपुल सोसाइटी' में हैं जिनमेंसे तीन उसके आजीवन सदस्य हैं। बारडोली सत्याग्रहकी सफलताका श्रेय अधिकांशमें गुजरात विद्यापीठके स्नातकोंको है।

ऊपर, कुल ७१२ स्नातकोंमेंसे ३६८ के सम्बन्धमें ही ब्योरेवार सूचना दी गयी है। किन्तु शेषके सम्बन्धमें इतना समाचार तो मिला ही है कि उनमेंसे दस पाँचको छोड़कर कोई भी बेकार नहीं बैठा है। ऊपरके अङ्कोंमें इनका भी समावेश न होनेका कारण यही है कि सूची तैयार करते समय, उनमेंसे कौन किस कामपर था इसकी निश्चित सूचना नहीं मिली थी। जो दस पाँच बेकार हैं, उनकी बेकारी भी इसी रूपकी है कि वे एक कामको छोड़कर दूसरे कामपर जानेवाले हैं, पर अभी उसे हाथमें नहीं लिया।

इस विवरणसे यह स्पष्ट है कि जीविकाके सम्बन्धमें राष्ट्रीय विद्यापीठोंके स्नातकोंकी अवस्था सरकारी कालेजोंके ग्रेजुएटोंकी अपेक्षा बहुत अच्छी है। सरकारी कालेजोंके अधिकांश ग्रेजुएट अपनी जीविकाके लिये सरकारी नौकरियोंपर निर्भर करते हैं, किन्तु उनमेंसे मुश्किलसे एक प्रतिशतको वे नौकरियाँ मिलती हैं। गुरुकुल काँगड़ीकी स्थापनाके कुछ दिनों बाद किसीने स्वामी श्रद्धानन्दसे पूछा था कि आप यहाँके विद्यार्थियोंकी जीविकाका प्रबन्ध किस प्रकार करेंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि सरकारी विद्यालयोंके ९९ प्रतिशत ग्रेजुएटोंकी जो अवस्था होती है वह इनमेंसे सबकी हो लेगी। किन्तु वास्तवमें बात ऐसी है नहीं। सरकारी विद्यालयोंके ९९ प्रतिशत तो बिलकुल ही असहाय रहते हैं। किन्तु यहाँके प्रायः सभी विद्यार्थी पहलेसे ही उन कठिनाइयोंका सामना करनेके लिये तैयार और उसके लिये आवश्यक शक्ति प्राप्त किये रहते हैं।

कन्हैयालाल

   

ब्रिटिश मजदूर सरकार और भारत

वाइसरायकी ३१ अक्तूबर (१४, कार्तिक) की घोषणाके कारण हमारे सामने यह प्रश्न आ गया है कि भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश मजदूर-दलकी क्या नीति होगी। पार्लमेण्टके वादविवादमें भाग लेते हुए मजदूर-दलके नेताओंने जो भाषण किये उनका सार यही है कि यह घोषणा किसी नवीन नीतिका प्रख्यापन नहीं करती; यह केवल पुरानी नीतिका स्पष्टीकरण मात्र है। उनका कहना है कि सन् १९१७ (वि० सं० १९७४) की घोषणाके वास्तविक अर्थके सम्बन्धमें कुछ लोगोंको सन्देह हो गया था; उस सन्देहका निराकरण करनेके लिये ही इस घोषणाकी आवश्यकता पड़ी। वाइसरायकी घोषणाकी भाषा इतनी अनिश्चित, सन्दिग्ध और अस्पष्ट है कि उसके सम्बन्धमें कोई राय कायम नहीं की जा सकती; और जब पार्लमेण्टमें इस बातका प्रयत्न किया गया कि वाइसरायकी घोषणाका अर्थ स्पष्ट कर दिया जाय और लायड जार्जने भारत-सचिवसे यह पूछा कि इस घोषणाका जो अर्थ भारतीय नेता करते हैं वह कहांतक ठीक है तब उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि घोषणाका जो अर्थ है, वह है; उसके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है। भारत-सचिवके इस अनिश्चित उत्तरको सुन कर यदि कोई मजदूर सरकारपर वाक्छलका दोषारोपण करता है तो कहा जाता है कि वर्तमान स्थितिमें भारत-सचिवके लिये अपनी भावी नीतिका निर्देश करना सम्भव नहीं है, क्योंकि साइमन कमीशनकी रिपोर्ट जबतक प्रकाशित नहीं हो जाती तबतक किसी नयी नीतिकी घोषणा करना मजदूर सरकारके लिये एक अवैध कार्य होगा। हम यह मानते हैं कि इस समय मजदूर सरकार कोई निश्चित बात नहीं कह सकती और न उसने अभीतक कोई निश्चित बात कही ही है। इसलिये वाइसरायकी घोषणा और भारत-सचिवके वक्तव्यके आधारपर हम इस बातका निश्चय नहीं कर सकते कि ब्रिटिश मजदूर सरकार किस हदतक राष्ट्रकी माँगको पूरा करेगी।

अतः इस विषयपर विचार करते हुए हमको यह देखना होगा कि ब्रिटिश मजदूर दलकी सृष्टि किन सिद्धान्तोंके आधारपर हुई,

उसकी रीति-नीति क्या है और उसकी कार्य-प्रणाली कैसी रही है; अतीतमें उसने क्या क्या निश्चय किये और उनको वह कहाँतक कार्यान्वित करनेके लिये प्रस्तुत रहा। इन बातोंकी आलोचना करनेके उपरान्त ही हम सामान्य रूपसे निश्चय कर सकते हैं कि भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश मजदूर सरकारकी क्या नीति रहेगी।

ब्रिटिश मजदूर-दल अपनेको साम्यवादी कहता है। पर योरपके अन्य देशोंके साम्यवादी दलसे यह बहुत कुछ विभिन्न है। अन्य साम्यवादी-दलोंकी आधार-शिलामें कोई न कोई दार्शनिक पद्धति रहती है। उनको अपने मतका बड़ा आग्रह रहता है। वे अपनी कल्पना, अपने तर्कको ही विशुद्ध और युक्तियुक्त समझते हैं। उनका यह विचार है कि मानव-समाजकी उन्नतिका इतिहास समाजके विविध वर्गोंके सङ्घर्षका इतिहास है। इसके विपरीत ब्रिटिश मजदूर-दल किसी विशिष्ट दार्शनिक पद्धतिका पुजारी नहीं है। उसको किसी बातका आग्रह नहीं है। उसके विचारमें वर्गवादका सिद्धान्त ठीक नहीं है और उन्नतिके लिये यह आवश्यक है कि सारा समाज उद्योग करे। यह एक मौलिक अन्तर है और इसी कारण अन्य साम्यवादी दलोंकी अपेक्षा ब्रिटिश मजदूर दलकी कार्य-प्रणाली भी विभिन्न है। ब्रिटिश मजदूर-दल प्रजातन्त्रके सिद्धान्तको मानता है और उसका यह विश्वास है कि पार्लमेण्टके द्वारा ही क्रमशः अच्छे अच्छे कानून बनवा कर साम्यवादके सिद्धान्त कार्यमें लाये जा सकते हैं और देशका आर्थिक सङ्गठन बदला जा सकता है। एक पार्लमेण्टरी दलको, जिसे सब विचारके निर्वाचकोंका वोट प्राप्त करना होता है, सदा इस बातका विचार रखना पड़ता है कि वर्तमानमें क्या साध्य और क्या शक्य है। ऐसा दल केवल सिद्धान्तके लिये अपने जीवनको खतरेमें नहीं डाल सकता। यही कारण है कि जब १९२४ (वि० सं० १९८१) में यह स्पष्ट हो गया कि ग्रेट ब्रिटेनके निर्वाचक कम्यूनिज्मके बहुत खिलाफ हैं, तब वहाँके मजदूर-दलने कम्यूनिस्टोंको अपने दलसे निकालनेका निश्चय किया। सन् १९२८ (वि० सं० १९८५) में कम्यूनिस्टोंके

प्रभावको नष्ट करनेके उद्देश्यसे कड़े नियम बने । ब्रिटिश मजदूर दल अपने निर्वाचकोंको यह बता देना चाहता था कि उसका कम्यूनिस्ट दलसे कोई सम्बन्ध नहीं है । क्या सम्भाव्य है इसपर दृष्टि रखनेके कारण ब्रिटिश मजदूर-दलका कार्यक्रम भी समय समयपर बदलता रहा । भारतीय यूरोपीय युद्धके समय जब प्रेसिडेण्ट विलसनने आत्म-निर्णयके सिद्धान्तकी घोषणा की थी तब ब्रिटिश मजदूर-दलने अपना यह मन्तव्य प्रगट किया था कि भारतवर्षको आत्म-निर्णयका अधिकार मिलना चाहिये । पर सन् १९१८ (वि० सं० १९७५) में जब मजदूर-दलने अपना फिरसे सङ्गठन किया और अपना कार्यक्रम प्रकाशित किया तो उसमें परराष्ट्र-नीतिके सम्बन्धमें यह उल्लेख किया कि हम उस साम्राज्यवादका विरोध करते हैं जो दूसरोंको दबाना चाहता है और हम ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोंपर अपनी इच्छाका आरोप नहीं करना चाहते, पर साथ ही साथ हम यह भी जानते हैं कि समुद्र पार हमारे जो स्वदेशीय और स्वजातीय हैं, उनके प्रति हमारा जो विशेष कर्तव्य है उससे हम उदासीन नहीं रह सकते और हम इसकी भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि जो जातियाँ प्रौढ़ नहीं हैं उनके जो हमारे ऊपर नैतिक हक़ हैं उनसे वे वञ्चित रहें । हम संसारके प्रति ऋणी हैं और हम ऋणसे मुक्त होना चाहते हैं, इसलिये हम संसारसे विरक्त होकर पृथक् नहीं रह सकते । १९२० (वि० सं० १९७७) में रैम्से मेकडानल्डकी "ए पालिसी फ़ार दि लेबर पार्टी" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई । इस पुस्तकमें मिश्र, भारतवर्ष, आयरलैण्ड और डोमिनियनके सम्बन्धमें मज़दूर-दलकी क्या नीति होगी इस विषयपर विचार किया गया है । मिश्रके सम्बन्धमें वह लिखते हैं कि हमने समय समयपर मिश्रको इस बातका वचन दिया है कि उसकी स्वाधीनताको छीननेका हमारा विचार नहीं है और हममें यदि आत्म-सम्मानका कोई भाव है तो हमें उस देशको अपने अधीन नहीं रखना चाहिये । आगे चलकर वह लिखते हैं कि स्वेजकी नहरसे साम्राज्यका हित बहुत-कुछ सम्बद्ध है और हमारा कर्तव्य है कि इन हितोंकी रक्षा की जाय । पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारा

हाँ उसपर अक्षुण्ण अधिकार रहे। हम तो केवल इतना चाहते हैं कि हम इस नहरका, बिना किसी प्रतिबन्धके, उपयोग कर सकें, पर इस उद्देश्यके पूरा करनेका तरीक़ा यह नहीं है कि हम उन लोगोंके राष्ट्रपर कब्ज़ा कर लें जिनके राज्यसे होकर यह नहर गुजरती है, बल्कि उसका उपाय यह है कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था क़ायम की जाय जो इस बातके लिये उत्तरदायी रहे कि हम इस नहरका उपयोग कर सकेंगे। मिश्रके बाद वह भारतवर्षके सम्बन्धमें विचार करते हैं। वह लिखते हैं कि भारतवर्षका दावा स्वतन्त्र होनेका नहीं है। वह तो साम्राज्यके भीतर स्वायत्त-शासन (सेल्फ-गवर्नमेन्ट) चाहता है। जो गवर्नमेण्ट आव इण्डिया एक्ट अभी हाल हीमें पास हुआ है, वह भारतवर्षको इस लक्ष्यकी ओर ले जाता है और यदि मजदूर-सरकार इस बातका वचन दे कि इस विधानके अनुसार सद्भावके साथ कार्य होगा और सद्भावसे ही प्रेरित होकर इस विधानके दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न किया जायगा, तो इससे भारतवर्षके यथाक्रम विकासमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। आयरलैण्डके सम्बन्धमें विचार करते हुए वे लिखते हैं कि आयरलैण्डकी समस्या बड़ी जटिल और कठिन है। हमने जान-बूझकर उसको अपना विरोधी बना दिया है। हम कितना चाहते हैं कि १९१३ ई० (वि० सं० १९७०) की अवस्था फिर वापस आ जाय। उस समय आयरलैण्डकी समस्या बहुत सरल थी और आयरलैण्ड-निवासी थोड़ेसे ही सन्तुष्ट किये जा सकते थे। पर हमने अपने अत्याचारोंसे उनको राजद्रोही बना दिया है और आज वे हमसे पृथक् होनेके लिये तुले हुए हैं। हमको चाहिये कि हम आयरलैण्डकी जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी एक ऐसी सभा बुलायें, जो इसका निश्चय करे कि आयरलैण्डको किस प्रकारके स्वराज्यकी योजना चाहिये। डोमिनियनके सम्बन्धमें विचार करते हुए वे लिखते हैं कि युद्धने राष्ट्रीयताके भावको और भी उत्तेजित कर दिया है इसलिये साम्राज्यकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ गयी हैं। ओटावा वाशिंगटनमें अपना स्वतन्त्र राजदूत रखना चाहता है। आस्ट्रेलिया पेसेफिकके सम्बन्धमें अपनी स्वतन्त्र नीति निर्धारित करना चाहता है और जबतक कोई उचित व्यवस्था नहीं

होती तबतक साम्राज्यके बन्धनोंके टूटनेका अन्देशा रहेगा। सन् १९२८ (वि० सं० १९८५) में, बर्मिङ्घमकी कान्फरेन्समें जो कार्यक्रम स्थिर हुआ, उसमें भारतवर्षके लिये स्वायत्त-शासन प्रदान करनेकी बात कही गयी थी। यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश मज़दूर दलका उपनिवेशों तथा अधीन देशोंके सम्बन्धमें कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं है। वह साम्राज्यकी कठिनाइयोंको दूर करना चाहते हैं और आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न नीतिका प्रयोग करते हैं। जहाँतक जानेके लिये वे विवश किये जायंगे वहाँतक वे जायंगे। राष्ट्रीय आन्दोलनकी शक्तिके अनुरूप ही उनका व्यवहार होगा।

अब हम ब्रिटिश मजदूर-दलके सङ्गठनपर विचार करेंगे और इस बातको दिखलानेकी चेष्टा करेंगे कि वर्तमान सङ्गठनके होते हुए ब्रिटिश मजदूर दलसे भारतको कोई विशेष आशा न रखनी चाहिये। ब्रिटिश मज़दूर-दलके नब्बे फ़ी सदी सदस्य ट्रेड यूनियनके सदस्य होते हैं और बाक़ी दस प्रतिशतमें फेबियन सोसायटी, सोशल डिमाक्रेटिक फ़िडरेशन और इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टीके सदस्य हैं। ट्रेड यूनियनके आन्दोलनपर ही म दूर-दलके सङ्गठनकी शक्ति निर्भर करती है। मज़दूरदलकी आयका मुख्य स्रोत ट्रेड यूनियन हैं। यह अपने उम्मेदवारोंका खर्च भी बर्दाश्त करते हैं। उम्मेदवारोंका चुनाव इसीलिये ट्रेड-यूनियनके अफ़सरों और प्राय: ऐसे लोगोंमें ही परिमित रहता है जो अपने चुनावका व्यय स्वयं बर्दाश्त कर सकते हैं। मज़दूर दलकी नीतिके निर्धारित करनेमें ट्रेड नियनके नेताओंका अच्छा खासा हाथ रहता है और दलके सङ्गठन-पर उनका आज भी प्रभुत्व बना हुआ है। यूनियनोंके प्रतिनिधि एक साथ वोट देते हैं और मज़दूरदलके भीतर अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखते हैं। मजदूर-दलके अतिरिक्त एक पार्लमेण्टरी पार्टी भी होती है जो चुनावके पश्चात् एक स्वतन्त्र संस्था हो जाती है और मज़दूर दल केवल उसका सहायक रह जाता है। ग्रेट ब्रिटेनमें पार्लमेण्टरी पार्टी ही सब कुछ है और मज़दूर-दलका नियन्त्रण भी वही करती है। ट्रेड यूनियनके कार्यकर्त्ताओंकी मनोवृत्तिका अध्ययन करनेसे मालूम होगा कि उनको मज़दूरोंके हित और लाभको छोड़कर और बातोंकी कम फ़िक्र रहती

है। उपनिवेशों तथा अधीन देशोंके सम्बन्धमें उनकी कोई खास नीति नहीं रहती। पार्लमेण्टमें अपना बहुमत बनानेकी दृष्टिसे मध्यम श्रेणी तथा अमीर घरानोंके लोग भी चुनावके समय उम्मेदवार बना लिये जाते हैं। इसलिये पार्लमेण्टरी पार्टीमें ऐसे लोगोंकी संख्या अधिक होती है जो भारतके प्रश्नसे प्रायः उदासीन रहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी पार्लमेण्टरी पार्टी क्यों न हो उसको तात्कालिक आवश्यकताओंका अधिक ध्यान रखना पड़ता है। वह परिस्थिति तथा अपनी शक्तिको देखकर ही आगे बढ़ सकती है। यदि ब्रिटिश मज़दूरदल इस पार्लमेण्टरी पार्टीके अधीन न होता तो कुछ अधिक आशा हो सकती थी। ब्रिटिश मज़दूर दलकी वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है कि वह कांजर्वेटिव और लिबरदल दोनोंकी सम्मिलित शक्तिका मुक़ाबला कर सके। इसलिये वह किसी ऐसे कार्यको करनेका साहस नहीं करेगा जिसके फलस्वरूप दोनों विरोधी दल एक हो जायँ। भारतके प्रश्नपर मज़दूरदल अपना अधिकार छोड़नेके लिये तैयार नहीं है। इसके अतिरिक्त एक बात और है। ब्रिटिश मजदूर दलमें अन्तर्राष्ट्रीयताके भावकी अपेक्षा राष्ट्रीयताका भाव अधिक पाया जाता है और उसकी बराबर यह कोशिश रहती है कि वह इस प्रकार कार्य करे कि अन्य दल भी उसको आदरकी दृष्टिसे देखें। जबतक मजदूर-दलके हाथमें राज्यका सूत्र नहीं आया था, तबतक और दलके लोग यही कहा करते थे कि मजदूर-दलमें योग्य और कार्यकुशल व्यक्तियोंकी इतनी कमी है कि अवसर मिलनेपर मजदूर-दल शासनका कार्य सफलताके साथ नहीं कर सकेगा। मजदूर दलके नेता इसलिये यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वे पूंजीवादियोंकी दृष्टिमें भी अच्छे शासक समझे जा सकते हैं। इन्हीं कारणोंसे योरपके अन्य देशोंके कांजर्वेटिव दल अपने देशके साम्यवादियोंको यह कह कर उलाहना देते हैं कि देखो इँग्लैण्डके साम्यवादी कितने देशभक्त हैं, उनको अपने देशके गौरवका कितना ध्यान रहता है, वे हरबातमें, चाहे सही हो या गलत, अपने देशका साथ देनेको तैयार रहते हैं, तुमको भी उन्हींका अनुकरण करना चाहिये।

इन विविध कारणोंपर विचार करनेसे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश मजदूर दल भारतको उतने ही परिमाणमें अधिकार देनेको तैयार होगा जिस परिमाणमें अधिकारोंके प्राप्त करनेकी शक्ति हमने अपनेमें सञ्चित कर ली है। भारतके उदार दलका जितनेमें सन्तोष हो उतना ही करनेको वे तैयार होंगे। सर तेज बहादुर सप्रूकी यह शिकायत थी कि कांजर्वेटिव गवर्नमेण्ट भारतके लिबरल और अन्य राजनीतिक दलोंमें कोई विवेक नहीं करती, यद्यपि भले और बुरे दोनों समय भारतके लिबरलोंने गवर्नमेण्टका साथ दिया था। लिबरलोंकी यह शिकायत अब दूर हो जायगी। कहा जाता है कि जो सरकार मिश्र और ईराकके साथ न्याय कर सकती है, जो रूसके साथ राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकती है और जो संसारमें शान्ति स्थापित करनेके लिये संयुक्तराष्ट्र अमेरिकासे बात-चीत कर रही है और जिसने इसीलिये अगली जनवरीमें पाँच शक्तियोंकी 'नेवल कान्फरेंस' बुलायी है उससे न्यायकी आशा रखना अनुचित न होगा। पर लोग भूल जाते हैं कि यदि भारतका प्रश्न काफी महत्वका समझा जाता तो अन्य प्रश्नोंको हाथमें लेनेसे पहले उसपर विचार किया गया होता। शान्ति इसलिये आवश्यक है जिसमें इङ्गलैण्डका व्यापार बढ़े और बेकारी कम हो। मिश्र और ईराकसे जो समझौता हुआ है, उसमें भारतकी रक्षापर काफी ध्यान दिया गया है। इन समझौतोंसे ब्रिटिश गवर्नमेण्टका भारतपर नियन्त्रण और भी दृढ़ और सुगम हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिके सम्भल जानेसे भारतके प्रश्नका महत्व घट गया है। इन सब बातोंपर विचार करके हमको बहुत बड़ी आशा न रखनी चाहिये नहीं तो अन्तमें हमको निराश होना पड़ेगा। हमको अपने पैरोंपर ही खड़ा होना होगा। ब्रिटेनका कोई दल हमारी सहायता नहीं कर सकता। मजदूर दलका शासन भले ही अपेक्षतया कठोर न हो पर वह ऐसे आदर्शवादी नहीं हैं और विश्व-बन्धुत्वके ऐसे क़ायल नहीं हैं कि खुशीसे अपने आप अपने अधिकार और हितोंका परित्याग करें।

नरेन्द्रदेव

कंधारमें हिन्दू

अफ़ग़ानिस्तानके जो बड़े बड़े नगर हैं उनमेंसे एक कंधार भी है। यह दक्षिणी भागमें इसी नामके प्रान्तका प्रधान नगर है। यहाँसे काबुल उत्तर व पूर्वकी ओर लगभग २२५ मीलोंकी दूरीपर है। प्रान्त और नगर दोनोंका जल-वायु अच्छा है। गर्मीके दिनोंमें बहुत ज्यादा गर्मी नहीं पड़ा करती किन्तु जाड़ेमें सर्दी अधिक होती है और बर्फ भी पड़ता है। यह नगर समुद्रकी धरातलसे ३४४२ फ़ीटकी ऊँचाईपर है।

फ़ल व मेवे नाना प्रकारके होते हैं। यही यहाँकी प्रधान उपज है। कंधार नगरके एक निवासीने मुझे बतलाया कि वहाँ छत्तीस प्रकारके अंगूर होते हैं। कंधारके मेवे और फल चमनके मार्गसे भारतमें आते हैं। चमन बृटिश बलोचिस्तानके उत्तरी भागमें है और यहाँसे अफ़ग़ानिस्तानकी दक्षिणी सीमा अधिक दूर नहीं है। चमनसे कंधार नगरकी दूरी केवल बहत्तर मीलोंकी है। लोग घोड़े, खच्चर और ऊँट द्वारा भी आते-जाते हैं। परन्तु लारी द्वारा यह मार्ग लगभग छः घंटोंका ही है।

मैं मई सन् १९२९ ई० (=ज्येष्ठ १९८६ वि० सं०) में ईरान गया। परन्तु सत्य बात यह है कि मेरा विचार पहले अफ़ग़ानिस्तान ही जानेका था पर युद्धके कारण न जा सका। ईरानसे लौटते समय जब क्वेटा (बृटिश बलोचिस्तान) में पहुँचा और देखा कि अफ़ग़ानिस्तानकी दक्षिणी सीमाके निकटतक पहुँचनेका अच्छा अवसर है मैंने चमन जानेका निश्चय किया। निदान इसी सिलसिलेमें क्वेटा और चमनमें कंधारके कुछ हिन्दुओंसे मिलनेका अवसर

प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् बलोचिस्तानके एक सुप्रसिद्ध सज्जन दीवान बहादुर जमीअतराय द्वारा लिखित कंधार और गजनीके हिन्दुओंके सम्बन्धमें एक छोटी सी पुस्तिका[१] भी मिली। इससे बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार कंधारके हिन्दुओंके विषयमें जो कुछ मालूम हो सका है वही पाठकोंकी भेंट है।

कन्धार नगरकी जनसंख्या एक लाखके लगभग है। अफगानिस्तानके घरेलू युद्धसे पहले वहाँ एक हजारसे कुछ अधिक ही हिन्दू अपने स्त्री-बच्चों समेत थे। युद्धके कारण कुछ लोग कुटुम्ब सहित बलोचिस्तानमें आये तथापि लगभग नौ सौ हिन्दुओंने नगर न छोड़ा। वे युद्धपर्यन्त वहीं रहे। जो कुछ दुःख अन्य लोगोंको पहुँचा उससे वह लोग भी बच न सके।

नगरके अतिरिक्त कंधार प्रान्तके कई अन्य स्थानोंमें भी हिन्दू हैं जिनकी संख्या युद्धके पूर्व दो हजारके लगभग थी। उन अन्य स्थानोंके नाम यह हैं—

गिरिश्क—यह स्थान कंधार नगरसे पश्चिमकी ओर अस्सी मीलकी दूरीपर है। यह लगभग २८८१ फीटकी ऊँचाईपर है।

तीरी—कंधारसे सौ मील दूर है।

दरावत—कंधार से अस्सी मील दूर है।

नगरके सिवा अन्य प्रान्तीय हिन्दू 'सहराई हिन्दू' अर्थात् जंगली हिन्दू' कहे जाते हैं। संभव है कि इनमेंसे भी कुछ लोगोंने युद्ध-कालमें अफगानिस्तान छोड़ा हो। परन्तु इनके विषयमें मुझे कुछ पता नहीं लग सका। फलतः युद्धके पूर्व केवल कंधार प्रान्तके अन्तर्गत ही लगभग तीन हजार हिन्दू थे जिनमेंसे अधिकांश युद्धकालमें भी वहीं रहे। इन सब हिन्दुओंके पहुँचनेकी रामकहानी यह है कि कुछ लोग नादिर-

---

१. Rough Notes on the Hindus of Ghazini and Kandahar Published by the Superintendent Government, Printing, Calcutta. (1918 A. D.). Pages 13 only.

यह पुस्तक अब अप्राप्य है।

शाहके समयमें सन् १७३७ ई० (विक्रम सं० १७९४) में वहाँ पहुँचे थे। बहुतेरे अहमदशाहके समयमें पहुँचे, कुछ भिन्न भिन्न समयोंमें बादको पहुँचे हैं। अधिकांश लोग व्यापार करते हैं। ऊन, मेवा, फल, कपड़ा, खाद्य-पदार्थ आदि व्यापारकी मुख्य वस्तुएँ हैं। कुछ लोग अच्छे सम्पत्तिवाले हो गये हैं। वे बाग और भूमिके स्वामी बन गये हैं। यहाँके जिन स्त्री-पुरुषों तथा बच्चोंको मैंने देखा वह अच्छे हृष्टपुष्ट और गोरे-चिट्टे थे। यह वास्तवमें जल-वायुका प्रताप था।

जात-पाँतके विचारसे कंधार नगरमें ब्राह्मण, खत्री, अरोड़ा व दखना आदि हैं। यह सब बहुधा पंजाब और सिंधके निवासी हैं। पंजाबी लोग अमृतसर व शाहपूरके हैं। यह प्रायः 'कंधारी हिन्दू' बोले जाते हैं। सिंधी लोग शिकारपूरके हैं। यह लोग शिकारपुरी कहलाते हैं। सहराई हिन्दुओंमें खत्री कम व अरोड़े अधिक थे। पर उनमें अब कुछ भेद-भाव बाक़ी नहीं रहा। सब एक हो गये हैं।

कुछ हिन्दू गोपीनाथके उपासक हैं। कुछ गुरु नानकदेवके मानने वाले हैं। कुछ दरिया-पीरके भक्त हैं। निदान भिन्न भिन्न मतोंके अनुयायी हैं। पर सबका धर्म-कर्म सनातन धर्मके अनुसार ही समझना चाहिये क्योंकि सब लोग ठाकुरद्वारा और गुरुद्वारामें पूजाके लिये जाया करते हैं। आपसमें कोई साम्प्रदायिक विरोध नहीं है।

हिन्दू लोग कंधारके शिकारपुरी बाजार और काबुली बाजारमें अधिक हैं। यहीं इनके मन्दिर, गुरुद्वारे और धर्मशालाएँ हैं। यदि कोई बाहरसे जाता है तो वह धर्मशालामें ठहर सकता है। एक व्यक्तिका गुजारा ३०) मासिकमें बड़ी सुगमतासे हो सकता है। नगरके सिवा कुछ अन्य देवस्थान भी हैं जहाँ जानेके लिये विशेष दिन नियत हैं। भारतके हिन्दुओंके समान होली, दिवाली, और वैशाखी आदि त्योहार मनाते हैं। दुर्गाष्टमी, गणेशचौथ और एकादशीकी महत्ताको मानते हैं। निदान इस प्रकारके अन्य धार्मिक कर्मकाण्डमें वह भारतीय हिन्दुओंकी भाँति हैं। जातकर्म, नामकरण चूड़ाकरण, और यज्ञोपवीत संस्कार भी उनमें होते हैं।

संस्कारोंके अवसरोंपर लोग कुछ न कुछ दान दिया करते हैं। ऐसा दान मन्दिर, देवालय आदिमें व्यय होता है। इसके सिवा देवालयोंके व्ययकी पूर्ति निम्नलिखित उपायोंसे होती है—

(१) कुछ भार एक सम्मिलित पंचायतपर है।

(२) लोग अपनी आयका कुछ अंश दिया करते हैं।

सभी ब्राह्मण भेड़-बकरीका मांस खाते हैं, अण्डेका भी सेवन करते हैं। कुछ लोग मदिरा पान भी करते हैं। हुक्का भी पीते हैं। चाय पीनेका चलन भी है। बाहर-भीतरके बहुतेरे कार्य मुसलमान ही करते हैं। परन्तु खाने-पीनेके पात्र नहीं छूने पाते। कुछ ब्राह्मण अपने यजमानों द्वारा पकाई रोटी खाते हैं, कुछ किसीका छुआ नहीं खाते। बहुतेरे हिन्दू केशरका टीका माथेपर लगाते हैं; चोटी जनेऊ रखते हैं। स्त्रियाँ जब घरसे बाहर निकलती हैं तो सफेद चादर ओढ़कर निकला करती हैं। उसपर केशरके छींटे पड़े होते हैं। यही विशेष चिन्ह हिन्दू स्त्रियोंका है।

शिकारपुरी या सिंधी लोग अपनी सिंधी भाषा बोलते हैं। कंधारी हिन्दू अपनी पंजाबी भाषा बोलते हैं। परन्तु सबके सब पश्तो भी जानते हैं और बहुतेरे स्त्री-पुरुष फारसी भी सीख गये हैं। कुछ लोग गुरुमुखी और संस्कृत-हिन्दी भी जानते हैं।

सर्वसाधारणके लिये पहले कोई स्कूल न था। राज्यकी ओरसे लड़कोंकी पढ़ाई-लिखाई मुल्लाओं द्वारा मस्जिदमें हुआ करती थी। ऐसी अवस्थामें हिन्दू लोग अपने बच्चोंको मस्जिदमें पढ़नेके लिये नहीं भेजा करते थे क्योंकि उनके मुसलमान होजानेका भय था। जिसकी इच्छा होती थी वह किसी मुल्लाको अपने घर बुलाता था तब लड़कोंको पढ़ाता था। परन्तु अब हिन्दुओंने अपना भी एक स्कूल बना लिया है। उसमें गुरुमुखी, सिंधी और हिंदी आदि भाषाओंका पठन-पाठन होता है। देवनागरीका पठनपाठन विशेषतः ब्राह्मणोंके निमित्त होता है ताकि वह आवश्यकतानुसार पूजा-पाठ आदि करा सकें।

लड़केका का विवाह संस्कार प्रायः बीस और लड़कीका चौदह वर्षोंकी आयुमें हुआ करता है। कंधारी हिन्दुओंमें जात-पांतका विचार

रहता है; सहराई हिन्दुओंमें कोई भेदभाव नहीं है। उनकी लड़कियोंको कंधारी हिन्दू लेते हैं पर अपनी लड़कियां उन्हें नहीं दिया करते।

दहेजका कोई प्रश्न नहीं होता। लोग लड़कियोंको वस्त्र और आभूषणादि दिया करते है। ब्राह्मण कर्मकाण्ड कराता है। कन्धारी हिन्दुओंमें विधवा विवाहका चलन नहीं है। शिकारपुरी हिन्दुओंमें है और सहराई हिन्दुओंमें भी है। किन्तु तिलाक (स्त्री त्याग) का चलन किसी हिन्दूमें नहीं है।

यदि चार वर्षकी आयु तकका कोई बच्चा मरता है तो वह गाड़ दिया जाता है। बाकी लोग जलाये जाते हैं। चौथे दिन फूल चुना जाता है। अमीर लोग फूलको हरिद्वार भेजा करते हैं। गरीब अरगंदब नामकी नदीमें फेंक देते हैं। अथवा ऐसा होता है कि वह फूल किसी देवालयमें रख दिया जाता है। बादको जब चार-पांच व्यक्तियोंका फूल एकत्र हो जाता है तो उन सभोंको एक व्यक्ति हरिद्वार लाता है। सारे व्ययका भार चार-पांच व्यक्तियोंपर बंट जाता है।

ब्राह्मण भोजनकी प्रथा वैसी ही है जैसी कि भारतमें है। प्रत्येक प्रकारके झगड़ोंके निपटारेके लिये एक पंचायत है। इसके सभासद सिंधियोंमें मुक्खी और कंधारियोंमें 'मलिक' या 'चौधरी' बोले जाते हैं। किसीबड़े दोषकी सजा यह होती है कि दोषी हरिद्वार जावे। बिरादरीके नियमोंको भंग करनेका दण्ड प्रायः यह हुआ करता है—

(१) हुक्का पानीसे पृथक् किया जाना।

(२) गाय चराना।

(३) गौओंकी एक नियत संख्याको भोजन कराना। अथवा

(४) दण्ड रूपमें कुछ नक़द देना।

पंचायतकी आय मन्दिर और देवालयोंमें खर्च होती है। जो मामिले इस पंचायत द्वारा तय नहीं हो सकते या होते उनका निपटारा सरकारी पंचायत द्वारा अथवा अन्य राज्य कर्मचारी द्वारा होता है। पर ऐसी स्थितिमें न्याय देश तथा मुसलमानी धर्मशास्त्रके अनुसार ही हुआ करता है। उदाहरणार्थ यदि किसीने सूदपर रुपया दिया तो

वह सूदके पानेका भागी न ठहराया जायगा क्योंकि इस्लामी धर्मशास्त्रमें सूद वर्जित है।

सोलह वर्षसे अधिक आयुवाले प्रत्येक हिन्दू-पुरुषपर राज्यकी ओरसे एक विशेष वार्षिक कर है जो कि वास्तवमें आर्थिक स्थितिके अनुसार है—

१६ रुपया काबुली उत्तम श्रेणीवालेके लिये।
८ ,, ,, मध्यम ,, ,, ,, ।
४ ,, ,, निकृष्ट ,, ,, ,, ।

परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि धनिकोंके यहाँ सबसे बड़ेके लिये सोलह रुपया है। शेष सोलह वर्षसे अधिक आयु वालोंके लिये आठ रुपयेके हिसाबसे देना पड़ता है। साधु और पुजारीको सबसे कम अर्थात् चार रुपया ही देना पड़ता है।

समस्त सहराई हिन्दू पुरुषोंके लिये एक ही प्रकारका कर है। यह साढ़े चार रुपया वार्षिक है और आठ वर्षसे अधिक अवस्थावाले प्रत्येक व्यक्तिपर है। सन् १९०१ ई० (=विक्रम सं० १९५८) में अमीर हबीबुल्ला साहब अफगानिस्तान राज्यके उत्तराधिकारी हुऐ थे। इनके समयसे हिन्दुओंपर विवाह विषयक एक कर और बढ़ा है। यदि कोई कुंवारीसे विवाह करे तो ग्यारह रुपया कर देना पड़ता है। यदि विधवासे करे तो कर केवल साढ़े पांच रुपया ही लगता है। यह कर पतिको मंगनीके दिन ही चुका देना पड़ता है। इसपर काजी (न्यायाधीश) और गवरनरकी ओरसे एक प्रमाण-पत्र मिलता है। इसको 'शगुन नामा' कहते हैं। मुझे बतलाया गया कि अमीर अमानउल्ला साहबकी यह इच्छा थी कि हिन्दुओंपरसे कर उठा लिये जायँ और विशेषतः उनके निमित्त जो छोटी-मोटी असुविधायें हैं वह सब दूर कर दी जायं। परन्तु हिन्दुओंने करोंका हटाया जाना स्वीकार न किया और कहा कि यह आपका अंश है—आपका हक है। इसके सिवा हिन्दुओंने अन्य असुवधाओंका दूर किया जाना अङ्गीकार कर लिया था।

अमीर अब्दुल रहमान साहब इक्कीस वर्ष राज्य करके सन्

१९०१ ई० (=विक्रम सं० १९५८) में स्वर्गलोक सिधारे थे। कहा जाता है कि इनके समयमें यह एक स्थायी कानून था कि यदि कोई हिन्दू-पुरुष इसलाम धर्म ग्रहण कर लेता था तो आयु पर्यन्त ४००) रु० वार्षिककी पेंशन पाता था। यदि उसकी स्त्री भी मुसलमान हो जाती थी तो उसकी ३९०) की पेंशन होती थी। दोनोंको बिना शुल्क भूमि भी मिलती थी।

पठानों अर्थात् अफगानोंमें चाहे जो दोष हों पर उनमें यह बात बड़े मार्केकी है कि वह व्यभिचारको बहुत बुरा दोष समझते हैं। उनके यहां ऐसे कार्यको 'सियाहकारी' अर्थात् 'काला-कर्म' कहते हैं। स्त्री-पुरुष दोनोंका यदि घटनास्थलपर बध कर दिया जावे तो कोई दोष नहीं समझा जाता। निदान स्त्री-पुरुषमें यदि कोई व्यभिचारी हिन्दू हो और वह या वे घटनास्थलपर न मारे गये हों तो ऐसी अवस्थामें यदि हिन्दू मुसलमान धर्म अङ्गीकार कर ले तो वह मुक्त कर दिया जाता था। फलतः ऐसे भीषण दोषोंके दोषी मुसलमान धर्मके ग्रहण कर लेने पर छोड़ दिये जाते थे। परन्तु बादको अमीर हबीबुल्ला साहबको पता लगा कि कुछ लोग केवल भीषण दण्डसे बचनेके लिये ही मुसलमान हो जाते हैं और कुछ कालके पश्चात् भारत जाकर फिर हिन्दू हो जाते हैं। अस्तु, कानून बना कि भीषण दण्डसे बचनेके हेतु जो मुसलमान होना चाहे उसको चाहिये कि पांच हजारकी जमानत इस बातकी दे कि वह मुसलमान होनेके पश्चात् फिर हिन्दू न हो जावेगा।

अफगानिस्तान ऐसे मुसलमानी देशमें इसलामके विरुद्ध कुछ कहना भी बड़ा भारी अपराध है। इस अपराधके दण्डसे उसी दशामें मृत्युसे बचाव है कि दोषी मुसलमान हो जावे। कहा जाता है कि कुछ लोगोंको इसी कारण मुसलमान होना पड़ा है। अस्तु, येन-केन-प्रकारेण अमीर अब्दुल रहमान और अमीर हबीबुल्ला साहबके समयमें कुछ लोग अवश्य मुसलमान बने।

अब मैं अन्तमें यह भी बतला देना चाहता हूँ कि कंधारके कुछ हिन्दुओंने अमीर अमानुल्लाके सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ कहा था

उसका सार यह है कि अमीर साहबकी नीति हिन्दुओंके लिये बहुत अच्छी तथा प्रशंसनीय थी। अब अमीर नादिरखाँकी नीति क्या साबित होगी—इसका उत्तर समय देगा।

महेशप्रसाद

भारतीय राजऋणपर एक दृष्टि।

पुराने समयमें किसी राज्यका वैभव और उसकी प्रतिष्ठाका वर्णन करते समय और बहुत सी बातोंके साथ यह भी कहा जाता था कि उसके कोषमें इतनी मुद्रा और इतने माणिक्य जवाहिरात हैं। प्रत्येक राज्यके पास उसका एक स्थायी कोष होता था और इस बातका प्रयत्न किया जाता था कि निरन्तर उस कोषकी वृद्धि होती रहे। दुष्काल, आक्रमण तथा अन्य ऐसे अवसरोंपर उससे सहायता लेनेकी आशा की जाती थी। जबसे प्रजासत्तात्मक शासनप्रणालीका उदय हुआ है तबसे राष्ट्रोंके धन-वैभवकी चर्चामें इस प्रकारके स्थायी कोषका उल्लेख नहीं होता। बड़ेसे बड़े और अधिकसे अधिक सम्पत्तिशाली देशके पास पुराने तरीकेका कोष अब देखनेको न मिलेगा। इसके विपरीत सभी राष्ट्र कुछ न कुछ ऋणके भारसे लदे हैं। वर्तमान कालमें राष्ट्रोंके ऋण लेनेकी यह प्रथा इतनी व्यापक है कि शायद ही कोई देश इससे मुक्त हो। बल्कि बहुत अंशोंमें यह ऋण उस देशके धन-वैभवका द्योतक होता है। राष्ट्रके कलकारखानोंकी उन्नति और उसे युगयुगान्तर तक लाभ पहुँचानेवाले कार्य प्रायः ऋण लेकर ही किये जाते हैं। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जिस प्रकार पुराने जमानेमें किसी देशके स्थायी कोषकी रक़म उस देशके धन-वैभवकी सूचक थी उसी प्रकार आजकल किसी देशका राजऋण उस देशके धन-वैभवका सूचक है। अर्थात् प्रत्येक प्रकारका ऋण केवल देशकी साम्पत्तिक अवस्थाकी उन्नतिके लिये ही नहीं लिया जाता। वर्तमान सम्पत्तिशास्त्रमें राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रका सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्वरूप बहुत जटिल है और उसके अन्तर्गत राजऋणके

अध्यायमें भी अनेक प्रकारकी गुत्थियां हैं। किन्तु राजऋणके सिद्धान्तोंमें मोटे तौर पर एक बात सर्वमान्य है और वह यह कि राष्ट्रके वे सब कार्य ऋण लेकर किये जाने चाहिये जिनका फल केवल वर्तमान कालतक सीमित नहीं रहता वरन् भविष्यसे भी उतना ही सम्बन्ध रखता है जितना कि वर्तमान कालसे। राज्यका प्रत्येक साधारण कार्य प्रजासे कर उगाह कर किया जाता है। अतः वर्तमानकालके कर देनेवालोंपर उन्हीं मदोंके खर्चका बोझ पड़ना चाहिये जिनका उनसे सम्बन्ध हो—जैसे प्रतिदिनकी राज्य व्यवस्था, शिक्षा, शान्तिस्थापन आदि। किन्तु यदि देशमें बहुत सी नहरोंके खोदे जानेकी व्यवस्था की जाय अथवा रेलें चलायी जायँ तो इनके द्वारा केवल वर्तमान करदाताओंको ही नहीं अपितु आनेवाली पीढ़ियोंको भी लाभ होगा। इसी प्रकार यदि किसी देशपर एकाएक दूसरे देशका आक्रमण हो जाय तो उस समय रक्षाके लिये प्रचुर सम्पत्तिकी आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु वह सारी सम्पत्ति वर्तमान करदाताओंसे ही वसूल करना न तो सम्भव होगा और न उचित ही, क्योंकि इस सम्पत्तिसे देशकी स्वतन्त्रताकी जो रक्षा होगी उसका भोग वर्तमान कालके अतिरिक्त भविष्यकी पीढ़ियां भी करेंगी। इसलिये इस प्रकारके सब कार्य—चाहे वे देश की साम्पत्तिक अवस्थाके सुधार और उसकी श्रीवृद्धिके लिये किये जायँ, चाहे किसी आकस्मिक आपत्तिसे उसकी रक्षा करनेके लिये—ऋण लेकर किये जाने चाहिये। यह ऋण धीरे धीरे अनेक वर्षोंमें अदा किया जाता है। इस प्रकार भविष्यके करदाताओंका भी उसके चुकानेके लिये अपना अपना हिस्सा देना पड़ता है।

भारतसरकारके वर्तमान ऋणका आरम्भ भी वर्तमान शासनप्रणालीके साथ ही हुआ है। किन्तु जिस प्रकार यह वर्तमान शासनप्रणाली इस देशमें अपने सब अच्छे गुणोंके ही साथ नहीं आयी, वरन् इसने अधिकतर इस देशको अपने अवगुणोंका ही शिकार बनाया है, उसी प्रकार यह राजऋण भी श्री और शान्तिके गुणोंको छोड़कर दरिद्रता और नाशका रूप धारण करके ही यहाँ आया है। देशमें ज्यों ज्यों जीवन और शक्तिका

अधिकाधिक सञ्चार होता जाता है त्यों त्यों वह अपनी हीनावस्थासे मुक्त होनेका प्रयत्न करता जाता है। जिस प्रकार बहुत दिनोंसे वह इस बातका प्रयत्न करता आ रहा है कि वर्तमान शासनप्रणाली यहाँ अपने अवगुणोंका ही प्रदर्शन न करे वरन् अपने गुणोंसे भी देशको लाभ पहुँचावे, उसी प्रकार इधर कुछ दिनोंसे उसने इस बातका भी प्रयत्न शुरू किया है कि देश राजऋणके घातकस्वरूपका ही शिकार न बना रहे वरन् उसके सुखकर अंशोंका भी फल भोगे। पहले पहल सन् १९२२ ईसवी (वि० सं० १९७९) में गयाकी कांग्रेसने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा की कि स्वराज्यकी प्राप्तिके बाद यह देश उन कर्जोंको अदा करनेकी जिम्मेदारी नहीं लेता जो आगे इस देशके हितकी दृष्टिसे न लिये जायँगे। किन्तु गत लाहौरकी कांग्रेसके इस सम्बन्धके निर्णयने हमारे विदेशी शासकोंके बीच अधिक उथलपुथल मचा दी है। इस बार कांग्रेसने घोषित किया है कि स्वतन्त्र भारत एक स्वतन्त्र पञ्चायतके द्वारा इस बातकी जाँच करायेगा कि इस देशके नामपर जितने ऋण लिये गये हैं उनमेंसे कौन कौन भारतवर्षके हितके लिये थे और वह केवल उन्हीं ऋणोंको अदा करनेके लिये अपनेको जिम्मेदार समझेगा। घोषणाके कुछ ही दिनों बाद यह समाचार निकला कि कांग्रेसकी घोषणाके कारण बाजार बहुत सशंक होगया है और भारतसचिवको एक विशेष विज्ञप्ति-द्वारा सरकारी कर्ज देनेवालोंको यह आशा दिलानी पड़ी कि वे घबरायें नहीं—उनका रुपया मारा न जायगा। कुछ दिनों बाद भारतसरकारके एक पुराने अर्थसदस्यने भी—जो कि आजकल एक प्रान्तकी गद्दीपर विराजमान हैं—कांग्रेसवालोंको बहुत खरी खोटी सुनायी। किन्तु इस सम्बन्धमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग भारतसरकारके वर्तमान अर्थ-सदस्यने लिया है। भारतीय व्यवस्थापक सभामें सन् १९३०-३१ (=वि० सं० १९८७-८८) का बजट पेश करते हुए, ऋण सम्बन्धी कांग्रेसकी घोषणाके सिलसिलेमें आपने कहा है कि इस प्रकारकी घोषणासे भारतवर्षकी साखको बहुत धक्का लगेगा अर्थात् आजकल भारतसरकारको बाजारमें जितनी आसानीसे क़र्ज़ मिल जाता है उतनी आसानीसे न

मिलेगा। अतः आपने कांग्रेसकी इस नीतिको नापसन्द करते हुए अपनी ओरसे इस बातका विश्वास भी दिलाया है कि सरकार इस घोषणाके प्रभावोंको दूर करते हुए बाज़ारमें भारतवर्षकी साख क़ायम रखनेकी पूरी कोशिश करेगी। किन्तु आपने अथवा किसी भी सरकारी पदाधिकारीने अभीतक यह नहीं कहा कि कांग्रेसकी घोषणामें किस स्थलपर अनौचित्य अथवा अनुत्तरदायित्वका अंश है। जहांतक भविष्यमें इस सरकारको आसानीसे क़र्ज़ न मिल सकनेकी बात है वहांतक तो कांग्रेसके उद्देश्यकी पूर्ति ही होती है। कांग्रेसकी घोषणाका तो अभिप्राय ही यह है कि भारत सरकारको क़र्ज़ देनेवाले ख़ूब समझ बूझ कर इस काममें हाथ डालें। यदि उन्होंने किसी ऐसे कार्यके लिये क़र्ज़ दिया जो भारतवर्षके हितके लिये आवश्यक न था तो स्वतन्त्र होनेपर भारतवर्ष उसकी अदाई न करेगा। कांग्रेस तो यह चाहती ही है कि वर्तमान विदेशी सरकार अपने हितके लिये भारतवर्षके नामपर मनमाना क़र्ज़ न ले सके। अतः भारत सरकारके अर्थसचिव और अन्य ज़िम्मेदार पदाधिकारियोंको चाहिये तो यह था कि क़र्ज़ लेनेमें दिक़्क़त पड़नेका उलाहना देनेके बजाय यह बतलाते कि उनके मार्गमें जिस हदतक कांग्रेसके लिये सम्भव है उस हदतक इस प्रकारकी दिक़्क़त क्यों न पैदा की जाय। उन्हें यह बतलाना चाहिये था कि भारतवर्षकी वर्तमान विदेशी सरकारने जितना क़र्ज़ इस देशके नामपर लिया है वह राजऋणके प्रचलित सिद्धान्तोंके अनुसार ही लिया है और उन सबको अदा करना भारतवर्षकी भावी सरकारकी नैतिक और सामाजिक ज़िम्मेदारी है। किन्तु विषयके इस पहलूपर अधिकारियोंकी ओरसे एक शब्द भी नहीं कहा जा रहा है।

अब कांग्रेसके पक्षको लीजिये। गया और लाहौरकी घोषणाओंमें यह बात अन्तर्हित है कि भारतवर्षके नामपर इस समयतक जितना ऋण लिया गया है वह सब भारतवर्षके ही लाभके लिये नहीं किन्तु उसका बहुत कुछ अंश इङ्गलैण्डके हितके लिये और उसके साम्राज्यकी वृद्धिके लिये था और यह नीति अभीतक जारी है। इस अभियोगकी

जाँचके लिये भारतसरकारके आरम्भसे अबतकके ऋण सम्बन्धी इतिहासपर एक सरसरी दृष्टि डालनी होगी। वर्तमान भारतसरकारका आरम्भ ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे होता है। किन्तु आरम्भमें तो यह कम्पनी केवल व्यापारिक कम्पनी थी। आगे चलकर इसने यदि राज्याधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न किया तो वह भी केवल इसलिये कि बिना उसके व्यापारमें उतना नफा नहीं हो सकता था जितनेके वे इच्छुक थे। सन् १६८९ ईसवी (=वि० सं० १७४६) में कम्पनीने स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रस्ताव पास किया कि 'हमें अपने व्यापारकी जितनी फिक्र करनी चाहिये उतनी फिक्र राज्यकरके द्वारा आमदनी बढ़ानेकी भी करनी चाहिये। यदि हमारे व्यापारके मार्गमें बीसों बातें बाधा डालेंगी तो भी राज्यशक्तिके कारण हमारी ताकत बनी रहेगी। ...इसीलिये तो बुद्धिमान डच लोग यदि अपने व्यापारके सम्बन्धमें एक पैरेग्राफ लिखते हैं तो राज्यव्यवस्था, फौजी और माली हुकूमत, लड़ाई और करवृद्धिके सम्बन्धमें दस पैरेग्राफ लिखते हैं।'[1]

यूरोपके जिन जिन देशोंके लोग उस समय इस देशमें व्यापार कर रहे थे उन सबकी यह कोशिश थी कि जहाँतक हो सके राजसत्ता भी प्राप्त करें। किन्तु इसमें सबका एक मात्र उद्देश्य था व्यापारिक आयकी

---

1. 'The increase of our revenue is the subject of our care as much as our trade; 'tis that must maintain our force when twenty accidents may interrupt our trade; 'tis that must make us a nation in India; without that we are but a great number of interlopers, united by His Majesty's royal charter, fit only to trade where nobody of power thinks it their interest to prevent us; and upon this account it is that the wise Dutch, in all their general advices that we have seen, write ten paragraphs concerning their government, their civil and military policy, warfare, and the increase of their revenue, for one paragraph they write concerning trade'.

Ilbert: Government of India, P. 23.

वृद्धि। ईस्ट इण्डिया कम्पनीका व्यापार और राज्यविस्तारका दोहरा काम सन् १८३४ ईसवी (= वि० सं० १८९१) तक जारी रहा। उस वर्ष इङ्गलैण्डकी पार्लमेण्टने कम्पनीका व्यापारिक कार्य बन्द कर दिया और तबसे केवल भारतवर्षका शासनकार्य ही उसके जिम्मे रह गया। यद्यपि शसनका कार्य कम्पनी बहुत पहलेसे ही करती आ रही थी, किन्तु सन् १८३४ (= वि० सं० १८९१) से उसका व्यापार बिलकुल बन्द कर दिये जानेके कारण यह कहा जा सकता है कि वर्तमान भारतसरकार-का नियमित सङ्गठन उसी समयसे शुरू होता है। उस समय कम्पनीके तमाम लहने देनेका हिसाब किया गया और उसके ऊपर जो तीन करोड़ सत्तरलाख पौण्डका कर्ज था वह भारतसरकारके मत्थे मढ़ा गया। इस प्रकार जिस दिन नवीन भारतसरकारका जन्म हुआ उसी दिनसे उसके ऊपर लगभग पौने चार करोड़ पौण्डके ऋणका भार आ पड़ा। राजऋणके सिद्धान्तोंपर एक सरसरी निगाह डालते हुए हमने देखा है कि यह ऋण राष्ट्रोन्नति अथवा राष्ट्रकी रक्षाके ऐसे-कार्योंके लिये ही लिया जाता है जिनका फल वर्तमान कालतक ही सीमित न रहे। किन्तु इस स्थलपर भारतसरकारके ऊपर ऋणका जो बोझ आ पड़ा उसका इस प्रकारके कार्योंसे न केवल कोई सम्बन्ध न था, वरन् स्पष्ट रूपसे यह ऋण भारतवर्षके अहितके लिये ही लिया गया था। यहाँ यदि संक्षेपमें यह देखा जाय कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीने यह ऋण किन किन कार्योंके लिये लिया था तो यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके ऋणका आरम्भ उस समयसे होता है जब कि वह दक्षिण भारतमें फरासीसियोंके साथ युद्ध करनेमें लगी हुई थी। फरासीसी लोग अपना प्रभुत्व कायम करनेकी चेष्टा कर रहे थे। किन्तु उनके सफल होनेसे अँगरेजोंके लिये यहाँ कोई स्थान ही न रह जाता। कम्पनीके लिये यह जीवन-मरणका प्रश्न था। ब्रिटिश पार्लमेण्टने उसे यह अधिकार दे रक्खा था कि ऐसे अवसरोंपर अपनी रक्षा और मजबूतीके लिये वह युद्ध कर सकती है किन्तु उस युद्धके खर्चके लिये

उसे पार्लमेण्टके सामने हाथ पसारनेका अधिकार न था। कम्पनीने दूरदर्शी चतुर व्यापारीकी तरह कर्ज लेकर भी इस तरहकी लड़ाई लड़ना उचित समझा। क्योंकि इससे यद्यपि आरम्भमें वह ऋणग्रस्त हो जाती किन्तु भविष्यके लिये प्रतिस्पर्धियोंका नाश कर देनेके कारण वह घाटा भलीभाँति पूरा हो जाता। इस प्रकार इन युद्धोंके लिये कम्पनीको जो कुछ कर्ज लेना पड़ा उसे उसने यही समझा कि यह रकम ऐसे व्यापारमें लगायी जा रही है जिसका मुनाफा बहुत दिनों बाद ही दिखाई देगा। ये सब युद्ध कम्पनीको या तो फरासीसियोंसे करने पड़े या उन देशी रियासतोंसे जिनकी मदद फरासीसी लोग कर रहे थे। यहाँपर एक बात याद रखनेकी है और वह यह कि उन दिनों कम्पनी-की माली हालत इतनी खराब थी कि अपने हिस्सेदारोंको साधारण मुनाफेकी रकम दे सकना भी उसके लिये असम्भव हो रहा था। ऐसी परिस्थितिमें युद्धका सामना करना पड़ा। इस कारण कम्पनी-पर बहुत अधिक ऋण हो गया। किन्तु इसके बाद ही सन् १७६५ ईसवी (= वि० सं० १८२२) में उसे मुगल बादशाहकी ओरसे बङ्गाल और बिहारकी दीवानी मिली और इस प्रकार वह व्यावहारिक रूपसे इन प्रान्तोंकी शासक बन गयी। दक्षिण भारतकी लड़ाइयोंके कारण अबतक उसपर जितना कर्ज हुआ था वह सब इन प्रान्तोंकी मालगु-जारीपर लादा गया। अर्थात् दक्षिण भारतमें फ़रासीसियों और कुछ देशी रियासतोंको हटाकर उन स्थानोंपर राज्याधिकार प्राप्त करनेके लिये कम्पनीको जो कुछ खर्च करना पड़ा वह बङ्गाल और बिहारकी प्रजासे मालगुजारीके द्वारा उसने वसूल करना शुरू किया। किन्तु इतनेसे ही काम चलनेवाला न था। कम्पनीको बार बार भारतवर्षमें लड़ाइयाँ लड़ते और उनमें विजयी होते देखकर उसके हिस्सेदारोंके हौसले बढ़ने लगे। वे स्वभावतः ही यह सोचने लगे कि कम्पनीकी माली हालत सुधर रही है, भारतवर्षमें उसके पैर जम रहे हैं, और ऐसी परिस्थितिमें वे इस बातकी भी आशा करने लगे कि उन्हें प्रतिवर्ष मुनाफा भी अधिक बाँटा जायगा। इसके लिये उनकी ओरसे सख्त

तक़ाज़ा होने लगा। बङ्गाल और बिहारकी दीवानी मिल जानेपर तो उनका मुँह किसी तरह बन्द न किया जा सका। साथ ही कम्पनीके इन हिस्सेदारोंके अलावा इङ्गलैंडकी सरकार भी अपना हक सामने रखने लगी। उसका कहना था कि जब कम्पनी इस प्रकार उन्नति कर रही है तब उसे सरकारकी भी मदद करनी चाहिये। ब्रिटिश पार्लमेण्टने निर्णय किया कि, १ फरवरी सन् १८६७ (= १९ माघ १९२३) से दो वर्षों तक, कम्पनी प्रतिवर्ष चार लाख पौण्ड ब्रिटिश खजानेमें दाखिल किया करे और इसके बदले इतने ही दिनोंतक बङ्गाल और बिहारकी दीवानी करे। कम्पनीको मजबूर होकर ये शर्तें माननी पड़ीं। किन्तु इससे उसकी आर्थिक अवस्था और खराब होने लगी। इन शर्तोंके सम्बन्धमें इलबर्टने लिखा है कि 'यह व्यवस्था इसी विचारसे की गयी थी कि कम्पनीको बहुत ज्यादा मुनाफा हो रहा है, जिसमेंसे वह न केवल अपने हिस्सेदारोंको खूब बांट सकती है बरन् राज्यको भी नजर दे सकती है। लेकिन यह विचार बिलकुल ही ग़लत था। कम्पनीके नौकर चाकर तो मालामाल हो रहे थे, पर कम्पनी स्वतः बड़ी तेजीके साथ दिवालिया होती जा रही थी।'[१]

लेकीने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि 'उस कम्पनी' पर लगभग साठ लाख पौण्डका कर्ज हो गया था। उसे तीस हजार सिपाहियोंकी एक फौज रखनी पड़ती थी। मुगल बादशाह बङ्गालके नवाब और ऐसे ही अन्य महानुभावोंको नजराना, पेंशन और हरजानेके तौर पर उसे प्रतिवर्ष दस लाख पौण्ड देना पड़ता था। लड़ाइयाँ बार

---

१. These arrangements were obviously based on the assumption that the Company were making enormous profits, out of which they could afford to pay, not only liberal dividends to their proprietors, but a heavy tribute to the State. The assumption was entirely false. Whilst the servants of the Company were amassing colossal fortunes, the Company itself was advancing by rapid strides to bankruptcy.

Ilbert: Government of India, P. 39.

बार होती थीं और यद्यपि अबतक कम्पनी ही उनमें विजयी होती आ रही थी, किन्तु खर्च तो बहुत होता ही था। इसके सिवाय बहुत बड़ी रकम जो कम्पनीके खजानेमें जानी चाहिये थी, वह कम्पनीके नौकरोंके हाथ लगती थी।[१] इससे स्पष्ट है कि यद्यपि कम्पनीको बचत तो एक पैसेकी भी नहीं होती थी, फिर भी उसे अपने हिस्सेदारोंको और इङ्गलैण्डकी सरकारको बड़ी बड़ी रकमें देनी पड़ीं। यह रकम कम्पनी कहाँसे लाती? बङ्गाल और बिहारकी दीवानी उसके हाथों में थी। अधिकसे अधिक जितनी रकम उसके द्वारा निकाली जा सकती थी, उतनी निकालनेके बाद भी खर्चके लिये कमी पड़नेपर उसके लिये कर्ज लेनेके सिवाय कोई दूसरा चारा न था। और इस प्रकार जो कर्ज लिया जाता वह भी बङ्गाल और बिहारकी दीवानीपर मढ़ा जाता। अर्थात् घूम फिर कर कम्पनीका यह बोझ बङ्गाल और बिहारकी प्रजाके ऊपर पड़ता था। इस सबन्धमें टाइम्स आफ़ इण्डियाके भूतपूर्व सम्पादक राबर्ट् नाइटने अपनी पुस्तकमें लिखा है कि 'इङ्गलैण्डकी सलतनतने कम्पनीको यह अधिकार दे दिया कि वह इस मालगुजारीकी रक़मको जैसा चाहे वैसा करे। शर्त केवल इतनी रक्खी कि वह इङ्गलैण्डके खज़ानेमें चार लाख पौण्ड सालाना दाखिल कर दिया करे। हिन्दोस्तानकी लूटमें इङ्गलैण्डका यह हिस्सा था। हम इस बातको अपनेसे चाहे जितना छिपावें या तोड़ मरोड़ कर उसका चाहे जो अर्थ लगावें, पर सच बात तो यह है कि हमारे देशने कम्पनीको यह अधिकार दे

---

१. 'Its debts were already estimated at more than six millions sterling. It supported an army of about 30,000 men. It paid about one sterling a year in the form of tributes, pensions, and compensations to the emperor, the Nabob of Bengal, and other great native personages. Its incessant wars, though they had hitherto been always successful were always expensive, and a large portion of the wealth which should have passed into the general exchequer, was still diverted to the private accounts of its servants'.

Lecky, IV 273.

दिया था कि वह हिन्दोस्तानके राजाओं और जनसाधारणको जिस तरह चाहे लूटे, शर्त केवल इतनी रहेगी कि इस लूटमेंसे प्रतिवर्ष चार लाख पौण्ड इङ्गलैण्डके खज़ानेमें दाखिल कर दिया करे।' १

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस समय कम्पनीको मुग़ल बादशाह-की ओरसे बङ्गाल और बिहारकी दीवानी ही मिल पायी थी और उसने अपनेको पूर्णरूपेण उन प्रान्तोंका शासक भी नहीं घोषित किया था, उसी समयसे उन प्रान्तोंपर कम्पनीके तमाम क़र्ज़का बोझ लद गया, और आगेका ख़र्च चलानेका भार भी आ पड़ा। व्यापारके अतिरिक्त कम्पनीकी आमदनीका यह एक बड़ा भारी ज़रिया था। लेकिन ऊपर लिखे अनुसार उसका ख़र्च इतना बढ़ा हुआ था कि यह सारी आमदनी उसके लिये पूरी न पड़ती थी। इसके सिवाय राज्यविस्तारके लिये कम्पनीको नई नई लड़ाइयाँ भी लड़नी थीं। उन सबके लिये रुपया इकट्ठा करनेके तरह तरहके तरीके हेस्टिङ्ग्सने अख्तियार किये। फिर भी जब कमी पड़ी तब बङ्गाल और बिहारकी मालगुजारीकी जमानत-पर कर्ज लेना पड़ा। भारतवर्षमें अँगरेजी राजके विस्तारके लिये जितने रुपयोंकी जरूरत पड़ी वह इसी प्रकार वसूल किया गया। बङ्गाल और बिहारकी मालगुजारीकी जमानतपर कर्ज लेकर मैसूरका राज्य जीता गया। उसके बाद मैसूरकी मालगुजारीकी मददसे मराठोंका राज्य

१. "The crown of England formally sanctioned whatever disposal the company was pleased to make of these revenues, upon the respectable condition that the company paid £. 400,000 a year into the English Exchequer as the nation's share of the spoil. Conceal the fact, as we please from ourselves, or gloze over as we may, the simple truth is that the nation gave the Company a great buccaneering commission to plunder the princes and the people of India as they pleased, on condition that an annual contribution of £. 400,000 was made from their spoils into the English Treasury".

R. Knight: India, and our Financial relations therewith, P. 17.

जीत गया। इसी प्रकार यह चक्र चलता गया और भारतवर्षमें अँगरेजी राज्यका विस्तार होता गया। साधारणतया लोगोंको यह सुनकर आश्चर्य होता है कि हिन्दोस्तानपर अँगरेजोंका कबजा हिन्दोस्तानी फौज और हिन्दोस्तानी रुपयेकी ही मददसे हुआ है। किन्तु इतिहासके पन्नोंको उलटनेसे इस कथनकी सत्यतापर तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। इतना ही नहीं, समस्त एशियामें ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार भारतवर्षकी सेना और सम्पत्तिके ही सहारे हो सका है। लङ्का, सिङ्गापुर, हांगकांग, अदन और बर्मापर अंगरेजोंका कबजा भारतीय फौज और पैसेसे ही हुआ। इसके सिवाय चीन, अफगानिस्तान, ईरान आदि देशोंसे उनकी जितनी लड़ाइयाँ हुईं वे सब भी हिन्दोस्तानकी फौज और हिन्दोस्तानके पैसेसे ही लड़ी गयीं। इन सबके अतिरिक्त अपनी व्यापारिक सुविधाके लिये कम्पनीने जहाँ जहाँ मोर्चाबन्दी कर रक्खी थी, उन सबका खर्च भी हिन्दोस्तानसे ही पूरा किया जाता था। सेण्ट हेलेना, बेनकोलन, मलक्का, प्रिन्स आफ वेल्स द्वीप और कैण्टनमें कम्पनीकी जो कोठियाँ और सेना थी उन सबका खर्च यहींसे जाता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कम्पनीकी व्यापारिक सुविधाओं और इङ्गलैण्डके साम्राज्य-विस्तारके लिये जितने धन और जनकी आवश्यकता थी वह सब हिन्दोस्तानसे पूरी की जाती थी। हिन्दोस्तानके जिन जिन हिस्सोंपर अँगरेजी अमलदारी होती जाती थी उन उन हिस्सोंकी मालगुजारी इन्हीं कामोंके लिये लगायी जाती थी। फिर भी पूरा न पड़नेपर कम्पनीको कर्ज लेना पड़ता था। यही कर्ज बढ़ते बढ़ते सन् १८३४ (= वि० सं० १८९१) तक तीन करोड़ सत्तर लाख पौण्ड हो चुका था।

जैसा कि ऊपर देख चुके हैं सन् १८३४ (= वि० सं० १८९१) में कम्पनीका व्यापारिक कारबार बिलकुल बन्द कर दिया गया। अब प्रश्न यह था कि भारतवर्षका शासनकार्य उसके हाथोंमें रहे या नहीं। यद्यपि इङ्गलैण्डमें एक पक्ष कम्पनीको अधिकारच्युत कराना चाहता था, किन्तु आमदनीके इतने बड़े जरियेको वह आसानीसे छोड़नेवाली

न थी। अन्तमें यह तै हुआ कि पार्लमेण्टकी आज्ञासे कम्पनी भारतवर्षका शासन करती रहे और जबतक उसे उसके मूलधनकी दूनी रकम वापस न कर दी जाय तबतक उसे मूलधनपर साढ़े दस प्रतिशतके हिसाबसे मुनाफा भारतसरकारकी ओरसे दिया जाय। इस समय सारा हिसाब ठीक करके लहने देनेका बटवारा जिस प्रकार किया गया वह विचारणीय है। सन् १८१४ (=वि० सं० १८७१) से ही कम्पनीका हिसाब दो भागोंमें बँटा आ रहा था—एक राजनैतिक और दूसरा व्यापारिक। राज्यप्रसार अथवा इस सम्बन्धके कार्योंमें उसे जो कुछ खर्च करना पड़ता था वह राजनैतिक खातेमें और व्यापार सम्बन्धी खर्च व्यापारिक खातेमें लिखा जाता था। अब कम्पनीका कारबार बन्द होनेपर उसके राजनैतिक अंशका उत्तराधिकार भारतसरकारको मिला। यहाँ प्रश्न यह उठा कि कम्पनीने राजनैतिक खातेमें जितना कर्ज ले रक्खा है वह किसके जिम्मे किया जाय। इसके सम्बन्धमें केवल दोही मत प्रगट किये गये। एक पक्षने कहा कि वह कंपनीके राजनैतिक विभागके उत्तराधिकारी अर्थात् भारतसरकारके ऊपर पड़ना चाहिये और दूसरे पक्षने कहा कि वह कम्पनीके व्यापारिक विभागपर पड़ना चाहिये। किन्तु पहली सूरतमें हिन्दोस्तानपर जो ज्यादती की जा रही थी उसके विरुद्ध आवाज उठानेवाला कोई न था। कम्पनीने कर्ज लिये थे अपने लाभके लिये और ब्रिटिश साम्राज्यके लाभके लिये। इसका बोझ भारतवर्षकी प्रजापर डालना सरासर अन्याय था। या तो उसे इङ्गलैण्डकी सरकारको अदा करना चाहिये था या स्वयं कम्पनीको। किन्तु बातचीतमें एक स्थलको छोड़कर कहीं इसका जिक्रतक नहीं आया। बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्ष चार्ल्स ग्राण्टने कम्पनीके डाइरेक्टरोंको अपने १२ फरवरी १८३३ (=३० माघ १८८९) के पत्रमें लिखा था कि मेरे खयालसे तो राजनैतिक कार्योंके लिये भी कम्पनीने जो कर्ज लिये हैं उन सबकी अदाईकी जिम्मेदारी कम्पनीकी व्यापारिक पूँजीपर रहनी चाहिये।[1] लेकिन इस सम्बधमें

---

१. "The liability to which I have now referred (the liability due

कुछ भी हो न सका। अन्तमें नीचे लिखी शर्तोंपर नवीन भारतसरकारका सङ्गठन हुआ—

(१) कम्पनीकी जायदाद भारतसरकारकी ओरसे बादशाहके नामपर लिखी गयी।

(२) कम्पनीका सारा कर्ज़ चुकानेका भार भारतसरकारपर डाला गया।

(३) निश्चय हुआ कि भारतसरकार प्रतिवर्ष कम्पनीको उसके मूलधन साठ लाख पौण्डपर साढ़े दस प्रतिशतके हिसाबसे छः लाख तीस हजार पौण्ड मुनाफेके तौर पर दिया करे।

(४) सन् १८६४ (=वि० सं० १९२१) के बाद चाहे जब ब्रिटिश पार्लमेण्टकी आज्ञासे कम्पनीको साठ लाखके बजाय एक करोड़ बीस लाख पौण्ड अदा कर देनेपर मुनाफेकी इस रकमका देना बन्द कर दिया जायगा।

(५) कम्पनीकी जायदादमेंसे बीस लाख पौण्ड अलग निकाल कर रोजगारमें लगाया जायगा जिससे आगे चलकर कम्पनीका मूल धन अदा किया जा सके।

---

to territorial revenues applied to commercial profits), supposing it really to attach to the Commercial assets, so called, of the Company, would deeply affect the value of their property. A doubt, however, has been raised, and is indeed sufficiently familiar to the Company themselves, whether that property be not liable to another demand, which would be absolutely overwhelming.

The question which I have in view is this, whether the whole of the Company's Commercial property be not legally responsible for those debts and engagements which have been contracted in the Company's name for political and territorial purposes, and whether it will not continue so responsible, even although the Company should be wholly deprived of their political powers and functions."

Charter papers, P. 41,

(६) कम्पनीके व्यापारिक विभागके नौकरोंको उचित हरजाना दिया जायगा।

इस शर्तनामेसे यह साफ जाहिर है कि भारतवर्षके ऊपर कम्पनीके तीन करोड़ सत्तर लाख पौण्डका कर्ज लाद कर जो अन्याय किया गया, उसके अलावा उसे प्रतिवर्ष छ: लाख तीस हजार पौण्डकी रकम कम्पनीको देनेके लिये भी मजबूर किया गया। इस मदमें उसे सन् १८७४ (=वि० सं० १९३१) तक दो करोड़ बावन लाख पौण्ड देने पड़े। बीस लाख पौण्डकी जो रकम कम्पनीके मूलधनका दुगना वापस करनेके लिये अलग निकाली गयी थी वह भी सन् १८७४ (=वि० सं० १९३१) तक बढ़ कर एक करोड़ बीस लाख पौण्ड न होकर केवल पचहत्तर लाख पौण्ड ही हो पायी थी। अत: पैंतालीस लाख पौण्ड और कर्ज लेकर कम्पनीके मूलधनकी दुगनी रकम वापस की गयी और यह कर्ज भी भारतसरकारके सिर मढ़ा गया। दूसरी ओर कम्पनीकी जो जायदाद भारतसरकारको मिली थी उससे कम्पनीके व्यापारिक विभागके नौकरोंको हरजाना देनेके बाद जो कुछ बचा उसके द्वारा कर्जमें केवल सत्तर लाख पौण्डकी कमी हो सकी थी।

अब सन् १८३४ (= वि० सं० १८९१)के बादके दूसरे हिसाबोंकी ओर भी दृष्टि डालिये। कम्पनी भारतवर्षका शासन तो कर रही थी, किन्तु राजकीय आयव्ययकी व्यवस्था बहुत ही असन्तोषजनक थी। बहुत ही कम वर्ष ऐसे रहे होंगे जिनमें आमदनी और खर्च बराबर रहा हो। बजटमें हमेशा घाटा रहा करता था और उसे पूरा करनेके लिये क़र्ज़ लेनेकी सरल तरकीबसे ही काम लिया जाता था। नतीजा यह हुआ कि ३० अप्रैल सन् १८५७ (=१७ वैशाख १९१४) को अर्थात् उस सालकी मशहूर लड़ाईके ठीक पहले भारतसरकारका क़र्ज़ ५१३ २७९५८ पौण्ड होगया था। इसके बाद ही स्वतन्त्रताका वह युद्ध हुआ इस समय ब्रिटिश साम्राज्यके अस्तित्व या नाशका प्रश्न उपस्थित था। हिन्दोस्तानियोंकी हार हुई। किन्तु इस लड़ाईमें भी अँगरेजोंका जो कुछ खर्च हुआ वह भारतसरकारके मत्थे मढ़ा गया। यह खर्च लगभग चार

करोड़ चालीस लाख पौण्डके हुआ और इस कारण सन् १८६२ (=वि० सं० १९१९) में भारत सरकारका ऋण नौ करोड़ सत्तर लाख पौण्ड तक पहुँच गया। यहाँ यह बात बिलकुल ही स्पष्ट है कि इस लड़ाईमें हिन्दोस्तानियोंको हरानेमें इङ्गलैंडका जो कुछ खर्च पड़ा वह उसे ही बर्दाश्त करना चाहिये था। किन्तु हिन्दोस्तानमें इतनी शक्ति न थी कि वह अपने लिये न्याय प्राप्त कर सकता। इस सम्बन्धमें जान ब्राइटने कहा था कि १८५७ (=वि० सं० १९१४) के युद्धको दबानेमें जो चार करोड़ पौण्डके क़रीब ख़र्च पड़ेगा उसे हिन्दोस्तानियोंपर डालना बड़ी ज्यादती है। अगर न्यायसे काम लिया जाता तो यह चार करोड़ पौण्ड इस देश (इङ्गलैण्ड) के लोगोंपर कर लगाकर वसूल किया जाता।' सर जार्ज विनगेटने अपनी पुस्तकमें इस अन्यायका ज़िक्र करते हुए लिखा है कि 'यदि कोई ऐसा अवसर उपस्थित हुआ था जब कि अंगरेजोंको बहुत बड़े त्याग करनेकी जरूरत रही हो, तो निस्सन्देह वह अवसर यही था जब कि अंगरेज़ी ताजका सबसे अधिक चमकीला जवाहिर हमारे हाथोंसे निकला जा रहा था। किन्तु इस सङ्कटके समय भी भारत सम्बन्धी हमारी स्वार्थपर नीति ही सामने आयी और अत्यन्त नीचताके साथ अपने साम्राज्यकी रक्षाका सारा ख़र्च हमने हिन्दोस्तानपर लाद दिया, जिसकी माली हालत पहलेसे ही बहुत ख़राब थी।'[१]

---

१. "If there was an occasion, which called for great sacrifices on the part of the British people, it was certainly this, when the brightest jewel in the British Crown was in danger of being torn from our grasp; but even in this crisis of our history, the selfish traditions of our Indian policy prevailed, and with unparalleled meanness, we have sought to transfer the entire cost of a perilous struggle to uphold our own empire, to the overburdened finances of India. The attempt will fail; but the spirit which dictated it, is not the less evident or blameable on that account. How strange that a nation, ordinarily liberal to extravagance in aiding colonial dependencies and foreign

इस प्रकार जब भारतवर्ष कम्पनीके हाथोंसे निकल कर प्रत्यक्ष रूपसे इङ्गलैण्डके बादशाहकी मातहतीमें आया, उस समय उसपर नौ करोड़ सत्तर लाख पौण्डका कर्ज लदा हुआ था। इसमेंका अधिकांश तो ब्रिटिश साम्राज्यके लिये लड़ी हुई लड़ाइयों और सन् १८५७ (=वि० सं० १९१४) की लड़ाईमें हिन्दोस्तानियोंको दबानेके प्रयत्नमें किये गये खर्चके लिये लिया गया था, और कुछ इस कारण भी हुआ था कि सन् १८३४ (=वि० सं० १८९१) के बाद भारत सरकार इस बातके लिये मजबूर की गयी थी कि वह अपनी आयमेंसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हिस्सेदारोंको मुनाफा बाँटती रहे। श्री रमेश चन्द्र दत्तने हिसाब लगाकर बतलाया है कि सन् १८५७ (=वि० सं० १९१४) के पहिले भारत सरकारकी वार्षिक आय उसके वार्षिक भारतीय खर्चसे हमेशा अधिक हुआ करती थी। अगर उसे प्रतिवर्ष इङ्गलैण्डको रुपया न भेजना पड़ता तो ऋण लेनेकी कौन कहे उसे बचत रहा करती या करदाताओंका भार कम होता। सन् १८५७ (=वि० सं० १९१४) के बाद भी इङ्गलैण्डके लिये भारतवर्षका द्रव्यापहरण पहलेकी भाँति तो जारी ही रहा, साथ ही और भी ऐसे तरीके काममें लाये गये जिनके कारण कर्जेका भार तो भारतवर्षके करदाताओंपर पड़ता गया किन्तु उसका लाभ इङ्गलैण्डवालोंको होता गया। सार्वजनिक हितके नामपर जितने काम शुरू किये गये उन सबमें प्राय: इङ्गलैण्डवालोंकी ही पूंजी लगायी गयी और मुख्य मुख्य व्यवसायोंमें सरकारकी यह भी नीति रही कि यदि उनमें घाटा हो तो वह सरकारकी ओरसे पूरा कर दिया जायगा। इस प्रकार इङ्गलैण्डके पूंजीपति दोहरे फ़ायदेमें रहे। सन् १८७५ ईसवी (=वि० सं० १९३२) से राजऋणका हिसाब रखनेकी एक नई परिपाटी निकाली गयी। अबतक भारत सरकारका समस्त ऋण एक ही खातेमें

---

states with money in their time of need, should, with unwonted and incomprehensible penuriousness, refuse to help its own great Indian empire in its extremity of financial distress?"

Wingate: Our Financial relations with India, P. 29.

दर्ज होता था। पर आगेके लिये उसे दो भागोंमें बांटा गया—एक तो उत्पादक और दूसरा अनुत्पादक ऋण। ऊपरसे देखनेमें तो यह तरीका बहुत ही अच्छा मालूम होता है और यह भी आशा होती है कि इससे हिसाब अधिक साफ़ रह सका होगा। पर खाते अलग करनेमें जिस नीतिसे काम लिया गया उसने भी अप्रत्यक्ष रूपसे भारतवर्षको नुक़सान पहुँचाया। सन् १८७४ (= वि० सं० १९३१) में भारतवर्षका समस्त राजऋण एक अरब सत्रह करोड़ था। इसमें सत्रह करोड़से कुछ ऊपर सार्वजनिक हितके कहे जाने वाले कार्योंके लिये लिया गया था। सन् १८७५ (= वि० सं० १९३२) में सत्रह करोड़ तो उत्पादक ऋणके खातेमें लिखा गया और शेष एक अरब पाँच करोड़ अनुत्पादक या साधारण ऋणके खातेमें। आगेके लिये ऋणकी खतियौनीका नियम इस प्रकार रक्खा गया—

(१) उत्पादक कार्योंके लिये जो ऋण लिया जाय वह उत्पादक ऋणके खातेमें दर्ज किया जाय।

(२) सार्वजनिक उत्पादक कार्योंके लिये जो कुछ भी रक़म खर्च हो वह क़र्ज़ ली हुई समझी जाय। और यदि किसी वर्ष इस काममें जितनी रक़म ख़र्च हो वह सबकी सब क़र्ज़ न लेनी पड़े परन्तु उसका कुछ अंश बजटकी बचतमेंसे ही निकल आवे तो अनुत्पादक ऋणके खातेमें उतना कम करके वह रक़म उत्पादक ऋणके खातेमें जोड़ दी जाय।

यह नियम बहुत ही भ्रामक साबित हुआ। इसके अनुसार जब कभी बजटमें बचत होती तब उतनी रक़म उत्पादक कहे जानेवाले कामोंमें लगाकर उस खातेमें उतना कर्ज बढ़ा दिया जाता और साधारण खातेमें उतनी ही रकम घटा दी जाती। नतीजा यह होता कि देखनेमें तो अनुत्पादक ऋण कम होता और उत्पादक ऋण बढ़ता, किन्तु वास्तवमें कर देनेवालोंको इससे कोई लाभ न होता। क्योंकि ऋणकी अदाई तो हो नहीं जाती थी और उसके लिये सूद देना ही पड़ता था जो करके ज़रिये वसूल किया जाता था। उत्पादक ऋणकी वास्तविक परिभाषा

तो यह है कि वह ऋण ऐसे कार्योंके लिये लिया गया हो जिनसे देशको आर्थिक लाभ होता है और इस प्रकार उसके सूदके रूपमें जितना देना पड़ता है उससे अधिक मुनाफ़ेमें निकल आता है। इससे प्रत्येक देशमें उत्पादक ऋण उस देशके वैभवका ही द्योतक होता है। किन्तु भारतवर्षके सम्बन्धमें यह बात लागू नहीं हुई। उन्नीसवीं शताब्दी (वि० सं० १८५८-१९५७) में रेलों और नहरोंके लिये सरकारने कर्ज ले लेकर जितनी पूंजी लगायी उन सबमें उसे घाटेके सिवाय मुनाफ़ा नहीं हुआ। हाँ, ऊपर लिखे अनुसार उससे इङ्गलैण्डके उन पूंजीवालोंको लाभ जरूर हुआ जिन्होंने सरकारकी जमानतपर यहाँ कारबार चलाया और सरकारको कर्ज दिया। खतियौनीकी उपरोक्त पद्धतिके कारण हर साल सरकारी हिसाबमें उत्पादक ऋण बढ़ता हुआ और अनुत्पादक ऋण घटता हुआ दिखाई देने लगा। यहाँ तक कि सन् १९१५ (वि० सं० १९७२) में अनुत्पादक ऋण केवल एक करोड़ रह गया। किन्तु इसके बाद ही इसमें एकाएक वृद्धि हुई। महासमरमें इङ्गलैण्डको मदद पहुँचानेके लिये डेढ़ अरब रुपये भारत सरकारकी ओरसे भेंट स्वरूप दिये गये। भारतवर्षकी हैसियतको देखते हुए इसका शतांश भी भेंट स्वरूप दे सकना उसके लिये असम्भव था। किन्तु गैर-जिम्मेदार विदेशी सरकारने जिस तरह हो सका इतनी बड़ी रकम यहाँसे वसूल करके भारतवासियोंके नामपर इङ्गलैण्डको देदी। इसके बाद सन् १९१८ (वि० सं० १९७५) से लगातार छः वर्षोंतक बजटमें घाटा रहा करता था। फलस्वरूप एक अरब रुपयोंका कर्ज और हो गया। इस प्रकार बातकी बातमें ढाई अरबका क़र्ज़ हो गया।

इस स्थलपर एक और बात विशेष रूपसे विचारणीय है और वह यह कि सरकारने यह सब ऋण किनसे लिया—किनको अपना साहूकार बनाया। साधारणतया प्रत्येक देशमें इसका ध्यान रक्खा जाता है कि वहाँकी सरकारको जितने ऋणकी आवश्यकता पड़े उसका अधिकसे अधिक और यदि सम्भव हो तो समस्त अंश ही उसी देशके रहने वालोंसे लिया जाय। इससे वहाँकी प्रजाका लाभ होता है। एक ओर

यदि सरकार इस ऋणका सूद अदा करनेके लिये प्रजासे कर लेती है तो दूसरी ओर उसी सूदके रूपमें वही कर उसे वापस भी कर देती है। किन्तु भारतवर्षके सम्बन्धमें इस नीतिका अवलम्बन नहीं किया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने तो जितने कर्ज लिये वे इसी देशमें या तो अपने नौकरोंसे या इस देशकी प्रजासे लिये। किन्तु जबसे देशमें रेलकी सड़कें बनने लगीं और सरकारने विदेशी पूंजीपतियोंको अपनी जमानत-पर पूंजी लगानेके लिये प्रोत्साहित किया, तबसे प्रतिवर्ष इङ्गलैण्डमें ही बड़ी बड़ी रक़में कर्ज ली जाने लगीं। साधारणतया सरकार यही कहती रही कि भारतवर्षमें अधिक कर्ज मिल ही नहीं सकता। उसका कहना था कि एक वर्षमें पाँच करोड़से अधिक रुपया इस देशमें कर्ज नहीं मिल सकता। इसलिये जब कभी बड़ी रकमकी जरूरत पड़ती तब वह सीधे इङ्गलैण्ड और यूरोपकी बाजारोंमें दौड़ा करती थी। किन्तु गत महासमरके दिनोंमें यह बात स्पष्टरूपसे साबित हो गयी कि भारत-वर्षके सम्बन्धमें सरकारकी यह धारणा बिलकुल ही ग़लत है। उसने कभी यहाँ कर्ज लेनेकी कोशिश ही नहीं की। गत महासमरके दिनोंमें, पहले ही वर्ष छः करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया। आगे चलकर बिना किसी प्रकारकी कठिनाईके एक एक वर्षमें पच्चीससे चालीस करोड़ तककी रकम प्राप्त होती गयी। थोड़े समयके लिये ट्रेजरी बिलसके द्वारा जो रकमें ली गयीं वह इसमें शामिल नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि सरकार जब तक अन्य अन्ताराष्ट्रिय बाधाओंके कारण मजबूर नहीं हो गयी तबतक उसने इस देशकी जनतासे ऋण लेनेका प्रयत्न नहीं किया और इस सम्बन्धमें अपना नीति बराबर ऐसी रक्खी जिससे इङ्गलैण्डके पूंजीपतियोंका ही लाभ हो।

भारतीय राजऋणका आरम्भसे अबतकका इतिहास भारतवर्षपर इङ्गलैण्डके द्वारा होनेवाली अनेक प्रकारकी ज्यादतियोंमेंसे एक बड़ी ज्यादतीका ही इतिहास है। वर्तमान युगमें जिन सिद्धान्तोंके अनुसार राजऋण लिये जाते हैं उनमेंसे एक भी सिद्धान्त भारतवर्षके सम्बन्धमें लागू नहीं होता। हर हालतमें राजऋणका उद्देश्य यही होता है कि

उससे देशका लाभ हो, चाहे उसकी उत्पादन शक्तिकी वृद्धि करके, चाहे किसी आकस्मिक घटनासे उसकी रक्षा करके। ऐसे कार्योंका सम्पादन ऋणके द्वारा करनेका अभिप्राय यही होता है कि चूंकि उनका लाभ केवल तात्कालिक कर-दाताओंको ही नहीं होता इसलिये उनका भार भी केवल उन्हींको नहीं उठाना चाहिये। केवल यही सिद्धान्त यदि उलट कर लगाया जाय तो वर्तमान भारतीय राजऋणपर पूरी तरह लागू होता है। इङ्गलैण्डके साथ भारतवर्षका सम्बन्ध होनेसे उसे जितने प्रकारकी हानियाँ हुईं वह केवल उन लोगोंको ही नहीं सहनी पड़ीं जो उस सम्बन्धके प्रारम्भमें मौजूद थे। इसलिये उस सम्बन्धका ख़र्च भी आगेकी पीढ़ियोंको बर्दाश्त करना चाहिये। अस्तु।

जबसे लाहौरकी कांग्रेसने भारतीय राजऋणके सम्बन्धमें स्वतन्त्र भारतकी नीति घोषित की है तबसे विदेशी सरकारी अफ़सर उसकी जिस प्रकार तर्कहीन आलोचना करते रहे हैं उसका आरम्भमें कुछ ज़िक्र किया गया है। उन आलोचनाओंको पढ़नेसे एक ध्वनि यह भी निकलती है मानों कांग्रेसने एकाएक कोई नई बात कर डाली हो। किन्तु यदि कांग्रेसके आरम्भसे आजतकके सारे प्रस्तावोंको उलटा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उसने एकाएक अथवा बिना सूचनाके यह घोषणा नहीं की है। शुरूसे ही वह सरकारकी सैनिक नीति और ख़र्चके उन तमाम तरीक़ोंकी आलोचना करती आ रही है जिनके कारण भारतवर्षपर न्यायविरुद्ध अत्यधिक आर्थिक बोझ पड़ता आरहा था। निस्सन्देह वह आलोचना शुरू शुरूमें नरम शब्दोंमें और धीमी आवाज़में होती थी। किन्तु उसका कारण यह था कि सभी बातोंके सम्बन्धमें कांग्रेसके आन्दोलनका यही तरीक़ा था। ज्यों ज्यों यह तरीक़ा असफल होता गया और देशमें ताक़त आती गयी त्यों त्यों कांग्रेसकी आवाज़ भी तेज़ होती गयी। सन् १९२१ (वि० सं० १९७८) में असहयोग आन्दोलन शुरू होनेके बाद उसने विस्तारकी बातोंमें सरकारकी आलोचना करनेकी नीति छोड़ कर स्वराज्यकी प्राप्तिको हो सब बीमारियोंकी एक दवा समझकर उसीके लिये कोशिश करना

शुरू किया। गयाकी कांग्रेसमें इस सम्बन्धकी पहली स्पष्ट घोषणा हुई। उसमें कहा गया कि सरकार अपने सैनिक खर्च और अन्य अनावश्यक और बड़े बड़े खर्चोंके कारण राष्ट्रके ऊपर ऋणका भार लादती चली जा रही है और अगर यह क्रम बन्द नहीं किया गया तो हिन्दोस्तानके लोगोंके लिये सम्मान और सुखके साथ जिन्दगी बसर करते हुए अपना काम चला सकना असम्भव हो जायगा; इसलिये यह कांग्रेस घोषित करती है कि जिन व्यवस्थापक सभाओंका देशने बहिष्कार कर दिया है उनकी मंजूरीसे उसे कोई कर्ज लेनेका अधिकार नहीं है। और अगर फिर भी सरकार इस प्रकार कर्ज लेती जायगी तो स्वराज्य मिलनेपर यद्यपि अब तकके कर्जोंको भारतवर्ष अदा करेगा पर अब आगे लिये हुए कर्जको अदा करनेके लिये जिम्मेदार न रहेगा।[१] लाहौरकी कांग्रेसका प्रस्ताव यद्यपि कुछ अंशोंमें गयाकी

---

१. Whereas by reason of unjustifiable military expenditure and other extravagance, the Government has brought the national indebtedness to a limit beyond recovery; and whereas the Government still pursues the same policy under cover of the authority of the so called representative assemblies constituted without the suffrage of a majority or any substantial fraction of the voters and despite their declared repudiation of the authority of such assemblies to represent the people.

And whereas if the Government is permitted to continue this policy, it will beeome impossible for the people of India ever to carry on their own affairs with due regard to the honour and happiness of the people and it has therefore become necessary to stop the career of irresponsibility.

This Congress hereby repudiates the authority of the legislatures, that have been or may be formed by the Government in spite of the national boycott of the said institutions in future to raise any loans or to incur any liabilities on behalf of tho nation, and notifies to the world that on the attain-

कांग्रेसके प्रस्तावसे अधिक उग्र मालूम होता है, किन्तु उसके शब्द या भावमें उत्तरदायित्वका अभाव नहीं है। इस वर्ष कांग्रेसने पूर्ण स्वतन्त्रता-को भारतवर्षका राजनैतिक लक्ष्य घोषित करनेके पश्चात् अपने अन्ताराष्ट्रिय उत्तरदायित्वको ध्यानमें रखते हुए ऋणके सम्बन्धमें भी अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा। लाहौरके प्रस्तावमें कहा गया है कि विदेशी सरकारने भारतवर्षपर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे जितने आर्थिक बोझ लादे हैं, उन सबकी जांच एक स्वतन्त्र पञ्चायतके द्वारा करायी जायगी और भारतवर्ष उन्हीं जिम्मेदारियोंको लेगा जो उस पञ्चायतकी रायमें न्यायसङ्गत होंगी।[१]इस प्रकारकी घोषणा सर्वथा न्यायानुकूल

---

ment of Swarajya the people of India though holding themselves liable for all debts and liabilities rightly or wrongly incurred hitherto by the Government will not hold themselves bound to repay any loans or discharge any liablities incurred on and after this date on the authority or sanction of the so called legislatures brought into existence in spite of the national boycott.

Resolution No. 7 of the 37th session of the I. N. Congress held at Gaya during December, 1922.

१. This Congress is of opinion that the financial burdens directly or indirectly imposed on India by the foreign administration are such as a free India cannot bear and cannot be expected to bear. This Congress, whilst re-affirming the resolution passed at the Gaya Congress in 1922, therefore records its opinion for the information of all concerned that every obligation and concession to be inherited by Independent India will be strictly subject to investigation by an independent tribunal, and every obligation, every concession, no matter how incurred or given, will be repudiated if it is not found by such tribunal to be just and justifiable.

Resolution No. 10 of the 44th session of the I. N. Congress held at Lahore in December, 1929.

है। इसमें किसी भी पक्षके लिये शिकायतकी गुञ्जाइश नहीं है। जांच करनेका भार भारतवर्षने अपने ऊपर नहीं रक्खा, बरन् उसे एक स्वतन्त्र पञ्चायतको सौंपा है, जिसका पक्षपातरहित न्यायपूर्ण निर्णय इङ्गलैण्ड और भारत दोनोंको ही समान रूपसे मान्य होना चाहिये।

कन्हैयालाल।

स्त्री शिक्षा

नवीन सञ्चार

जब सोता मनुष्य जागता है, तब उसके सभी अंगोंमें नये प्राण-का संचार एक साथ होता है। तो भी ज्ञानेन्द्रिय, आंख, कान आदि कुछ पहिले जागती हैं, पीछे हाथ पैर आदि कर्मेन्द्रिय अपना काम शुरू करती हैं। जानाति, इच्छति, यतते, अर्थात् पहले ज्ञान, तब इच्छा, तब क्रिया—जैसा ज्ञान होता है, उसके अनुसार इच्छा, उसके अनुसार क्रिया। यदि ज्ञान शुद्ध है, सच्चा है, तो इच्छा भी शुभ होगी, और इच्छा शुभ है, तो क्रिया हितकर होगी। यदि ज्ञान मिथ्या है तो भाव भी दूषित होंगे, और कर्म भी नीचे गिरानेवाले पातक होंगे। इस-लिये ज्ञानका पुनः पुनः परिष्कार संस्कार बहुत आवश्यक है। कृष्णका आदेश है—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

ज्ञान, सत्‌ज्ञान, के समान मनुष्यके मनको, शरीरको, सारे जीवन-को, पवित्र करनेवाला, शोधनेवाला, कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। ऐसे ही, अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, के समान मनुष्यके जीवनको बिगाड़नेवाला पदार्थ कोई दूसरा नहीं है। देशके और जातिके उद्धारमें सबसे पहला कर्तव्य, सबसे आवश्यक कार्य, सच्चे ज्ञानका सङ्ग्रह और प्रचार है। पच्छिमका भी मसला है कि—"नालेज इज़ पावर" अर्थात् "ज्ञान ही बल है।" कृष्णका पुनः पुनः उपदेश है—

बुद्धौ शरणमन्विच्छ···बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।

सात्विक बुद्धिकी, सात्विक ज्ञानकी शरण लो। उसके नाशसे सर्व-नाश, उसके उद्धारसे सर्वोद्धार है। इस नियमके अनुसार भारतवर्षकी

सूत्रात्मा, दीर्घकालकी निद्रा और स्वप्नोंके बाद, जब नये दिन, नये युग, के लिये जागी तब उसने पहला यत्न नये प्रकारोंसे सच्चे ज्ञानके सङ्ग्रहका और मिथ्याज्ञान, अन्धविश्वास, अन्धश्रद्धा और अन्धभक्तिके हटानेका आरम्भ किया।

स्वामी दयानन्दने, ब्राह्मसमाजके नेताओंने, श्री सय्यद खांने, मैडम ब्लावाटस्कीने हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन सम्प्रदायोंके भीतर उत्पन्न हुए शरीरोंसे, सब ज्ञानोंकी मूलभूत धार्मिक सात्विक बुद्धिको जगानेका, ज्ञानके संशोधनका और महापातक, देशका पतन करनेवाली, अन्धश्रद्धा और अन्धभक्तिको हटानेका यत्न प्रायः एक ही समयमें आरम्भ किया, जिसको आजसे कोई साठ वर्ष हुए होंगे।

इसके अनन्तर ही नये प्रकारके अर्द्धस्वतन्त्र विद्यालयोंकी स्थापना हुई, अलीगढ़में, लाहौरमें, पूनामें, कलकत्तामें और काशीमें। ज्ञानाङ्गके संशोधनकी इस प्रवृत्तिके साथ साथ कर्मांगके परिमार्जनके लिये समाज-सुधार और शासनसुधारके यत्नका भी प्रारम्भ हुआ। प्रान्त प्रान्तकी बोलियोंमें विविध विषयोंपर ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे। पचीस तीस वर्षके बाद देशकी सूत्रात्माने एक कदम और आगे बढ़नेका निश्चय किया। जहाँतक मुझे मालूम है, अव्वल अव्वल स्वामी श्रद्धानन्दजीने सब प्रकारसे स्वाधीन विद्यापीठकी नीव कांगड़ीमें, संवत् १९५९ अर्थात् सन् १९०२ ई० में डाली। राजनीतिके क्षेत्रमें भी स्वराज शब्दका प्रयोग स्पष्ट रूपसे दो वर्ष बाद महासभामें हुआ। तबसे यह भाव, सर्वथा अपने ही पैरोंपर खड़े होनेका, भारतीय सूत्रात्माके सामाजिक राष्ट्रीय जीवनके सभी अङ्गोंमें, बढ़ता ही गया, और गुजरात, अलीगढ़, दिल्ली, काशी, पटना, लाहौर और पूना आदि स्थानोंमें पूर्णतया स्वतन्त्र राष्ट्रीय विद्यापीठ युवकोंके लिये स्थापित हो गये हैं, जिनमें शिक्षाके मध्यम प्रान्तीय भाषा मुख्य और आंग्ल भाषा गौण हैं।

स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षाकी ओर भी इन स्वतन्त्र विद्यापीठोंके स्थापनसे कुछ पूर्व उसकी सूत्रात्माने ध्यान देना आरम्भ किया। उसको अनुभव हुआ कि

केवल आधे अङ्गमें प्राण सञ्चार हो और आधा अङ्ग प्राणहीन बना रहे, तो देहकी प्रगति नहीं हो सकती। इसलिये बहुत सी कन्या पाठशालाएँ भी बनीं। "श्रेयसि केन तृप्यते" अच्छे काममें सन्तोष न होना ही अच्छा है। उचित ही है कि हम लोगोंका यही भाव हो कि बालिका-शिक्षामें, बालकशिक्षाकी अपेक्षा बहुत विलम्ब और बहुत कमी हो रही है। और इस भावको लेकर दिन दिन अधिकाधिक यत्न किया जाय। पर साथ ही इसके, अपना मन खिन्न न हो इसलिये यह याद रखना भी अनुचित नहीं है कि पश्चिमके अपनेको सभ्यतम माननेवाले देशोंमें, जितने कालका अन्तर पुरुषशिक्षा और स्त्रीशिक्षाके आरम्भमें हुआ, उससे बहुत कम अन्तर इस देशमें हुआ है।

और एक विशेष है। पश्चिममें. यूरोपमें अथवा अमरीकामें, स्त्रियोंका कोई अलग विद्यापीठ नहीं है। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज आदिके विद्यापीठोंके अन्तर्गत गर्टन और न्यूनहैम आदि स्त्रियोंके विद्यालय तो सुने जाते हैं। पर स्वतन्त्र महिला विद्यापीठ मेरे सुनने में नहीं आया। पूर्वमें जापानने इस विषयमें राह दिखायी। और अन्वर्थनामा पुण्यपत्तन पूनामें, जहाँ लोकमान्य तिलक और उनके मित्रोंने, देशभक्ति और त्यागके भावसे भावित फर्गसन कालेजकी स्थापना प्रायः पचास वर्ष हुए की, वहीं अब सन् १९१८ ई० में आचार्य कर्वेने महिलाविद्यापीठकी नींव डाली, और उसके चार ही वर्ष पीछे तीर्थराज प्रयागमें मेरे मान्य मित्र श्री संगमलाल जी और श्री पुरुषोत्तमदास जीने महिला विद्यापीठका आरम्भ किया। इन दोनों नामोंको आपने पहचान तो लिया ही होगा, यद्यपि मैंने उनके अन्तिम अंशोंको छोड़ दिया है। उसे मैंने इस कारण छोड़ दिया है कि उन अंशोंमें जात—पाँतके राष्ट्रविनाशक और समाजघातक झगड़ोंका उग्र गन्ध आता है।

महिला-विद्यापीठ और मातृभाषा

मेरे परम स्नेहभाजन मित्र और बड़े दानी श्री शिवप्रसादजीकी सूचनासे, और जापानके महिलाविद्यापीठके विवरणोंकी प्रतियाँ भेजनेसे श्री कर्वेके मनमें पूनाके महिलाविद्यापीठकी स्थापना करनेकी इच्छाका

उदय हुआ। हिन्दीको राष्ट्रीय भाषा बनानेमें भी श्री शिवप्रसादजीका भाग बहुत बड़ा है। उनके सतत आग्रहसे आज बहुतेरी ऐसी सार्वजनिक सभाओंमें हिन्दीमें व्याख्यान होने लगे हैं, जहाँ पहले अंग्रेज़ीमें भाषण होते थे। और हिन्दीके मध्यमसे शिक्षा देनेवाले स्वतन्त्र राष्ट्रीय काशी विद्यापीठकी भी उन्होंने एक बड़े दानसे स्थापना की है। महिला विद्यापीठों और पाठशालाओंको, बालकों और युवकोंके विद्यापीठोंकी अपेक्षा, यह एक बड़ा सौकर्य है कि उनमें शिक्षाका मध्यम प्रकृत्या मातृभाषा ही होती है। अन्य विद्यापीठोंमें तो आज तक बहस जारी है कि ऐसा हो सकता है और होना चाहिये या नहीं, और बड़ी कठिनतासे, बहुत विरोधका सामना करके, राष्ट्रीय भावसे प्रेरित सज्जन, किसी न किसी तरह, हिन्दी उर्दू आदिका चंचुप्रवेश करा पाये हैं। पर पूना और प्रयागके महिलाविद्यापीठोंमें प्रारम्भसे ही मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है। इससे देशको परास्परानुग्रहन्यायसे दिन दूना रात चौगुना लाभ होगा। स्त्रियोंमें भी जब परिष्कृत भाषाका और विविध नये शास्त्रोंके साङ्केतिक शब्दोंका ज्ञान फैलेगा, तब अच्छे ग्रन्थोंकी रचनामें प्रोत्साहन और वृद्धि होगी। अच्छे ग्रन्थ अधिक संख्यामें जब मिलने लगेंगे, तब देशमें सत्ज्ञानका प्रचार अधिक बढ़ेगा।

सत्ज्ञानकी आवश्यकता

पर सात्विक बुद्धि और सत्ज्ञानके प्रचारका लक्ष्य उन सब व्यक्तियोंके मनमें सदा बना रहना चाहिये, जिनका सम्बन्ध किसी प्रकारकी शिक्षाके कार्यसे है। संसारमें प्रायः देख पड़ता है कि एक एक गुणके साथ एक एक भारी दोष भी लगा रहता है। एक ओर देवता यत्न करते हैं, तो दूसरी ओर दैत्य भी यत्न करते हैं। "यद्देवा अकुर्वंस्तद्दैत्या अभिद्रुत्य पाप्मना अस्पृशन।" जिस रसायन शास्त्रसे मनुष्योंकी प्राणरक्षा हो सकती है, उसीसे युद्धमें लाखोंका संहार किया जाता है। छापनेकी कलाका यूरोपमें आज चार सौ वर्ष हुए, आविष्कार हुआ, मानो एक नये सूर्यका उदय हुआ। सच्चे अच्छे ग्रन्थोंके प्रचारमें भारी सहायता मिली। पर बहुत वर्ष नहीं बीते कि सब प्रकार-

के दुष्ट ग्रन्थोंके द्वारा दुष्ट भावोंका प्रचार होने लगा। अब तो "फाल्स प्रोपागेंडा" बड़ी सेनाओंसे भी भयङ्कर वस्तु हो रही है। जिस ज्ञानके बलसे मनुष्यमात्रका सब प्रकारका परम हित साधा जा सकता है, उसी ज्ञानके बलसे दुर्बलोंको अपार पीड़ा दी जा सकती है और दी जाती है। सच्चे लक्ष्यसे चित्तके बहक जानेका कैसा दुष्परिणाम होता है, इसके उदाहरणोंसे इतिहास भरा पड़ा है, और हमारा भाग्यहीन देश आज कितने ही वर्षों से, बल्कि सदियोंसे इसका घोर अनुभव कर रहा है। अङ्गरेजी शब्द "पवलिक सरवैंट" का अर्थ है "जनताका सेवक"। अधिकारी पुरुषको जनताका सेवक होना चाहिये। जनताके हितके लिये अधिकारीको अधिकार-शक्ति सौंपी जाती है। इस लक्ष्यको भूलकर उस शक्तिको वह अपना निजी हक समझने लग गया, खादिमकी जगह हाकिम बन गया, नौकरकी जगह मालिक, सेवककी जगह सेव्य और रक्षककी जगह भक्षक।

विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीड़नाय।
खलस्य, साधोर् विपरीतमेतत्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

विद्या कठहुज्जतकी, धन सम्पत्ति गर्व अभिमान अहंकारकी, शक्ति परपीड़नका साधन हो जाती है, खलके, दुर्जनके, हाथमें। साधुके, सज्जनके हाथमें वही वस्तु ज्ञान, दान, और रक्षणका उपाय होती है।

कैसी विद्या देनी चाहिये

अतः शिक्षा देनी चाहिये, ऐसा निर्णय होनेके साथ ही यह भी निर्णय कर लेना आवश्यक है कि क्या शिक्षा देनी चाहिये। बुद्धिका, चारित्र्यका, शरीरका, अर्थात् मस्तिष्कका, हृदयका, हाथ पैरका, तीनों-का परिष्कार संस्कार जिससे हो, विविध ज्ञानोंका सङ्ग्रह, भावकी शुद्धि, शरीरकी सुरूपता, सबलता, नीरोगता, तीनोंको जो साधै, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारो पुरुषार्थ जिससे पूरे हों, सत्यं, प्रियं, हितं, अथवा सत्यं, सुन्दरं, शिवं, "ट्रुथ-ब्यूटी गुडनेस", तीनों जिससे सिद्ध

हों, वही शिक्षा सच्ची और पूरी शिक्षा है। केवल अक्षर ज्ञान हो जाना, पढ़ना-लिखना जान लेना, बहुत सी कठहुज्जत, जल्प, वितण्डा कर सकना, किसी आधिभौतिक शास्त्रकी हजारों छोटी छोटी तफसीली बातोंको याद कर लेना, या कोई फुर्तीली कला ही दिखा सकना, इतने मात्रको शिक्षा नहीं समझना चाहिये। मनुष्यके हृदयके भावोंके ज्ञान, भले बुरे का ज्ञान, स्वार्थ परार्थके भेदका ज्ञान, परार्थकी हानि न करके स्वार्थ-साधनके उपायका ज्ञान, सक्षेपमें भावशुद्धि, यह शिक्षाका मुख्य अङ्ग है। इसपर जोर देनेकी आवश्यकता इस हेतुसे है कि प्रायः देख पड़ता है कि जनता शब्दको पकड़ लेती है, अर्थकी परवा नहीं करती। स्वराज शब्दकी ऐसी ही दुर्दशा चारो ओर देख पड़ती है। उसके मूल अर्थके निर्धारणकी किसीको चिन्ता नहीं है, और इसी कारणसे राजनीतिके क्षेत्रमें विनयाभाव और व्यूहाभाव इस देशमें तो है ही, पच्छिमके देशोंमें भी बड़ी त्रुटि है। इन कारणोंसे पच्छिममें विज्ञानशास्त्री, सायंटिस्ट, भी अब बहुधा कहने लिखने लग गये हैं कि केवल आधिभौतिक ज्ञानके विकास और वृद्धिसे मानवजातिका कल्याण नहीं है, आध्यात्मिक ज्ञान भी साथ साथ बढ़ना चाहिये। सद्भावकी वृद्धिके बिना ज्ञानकी और तज्जनित शक्तिकी वृद्धि तो "पयःपानं भुजंगानां केवलं विष वर्धनम्", साँपको दूध पिलाना विषहीको बढ़ाना है।

भारतके पुरुष-विद्यापीठोंमें प्रायः देख पड़ता है कि विशेष शास्त्रोंकी शिक्षा बहुत दी जाती है, पर सदाचारकी, छोटोंके, बड़ोंके, और तुल्योंके साथ किस तरह बर्ताव करना चाहिये कि जिसमें मेल मुहब्बतसे जिन्दगी बसर हो, रोज रोज आपसमें खटपट न होता रहे, इस इस्तिमतादीयकी, तबियतकी, शिक्षा प्रायः नहीं दी जाती। प्रचलित रीतिकी संस्कृत शिक्षामें भी शुष्क वैयाकरण, शुष्क नैयायिक, कठमुल्ला, कठपण्डित ही अकसर बनते हैं, मनुष्य, इन्सान, आदमियत, इंसानियत, मनुष्यता रखनेवाले, जैसे देशको, समाजको, चाहिये, वैसे नहीं बनते। महिला-विद्यापीठोंमें तो इसकी परम आवश्यकता है कि स्त्रियाँ सौम्यमूर्ति, सौम्यस्वभाव, घरमें और समाजमें मेल-मुहब्बत, हमदर्दी,

अनुकम्पा फैलानेवाली बनें। इसलिये, शिक्षकोंकी आँख इस ओर सदा लगी रहनी चाहिये कि शिक्षितको वैसा ज्ञान विशेष रूपसे दिया जाय, जिससे भावकी शुद्धि, हृदयकी शुद्धि भी हो, केवल बुद्धिकी प्रखरता नहीं। दोनोंकी साथ साथ आवश्यकता है "विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।" विद्यासे विनय विशिष्ट उत्तमं नयनं अर्थात् डिसिप्लिन, सेल्फ डिसिप्लिन यानी आत्मनिग्रह होना चाहिये, और विनयसे योग्यता सब प्रकारकी होनी चाहिये। यही आदर्श है। पर प्रायः देखा यही जाता है कि विद्यासे भी मद हो जाता है। जैसे बलमद, ऐश्वर्यमद, अभिजनमद, रूपमद, धनमद आदि विक्रिया होती हैं, वैसे ही बुद्धिमद, विद्यामद भी बहुतायतसे पाया जाता है। पश्चिमकी जातियोंमें तो यह सब प्रत्यक्ष ही है। वे अपनेको सब विषयोंमें सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और दूसरी जातियोंका तिरस्कार करते हैं। इसीका फल हालका महायुद्ध हुआ। इन्हीं कारणोंसे, भावकी अशुद्धिसे महाभारतका युद्ध भी हुआ था।

एवं वीर्यमदोत्सिक्तैर्भूरियंतैर्महासुरैः।
पीड़िता भृशसंतप्ता जगाम प्रपितामहम्।

इत्यादि

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

अहंकार, काम, क्रोध, लोभ ये नरकके द्वार हैं। वही शिक्षा हितकर है, जिससे इनका निरोध हो, दमन हो, इनपर काबू मिले, सच्चा विनय, सेल्फ डिसिप्लिन, आत्मनिग्रह सिद्ध हो। इन दुर्भावोंकी वृद्धिसे केवल जाति जाति और राष्ट्र राष्ट्रका ही युद्ध नहीं होता, बल्कि प्रत्येक जाति और राष्ट्रके भीतर वर्ग वर्गमें नित्य कलह होता है, और उससे भी भयानक अवस्था यह प्राप्त होती है कि स्त्रीजाति और पुरुषजातिमें परस्पर तिरस्कार और घृणा और क्रोध होकर घर घरमें कलह और बिगाड़ होने लगता है। मुझे पच्छिमके देशोंका साक्षात् ज्ञान नहीं है, पर पुस्तकों और पत्रों और वहां घूमे हुए मित्रोंसे यह जान पड़ता है कि

अमेरिकाके बड़े शहरोंमें जहां सौ विवाह होते हैं, वहां पचास तलाक होते हैं। संस्कृत हिन्दीमें तो तलाकके लिये शब्द भी नहीं है। यदि सात्विक बुद्धि, सच्चे ज्ञान, पवित्र भावोंका प्रचार हो, तो न अनमेल विवाह हों और न तलाककी जरूरत और नौबत आवे। घर घरमें बालक, स्त्री, और पुरुष प्रसन्न हों, सुखसे रहें, एक दूसरेका हंसता हुआ मुंह देखें। यही तो सब ज्ञान, सब विद्या, सब शक्ति, सब राजनीति, सब शासनपद्धतियोंके अनेक आडम्बरका एकमात्र उद्देश्य है। यदि यही न सधा, तो ये सब व्यर्थ हैं। राजा साहब और महाराजा साहब और नव्वाब साहब और बड़े लाट साहब और छोटे लाट साहब और जज साहब और मजिस्ट्रेट साहब आदिको तनखाह कहिये, मजदूरी कहिये, टिकस कहिये, जनता इस वास्ते नहीं देती कि वे हुकूमतका मजा, ऐश्वर्यका रस, चीखें, बल्कि इस वास्ते कि ऐसा प्रबन्ध करें कि घर घरमें, विशेष करके अन्नदाता खेतिहरके घरमें बच्चे हंसें खेलें।

भारत पच्छिमका अनुकरण एक बातमें करे

दैवकी गतिसे, अपने पापोंके उदयसे, भारतवर्ष कुछ कालसे पच्छिमके पीछे बँध गया है, और जातीय जीवनके प्रत्येक अङ्गमें यहाँके नवशिक्षित सज्जन उसीका अनुकरण करनेमें देशका भी और अपना भी कल्याण मानते हैं। और निश्चयेन कई बातें पच्छिममें ऐसे गुणकी हैं कि उनका अनुकरण करना उचित भी है। पर कुछ घोर दोषकी भी बातें हैं, जिनका बर्जन भी नितान्त उचित है। अति-विलासिता और गर्वालुता आदि दुष्ट भाव इसी दोषकोटिमें हैं। मैं हृदयसे प्रार्थना किया करता हूँ कि और चाहे जिन बातोंमें हम लोगोंको पच्छिमका अनुकरण करना पड़े, "मैन वर्सस वुमन" स्त्री और पुरुषके परस्पर प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वंद्विता, विरोध, कलहकी दुर्दशा भारतवर्षको न भोगना पड़े। घर घरमें गौरी और शङ्कर और गणेश विराजें। रुद्र, काली, भूत-प्रेत प्रमथगण का देवासुर सङ्ग्राम न मचे। इसलिये आरम्भसे मनोग्राही रोचक उपायोंसे शिक्षा, बालक बालिकाओंकी दोनोंकी, ऐसी होनी चाहिये, जिससे सद्भावोंकी वृद्धि हो।

स्त्रियोंका स्थान और महत्त्व

जैसा पच्छिममें पुरुषोंने स्त्रियोंका तिरस्कार किया और उनको विवश किया कि जीविकाके हेतु वे पुरुषोंसे प्रतिद्वन्द्विता करें, वैसा ही भारतमें भी पुरुषोंके ही दोषसे स्त्रियोंकी बुद्धि और आदर्शों और भावोंमें अवनति आयी। यहां भी स्त्रियोंका अति तिरस्कार किया गया। और भारतके पतनमें अवश्य यह एक मुख्य कारण हुआ।

प्राचीन भारतमें यह दशा नहीं थी। मनुका स्पष्ट आदेश है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

जिस कुलमें महिलाजनकी पूजा होती है, वहां देवता प्रसन्न रहते हैं। जहां इनकी पूजा नहीं, वहां सब यत्न निष्फल हैं। जहां ये दुखी हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है। जहाँ ये सुखी हैं, वह कुल वृद्धि समृद्धि पाता है।

अवश्य भारतकुलके पतनमें स्त्रियोंका अनादर हेतु हुआ है। और अब जब पुरुषोंमें इस बुद्धिका उदय हुआ है कि इनका आदर करें, इनको सुखी रखें, तो अवश्य भारतका फिरसे अभ्युदय होगा। किन्तु पच्छिमकी अन्धश्रद्धा और अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये, यह शर्त है। इस देशमें तो प्राचीन भ व स्त्रियोंके आदरका इतना है कि देवी देवताओं और महापुरुषोंके नाममें पहले देवीका और पीछे देवका नाम ग्रहण होता है, मिस्टर और मिस्ट्रैसके उल्टे क्रमसे नहीं। यथा सीताराम, लक्ष्मीनारायण, गौरीशङ्कर, शचीपुरन्दर, देवकीवसुदेव इत्यादि। और पुराण इतिहासकी कथाओंमें जितना स्थान और भाग महापुरुषोंका है, उतना ही दिव्य महिलाओंका है। वेदके कुछ मन्त्रोंकी द्रष्ट्रीकर्त्री स्त्रीऋषि सुनी जाती हैं। उपनिषदोंमें ब्रह्मवादिनियोंकी चर्चा है। "पुराकाले तु नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते," विधिपूर्वक उपनयन संस्कार और गुरुकुलवास आदि बालिकाओंका भी होता था। उत्तर रामचरितमें कथा है कि एक विद्यार्थिनी वाल्मीकिके गुरुकुलको छोड़कर दूसरे

विद्यास्थानमें पढ़ने गयी। "वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।" समय समय पर कौसल्याने, सीताने, मन्दोदरीने, कुन्तीने, द्रौपदीने, गान्धारीने, सुलभाने, सत्यभामाने, मदालसाने, लीलाने, चूड़ालाने, अपने पति, पुत्र, मित्र आदिको ज्ञानपूर्ण उपदेश दिया है। आज भी, इस गिरी अवस्थामें भी, सब धर्मोंमें सच्चे हृदयसे पूजा, ज्ञानकी देवी सरस्वती, धनसम्पत्तिकी देवी लक्ष्मी, और प्राण आरोग्य सौन्दर्य तुष्टि-पुष्टिकी देवी गौरी, अन्नपूर्णाकी ही पूजा होती है। तथा गौरी गणेश, कृष्ण यशोदा, ईसामर्यम, हसन हुसैन और फातिमा, अर्थात् बालक और माताकी। यदि अरबी फारसी शब्दोंमें सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी-अन्नपूर्णा रूपी परमात्माकी शक्तियोंको बतलाना हो तो अल्लाके तीन सिफाती नाम कहे जा सकते हैं, अर्थात् अल—अलीम, अल—मालिक, और अर—रज्जाक। हिन्दुओंमें जितना प्रचार और आदर भगवद्गीताका है, स्यात उतना या उससे भी अधिक दुर्गासप्तशती अथवा चण्डीचरितका है, जिसमें इन्हीं तीन देवियोंकी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वतीकी महिमाका वर्णन है।

मातृ-पूजा

यदि पूछा जाय कि एक शब्दमें वह लक्ष्य बताओ जिसके ध्यानमें रखनेसे विद्यापीठोंमें, क्या पुरुषोंके क्या महिलाओंके, भूल न होगी, तो वह शब्द मातृपूजा है। माता शब्दके पूरे अर्थको मनमें बैठाना चाहिये। कितना स्वार्थत्याग, कितना विनयन और आत्मदमन, कितनी तपस्या, सन्तानके हितके लिये, इस एक शब्दमें भरी है। मातृत्वके आदरसे देशमें ये सब भाव फैलेंगे, और इनके फैलनेसे सब पुण्यका और कल्याणका उदय होगा। भारतवर्षके हृदयने, अन्तःप्रेरणासे, "वन्देमातरम्" को अपना राष्ट्रीय महामन्त्र बनाया है, तो इसको दैवकी बड़ी शुभ प्रेरणा ही समझना चाहिये। इस विद्यापीठके अनुष्ठानपत्रमें यही भाव देखकर मुझको बड़ा सन्तोष हुआ।

"कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः।" यह कृष्णका उपदेश है।

गृहकी लक्ष्मी, गृहकी अन्नपूर्णा, स्त्रियां हैं। गृहके बाहरकी मिहनत मजदूरीके कामके लिये पुरुष हैं। स्त्रियोंकी शिक्षा विशेष रूपसे ऐसी होनी चाहिये, जिससे गार्हस्थ्यका सब कृत्य अच्छा हो, बालक-बालिका सुखी रहें, पुष्ट और नीरोग रहें। बालक वीर और सत्यसंघ पुरुष बनें, और बालिका पूर्णवयसमें उत्तम माता, वीरप्रसविणी, वीरसूः हों। मनुका आदेश है—"उपाध्यायान् दशाचार्यः शताचार्यांस्तथा पिता। सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते" ॥ गौरवमें, गुरुतामें, आदरणीयतामें, और गुरु होनेकी, शिक्षा देनेकी, शक्तिमें, माता हजारों पिता और आचार्यों और उपाध्यायोंसे अधिक है। अरबोंके ऋषि मुहम्मदने भी ऐसा ही कहा है, "अल् जन्नतो तहताकदमिल् उम्म", अर्थात् माताके पैरोंके नीचे स्वर्ग बिछा हुआ है। यदि देशमें माता उत्तम सात्विक बुद्धिवाली हो जायँ, तो उसी दिन देशके दिन लौटें और सब प्रकारकी स्वाधीनता और समृद्धिका इसमें बास हो। यहाँकी सरस्वती, लक्ष्मी, और अन्नपूर्णा, जो पच्छिमको चली गयी हैं, हम लोगोंके दुःशीलके कारण, वे फिर लौट आवें।

प्रमुख महिलाओंके विचार

मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि इस देशकी प्रमुख महिलाओंका भी ऐसा ही विचार है और पच्छिमकी नकल करनेका नहीं। यहाँ प्रयागमें श्रीमती राजवाड़ेने क्रास्थ्वेट गर्ल्स कालिजके वार्षिक उत्सवमें, अभी हालमें तथा मंडीकी रानी साहिबाने लखनऊमें तथा ग्वालियरकी महारानीने दिल्लीमें, ऐसे ही भावोंको प्रकट किया है। ग्वालियरकी महारानीने सात्विक महिलाके हृदयोचित बड़ी मधुर बात कही, कि बालकपूजा 'बेबीवर्शिप' अन्य "हीरो वर्शिप", वीरपूजा, आदि पूजाओंसे अधिक उचित है। यदि स्त्रियोंका परम धर्म, बालकपूजा अर्थात् मातृत्व, मातृहृदयका, सम्पादन है, तो पुरुषोंका परम धर्म मातृत्वपूजा है। इन प्रमुख देवियोंसे भी अधिक मान्य हमारी आदर-भाजन बहिन श्रीमती सरोजिनी नायडू हैं। ये भारतवर्षकी राष्ट्रीय महासभाकी प्रधान एक वर्षके लिये रह चुकी हैं, और भारतवर्षके बाहर भी अमेरिका और

अफरीकामें, महात्मा गाँधीके परामर्शसे, भारतके उद्धारके लिये, राजनीतिक कार्य इन्होंने किया है, तथा विदेशी अङ्गरेजी भाषामें अपनी अद्भुत कविता शक्ति और वाग्मितासे पश्चिमके कई बड़े बड़े देशोंमें भारत का मुख उज्ज्वल किया है, और सिद्ध कर दिया है कि भारतके महिला जनमें किसी दूसरे देशकी महिलाओंकी अपेक्षा कोई कमी, उत्तमोत्तम योग्यताकी नहीं है। इन देवीने भी, हालमें, बम्बईमें, महिला-सम्मेलनमें, ऐसे ही भावोंका समर्थन किया है, और कहा है कि स्त्रियोंका कार्य संसार भरमें शान्ति फैलाना है, यदि पुरुष अपनी मूर्खतासे युद्ध करना भी चाहें। 'या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥"

मनुने भी इसी आशयसे कहा है—

एतावानेव पुरुषः यज्जायाऽत्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद् यो भर्त्ता सा स्मृतांगना ॥

माता, पिता, और सन्तान, ये, तीन मिलकर एक पूर्ण पुरुष बनता है। एक एक अलग अलग तीनों खण्डित अङ्ग मात्र हैं। ज्ञानियोंका सिद्धान्त है कि जो पति है वही पत्नी है। पति शिरःस्थानीय शिवरूपी, पत्नी हृदयस्थानीय विष्णुरूपी, और सन्तान हस्तपाद स्थानीय ब्रह्मारूपी—यह घरमें विराजमान प्रत्यक्ष त्रिमूर्ति है।

वसिष्ठने इसी हेतुसे चाहा था कि जब राम बनवासपर कटिबद्ध हुए, तब सीताको राजगद्दीपर बिठा दें।

अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्।

पर सीता भी जङ्गलको रामजीके साथ चली गयी, नहीं मानी। पति पत्नी एक दूसरेके अर्धांग हैं, यह तो यहांके सनातन पौराणिक शिव पार्वती अर्ध नारीश्वरके रूपकसे ही प्रसिद्ध है। पर हम लोगोंने अपनी मूर्खतासे इसको भुला सा दिया है। प्रकृतिके बिना पुरुष, शक्तिके बिना शिव तो शव है, मुर्दा है। "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं, न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पंदितुमपि।" पति और पत्नीके विषयमें उपनिषदोंमें कहा है, "पूरयतो वै अन्योन्यस्य कामं"। सब

प्रकारकी कामना, सब भाव इन दोके बीचमें समाप्त हैं। ये दो, अन्योऽन्यके प्रति, भर्त्ता-भार्या ही नहीं हैं। माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहिन, सखासखी, गुरु-शिष्य, स्वामी-दासी, स्वामिनीदास, सब कुछ हैं। प्रत्यक्ष ही हैं, सभी भाव, सभी सम्बन्ध, प्रकृति पुरुषके भीतर हैं, उसी सनातन द्वन्द्वमें भरे हैं, उसीसे उत्पन्न और उसीमें लीन होते हैं। हिन्दू भाइयोंको स्यात् ये वाक्य असमञ्जससे, अथवा अत्यनुचित भी जान पड़ेंगे। सात्विक बुद्धिसे उन्होंने काम लेना कम और पोथीके अक्षरोंपर आंख-मूंदी श्रद्धासे काम लेना अधिक कर रखा है। तो पोथीके अक्षर भी सुनिये। वाल्मीकि रामायणके आरण्यकांड, अ० १२, में दशरथ महाराज कौसल्याके विषयमें कहते हैं। 'यदा यदा हि कौसल्या दासीवच्च सखीव च। भार्यावद् भगिनी वच्च मातृवच्चोपतिष्ठते ॥' तथा शकुन्तलाने दुष्यन्तको (म० भा०, आदि०, अ० ९८) कहा है।

सखायः प्रविविक्तेषु भवंत्येताः प्रियंवदाः।
पितरो धर्म कार्येषु, भवंत्यार्त्तस्य मातरः॥

तथा (रघुवंश, अ० ८ में) इन्दुमतीके पर-लोक-प्रस्थानपर विलाप करते अज कहते हैं,

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणारहितेन वेधसा हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥

इस प्रकारसे उत्तम गार्हस्थ्य, पति पत्नी सन्तानके प्रीतिपूर्ण गृहकी बड़ी महिमा पुनः पुनः पुराने आर्षग्रन्थोंमें गायी है। सब आश्रमोंमें गृहस्थ श्रेष्ठ है, यह मनुकी पुनः पुनः आज्ञा है, संन्यासी तकको भी वही अन्न और ज्ञान भी देता है। भक्ति शास्त्रियोंने भी कहा है,

वदनानि प्रसन्नानि स्निग्धान्यक्षीणि यत्र च।
रमंते बांधवा यत्र तत्रैव रमते हरिः॥

बुद्धि-शक्ति और प्राण-शक्ति

भाफकी शक्ति, विद्युत्की शक्ति, गोला बारूदकी शक्ति, एयरोप्लेन, सबमरीन आदिकी शक्ति, यह सब शक्तियां बहुत आडम्बरवाली, रोबदाब दिखानेवाली अवश्य हैं। पर स्पष्ट है कि सभी मनुष्यकी बुद्धि

शक्तिके अधीन हैं। और बुद्धिशक्ति भी अन्नशक्ति प्राण-शक्तिके अधीन है। यदि पुरुष बुद्धिस्थानीय है, तो स्त्री प्राणस्थानीय है। देवी भागवत्‌में कहा है—

मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे ।
प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम् ॥

संसारके आदिमें दो शक्तियां, बुद्धिशक्ति और प्राणशक्ति उत्पन्न हुईं। प्राणशक्ति स्त्रियोंके अधीन है। वे ही समाज और राष्ट्रकी "रिजर्व फोर्स" शक्तिनिधि, हैं। युद्धके घोर कर्ममें भी जब देवपुरुष, महिष और शुंभ निशुंभका संहार न कर सके तब देवीने उनका संहार किया। सब शक्तियोंमें मुख्य प्राण-शक्ति है। वह अन्नमें निहित है। अन्न ब्रह्म, अन्नमयं हि सोम्य मनः। अन्न घर घरमें स्त्रियोंके अधीन है। शुद्ध अन्नसे शुद्ध और स्वस्थ शरीर और शुद्ध और स्वस्थ मन बुद्धि चित्त होता है। "आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ स्मृतिलाभः, स्मृतिलाभे सर्व ग्रन्थीनां सम्प्रमोक्षः। सत्यमन्नजनितो जनदेहः। यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः। यस्यान्नपानपुष्टांगः कुरुते धर्मं संचयं, अन्नदातुस्त्रयो भागाः एकं कर्ता समश्नुते। मनुष्याणां समारम्भाः सर्वे आहारसिद्धये"। इत्यादि आर्ष वाक्योंमें अन्नकी महिमा कही है। पूर्व पश्चिमके प्राचीन अर्वाचीन, दोनों चिकित्सा शास्त्रोंका निष्कर्ष यही है कि नब्बे फीसदी रोग मनुष्योंके कुभोजन और कुविवाह (अर्थात् कुचाल) से होते हैं। इसी शास्त्रनिश्चयके आधारपर मन्वादि धर्म-व्यवस्थापकोंने अन्नशुद्धि और विवाह-शुद्धिपर इतना जोर दिया है। एकसे अपने शरीरका उत्कर्ष, दूसरेसे सन्तानका उत्कर्ष दोनोंके मिलनेसे समस्त समाजका नित्य नित्य उत्कर्ष। ज्ञानवान् पुरुषकी भी अकाल मृत्यु रोगादिकसे हो जाती है सो क्यों? इस प्रश्नके उत्तरमें मनुने कहा है—प्रमादादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति। प्रमादसे, (मदनो मन्मथो मारः) मदन सम्बन्धी भूलसे और अन्नदोषसे, ऐसा होता है। रोटी-बेटीका सम्बन्ध प्राण-सम्बन्ध है, अन्य सब सम्बन्ध कृत्रिम सम्बन्ध हैं। इसलिये भोजन

और विवाहमें परम सावधानी करनी चाहिये। सो उसी पूर्वोक्त लक्ष्य से ब क जानेके कारण आजकल हिन्दू समाजमें इन दो अति गुर्वर्थ विषयोंमें केवल झूठा जाति, उप-जाति और उपोपजातिका नाममात्र देखा जाता है और कोई स्वाभाविक गुण दोष नहीं। सो अन्न-शुद्धि, अन्न-सुख और विवाह-सुख, सब सुखोंके मूल और सार, स्त्रियोंके अधीन हैं। ऐसी स्त्रियोंके गृहकृत्यको, "हुजरी", पिसौनी, आदि शब्दोंमे जो अपमान करते हैं. वे परम मूर्ख हैं, थोथे अभिमान अवलेप दर्पसे अपने पैरमें आप कुल्हाड़ी मारते हैं, अपने अन्नसुख और विवाह-सुखकी जड़ खोदते हैं। अथवा यह हो सकता है कि जो इन सुखसारोंसे वञ्चित हैं, वह अपने चित्तको बहलानेके लिये, ये मिथ्या भाव फैलानेका यत्न करते हैं, कि नौकरी चाकरी, डाक्टरी. वकालत तथा महाजनी आदिका कार्य शानदार कार्य है और गृहकृत्य पिसौनी है। ऐसे जन या तो दुर्ज्जन हैं अथवा मूर्ख हैं। क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है, सब दौलत, हुकूमत, इज्जत आदि गृहस्थोंके सुखके साधनमात्र हैं। सब समाज और राष्ट्रके प्रबन्धका केन्द्र और एकमात्र लक्ष्य गृह है। सौर, "न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।" गार्हस्थ्य उत्तम हो, यह सब ज्ञानका लक्ष्य है। गार्हस्थ्यका उत्तम बनाना, यह स्त्रियोंके अधीन है। इससे स्त्रियोंकी शिक्षामें. गार्हस्थ्य-शास्त्र और उसके अनन्तर साधन भूत कलाशास्त्र, जिसमें "कर्पासस्य च कर्तन, कर्तितस्य च वान" भी शामिल है (अन्नपूर्णामें वस्त्रपूर्णा अन्तर्भूत है) बाल-चिकित्सा शास्त्र, सदन्न—सदाहारशास्त्र आदिकी प्रधानता होनी चाहिये। युवकोंकी बी० ए० एम० ए०. की सो, अथवा पण्डितों, मौलवियोंकी सी पढ़ाई और उपाधियोंकी ओर युवतियोंका ध्यान नहीं होना चाहिये। दोनोंके कर्म प्रकृतिने स्वभाव प्रभव गुणोंने विभक्त कर दिये हैं, उस सांसारिक कर्तव्य कार्यकी दृष्टिसे ही शिक्षा भी होनी चाहिये। हाँ, सब उत्सर्गोंके अपवाद भी होते हैं। जिनको शिवकी पत्नी, अन्नपूर्णा, और विष्णुकी पत्नी लक्ष्मी नहीं होना है, वे ब्रह्माकी बेटी सदाकुमारी सरस्वती, "वीणा—पुस्तक—धारिणी" बन सकती हैं, और पुरुषोंकेसे रोजगारी काम कर

सकती हैं। इस पौराणिक रूपमें भी अपवाद दिखाते हुए भी उत्सर्गकी उपस्थिति अंशत: दिखायी है। पुस्तकधारिणी होते हुए भी वीणाधारिणी भी है। तथा कृष्ण "अखिलकलादि गुरु" होते हुए भी प्राधान्येन भगवद्गीताके गायक उपदेशक ही हैं। शिक्षामें, क्या बालक क्या बालिकाको, तीन "आर" तो आवश्यक हैं ही। अर्थात रीडिंग, राइटिंग, रिथमेटिक—पढ़ना, लिखना और गणित। पर चौथा "आर' रिलीजन, धर्मतत्व, इनसे भी अधिक आवश्यक है क्योंकि भाव-शुद्धि इसके बिना होना अति कठिन है। †

भगवान्दास

---

† यह भाषण श्रीप्रयाग महिला विद्यापीठके वार्षिकोत्सवके समय किया गया था।

नमक-कर

जबसे गांधीजीने नमक-करके विरोधमें सत्याग्रह करनेका निश्चय किया, तबसे सब लोगोंकी दृष्टि इस करकी ओर लगी हुई है। लेकिन वास्तवमें इस करका विरोध आज ही नहीं हो रहा है बल्कि बहुत वर्षोंसे चला आ रहा है। ब्रिटिश सत्ताकी स्थापनाके साथ साथ इसका भी विरोध आरम्भ हुआ, और प्रत्येक राजनीतिज्ञ एवं देशप्रेमीने इस करके विरुद्ध आवाज उठायी। काङ्ग्रेसके आरम्भिक दिनोंमें इसपर बड़ी गरमागरम बहस होती थी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अङ्ग्रेजी शासनके पूर्व भी नमकपर कर लगता था। लेकिन जो महत्व इसे अङ्ग्रेजी शासनकालमें प्राप्त हुआ वह पहले कभी नहीं था। पहले यह एक बहुत मामूली कर गिना जाता था और इससे आय भी बहुत साधारण होती थी। अतः मुसलमान या हिन्दू राज्योंकी आयके वर्णनोंमें नमकके करका वर्णन नहीं आता और यदि कहीं आ भी गया तो गौणरूपसे दिया हुआ रहता है।

अङ्ग्रेजी कालमें इसका आरम्भ व्यापारसे हुआ। भारतवर्षमें सबसे पहले अङ्ग्रेजोंका पैर बङ्गालमें जमा, अतः इस करका विकास भी पहले (बिहार और उड़ीसा सहित) बङ्गालमें हुआ। नवाबने अङ्ग्रेज व्यापारियोंको बङ्गालमें करसे मुक्त कर दिया। वास्तवमें यह मुक्ति बाहरसे आये हुए मालपर थी, परन्तु कम्पनीके कर्मचारी देशके भीतर अपनी ओरसे व्यापार करते थे और कर देनेसे इनकार करते थे। उस समय मुख्य अन्दरूनी व्यापार नमक, तमाखू, तेल और पानका था। इन्हीं चीजोंका व्यापार करके कम्पनीके नौकर लखपति हुए। इस व्यापारसे अधिकांश देशी व्यापारियोंका नाश हुआ। सन् १७६५ (संवत् १८२२) में

दीवानी प्राप्त होने पर कम्पनीके कर्मचारियोंके इस निजी व्यापारको बन्द करनेका प्रस्ताव हुआ। इसपर कम्पनीके अधिष्ठाताओंको स्वयम् आपत्ति हुई और कर्मचारियोंको निजी आमदनीमें इस कारण जो हानि उठानी पड़ती उसकी पूर्तिके लिये क्लाइवने एक ऐसा व्यापारिक सङ्घ बनानेकी आज्ञा माँगी जिसके हिस्सेदार कम्पनीके कर्मचारी हों, और जिसे नमकका पूरा व्यापार सौंपा जाय। सब उच्च कर्मचारी इस सङ्घके हिस्सेदार थे। इस सङ्घको नमक बनानेके सब अधिकार प्राप्त हुए, और खरीदारोंको कष्ट न पहुँचे इसलिये कीमत दो रुपया मन निश्चित हुई। नमकपर जितने और कर थे (जकात आदि) वह बन्द किये गये। परन्तु सङ्घकी स्थापनाका उद्देश पूरा नहीं हुआ। कर्मचारी अपने हिन्दोस्तानी गुमाश्तोंके नामसे निजी व्यापार करते ही रहे। अक्टूबर १७६८ (संवत् १८२५) में सङ्घ बन्द हुआ और नमकपर एक कर लगा। उससे विशेष आय न होते हुए देख हेस्टिंग्जने सन् १७७३ (संवत् १८३०) में कम्पनीका एकाधिकार कराया। उस समय बने हुए नियमोंके अनुसार तै हुआ कि नमक कम्पनीके लिये बनेगा, नमकके कारखाने पाँच वर्षोंके ठेकेपर दिये जायेंगे, ठेकेदार एक निश्चित मिक़दार निश्चित मूल्यपर देनेका वादा करेंगे और उन्हें एक निश्चित कीमतपर नमक व्यापारियोंको देना होगा। दोनों कीमतोंका अन्तर सरकारकी आय थी। इस प्रकारसे आय विशेष नहीं बढ़ी। तब हेस्टिंग्जने सितंबर १७८० (संवत् १८३७) में एक नया कानून प्रचलित किया कि सब नमक एजेण्टकी निगरानीमें मुलंघी[1] बनावेंगे और केवल कम्पनीको ही बेचेंगे जो उसे एकत्र कर व्यापारियोंको एक रुपया दो आनेसे एक रुपया आठ आनेतक हर मनपर कर लगाकर बेचेगी। इस कार्यके लिये एक एजेण्ट नियुक्त हुआ। इस एकाधिकारसे आय बढ़ने लगी। एकाधिकारके पक्षमें दो मुख्य कारण पेश किये गये। एक आयकी वृद्धि और दूसरा मुलंघियोंकी अवस्थाका सुधार, जिनमें वास्तवमें प्रथम ही सत्य है, क्योंकि मुलंघियोंकी दशा इस एकाधिकारसे

१. नमक बनानेवाले श्रमी। यही पहले भी नमक बनाते थे पर ठेकेदारकी अधीनतामें।

किसी प्रकार अच्छी नहीं हुई[1]। उन्हें सुन्दरबन जैसे मलेरियापूर्ण दल-दलमें काम करना पड़ता था और चौबीस परगनाके एजेण्टके कथनानुसार उनको साढ़े सात महीनोंके लिये कुल छः रुपया वेतन मिलता रहा। सरकारी एजन्सीका बढ़ा हुआ खर्च और आयका लोभ दोनोंसे नमककी दर बहुत ज्यादा रही; फलतः जितना करना चाहिये उतना नमक लोग इस्तेमाल नहीं कर सके। क्रैनफोर्डके अनुसार एकाधिकारमें नमकका ब्योरा इस प्रकार था:—

	लोकसंख्या (हजारोंमें)	नमक (पौंड) हजारोंमें	फी आदमी (पौंड)*
१७९३	२४०००	२८६०५४	११. ९०
१८०३	२७८४०	३१३८२०	११. २७
१८१३	३१७१७	३७०३६८	११. ६७
१८२३	३५५९३	४०७१९१	११. ४४
१८३३	४१२८८	३६०८६२	८. ७४
१८४३	४८६०७	४३७५९८	९. ०

सन् १८३६ (संवत् १८९३) में नमकके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए स्थापित कमेटीके सामने क्रैनफोर्डने हिसाब रखा कि बङ्गालके देहातके

* एक पौंड लगभग आधे सेरके बराबर होता है।

१. बंगालके नमक-करकी आय इस प्रकार है—

वर्ष	आय (पौंडमें)	वर्ष	आय (पौंडमें)
१७६६—६७	११ ९२६	१७७७—७८	५४१६०
१७६९—७०	१६९०७	१७७८—७९	६३६९७
१७७०—७१	७०९:४	१७७९—८०	३२२३७
१७७१—७२	६१६६३	१७८०—८१	८४२७
१७७२—७३	४२०२७	१७८१—८२	२९६०१३
१७७३—७४	२२९१९२	१७८४—८५	६२५७४७
१७७४—७५	१३०१०६	१७८६—८७	४५७६८७
१७७६—७७	१३९०१२		

मजदूरको सालाना आमदनीका छठवाँ हिस्सा नमकके लिये खर्च करना पड़ता है। कई गवाहोंकी राय थी कि यदि नमककी दर घट जाय तो खपत बहुत बढ़ सकती है। इसके अलावा नमक खरीदारके पास बहुत खराब दशामें पहुँचता था। ज्यादा कीमतके कारण नाजायज तरीकोंसे नमक बनाना बहुत प्रचलित था और इसको रोकनेके लिये कड़े कानून भी बने।

क्रैनफोर्डने अपनी गवाहीमें यह भी पेश किया कि नमक खरीदनेवाले बँधे हुए बड़े व्यापारी हैं जो कीमत बढ़ाते हैं। बङ्गाल और बिहारमें, जहाँ बनानेकी दिक्कतोंकी वजहसे नमक महँगा होता है, कर लगाना अनुचित है। गरीबोंपर इसका विशेष भार पड़ता है। बहुतसे आदमी जो नमक नहीं खरीद सकते, उसी किस्मकी घटिया चीजें खाते हैं जिससे उनके स्वास्थ्यपर बुरा असर पड़ता है। ऐसा एकाधिकार जिसमें मजदूरोंको विषैली हवामें घुल घुलकर मरना पड़े और जिसके कारण वास्तविक मूल्यसे ४००/५०० गुना अधिक दामपर नमक बिकता है, उसका नष्ट होना ही उचित है। डायरेक्टरोंने भी इसका विरोध किया परन्तु आयकी आवश्यकताके बहाने उसपर अमल नहीं हुआ।

इस एकाधिकारकी ओर अङ्ग्रेज व्यापारियोंका ध्यान आकृष्ट होने लगा। जहाजी और नमक कम्पनियोंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि इस एकाधिकारसे कम्पनीका नुकसान हो रहा है। एलविनने हिसाब किया कि एक टन नमक बनानेमें कम्पनीका (एक रुपया फी मनके हिसाबसे) चौवन शिलिंग और छः पेंस खर्च होता है, और अच्छेसे अच्छा अङ्ग्रेजी नमक चौआलीस शिलिंग फी टन पर कलकत्तेमें लाया जा सकता है। इस बातपर इङ्गलैण्डमें बड़ी बहस हुई, फलतः (संवत् १८९०) सन् १८३३ के चार्टरसे कम्पनीका व्यापार बन्द हुआ, परन्तु नमकका एकाधिकार ज्योंका त्यों रहा।

कलकत्तेकी एक प्रसिद्ध अङ्ग्रेजी व्यापारी कोठीने मांस सुरक्षित रखनेके लिये जो नमक चाहिये उसे नमक-करसे मुक्त करनेके लिये प्रार्थनापत्र भेजा। बहुत विरोध होते हुए भी उसको करसे मुक्त नमक मिला। पर

केवल इसीसे अङ्ग्रेज व्यापारी सन्तुष्ट नहीं थे। सन् १८३६ (संवत् १८९३) में पार्लमेण्टकी जो कमेटी नमकके बारेमें बैठी उसके सामने गवाही देते हुए बहुतसे प्रमुख अङ्ग्रेज व्यापारियोंने इस बातपर जोर दिया कि जिस प्रकार कपड़ेमें ब्रिटिश मालको विशेष सुविधा मिली है उसी प्रकार ब्रिटिश नमकको भी मिलनी चाहिये। और भारतवासियोंके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी उनको अधिक नमक सस्ते भावपर मिलना चाहिये, अतः कम्पनीका एकाधिकार नष्ट करना आवश्यक है। कम्पनीने इसका जोरोंसे विरोध किया परन्तु कमेटीने अपनी राय एकाधिकारके विरुद्ध दी। लेकिन तुरन्त व्यवहारमें लानेके लिये एक समझौतेकी सलाह दी कि कम्पनी अपना नमक गोलोंसे हमेशा बेचे; साथ ही साथ बङ्गालके बाहरसे आया हुआ नमक बंगालमें बेचा जा सके बशर्ते कि व्यापारी उसपर कर दें और वह कर कम्पनीके पिछले दस सालके नमकके लाभकी दरसे किसी हालतमें अधिक न हो। कमेटीपर अङ्ग्रेज जहाजी और नमकके व्यापारियोंका विशेष प्रभाव पड़ा, जिनको इससे ख़ास फायदा था। कारण जो जहाज भारतवर्षसे माल ले जानेके लिये ख़ाली आते थे, उनके लिये यह एक फायदेमन्द व्यापार था।

अब अङ्ग्रेजी नमक बङ्गालमें आने लगा। कम्पनीने नमक बेचनेकी दर बाँध रखी थी उसकी वजहसे, तथा कम्पनी अपने नमकपर बनानेके ख़र्च और करके रूपमें जो भारी बोझा लादती थी उससे अङ्ग्रेजी नमकके मुक़ाबलेमें बङ्गालके नमकका टिकना असम्भव सा था। भारत सरकारके मन्त्री हैलिडे[1]ने हिसाब लगाया कि यदि कर न रहे तो बङ्गालमें नमक बनानेका पूरा ख़र्च सौ मनके लिये पच्चीस रुपया (फी मन चार आना) तक रहेगा और रहता भी है। वास्तवमें सरकार फी मन एक रुपया अपना ख़र्च जोड़ती थी। देशी नमकपर इतना ज्यादा बोझ रहनेका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अङ्ग्रेजी नमककी आयात बढ़ने लगी, जैसा कि नीचेकी तालिकासे स्पष्ट है—

1. सन् १८५३ (संवत् १९२०) की कमेटीके सामने हैलिडेकी गवाही

वर्ष	ब्रिटिश नमक (मन)	कुल विदेशी
१८४६-७	३५२८३५	
१८४८-९	४५९८०३	
१८५०-१	१०१२६९८	
१८५१-२	१८५०७६२	२९२६८६६

नमककी एक दर जबरदस्ती तै करनेसे देशी नमकका जो नुकसान हुआ और हो रहा था लार्ड डलहौसीने उसके अन्यायको स्वीकार किया। पर उनकी सहानुभूतिका कोई व्यावहारिक असर नहीं हुआ। अङ्ग्रेज व्यापारी दबाव डालने लगे कि सब नमकका व्यापार उनके हाथमें आवे। नमकके एकाधिकारके विरुद्ध राय देखकर कम्पनीने सन् १८५३ (संवत् १९१४) में प्लौडेनकी अध्यक्षतामें एक कमीशन नियुक्त किया। उस कमीशनकी राय एकाधिकारके विरुद्ध और नमकपर केवल कर लगानेके पक्षमें थी। बल्कि बङ्गाल सरकार इसके पूर्व ही इस रायपर पहुँच चुकी थी। परन्तु नमक बनानेका एकाधिकार एकदम नष्ट नहीं हुआ। सन् १८६० (संवत् १९१७) की रिपोर्टके अनुसार तीन प्रकारसे नमक तैयार होता था। एक तो कोई भी नमक बनाकर हर मनपर तीन रुपया कर देकर बेच सकता है। दूसरे सरकार स्वयम् बनाकर खर्चमें तीन रुपया मन जोड़कर बेचती है। और तीसरे बाहरसे आया हुआ नमक तीन रुपया मन कर देता है। देशी नमकके दोनों प्रकार विदेशीके मुक़ाबलेमें न टिक सके। यह निम्न लिखित अङ्कोंसे स्पष्ट होगा:—

वर्ष	सरकारी नमक (मन)	विदेशी नमक (मन)
१८४०-४१	४०७३०००	५७४०००
१८५०-५१	२८२५०००	२६०१०००
१८६०-६१	४५५९०००	३०६००००
१८६१-६२	७६४०००	४५९३०००

यह हालत उस स्थितिमें थी जब कि लोग सरकारी नमकको पसन्द करते थे। सन् १८६३ (संवत् १९२०) में सरकारने नमक बनाना बन्द कर दिया। विदेशी नमकपर पहले सवा तीन रुपया मन कर था, वह घट कर सन् १८४९ (संवत् १९०६) में ढाई रुपया हुआ। सन् १८६० (संवत् १९१७) में सरकारने प्लौडेन कमेटीकी रायके खिलाफ कर फिर तीन रुपया किया। सन् १८७२ (संवत् १९२४) के लगभग बङ्गालका नमक बनानेका उद्योग नष्टसा हो गया[1]।

बङ्गालका नमक-कर (कुल लोकसङ्ख्याका हिसाब जोड़कर) फी आदमी चौदह पेन्स पड़ता था[2]। नवाबोंके कालमें कर मूल क़ीमतपर पाँच फी सदी तक होता था,[3] परन्तु कम्पनीके समयमें वही कर सात सौ दो हजार फी सदी तक बढ़ा।

मद्रासमें उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्व नाममात्रका कर था। सन् १८०० (संवत् १८५७) में उससे आय औसतन २८०००० रुपया थी[4]। परन्तु बङ्गालके विपरीत मद्रासके पूर्वी किनारेपर नमक बनानेके लिये प्राकृतिक सुविधाएँ थीं। गंजाम और राजमहेंद्रीका किनारा ऐसे दलदल और छिछले पानीसे पूर्ण है जहाँ नमक आसानीसे बन सकता है। तंजौर और मसलीपट्टम्में बहुत ही अच्छा नमक होता था। वेदारण्यम्के आसपासके किनारेपर बहुत शुद्ध नमक आप ही आप जमता था। इसके अतिरिक्त मिट्टीसे नमक निकालनेका व्यापार भी बहुत चलता था। "काली मिट्टीसे बहुत अच्छा सफेद नमक पैदा होता है और लाल मिट्टीसे गंदा और लाल नमक निकलता है। पहला मनुष्योंके खानेके

---

१. सन् १८६९-७० में बिक्रीका ब्योरा इस प्रकार था—
विदेशसे आया—७४२७००० मन; सरकारी बना हुआ—२२०००० मन (यह सन् १८६३ में नमक बनाना बन्द करनेके बाद जो बचा था उसकी बिक्री है); देशी कारखानोंमें बना—१३७००० मन।

२. बोर्ड आफ रेविन्यूके सेक्रेटरी सर सी. बीडनकी सन् १८७१ (संवत् १९२८) की पार्लमेंटकी सिलेक्ट कमेटीके सामने गवाही।

३. उपर्युक्त कमेटीके सामने जे. गेड्डीसकी गवाही।

४. प्लौडेन कमेटीकी रिपोर्ट।

काममें लाया जाता है और दूसरा अधिकांश पशुओंके[1]।" मिट्टीसे बने हुए नमकका प्रचार बहुत था और अनुकूल भूमिके कारण मुख्य केंद्र कडाप्पा, कर्नूल और बेल्लारी थे।

सन् १८०२ (संवत् १८५९) के पचीसवें रेगुलेशनसे केवल सरकारको ही नमक बनानेका अधिकार दिया गया। लेकिन इसके बाद ही मद्रास बोर्ड आफ रेविन्यूने अपनी राय बदल दी और चुंगी लगानेके पक्षमें राय दी। तब भी भारत सरकारने इस मतकी उपेक्षा करके सन् १८०५ (संवत् १८६२) के प्रथम रेगुलेशनसे मद्रासमें नमक बनानेका एकाधिकार घोषित किया। प्लौडेनका अनुमान था कि नये न्यायविभागका खर्च पूरा करनेके लिये सरकारने यह कार्य किया। एकाधिकारका तरीका बङ्गालके सदृश था। कारखानेदार कितनी मिक़दारमें बना सकते हैं उसे सरकार निश्चित करती थी और वह सरकारहीके हाथ बेच सकते थे। एकाधिकारमें मद्रासके नमकविभागका विवरण अङ्कों सहित संक्षेपमें इस प्रकार है—

साल	दर		सलाना औसत बिक्री (मन)
	१२० मन	फी मन	
	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	
१८०६–१८०९	७०–०–०	०– ९–४	३४१४५६०
१८०९–१८२०	१०५–०–०	०–१४–०	३१७४९०८
१८२०–१८२८	७०–०–०	०– ९–०	४७२४७९५
१८२८–१८४३	१०५–०–०	०–१४–०	४२०९४७५
१८४३–१८४५	....	०–१४–० १– ८–० १– ०–०	४३०२६४७
१८४५–१८५९	१२०–०–०	१– ०–०	५०३४४३३

१. थार्नहिल-सन् १८७६ (संवत् १९३३) की नमक कमेटीकी रिपोर्ट।

साल	दर		सालाना औसत बिक्री (मन)
	१२० मन	फी मन	
	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	
१८५१–१८६०	....	१– ०–० १– २–० १– ६–० १– ८–०	५९६६१६६
१८६१–१८६५	१८०–०–०	१– ८–०	६२९५८९९
१८६५–१८६९	....	१– ८–० १–११–०	६०१४९३६
१८६९–१८७५	....	१–११–० २– ०–०	६५०१६३८

सन् १८०९ (संवत् १८६६) में चौदह आना मन भाव करनेपर बिक्री बहुत घट गयी और आयमें विशेष वृद्धि भी नहीं हुई। अतः फिर नौ आना निश्चित हुआ, जिससे बिक्रीपर तुरन्त असर हुआ। इसके बाद बोर्ड आफ रेविन्यूने फिर चौदह आना तै करनेकी सिफारिश की। सरकारने पहले उसे अस्वीकार किया परन्तु सन् १८२८ (संवत् १८८५) में मान लिया। सन् १८४४ (संवत् १९०१) के छठे कानूनसे भारत-सरकारने अन्दरूनी जकात और चुङ्गी उठाली, और उसके स्थानपर नमकका भाव एक रुपया आठ आना रखा। मद्रास सरकारने इस वृद्धिका विरोध किया और डायरेक्टरोंसे अपील की। उन्होंने आज्ञा दी कि भाव घटाकर एक रुपया कर दिया जाय।

आरम्भमें भावके साथ साथ बिक्री बढ़ती गयी, यद्यपि उस वृद्धिको पर्याप्त नहीं कह सकते, कारण लोकसंख्या भी बढ़ रही थी। परन्तु भाव एक रुपया ग्यारह आना और फिर दो रुपया होनेपर बिक्रीका

कम होना स्पष्ट दिखायी देता है। वास्तवमें गवर्नरजनरलकी राय थी कि कोई कारण नहीं है कि जब बङ्गाल इतना कर दे रहा है तब मद्रास और बम्बई कम क्यों दें। अलबत्ता मद्रास सरकारने इस विचारका ज़ोरोंसे विरोध किया।

भाव बढ़नेपर सरकारको हमेशा इस बातका भय रहा कि मद्रासके भिन्न भिन्न उत्पत्ति-स्थानोंमें लोगोंको नमक आसानीसे मिल सकेगा या नहीं। अतः चोरीसे नमक बनानेकी वृद्धि होगी और इस प्रकार आय कम होगी। अपने एकाधिकारकी रक्षाके लिये तंजौर और वेदारण्यम्के सामुद्रिक दलदलोंका आप ही आप जमनेवाला नमक बेरहमीसे नष्ट करनेका उपाय निकाला। ऐसे नमकपर मिट्टी डालकर उसे नष्ट करनेकी भी प्रथा चलायी गयी। सन् १८६९ (संवत् १९२६) में नमकका भाव बढ़नेपर ज़मीनसे तैयार होनेवाले नमकका व्यापार सुधरनेका मौका था। परन्तु सामुद्रिक नमकसे स्पर्धा होनेके डरसे सरकारने उसके कारखाने बन्द करवानेका क्रम शुरू किया। बन्द करनेवालोंको मुआवज़ा भी दिया गया। तब भी सरकारको सन्देह रहा कि नाजायज़ नमकका बनना बन्द नहीं हुआ। सन् १८७६ (संवत् १९३३) के कमिशनने सलाह दी कि इन (कडाप्पा आदि) ज़िलोंमें नमकसे आय बढ़ानेके लिये यहाँके नाजायज़ कारखाने दबानेकी और ज़ोरोंसे कोशिश होनी चाहिये।

नमकके करका लोगोंपर क्या असर पड़ा इसके विषयमें स्वयम् सरकारी कर्मचारियोंकी भी राय स्पष्ट है। मद्रास बोर्डके अनुसार छः आदमियोंके एक कुटुम्बके लिये एक रुपया भाव रहनेपर नमकका ख़र्च एक रुपया पांच आना सात पाई पड़ता है और देहातके मजदूरोंकी औसत माहवार आमदनी लगभग इतनी ही थी। अतः बोर्डकी रायमें मूल्यमें नफा, लानेका किराया आदि जोड़नेपर बहुतसे मनुष्योंके लिये सामुद्रिक नमक ख़रीदना असम्भव होगा[१]। यदि यह अवस्था एक रुपया भाव रहनेपर थी तब डेढ़ या दो रुपया होनेपर क्या हुई होगी, इसकी कल्पना

१ प्लौडेन कमेटीकी रिपोर्ट।

पाठक स्वयम् आसानीसे कर सकते हैं। मद्रासके गवर्नर लार्ड होबार्टका मत था कि नमक-कर जिस प्रमाणमें बढ़ा उसी प्रमाणमें आय नहीं बढ़ी, अर्थात् खपत कम हुई। सन् १८७८ (संवत् १९३५) में लेडी होबार्टने हिसाब लगाया था कि प्रान्तमें फी आदमी दो रुपया चार आना पांच पाई कर-भार है और उसमें पांच आना नमकका कर है। सन् १८७६ (संवत् १९३३) के कमिशनने खोजकर मद्रास, मैसूर, कुर्गके लिये फी आदमी नमककी खपत ११·३८ रखी। यह वास्तवमें जितनी होनी चाहिये उससे बहुत कम औसत पड़ती है। परन्तु एक बातमें मद्रासका एकाधिकार बङ्गालकी तुलनामें अच्छा था। मद्रासका नमक अधिक साफ और शुद्ध था।

इंग्लैंडके नमकके व्यापारियोंका ध्यान मद्रासकी मण्डीकी ओर भी आकृष्ट हुआ। सन् १८७६ (संवत् १९३३) का कमिशन उन्हींके दबावसे नियुक्त हुआ। कमिशनने चुङ्गी लगानेके पक्षमें राय दी। मद्रास सरकारने एकाधिकारका समर्थन किया। इसके पूर्व प्लौडेन कमेटीने भी चुङ्गीके पक्षमें मत दिया था, परन्तु वह कार्यान्वित नहीं हुआ था। इस बार भारत सरकारने केवल चुङ्गी लगानेके साथ साथ नमककी मिकदार और शुद्धता कायम रखनेके लिये सरकारी कारखाने भी रखनेकी सिफा-रिश की। इस सिफारिशके अनुसार सन् १८८७ (संवत् १९४४) तक मद्रासमें सत्तासी फी सदी नमक गैर सरकारी कारखानोंमें बनने लगा। परन्तु विदेशी नमकका पैर वहाँ जमने नहीं पाया।

बम्बईमें सन् १८३८ (संवत् १८९५) के पूर्व नमकपर एक सा नियमित कर नहीं था। हर जिलेमें अलग ढङ्गसे कर लगता था और उसका कोई विशेष सिद्धान्त भी नहीं रहा। उसकी आमदनी दो लाखके लगभग थी। नमक-करके बारेमें बहस तो सन् १८२५ (संवत् १८८२) से ही चली परन्तु सन् १८३८ (संवत् १८९५) में कहीं उसके नियम बने। इन नये नियमोंके अनुसार यह निश्चय हुआ कि कारखानेसे उठानेके पूर्व नमकपर आठ आना मन कर लगाया जाय, नमकके खेत लायसेन्सपर दिये जायँ, नमकपर जकात हटा दी जाय,

और नाजायज तरीकोंसे बनानेवालोंको सजा दी जाय। सन् १८४४ (वि० सं० १९०१) में सरकारने निश्चय किया कि शहरोंकी चुङ्गी हटाकर नमकका कर एक रुपया किया जाय। परन्तु इसकी घोषणा करते समय जनताको केवल करकी वृद्धि दिखलायी गयी और चुङ्गी बन्द करनेका जिक्र नहीं किया। लोग इस भ्रममें रहे कि कर दुगुना हो रहा है। इस अत्याचारके कारण बड़ी उत्तेजना फैली और सूरतमें बलवा हुआ। अन्तमें सरकारने कर आठ से बारह ही आने तक बढ़ाया[1]।

परन्तु चोरीसे नमक इतना अधिक बन रहा था कि सन् १८५६ (संवत्१९१३) की प्लौडेन कमेटीने फिर आठ आने दर करनेकी सलाह दी। भारत सरकार इसके विपरीत सारे देशका नमककर बङ्गालके बराबर करनेकी फिक्रमें थी। बम्बई सरकारने इसके विरुद्ध अर्जी पेश की कि देखनेमें यद्यपि बङ्गालका कर अधिक मालूम पड़ता है, तथापि वास्तवमें बम्बईका कर अधिक है। लेकिन भारत सरकारने एक नहीं सुनी। उन्हें सन् १८५७ (संवत् १९१४) के गदरका बोझा दूर करना था। सन् १८६१ (संवत् १९१८) तक कर एक रुपयेसे सवा और डेढ़ रुपये तक पहुँचा। कर बढ़ानेसे खपत कम हुई परन्तु आय बढ़ती ही गयी और इसी वजहसे सरकारको एक प्रकारकी निश्चिन्तता थी कि करसे चाहे जितनी तकलीफ हो, आय घटनेका कोई डर नहीं है। परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि लोगोंको तकलीफ थी। विकाजी रुस्तमजीके नेतृत्वमें सन् १८५६ (संवत् १९१३) में किसानोंकी ओरसे अर्जी पेश हुई कि नमकपर कर लगनेसे लोगोंको यह भी गरीबीका आराम छोड़ना पड़ा। सन् १८७३ (संवत् १९३०) में बम्बईमें फी आदमी सालाना

---

१. सन् १८३८ में (संवत् १८८५) जकात उठानेसे १६६०००० की हानि हुई और आठ आना नमककी दर करनेसे १४०९००० का लाभ हुआ। शहरोंकी चुंगी हटानेसे १०८८००० की हानि और नमककर चार आना बढ़ानेसे ७३१००० लाभ हुआ। प्लौडेनके अनुसार (सन १८५२-३) कुल हानि सरकारको ४९१११४ रुपयेकी उठानी पड़ी। पेडरकी रायमें जनताका इस करसे लाभ हुआ कारण ३४८५००० रुपयेके कर बन्द हुए और २३१८००० रुपयेके नये कर लगे।

नमककी खपत एक रुपया एक आना पाँच पाई थी और माहवार फी आदमीकी आमदनी ढाईसे तीन रुपये तक थी[१]।

करकी अधिकताके कारण चोरीसे नमक बनाने और बाहरसे लानेका व्यापार खूब गरम था। इसको रोकनेके लिये कानून भङ्गकी सजा बढ़ा दी गयी। छोटे कारखाने बन्द गये किये। काठियावाड़ और कच्छके नमकको गुजरातमें आनेसे रोकनेके लिये सन् १८३६ (संवत् १८९३) में एक चुङ्गीकी सरहद बनी। मारवाड़का नमक रोकनेके लिये सरहद उधर भी दोहाद तक बढायी गयी। दमन और गोआके पोर्चुगीजोंके विरुद्ध भी एक सरहद तैयार हुई थी। पेडरने इस चोरीके नमकको बन्द करनेके लिये एकाधिकारका उपाय सुझाया[२]। सन् १८७३ (संवत् १९३०) की कमिटीमें इस बातपर विशेष बहस हुई कि यदि बङ्गालके किसान तीन या सवा तीन रुपया कर दे सकते हैं तो क्या कारण है कि बम्बईके नहीं दे सकते। कई गवाहोंने इसका कारण मुख्यतः यह बतलाया कि बम्बईमें लगान बङ्गालसे बहुत अधिक है।

उत्तर-भारतमें नमक काफी इफरातमें है। पञ्जाबमें खेवड़ाके नमकके पहाड़ोंमें 'मेयो साल्ट माइन' संसारकी एक प्रसिद्ध खान है[३]। इसमें नमकके अलावा पोटशियम, मैग्नेशियम् आदि कई उपयोगी क्षार भी पाये जाते हैं। इनमें खोदनेका खर्च फी टन एक रुपया तेरह आना पड़ता है। इस खानका नमक प्राचीन कालसे निकल रहा है। इसके अतिरिक्त कोहाटमें बहादुरखेलके पास नमककी तह १००० फीट मोटी और आठ नौ मील लंबी है। उसका नमक और आसानीसे निकलता है। कोहाटकी खानें पहले लड़ाके पठानोंके हाथमें थीं। इसलिये आरम्भमें सरकारने उनपर विशेष कर लगानेकी हिम्मत नहीं की।

---

१. सन् १८७ (संवत् १९३०) की कमेटी ऑफ ईस्ट इण्डियन फायनान्सके सामने फरदूनजीकी गवाही।

२. प्लौडेने रिपोर्ट-पृ० ३१.

३. इसमें तीन खानोंकी उत्पत्ति विशेष है। उनमें ५५० फुट मोटी और एक मील लम्बी नमककी तह है।

खेवड़ाकी खानें सन् १८५० (संवत् १९०७) में सरकारने ले लीं। नमकपर दो रुपया मन कर लगा। पंजाबके गवर्नर मैकलिआडने स्वयम् स्वीकार किया कि पहले किसी समय इतना ज्यादा कर नहीं था। सरकारने दूसरे स्थानोंमें नमक बनाना मना किया और खानोंकी निगरानी कड़ी की। परन्तु कोहाटके नमकपर चार आना मन ही कर रखा। वास्तवमें सरहद्के लोग नमकका कर बढ़ानेसे इतने बिगड़ते थे कि एक बार कर बढ़ानेका प्रयत्न करनेपर सब हथियार लेकर लड़ने तैयार हुए। दो तीन अफसर मारे भी गये। इसी कारणसे सरकार हिचकती थी। कोहाटके नमकको रोकनेके लिये सिन्धुके किनारे एक चुङ्गीकी सरहद बनी। कर-वृद्धिसे आयपर जो असर पड़ा वह निम्न-लिखित अंकोंसे स्पष्ट होगा:—

वर्ष	आय
सिक्खोंके समयमें	४ लाख
अक्तूबर १८४९-५० एप्रिल	८ ,,
१८५०-५१	१५ ,,
१८५१-५२	१३ ,,
१८५२-५३	१७ ,,
१८५३-५४	१९ ,,

नमक बनानेका खर्च दो आना मन था। सन् १८६० (संवत् १९१७) में कर दो रुपया दो आना और कुछ दिन बाद तीन रुपया हुआ।

लार्ड लारेन्सने गवाही देते हुए स्पष्ट कहा कि लोग नमकके इस करको बड़ा भारी अत्याचार समझते हैं[1]। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस भारी करसे खपत घटी। सरकारने भी यह मान लिया परन्तु

---

१. सन् १८७१ (संवत् १९२८) की सिलेक्ट कमेटी ऑन इंडियन फायनान्सने हिसाब लगाया कि उत्तरमें फी आदमी आठ पौंड (चार सेर) खपत है। बाज़ारमें एक रुपयेमें पचीस पौंड नमक मिलता है और सालाना औसत मजदूरी छत्तिस रुपया है अर्थात् हर एक आदमीकी आयपर साढ़े चार फी सदी टैक्स है।

अपना एकाधिकार अबाधित रखा। सरकारने करखानेवालोंको मजबूर किया कि शोरा बनानेसे जो नमक निकलता है उसे नष्ट करें।

नमकका एक और उत्पत्ति-स्थान राजपूताना है। जयपुरमें साम्भर झील राजपूतानेका सबसे बड़ा नमकका केन्द्र है। बरसातमें उसका क्षेत्रफल नब्बे वर्गमीलतक बढ़ता है। पानीके सूख जानेपर नमक जमा रह जाता है। साम्भरको छोड़कर जोधपुरमें दिण्डवाना और फलोदी तथा बीकानेरमें लोकरसर नामकी नमककी झीलें हैं। इसके अतिरिक्त राजपूतानेके कई स्थानोंमें क्षारके निर्भर हैं जिनसे बहुत अच्छा नमक बनता है। उदाहरणार्थ मारवाड़में पचभद्रा। यह नमकके स्रोत अङ्ग्रेजोंके हाथोंमें अकस्मात् आये। पहले वे ईस्टइन्डिया कम्पनीको हरजाना चुकानेके लिये मिले थे परन्तु उसके बाद कम्पनीने उनको पट्टेपर ले लिया।

सन् १८६० (संवत् १९१७) के लगभग भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें कर इस प्रकार था:—

	रु० आ० पा०		रु० आ० पा०
मद्रास	१—१३—०	पश्चिमोत्तर प्रान्त	३—०—०
बम्बई	१—१३—०	पञ्जाब	३—०—०
बङ्गाल	३— ४—०		

करकी भिन्नताके कारण सब प्रान्तोंमें नमकका भाव भिन्न था। अतः एक प्रान्तका सस्ता नमक दूसरे प्रान्तमें जाकर वहाँके कृत्रिम कारणोंसे महँगे बनाये हुए नमकसे स्पर्द्धा न करने पावे और राजपूतानेकी देशी रियासतोंका नमक बिना कर दिये न आवे इस उद्देश्यसे सन् १८४३ (संवत् १९००) में चुंगीकी दीवार का बनना शुरू हुआ। वह दीवार बढ़ते बढ़ते सन् १८७० (संवत् १९२७) तक सारे भारतमें, अटकके ऊपर सिन्धुके किनारेसे राजपूताना, मध्यभारत होते हुए मद्रासकी उत्तरी सरहदपर महानदीतक फैल गयी। अङ्ग्रेज अफसरोंके शब्दोंमें इस राक्षसी और मूर्ख प्रथाके मुकाबलेका उदाहरण संसारके किसी सभ्य देशमें मिलना कठिन है। मैंट डफने चीनकी प्रसिद्ध दीवार-से उसकी तुलना की। चुंगीके कमिश्नरने इस दीवारका वर्णन किया है कि

"उसके ११० विभाग हैं और हर एक विभाग एक जमादारके अधीन है। इस दीवारपर १७२७ पहरेकी चौकियाँ हैं। कुल १२००० पहरेदार काम करते हैं और मध्यप्रान्तका कुछ जङ्गली हिस्सा छोड़कर, जहाँ व्याघ्रादि पशु सबका रास्ता रोकते हैं, सारी दीवारपर रातदिन पहरा रहता है।" नमकके अतिरिक्त शक्कर जैसी कई चीजोंपर चुङ्गी लगती थी। पाठक स्वयम् विचार कर सकते हैं कि इस प्रकारकी ज़कातकी दीवारसे जनताको कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा और अत्याचार तथा घूसखोरीके लिये कितना मौक़ा मिला होगा। देशके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जानेवालोंको हर तरहकी तकलीफ उठानी पड़ती थी। तलाशीके नियमोंसे सभी यात्रियोंको—चाहे स्त्री हो या पुरुष—अपमानित होना पड़ता था। व्यापारकी वृद्धिके मार्गमें भी यह एक बड़ी भारी आपत्ति थी। इस दीवारसे जो कष्ट हो रहा था उसको जानते हुए भी सरकारने उसे दूर करनेकी कोई चेष्टा नहीं की।

इस दीवारको नष्ट करनेके लिये दो बातें आवश्यक थीं। वही उसकी जड़में थीं। एक तो विभिन्न प्रान्तोंके नमकके भावमें जो बहुत ज्यादा अन्तर है उसे दूर किया जाय और दूसरे राजपूतानेकी रियासतोंसे समझौता करके वहाँके नमकपर उत्पत्ति-स्थानहीमें कर लगाया जाय। लार्ड मेयोने पहले पहल इस ओर प्रयत्न किया। सन् १८६९ (संवत् १९२६) में जयपुर और जोधपुर दरबारने इस शर्तपर साम्भर झीलका पट्टा लिख दिया कि उन्हें सालाना १२५००० रुपया तथा सवा आठ लाख मनके ऊपर जितनी बिक्री होगी उसका बीस फीसदी मिलेगा, और दरबारको सात हजार मन कर-मुक्त नमक मिलेगा। उसी साल जोधपुर दरबारने नावा और गुडा झील इस शर्तपर दिया कि उन्हें तीन लाख रुपया और नौ लाख मनके ऊपरकी बिक्रीपर चालीस फीसदी मिलेगा। इन स्थानोंसे युक्तप्रान्तमें आसानीसे नमक लानेके लिये रेलवे बनानेकी भी तैयारी हुई। लार्ड नार्थब्रुकने बिहार और मध्यप्रान्तकी आठसौ मील लम्बी दीवार नष्ट की और अन्तमें लार्ड लिटनने इसके अन्यायको महसूस करते हुए सन् १८७९ (संवत् १९३६) में मारवाड़के

सब द्वारके भरने पट्टेपर ले लिये। इससे एक कारण दूर हुआ, परन्तु नमककी दरका एकसा करना टेढ़ा प्रश्न था। बम्बई और मद्रास अपनी दर बढ़ानेके लिये किसी हालतमें तैयार नहीं थे, और बङ्गाल तथा पञ्जाबकी सरकार दर घटाना नहीं चाहती थी। सर जॉन स्ट्रैचीने भारत सरकारकी ओरसे स्पष्ट कह दिया कि सरकार अपनी आर्थिक अवस्थाको देखते हुए आयका इतना त्याग करनेके लिये तैयार नहीं है कि बङ्गाल तथा पञ्जाबकी दर मद्रास और बम्बईके बराबर कर दी जाय। सरकार सस्ता नमक देना चाहती है परन्तु आर्थिक स्थितिके कारण विवश है। भारत सरकार हमेशा अपनी आयको जनताके कल्याणसे ऊँचा स्थान देती है। वह ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहती थी जिससे उस समय नमकसे होनेवाली आमदनीमें किसी प्रकारसे कमी हो। अन्तमें यह घोषित हुआ कि सारे भारतमें दो रुपये आठ आनेके लगभग दर रहनेसे सरकारकी आय न घटेगी। अतः बम्बई तथा मद्रासकी दर बढ़ाने और उत्तरकी दर घटानेका निश्चय हुआ। बङ्गाल और उत्तरकी दर घटाकर दो रुपया चौदह आना और दो रुपया आठ आना हुई। सन् १८७९ (संवत् १९३६) में चुङ्गीकी दीवार पूर्ण रूपसे नष्ट हुई। नयी दरोंका असर खपतपर इस प्रकार हुआ—

वर्ष	खपत (मनोंमें)	करसे आय (पौंडोंमें)
१८७०–७१	२३०३१०००	५६८६३३५
१८७४–७७	औसत २४२१८०००	५७३९४६०
१८७९–८०	२७८६१०००	६८९५७१३
१८८०–८१	२७२४००००	६५७२०००

आय और खपतकी वृद्धिका मुख्य कारण उत्तर और बङ्गालकी दरका घटना है। परन्तु जितनी वृद्धि होनी चाहिये थी उतनी नहीं हुई क्योंकि बम्बई और मद्रासमें दरके बढ़नेसे नमककी खपत विशेष नहीं बढ़ सकी। लार्ड रिपनने सन् १८८२ (संवत् १९३९) में सारे भारतमें कर घटाकर दो रुपया कर दिया। खपतपर उसका तुरन्त

असर पड़ा। परन्तु उसी कानूनसे गवर्नर-जनरलको ढाई रुपयेतक कर बढानेका अधिकार दिया गया। इससे लाभ उठाकर डफरिनने बर्मा-युद्धकी हानिको पूरा करनेके लिये कर ढाई रुपया कर दिया। इस वृद्धिका जनताने घोर विरोध किया। काङ्ग्रेसमें प्रस्ताव भी पास हुआ, परन्तु सरकारने किसीकी नहीं सुनी। अन्तमें सन् १९०२ (संवत् १९५९) में कर दो रुपया हुआ। सन् १९०५ (संवत् १९६२) में एक रुपया आठ आना और सन् १९०७ (संवत् १९६४) में एक रुपया किया गया। सन् १९१७ (संवत् १९७४) में महायुद्धके दबावसे कर फिर सवा रुपया हुआ। महायुद्धके बाद अपने खर्चका बोझ हलका करनेके लिये सरकारने सन् १९२३ (संवत् १९८०) में कर ढाई रुपया करनेका प्रस्ताव किया परन्तु असेम्बलीने उसे स्वीकार नहीं किया। तब गवर्नर जनरलने इस निश्चयको अपने अधिकारसे जारी किया। सन् १९२४ (संवत् १९८१) में इसी वजहसे असेम्बलीने फायनान्स बिलपर विचार करना अस्वीकार कर दिया था। जिससे मजबूर होकर सरकारने कर फिर एक रुपया चार आना कर दिया[1]।

१. करके घटने बढ़नेका खपतपर जो असर पड़ा वह निम्नलिखित अङ्कोंमे स्पष्ट हो जायगा—

साल	खपत (मनोंमें)	खपत श्रीगोखलेके हिसाबसे (दस लाख मनोंमें)
१८७६–७७	२५८४८०००	
१८७८–७९	२६७२००००	
१८८१–८२	२९६२१०००	२८·३७
१८८२–८३	३१०६१०००	२९·७९
१८८५–८६	३२०६४०००	३१·६९
१८८९–९०	३३४४८०००	३३·०४५
१८९५–९६	३५१८७०००	३४·६८५
१८९९–००	३५६५८०००	३५·०५
१९०२–३	३७२६५०००	

सन् १८९५ (संवत् १९५२) में काङ्ग्रेसमें श्री गोपाल कृष्ण गोखलेने खपतके अङ्कोंका विश्लेषण करके दिखलाया था कि सन् १८८२ (संवत् १९३९) के पूर्व नमककी खपत २९० लाख मन थी। महसूल घटकर जब दो रुपया होगया तब खपत एकदम बढ़ने लगी और सन् १८८७ (संवत् १९४४) में ३३७ लाख मन होगयी लेकिन उस साल फिर ढाई रुपया कर होनेके कारण वृद्धि रुकी। सन् १८९४ (संवत् १९५१) में खपत ३४१ लाख मन थी, अर्थात् प्रथम पाँच वर्षोंमें ५० लाख मनकी वृद्धि हुई और बादके आठ सालोंमें केवल चार लाख मन। इधर लोक-संख्या लगातार बढ़ रही थी। डाक्टरोंके मतानुसार फी आदमी कमसे कम बारह पौंड (छः सेर) नमक चाहिये। लार्ड लिटनके समयमें औसत खर्च नौ पौण्ड था। सन् १८८७ (संवत् १९४४) में दो रुपया दर होनेपर औसत खर्च १०$\frac{१}{३}$ पौण्ड होगया परन्तु करके बढ़नेपर फिर साढ़े नौ पौण्ड हुआ।

सन् १९०३ (संवत् १९६०) के बाद करके घटनेका प्रभाव खपतकी वृद्धिपर साफ दिखाई देता है। स्ट्रैचीके अनुसार सन् १९०३

साल	खपत (मनोंमें)	खपत श्रीगोखलेके हिसाबसे (दस लाख मनमें)
१९०४–५	३९७३२०००	
१९०६–७	४११२७०००	
१९०८–९	४३६१७०००	
१९११–१२	४९२११०००	
१९१३–१४	४९२११०००	
१९१४–१५	४७९१६०००	
१९१७–१८	४४०२४०००	
१९१८–१९	५२१९९०००	
१९२२–२३	५०७९८०००	
१९२३–२४	४८१२८०००	

(संवत् १९६९) और सन् १९०८ (संवत् १९६५) के बीच खपत पचीस फी सदी बढ़ गयी। सन् १९२३ (संवत् १९८०) के बाद सरकारने अङ्क प्रसिद्ध नहीं किये तथापि बिक्रीसे खपतका कुछ अनुमान हो सकेगा—

सन् १९२२–२३	सवा रुपया	७·३१ करोड़
१९२३–२४	ढाई ,,	१०·१२ ,,
१९२४–२५	सवा ,,	७·८६ ,,

कर दुगुना करनेपर आमदनी केवल ३९ फीसदी बढ़ी अर्थात् खपत उतनी ही घटी।

आजकल बङ्गालमें वही अवस्था है जो उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें थी। लगभग सब नमक विदेशसे आता है और शोरा बनाते समय जो थोड़ा बहुत नमक निकलता है उसीकी सरकारको निगरानी करनी पड़ती है। सन् १९२२ (सं० १९६९) में बिहार और उड़ीसा प्रान्त उत्तर-भारत-नमक-विभागमें जोड़ा गया और यह विभाग एक नमक कमिश्नरके अधीन है। मद्रासमें इस समय दोनों प्रकार प्रचलित हैं। कुछ कारखाने केवल सरकारके लिये बनाते हैं और सरकारही उसे बेचती है। बाक़ी अपना नमक बनाते हैं और बेचते हैं। सरकार केवल मिक़दार तै करती है और कर लेती है। बम्बईमें भी दोनों प्रकार हैं। कच्छमें (खाराघोड़ा) सरकारी निगरानीमें नमक बनता है। सूरतके पास धरसनामें लायसेन्स लेकर कारखानेवाले बनाते हैं। सरकार केवल मूल्य निश्चित करती है। बम्बई शहरके आसपास इसी तरहके कारखाने हैं। कर नमक उठानेके पहले वसूल किया जाता है। उत्तर-भारतीय-नमक-विभागका क्षेत्र बिहारसे सिन्धतक है। यहाँ अधिकांश राजपूताना और सिन्धुकी खानोंका नमक इस्तेमाल होता है। इस क्षेत्रमें सरकारका पूर्ण रूपसे एकाधिकार है। सब खानें सरकार ही चलाती है। कोहाट और खेवड़ाके नमककी दर अब एक है। ब्रह्मदेशमें नमकपर एक रुपया मन कर है। कुछ नमक वहीं कारखानोंमें बनता है और शेष विदेशसे आता है।

ब्रिटिश सरकारका नमक सम्बन्धी नीतिका यह संक्षेपमें इतिहास है। सरकारकी डेढ़ सौ वर्षोंकी नीतिका भारतीयोंपर भी इतना असर हुआ है कि इस करकी उपयोगिताके बारेमें शायदही किसीने सन्देह प्रकट किया हो। यह कर रहना चाहिये या नहीं इसपर लोग राय नहीं देते। बहस केवल नमक-करकी दरके बारेमें होती है।

इस करके पक्षमें ब्रिटिश सरकारका जो आर्थिक सिद्धान्त रहा है उसका निरूपण सन् १८६९ (सं० १९२६) में उस समयके भारत सचिव ड्यूक आफ आरगाइलने पूरी तौरसे किया था। उनके कथनानुसार सभी सिद्धान्तोंके आधारपर नमक-कर न्याय्य है। किसी भी देशमें प्रत्यक्ष करसे जनतातक पहुँचना सम्भव नहीं है। यदि उनसे कुछ लेना है तो कुछ ऐसी चीजों द्वारा ही ले सकते हैं जिनकी सर्वव्यापी खपत हो। और यदि कर उचित हो तो जनताको दूसरे प्रकारोंकी अपेक्षा इसमें कम कष्ट होगा। यह करका सबसे उत्तम प्रकार है। भारतवर्षमें इस समय दूसरी कोई ऐसी चीज नहीं है जिसपर कर लगता है; अतः इसीपर कर लगाना उचित और न्याय्य है। सर जॉन स्ट्रैचीने इसी वचनकी दोहाई दी है और लिखा है कि यही एक कर भारतीय जनतापर लगाया जाता है और उसका भार फी आदमी सालाना तीन आना है अर्थात् बहुत कम है। टैक्सेशन एनक्वायरी कमिटीने भी इसको मान लिया कि यदि ग़रीबोंपर कोई कर लगाना है तो वह यही है।

इन दलीलोंमें मुख्यतः इस बातपर विशेष जोर दिया जाता है कि यह एकही कर है जो ग़रीबोंतक पहुँचता है और हर आदमीको सरकारी खर्चके लिये कुछ देना चाहिये। परन्तु इस सिद्धान्तका भ्रम दूर होजायगा यदि हम भारतकी आयकी जाँच करें[1]। वह कौनसे गरीब हैं जो सरकारको कर नहीं देते? कपड़ों पर कर गरीब ही देते हैं। आबकारीका कर अधिकांश गरीबोंपर ही पड़ता है। सबसे भारी कर वे लगानके

---

1. सन् १९२४-२५ (सं० १९८१-८२) में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारकी मुख्य आय मदों सहितः—

रूपमें देते हैं, अर्थात् सब अनाजपर सरकारी कर है। इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि अधिकांश कर गरीबोंकी जेबसे आता है। श्री गोखलेने अपने बजटके व्याख्यानोंमें बार बार इस भ्रमको दूर करनेकी कोशिश की। उनकी राय थी कि अफीम, आयकर आदि दो तीन करोंको छोड़कर सब महसूल ग़रीबोंसे ही लिया जाता है और सरकारी खर्चका कम हिस्सा देनेके बजाय वास्तवमें ग़रीबोंको जितना देना चाहिये उससे अधिक देना पड़ता है।

दूसरी दलील यह है कि इसका भार अधिक नहीं है और ऐसा अप्रत्यक्ष कर रहना चाहिये। इस सम्बन्धमें यदि हम यह दिखला सकें कि वास्तवमें इसका भार इतना है कि ग़रीब लोग काफी नमक नहीं इस्तेमाल कर सकते और नमकका अधिकसे अधिक उपयोग देशको लाभ पहुँचाता है, तो यह दलील आप ही गिर जायगी।

नमक महंगा पड़ता है और लोग इस कारण कष्ट उठाते हैं, यह बात पहले ही कई स्थानोंमें किसानोंकी अर्जियोंमें तथा अफसरोंकी गवाहीमें आ चुकी है। सन् १९२३ (सं० १९८०) के बजटके व्याख्यानमें सर चार्लस ईन्सने कहा कि कर तीन आना फी आदमी

मद	केन्द्रीय (लाखोंमें)	प्रान्तीय (लाखोंमें)
ख़िराज	८२	×
आयातकर	१५७५	×
रजिस्ट्रेशन	२	१२६
जंगल	१६	५५१
स्टैम्प	२७	१३००
आबकारी	४२	१९१०
मालगुजारी	३७	३५४६
अफीम	३८०	×
नमक	७३९	×
आय-कर	१६०१	१९
फुटकर कर	×	३०

पड़ता है—यद्यपि बहुतोंकी रायमें पाँच आनेतक पड़ता है—और यह भार नहीं हो सकता। इसका पर्याप्त उत्तर श्री लक्ष्मीनारायणने दिया था कि यह कथन उस समय ठीक होता जब गरीबोंपर और कर न होवे। सरकार स्वयम् मानती है कि नमककी खपत लगभग बारह पौण्ड फी आदमी है। टैक्सेशन एनकायरी कमेटीने खपतके अङ्क देते हुए यह बात मान ली कि फी आदमी दस पौण्ड नमक (पाँच सेर) काफी है[1]। परन्तु यह सिद्धान्त सन्दिग्ध है। इस समय भारतवर्षमें ही इतना कर रहते हुए भी बंगाल और मद्रासमें पन्द्रह पौण्डसे अधिक खपत है। कलकत्तेमें सर्जन पारट्रिजने फी आदमी २२½ पौण्ड नमक सालाना आवश्यक बतलाया था[2]। रॅटनने, जिसके "हैंड बुक आफ कामन साल्ट" के आधारपर कमेटीने यह राय दी थी, दूसरे देशोंकी खपतके जो अङ्क पेश किये हैं उनसे स्वयम् उसका सिद्धान्त निराधार सिद्ध होता है। साधारणतः यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अधिक मूल्यसे खपतकी वृद्धि रुकती है। नमकके बारेमें ऐसा पूर्णरूपसे नहीं भी हुआ तब भी उसका कुपरिणाम दूसरे ढङ्गसे निकलता है। नमक अत्यन्त आवश्यक वस्तु होनेके कारण उसकी खपत संभवतः ज्यादा परिमाणमें कम नहीं होगी और इस आधारपर सरकार अपनी आय निश्चित समझती है। परन्तु उसका असर यह होता है कि ग़रीबोंको दूसरी अच्छी चीजें छोड़नी पड़ती हैं और नमक भी कम खर्च करना पड़ता है। रॅटनने भिन्न भिन्न देशोंकी औसत खपत फी आदमी इस प्रकार दी है—

इङ्गलैण्ड	४०	आस्ट्रिया	१६
पोर्चुगाल	३५	प्रुशिया	१४

1. कमेटीने प्रान्तोंकी फी आदमी औसत खपत पौण्डमें इस प्रकार दी है:—पंजाब १०.२६; सिन्ध १०.४१; राजपूताना और मध्यभारत १०.५९; बिहार उड़ीसा १०.९७; युक्तप्रान्त १०.९८; मध्यप्रान्त ११.५६; बम्बई १२.९४; बङ्गाल १५.२४; ब्रह्मदेश १८.५४; मद्रास १८.८८
2. सन् १८७२ की कमेटीके सामने दादाभाई नौरोजीकी गवाही।

इटली	२०	स्पेन	१२
फ्रान्स	१८	भारत	१२
रूस	१८	हॉलैण्ड	१०½
बेल्जियम	१६½	स्वीडेन, नार्वे	९½
		स्विट्ज़रलैण्ड	८½

रॅटनने इसपर लिखा है कि दस पौण्ड खानेमें खर्च होता है और शेष औद्योगिक उन्नति सूचित करता है। ब्रिटेनके बारेमें यदि यह सच मान लिया जाय तब भी पोर्चुगाल औद्योगिक देश नहीं है। इटली भी उस समय औद्योगिक दृष्टिसे पिछड़ा हुआ था। इन देशोंके बारेमें यह कैसे कहा जाय कि ज्यादा नमक उद्योगधन्धोंमें खर्च होता है। वास्तवमें बात यह है कि इन देशोंमें नमक कर-मुक्त है। अतः वहाँ उसका खर्च बढ़ा हुआ है।

हमें यह देखना चाहिये कि नमक देशकी उन्नतिके लिये क्या महत्त्व रखता है और उसे सस्तासे सस्ता करनेसे देशका क्या लाभ होगा।

मनुष्यके भोजनमें नमक एक अत्यावश्यक वस्तु है और स्थानाभाव-के कारण यद्यपि हम यहाँ विस्तारसे नहीं लिख सकते तथापि इतना कहना पर्याप्त होगा कि डाक्टरोंकी रायमें पाचनमें, अंतड़ियोंको साफ रखनेमें और खूनको बनाने तथा शुद्ध रखनेमें नमक अत्यावश्यक वस्तु है। शाकाहारियोंको उसकी और भी जरूरत रहती है। अर्थात् नमक मनुष्यके जीवनके लिये एक आवश्यक पदार्थ है परन्तु खानेके अतिरिक्त नमकके और कई महत्वके उपयोग हैं।

नमकके भिन्न भिन्न उपयोग क्या हैं तथा उसका कर बन्द करनेसे देशका क्या लाभ हो सकता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण इङ्गलैण्ड है। सन् १८१८ (सं० १८७५) में ब्रिटिश-नमक-करकी जाँचके लिये एक कमेटी नियुक्त हुई थी। उसके सामने सब प्रश्नोंपर अपने अपने विषयके विद्वानोंकी गवाही हुई। उनकी गवाहीका सार हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

नमकमें कृमिनाशक गुण हैं और खादकी तरह खेतीमें उसका

उपयोग होता है। कॉफीके पेड़को नष्ट करनेवाले कीड़ोंको मारनेके लिये नमक बहुत लाभदायक है। इसके सिवा अन्य वनस्पतियोंपर भी उसका असर गुणकारी होता है। आर्थर यङ्ग, लीबीग आदि कृषिविज्ञानके विद्वानोंने गवाहीमें स्पष्टरूपसे कह दिया कि नमककी खादसे पेड़ोंकी ताक़त और पैदावार ज्यादा बढ़ती है, खराब पौधे और बहुतसे हानिकर कीड़े नष्ट होते हैं। इङ्गलैण्डमें साधारणतः खेतको सुधारनेके लिये और कृमिनाशके लिये फी एकड़ तीन मन नमक डालते हैं। भारतवर्ष जैसे कृषिप्रधान देशके लिए खेती सुधारनेमें नमकका यह उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त पशुओंके लिये भी नमक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। सन् १८१८ (सं० १८७५) की कमेटीके सामने कई जानकार व्यापारी तथा विद्वानोंने गवाही दी कि नमकसे गाय, बैल, बकरी, घोड़ा आदि पशु स्वस्थ और ताक़तवर होते हैं। जिन पशुओंको नमक नहीं मिलता वे कमजोर रहते हैं और ऐसे जानवरोंको नमक खिलानेपर उसका अच्छा परिणाम तुरन्त दिखाई देता है। कमेटीपर इस गवाहीका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने रिपोर्टमें अपना यह निश्चित मत प्रकट किया कि पशुओंको नमक खिलानेकी नितान्त आवश्यकता है।

घास सुरक्षित रखनेमें भी नमकका उपयोग होता है। मछली सुखाने तथा सुरक्षित रखनेमें नमक अत्यावश्यक है। समुद्र किनारेके सभी प्रदेशोंका यह एक बड़ा व्यापार है। सभी वर्तमान उद्योगोंमें नमक या उससे निकलनेवाले क्षारोंकी आवश्यकता पड़ती है, बल्कि नमक इस समय आधारभूत रसायनोंमें एक है। उसीसे अधिकांश सोडा, क्लोरीन, हायड्रोजन, हायड्रोक्लोरिक ऐसिड, आदि रसायन निकाले जाते हैं और इन रसायनोंपर साबुन, शीशा, ग्लिसेरीन, डायनामाइट, कपड़े धोनेके क्षार, मिट्टीके बरतनोंकी पालिश, बर्फ, बिजलीकी बैटरी, चमड़ा कमाना, तमाखू बनाना, फौलाद, अन्न आदिको सुरक्षित रखनेके उद्योग निर्भर करते हैं। कागज और कपड़ा भी इनके सस्ते न मिलनेसे महँगा बिकने लगेगा। और भी कई ऐसे उद्योग गिनाये

जा सकते हैं जिनमें इनकी आवश्यकता पड़ती है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि किसी राष्ट्रकी उन्नति और विकासके लिये नमकका सस्ता रहना कितना आवश्यक है। नमककी सर्वव्यापी उपयोगिता देखकर सन् १८१८ (सं० १८७५) की कमेटीने ब्रिटेनकी उन्नतिके लिये नमक-कर उठा लेनेकी सलाह दी और इङ्गलैण्डमें यह कर बन्द भी किया गया। इसका वहाँकी खपतपर असर स्पष्ट है। परन्तु भारतके ब्रिटिश स्वामियोंको यह नहीं सूझा या सूझा भी हो तो उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया कि यदि ब्रिटेनकी प्रगतिके लिये नमक-कर नष्ट करना उचित है तो भारतवर्षके लिये भी इस करका बन्द करना उतना ही आवश्यक है। यहाँ उस समय आयकी आवश्यकताकी पुरानी रटन्त चली आ रही थी और अब भी वही दलील पेश होती है। वास्तवमें सरकारको प्रजाके कल्याणसे आयकी अधिक परवाह है। यदि प्रजाके कल्याणको श्रेष्ठ स्थान देना होता तो केन्द्रीय सरकारकी लगभग सवा अरब रुपयेकी सालाना आमदनीसे साढ़ेसात करोड़का घटाना और उसके लिये दूसरी मदोंमें गुञ्जाइश करना कठिन नहीं है। प्रान्तीय चन्दे[1] की मदका बन्द करना इससे भी अधिक खर्चीला कार्य था। उस मदसे सरकारको ९३८ लाखकी आमदनी थी परन्तु सरकारने उसे बन्द किया और उसकी कमी कुछ खर्च घटाकर तथा दूसरी मदोंमें आय बढ़ाकर पूरी कर ली।

टैक्सेशन एनक्वायरी कमेटीने अपनी रिपोर्टमें इस करकी बुराइयोंका सारांशमें बहुत अच्छी तरहसे उल्लेख इस प्रकार किया है। "यह जीवनकी एक आवश्यकतापर कर है और जहाँ तक नमक शारीरिक स्वास्थ्यके लिये जरूरी है वहाँतक यह एक प्रकारका 'पोल टैक्स' है। इसका अधिकांश वह देते हैं जो सरकारी खर्चके लिये कुछ देनेमें सबसे कम समर्थ हैं। और नमक विभिन्न औद्योगिक क्रियाओंके लिये तथा कृषिकार्य और पशुओंके लिये भी आवश्यक है। इन कार्योंके लिये

---

१. Provincial contributions.

नमक कर-मुक्त मिलना चाहिये, वरन् जिन उद्योगोंमें उसका उपयोग होता है उनपर यह एक प्रकारका भार है[१]।

पूर्वोक्त कथनानुसार बम्बई सरकारने औद्योगिक और कृषि कार्यके लिये नमक-कर उठा लिया परन्तु कर-मुक्तिका प्रकार इतना अडचनका था कि बहुत ही कम लोगोंने उससे फायदा उठाया। इसके अतिरिक्त नमकका खादकी तरह उपयोग किसानोंको बतलाया भी नहीं गया। जबतक नमकपर कर रहेगा तबतक इन सब कार्योंमें नमकका उपयोग नहीं बढ़ेगा। नमकपर कर रहनेहीसे विदेशी नमकको उत्तेजना मिलती है। टैक्सेशन कमेटीने भी स्वीकार किया कि भारतीय कारखानोंके मार्गमें कई दिक्कतें हैं जिनसे वे सुधरने नहीं पाते। आय कम होनेके डरसे सरकारने जो पेंचदार कानून बनाये वे भी बाधा पहुँचाते हैं। करके बन्द करनेके लिये कई प्रकार पेश किये गये हैं। एक तो यह है कि कर धीरे धीरे कम करते हुए बन्द किया जाय। डाक्टर पराञ्जपेने इसीलिये कर आठ आना करनेकी कमेटीको सलाह दी थी।

करके रहते हुए भी भारतीय नमकके उद्योगकी अवस्था जैसी होनी चाहिये वैसी आज नहीं है। इस समय नमककी उत्पत्ति और आयात मनोंमें इस प्रकार है—

वर्ष	सरकारी	गैरसरकारी देशी	विदेशी
१९१५–१६	२०५५५०००	१७७०८०००	१५३७००००
१९२०–२१	२००५४०००	२००६३०००	१७३८६०००
१९२३–२४	२०३४९०००	२१७७५०००	१३२८८०००
१९२४–२५	१७०९७०००	२१०४४०००	१७२३९०००

१. "It falls on a necessary of life and to the extent that salt is essential for physical existence, it is in the nature of a poll tax. The bulk of it is paid by those who are least able to contribute anything towards the state expenditure. Salt is also required for various industrial and agricultural operations and for cattle. Unless it is issued duty free for these

इससे, और नीचे दिये हुए नकशोंमे साफ दिखायी देगा कि लगभग एक तिहाई नमक विदेशोंसे आता है और विदेशी नमककी खपत बङ्गाल और ब्रह्मदेशमें अधिक है[१]। लगभग आधा नमक ब्रिटिशसाम्रा-

purposes, some burden is thrown upon the industries in which it is used" Taxation Enquiry Committee Report. 1924-5, pp. 133.

१. प्रान्तोंके अनुसारके खपतका नकशा (हजार मनोंमें) सन् १९२४–२५ (संवत् १९८१–८२)

प्रान्त	सरकारी	ग़ैरसरकारी	विदेशी
बङ्गाल	×	×	१२७५४
मद्रास	१९५४	९१२३	१
बम्बई	३७०६	१०४५८	७
उत्तर	१०८१८	८१६	—
बर्मा	×	६४७	२४७४
सिन्ध	४७३	×	१

विदेशी नमककी आयातका ब्यौरा (रुपयोंमें):—

देश	१९२३–२४	१९२५–२६	१९२७–२८
ब्रिटेन	२३२०१४०	१९५५०७६	२६९२८९७
एडन	३९९९३२३	३२५७१२२	५३२०६२८
अन्य ब्रिटिश स्थान	१४८४	८९८	१७६३
जर्मनी	६७१७४८	९०६८६४	१६८११०५
फ्रान्स	×	×	२८८००
स्पेन	३३११४१	९१३७९३	२३५६२२७
स्याम	५६६	११७७	५१२
मिस्र	१८७७३८४	२३०९७३६	३४७३६५०
इटालियन पूर्वआफ्रिका	१८२५६२४	८५६२२८	१५१७०६८
पोर्चुगीज "	×	×	१९०२३६
अन्य देश	४४२	२१८०१८	२०८१९८
कुल	११०२७८५७	१०४१८६७२	१७४८४२८४

व्यसे आता है, शेष दूसरे देशोंसे। यह भी स्पष्ट होगा कि इधर विदेशी नमककी बिक्री बढ़ गयी है। कोई कारण नहीं मालूम पड़ता कि भारत वर्ष बाहरसे इतना नमक क्यों ले। इतना ही नहीं बल्कि इससे कहीं अधिक नमक इस देशमें बन सकता है। यहाँसे नमक विदेश जा सकता है। परन्तु सरकारकी अदूरदर्शी नीति और करके कारण यह व्यापार बन्द है। बम्बईके किनारेपर बहुत ज्यादह नमक बन सकता है। मारवाड़में पचभद्रा आदि कई स्थानोंमें नमककी उत्पत्ति खूब बढ़ सकती है। इधर सिन्धमें भी मयूरपुर आदि कई नये नमकके उत्पत्ति-स्थान मिले हैं। उनका भी नमक आसानीसे बङ्गाल और ब्रह्मदेश भेजा जा सकता है। भारतवर्ष नमकके विषयमें केवल अपनीही आवश्यकताओंकी पूर्ति नहीं कर सकता बल्कि निर्यात भी कर सकता है। जहाज, रेल आदि वाहनोंपर नमक ले जानेके बारेमें सरकारकी जो विशेष अड़चनें और कानूनी बन्धन हैं उनको हटाकर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहारकी ही केवल आवश्यकता है।

बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

विविध विषय

जथरिया भूमिहारोंकी उत्पत्ति

गण्डक और बाया नदियोंके बीचमें (प्राय: आठ मील) और लालगञ्जसे साहेबगञ्ज केसरियातक (प्राय: तीस मील) मुजफ्फरपुर जिलेका रत्ती परगना है। यहां जेथरिया (या जथरिया) नामक भूमिहारोंकी प्रधानता है। 'जथरिया' शब्द, मालूम होता है, संस्कृत 'ज्ञातृ' (= जैन प्राकृत 'नात' या 'नाय' = पालि 'नात') से बना है। जैन तीर्थङ्कर बर्द्धमान महावीर जैन साहित्यमें 'नायपुत्त,' 'नातिसुत'[1] और पालि साहित्यमें 'निगण्ठ नातपुत्त'[2] कहे जाते हैं। इस शब्दका संस्कृत रूप 'निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र' होगा। अत: महावीर स्वामी जथरिया वंशके ही थे। सूत्रकृताङ्गमें[3] महावीर स्वामीको 'वेसालिए' अर्थात् वैशालिक' कहा है। इसका अर्थ यह है कि महावीर वैशालीके थे। महावीरकी जन्मभूमि कुण्डग्राम (वैशालीके समीप एक गांव) थी। वैशाली विदेहकी राजधानी थी। महावीरको इसलिये 'विदेह'[4] भी कहते हैं। मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत 'बसाढ़' नामक स्थान ही 'वैशाली' है।

जैन ग्रन्थोंके अनुसार वज्जियोंके गणमें नौ जातियां सम्मिलित थीं। महावीरके ज्ञातृपुत्र तथा वैशालिक होनेसे लिच्छवियोंमें यह एक प्रधान जाति रही होगी, इसमें सन्देह नहीं मालूम होता।

---

१. अयं से अवरे धम्मे नायपुत्तेण साहिए। आचाराङ्ग सूत्र।१।७।८।१२। गढिए मिहो कहासु समयंमि नातिसुते विसोए अहक्खु। आचाराङ्ग सूत्र १।८।१।९

२. दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त

३. सूत्रकृताङ्ग। १।३

४. आचाराङ्ग सूत्र। २।१५।१७

गण्डकीका ही नाम पालि साहित्यमें मही आता है, जो कि मध्य-मण्डलकी पांच महानदियों (यमुना, गंगा, सरभू, अचिरवती और मही) मेंसे एक है। छपरा जिलेके सीतलपुर गांवके पास बहनेवाली नदी अब भी मही कही जाती है, जो हरिहरनाथके मन्दिर (हरिहरक्षेत्र) के पास गण्डकमें मिलती है। गण्डककी धार गोपालगञ्ज, बरौली, सहाजितपुर होकर बहनेवाली नदीसे होकर थी। इस प्रकार छपरा जिलेका चौथाई भाग वज्जीगणतन्त्रमें शामिल था, शेष भाग मल्लमें।

जेथरिया लोग अपनेको जेथरडीह (ममरखके पास, जिला सारन) से आया हुआ कहते हैं। जेथरडीहमें भी वह नीमसारसे वैशालीके कुष्ठी राजाको अच्छा करनेके लिये लाये गये थे। जेथरडीह यदि पुराना डीह है, तो नात या ज्ञातृ जातिसे उसका सम्बन्ध जोड़कर पालिसाहित्य-में आये नादिका कस्बेसे उसे मिलाया जा सकता है, यद्यपि 'नादिका' 'पाटलिगाम' (पटना) से वैशाली (बसाढ़) जाते समय पड़ता था। ज्ञातृजाति लिच्छवियोंकी एक शाखा थी। बसाढ़, बनिया आदि गावोंमें अब भी उन्हींकी अधिकता है। लिच्छवियोंके प्रभुत्वका अनुमान गुप्त लेखोंके 'लिच्छविदौहित्र' से मालूम होता है। ईसाके पूर्व छठी शताब्दीसे पांचवीं शताब्दी ईसाके बादतक (एक हजार वर्षतक) जिन लिच्छवि-योंके इस प्रकारके अस्तित्वको हम पाते हैं वह इधर बिलकुल नष्ट हो गये होंगे, इसका कारण नहीं मालूम होता।

जथरिया आजकल भूमिहार हैं, अतएव अपनेको ब्राह्मणोंमें गिनते हैं। उनके सम्बन्धी दिघवैत, कोथवैत, सुरगणै, कोदरियै, बसमैत आदि भूमिहार हैं। उनके गोत्र तथा मूलके मैथिल ब्राह्मण भी मिलते हैं। अत; उनका ब्राह्मण होना निश्चित है। ब्राह्मणोंके साथ विवाहका होना ही, मालूम होता है, इन्हें भी भूमिहार ब्राह्मणोंमें खींच ले गया।

भूमिहारोंमें ब्राह्मण और क्षत्रिय अंशोंका मेल है। यह बात एक और जगह मालूम होती है। मल्लोंकी कुशीनारा प्रसिद्ध ही है। अब भी कुशीनारा (कसया, जिला गोरखपुर) के आसपास सत्तर बहत्तर गांवोंमें सैंतवारोंका प्राधान्य है। सैंतवारोंमें अब भी मल्ल पदवी प्रचलित

है। पडरौनाके राजासाहेब मल्ल ही हैं। मझौली राज-परम्परामें पहिलेकी पचासों पीढ़ियोंमें मल्लान्त नाम मिलते हैं। तमखुही और हथुआकी राज-परम्परामें भी मल्लान्त ही पुराने नाम मिलते हैं।

हथुआकी पहिली राजधानियाँ हुसेपुर तथा कल्याणपुर (राजा कल्याणमल्लका बसाया) एवं मझौली मल्लदेशके मध्यमें कसयासे बहुत दूरपर नहीं स्थित हैं। हथुआवाले बगौछिया भूमिहार हैं, जो व्याघ्र-पद्से बना है। जहाँतक मैं स्मरण कर सकता हूँ व्याघ्रपद किसी मल्लके सम्बन्धमें पालिसाहित्यमें आता है। इस प्रकार मालूम होता है कि समयान्तरमें मल्ल ही सैंतवार, बगौछिया भूमिहार, तथा राजपूत इन तीन जातियोंमें बँट गये।

यह तो सभी लोग जानते हैं कि भूमिहारोंका स्थान राजपूतोंसे ऊपर और ब्राह्मणोंसे नीचे है। स्वामी सहजानन्द सरस्वती विरचित ब्रह्मर्षि-वंश-विस्तरमें दिये हुए उदाहरणोंसे यह बात निश्चित है कि भूमिहारोंमें ब्राह्मण-अंश बहुत अधिक है। अङ्ग (भागलपुर और मुंगेर), मगध (पटना और गया), वज्जी (½ मुजफ्फरपुर, चम्पारन, ¼ सारन), विदेह (½ मुजफ्फरपुर, दर्भङ्गा, नेपाल तराई), मल्ल (¾ सारन, ½ गोरखपुर) देश व्रात्योंके देश हैं। इन देशोंमें ब्राह्मणोंको वह स्थान नहीं प्राप्त था जो स्थान उनका मध्य और पश्चिमी संयुक्तप्रान्तमें है। इन स्थानोंमें मध्यकालमें ब्राह्मणोंकी प्रभुताके कारण यह भूमिहार बन गये। अब्राह्मण (बौद्ध, जैन) धर्मोंके माननेवाले होनेके कारण ही सम्भवत: यह ब्राह्मण पौरोहित्यसे वञ्चित किये गये तथा ब्राह्मणोंसे नीचे लाये गये। धार्मिक विचारोंकी उदारताके कारण इन ब्राह्मणोंका क्षत्रियोंके साथ सम्बन्ध रहा होगा, जैसा कि अशोककी माता तथा वत्सराज उदयनकी स्त्री माकन्दीके ब्राह्मणकन्या होनेसे भी अनुमान होता है। राजपूतकालमें जातियोंके नवसङ्गठनके समय इस प्रकार अब्राह्मणधर्मावलम्बी ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी एक जाति बन जाना स्वाभाविक है।

आजकलके ब्राह्मणोंमें तथा उनके कितने ही ग्रन्थोंमें भूमिहारोंके

प्रति द्वेषभाव स्पष्ट पाया जाता है। उक्त कथनसे इसका भी कारण मालूम हो जाता है और इसीसे यह भी कहा जा सकता है कि अधिकांश ब्राह्मण तथा कुछ क्षत्रिय अंश छोड़ भूमिहारोंमें दूसरे अंश कुछ भी नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो ब्राह्मणों और राजपूतोंकी संयुक्त शक्ति इस जातिको और भी नीचे गिराये होती।

बुद्धके एक संवादसे स्पष्ट ही है कि उस समय क्षत्रियोंकी अपेक्षा ब्राह्मणोंमें रक्त सम्मिश्रण अधिक था। शुद्ध रुधिरका दावा तो वस्तुतः आजकल कोई जाति नहीं कर सकती।

रामोदार सांकृत्यायन

   

ऋग्वैदिक कालमें भिन्न भिन्न मत और उनमें वाद-विवाद

अनृतात्सत्यमुपैमि। मानुषाद्दैव्यमुपैमि।

तै० ब्रा० २।१।१५

हिन्दू सनातन धर्मकी महत्तम विशेषता है उसकी विश्वव्यापिनी उदारता। धर्म-अधर्म, आस्तिक और नास्तिकवाद, योग, सांख्य आदि सबमें अखण्ड विराट् सत्यकी ओर ले जानेवाला मार्ग देखना इसी धर्मकी समदर्शिनी तेज आंखोंकी विभूति है। आज ईसाई यह पढ़कर त्राहि त्राहि कह रहे हैं कि रूसके पाषण्डगणतन्त्री अथवा मजदूरगणतन्त्री—असलमें शूद्रगणवादी—धर्मका नाश कर रहे हैं और गिरजे गिरा रहे हैं किन्तु सनातनधर्मी इस विषयपर नित्यसत्वस्थ है। वह जानता है जिस समय देवाधिदेव रुद्र ताण्डवनृत्यके महोल्लासमें अपना आपा खोकर सूरज और तारोंको मिट्टीके गोलोंकी तरह तोड़ते फोड़ते हैं वह भी धर्म करते हैं। उन्हें शक्ति नहीं है कि धर्मका नाश कर सकें। भला रूसके शूद्रधर्मपन्थी उसका उन्मूलन करनेकी उपहासास्पद चेष्टा करनेपर भी उसका नाममात्र भी नुकसान नहीं कर सकते। हम तो स्पष्ट देख रहे हैं कि अधर्मके नामपर वे भी धर्मका ही प्रचार करते हैं। उनका उद्योग भी तो 'प्रजाकी स्थितिका धारण वा सुधार है'। धर्मका तो यही प्रधान उपयोग है। 'धर्मो धारयते प्रजाः'। अस्तु, सनातनधर्ममें यह महान गुण कबसे और कैसे आया? इसका उत्तर तो 'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्'—जो परम आकाशमें इस (विश्वका) अध्यक्ष है—वही जाने। हो सकता है वह भी न जाने। "सो अंग वेद

यदि वा न वेद" (ऋग्वेद १०। १२९।७)। हम इतना ही जानते हैं कि ऋग्वेदके समयमें 'आर्यसमाजमें' एक मुनि ऐसा नहीं था जिसका वाक्य प्रमाण माना जाता हो। और विप्र लोग अर्थात् विद्वान् पण्डित यह समझते थे कि सृष्टिका मूलधर्म एक है, भिन्न भिन्न कवि उसका वर्णन नाना प्रकारसे करते हैं। वह इस तत्वपर पहुँच गये थे "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ० १। १६४।४६२) किन्तु इस सीमातक पहुँचनेमें, नानात्वमें एकत्व देखनेमें, कई दुस्तर पथ और कान्तार पार करने पड़ते हैं। यह गर्व नहीं एक साधारण सत्य है कि यूरप अभीतक इस हद्पर नहीं पहुँचा। रूस ईश्वर नहीं मानता, मत नहीं मानता और पूर्ण व्यक्तिगत स्वाधीनताकी घोषणा कर रहा है किन्तु आप कार्ल मार्क्सकी लेनिनकृत टीका न मानें तो परमात्मा ही आपका रक्षक है। पर यह ज्ञानलवदुर्विदग्धता, यह हठधर्म और यह असहनशीलता वह झाड़ झंखाड़ हैं, वह गहन जंगल हैं और वह विकट पथ हैं जिन्हें पार करनेके बाद मनुष्य समझने लगता है 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'।

इस छोटे लेखमें मैं विद्वज्जनोंके सम्मुख ऋग्वेदके समयका एक दृश्य रखना चाहता हूँ जो आभास देता है कि उस समय आर्यसन्तान वह दुर्गम पथ पार कर रही थी जो अन्य मतावलम्बी और जातिया इस समय कर रही हैं तथा जिसका उत्तम फल उपनिषदोंकी उदार शिक्षा है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किंचन' आदि।

भारतमें शास्त्रार्थकी प्रथा बहुत पुरानी है। यह सनातन है। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' आर्योंका प्राचीन सिद्धान्त है। ऋग्वेदमें इसके कई प्रमाण हैं। दसवें मण्डलका इकहत्तरवां सूक्त वक्तृत्व शक्तिकी प्रशंसामें ही है। इसमें सभाका—जिसे सायणाचार्य 'विद्वत्सङ्घ' कहते हैं—वर्णन है। इसकी दूसरी ऋचा है:—सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ यह उस सभाकी प्रशंसा है जिसमें विद्वान् (धीराः) मनन करनेके बाद ऐसी छनी हुई वाणी बोलते हैं जो छलनीसे छले

हुए आँटेकी भाँति स्वच्छ और शुद्ध है। (चूँकि इस सभामें नाना मतके विद्वान उपस्थित रहते थे इसलिए) यहाँ ज्ञानी लोग अपने पक्षके ज्ञानियोंसे परिचय प्राप्त करते हैं। यद्यपि इसमें ऐसे घोर हैं जो यज्ञके द्वारा वाणीके पथपर पहुँचते हैं याने यज्ञवादी भी वर्तमान हैं किन्तु 'उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः'[1] ऐसे भी ज्ञानान्ध हैं जो देखते हुए समझते हुए भी बात नहीं समझते–ये या तो स्थूलबुद्धि हैं या वे हैं जो समझकर भी बात नहीं समझना चाहते–फलतः हठधर्मी। दूसरे जिनके बारेमें कहा गया है कि वे सुननेपर भी नहीं सुनते या तो वे हैं जो सुनी हुई बात नहीं समझते या वे जो सुनकर अनसुना कर देते हैं। ऐसे सज्जन आजकल भी हमारी सभा समितियों, कांग्रेस कान-फरेन्सोंमें बहुतायतसे देखे जाते हैं। यह देख कर महान दुःख व आध्यात्मिक यातना होती है कि वैदिक, उपनिषत् और महाभारतके समय ऋत और सत्यके उपासक जिस निष्काम, निरीह और निष्पक्ष भावसे ज्ञानकी अर्चना करते थे, उसका हममें प्रायः अभाव हो गया है। ऋग्वेदके समयमें जबर्दस्त मतभेद भिन्न भिन्न दलोंमें रहता था और उक्त ऋचासे ज्ञात होता है कि पक्षपाती लोग दूसरोंकी बात, उनके सिद्धान्त समझने और सुननेमें दुराग्रहसे काम लेते थे। हरेक इसी प्रयत्नमें लगा रहता था कि अपनी वाणीका चमत्कार फैलाय (उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे) जैसे कि जाया सुन्दर वस्त्रोंसे शोभित होकर पति-को अपना सौन्दर्य दिखा उसे मोहना चाहती है। जो इस 'विद्वानोंकी संसद्'में (सायण) विजयी होता था, इस वाक्संग्राममें जिसे कोई न हरा सकता था उसे स्थिरपीत याने पक्के, पूर्ण ज्ञानीकी पदवी मिलती थी—"उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वंत्यपि वाजिनेषु"।[2] "यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।

---

१. ऋग्वेद १०।७१।४

२. ऋग्वेद १०।७१।५

यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्"[१]। इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तंत्रं तन्वते अप्रजज्ञयः"[२]।

इन्द्रासोमा वर्तयत दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणा नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्॥[३]
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वतः इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।
यो वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम्॥[४]

इन सभाओंमें जो विद्वान् सत्यकी ढूंढके लिए आते थे वे बहुधा अपना पुराना पक्ष छोड़कर 'नये सत्यका' आवाहन करते थे। जिसे जो नया सिद्धान्त पसंद आया या जो मत अधिक हितकर मालूम हुआ वह उसे स्वीकार कर लेता था। उसे इस सूक्तका यज्ञवादी ऋषि बुरा समझता है। वह कहता है कि जो अपने पक्षके ज्ञानियोंका साथ

---

१. ऋ० १०।७१।६ अर्थात् जिस पुरुषने अध्येता पुरुषोंके उपकारी वेदको त्याग दिया है उस पुरुषका लौकिकवाणीमें भी कोई अधिकार नहीं है। वह वेद व्यतिरिक्त जो कुछ भी पढ़ता-सुनता है वह सब झूठ है, वह श्रद्धारहित होनेके कारण अनुष्ठान मार्गको नहीं जानता है।

२. ऋ० १०।७१।९ अर्थात् ये अविद्वान् लोग जो कि यहाँ न अच्छे आदमियोंकी सङ्गति करते हैं, न उस लोकमें देवताओंके सम्पर्कमें आते हैं, न सोम आदि का अभिषव करके यज्ञानुष्ठान करते हैं वे अज्ञानी पुरुष लौकिकी वाणीको प्राप्त करके केवल किसानी जैसे मोटे मोटे कामोंके जानकार हो पाते हैं।

३. ऋ० ७।१०४।५ अर्थात् हे इन्द्र और सोम तुम दोनों अन्तरिक्षमें चारों ओर अपने आयुधोंको घुमाओ। तुम दोनों अग्निसे गर्म, जलाने और प्रहार करनेवाले, दृढ़ मज़बूत फौलादके बने अपने अस्त्रोंसे राक्षसकी पसलियोंको तोड़ दो—वे आगे चूँ तक न कर सकें।

४. ऋ० ७।१०४।६ हे इन्द्र और सोम देवताओ! हमारे द्वारा की गयी यह स्तुति आप दोनों बलवानोंको सर्वतः प्राप्त होवे जैसे कि घोड़ेकी कमरमें कमरबन्द रस्सी चारो ओर रहती है। मैं जिस अच्छी वाणीकी बुद्धिपूर्वक प्रेरणा कर रहा हूँ उसे और इन स्तोत्रोंको राजाके समान फलसे पूर्ण करो अर्थात् स्तुति करनेवालेको राजा जैसे धनसे पूर्ण करते है वैसे आप स्तुति-फलसे इन स्तोत्रोंको पूर्ण करो।

छोड़ता है उसे बोलनेका अधिकार न होना चाहिए। इतना ही नहीं उसका तो यहाँ तक कहना है कि ऐसा स्वपक्षद्रोही जो कुछ सुनता है फजूल ही सुनता है वह (किसी भाँति) सन्मार्गमें नहीं आ सकता। ऐसे विचार होना उस ऋषिके लिए स्वाभाविक है जो अपने पन्थका—यज्ञमार्गका—कट्टर हिमायती हो। उसने तो इन लोगोंकी वाणीको निष्फला और अपुष्पा कहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऋग्वेदके कालमें ऐसे विद्वान अवश्य थे जो यज्ञवादियोंको बुरा समझते थे। इनकी निन्दा ऋग्वेदमें यत्र तत्र पायी जाती है। इस सूक्तमें भी उन्हींकी चर्चा है। इनके बारेमें कहा गया है कि 'ये न तो इहलोक न परलोक मानते हैं, न ये ब्रह्मवादी हैं और न सोमरस तैयार करनेवाले'। ये ज्ञानरहित मूढ़ वक्तृत्वशक्ति मिलनेपर पाप (मार्ग) से सांसारिक समृद्धि बढ़ाते रहते हैं। ये वही हैं जिन्हें उपनिषदोंने 'वित्तमोहेन मूढ़ाः' बताया है। इनके बारेमें बार बार कहा गया है 'प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते', 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितम्मन्यमानाः' 'अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः', 'इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढ़ाः,' आदि।

ऐसी ही एक वादानुवाद-सभाका जिक्र सातवें मण्डलके अन्तिम सूक्तमें भी है। उसमें पचीस ऋचा हैं जिनमें प्रथम तेरहसे मालूम होता है कि यह इन्द्र-सोम तथा अन्य देववादी ऋषि द्वारा दी गयी गालियां हैं जो उसने 'अत्रियों' के विरुद्ध बरसायी हैं। बृहद्देवतामें इस सूत्रके विषयमें कहा गया है "ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्रशते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा।" सायणाचार्य इसपर सम्मति देते हैं 'अतो रक्षोनिबर्हणार्थमेतत्सूक्तं जाप्यं', किन्तु यह सूक्त बहुत स्पष्ट है। इसमें पुत्रशोकसे आतुर तथा सुदास राजाके साथ दुःखित ऋषि वशिष्ठ न किसीको शाप दे रहे हैं और न इसमें कुछ अन्य विद्वानोंके मतानुसार शपथ या दिव्यका इशारा है, इसकी दूसरी ही ऋचामें उन 'अघशंसों-का' वर्णन है जो 'ब्रह्मद्वेषी, मांसभक्षक, घोरचक्षु और यह सब (बहुत

संभवतः यज्ञवाद और यागयज्ञ) क्या है कहते हैं, (किमीदिने) । ये 'दुष्कृत' कहे गये हैं (ऋचा ३) और इन अत्रियोंको इस प्रकार वेध करनेकी प्रार्थना है कि उनकी आवाज बन्द हो जाय । साथ ही अपने लिए ऋषि यह भी वरदान चाहता है कि उसकी वाणी (वीर) नृपतिके समान विजय प्राप्त करे । आठवीं ऋचामें इस वादानुवादका विषय और भी साफ है । उसमें ऋषि वशिष्ठ प्रथम बचनमें कहता है 'जो सनातनधर्मके अनुसार चलनेवाले मुझको झूठी दलीलोंसे हराना चाहता है, वह हे इन्द्र! ऐसे लापता हो जाय जैसे मुट्ठीसे दबाया हुआ पानी ।'[1] सनातनधर्म शब्दपर अनेक विद्वान् आश्चर्य करेंगे । क्या उस समय ऐसा शब्द था ? ठीक यह शब्द तो बहुत बादका है किन्तु ऋग्वेदमें एक शब्द ऐसा आया है जिसका यही ठीक अनुवाद है । यह शब्द है 'पाकशंस' । ऋग्वेदमें सनातनधर्मी अर्थात् 'प्राचीन, पक्के पथका अनुसरण करनेवालेकी' उपाधि है 'पाकशंस' । इसके विपरीत जो अन्य नवीन अथवा यागयज्ञ दूषक मतका दम भरता है उसका नाम रखा गया है 'अघशंस' । सातवें मण्डलकी पहली तेरह ऋचाओंमें इन दो पक्षोंके शास्त्रार्थका जिक्र है । ये अघशंस पाकशंसोंकी हँसी उड़ाया करते थे[2] । वे अपने ज्ञानबलके जोरसे उस बातको बुरा बताते थे जिसे यज्ञपन्थी ऋषि कल्याणकर समझते थे । इन कुपन्थियोंको वशिष्ठ चोर, डाकू आदि विशेषणोंसे विभूषित करते हैं और विश्व देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि 'इनका यश सूख जाय जो रातदिन हमें तङ्ग करते हैं ।'[3] बारहवीं ऋचामें पूरा प्रमाण मिलता है कि इस सूक्तकी तेरह ऋचाओंमें 'वाक्युद्धका' प्रसङ्ग है । इसमें कहा गया है कि 'जहां वाणीका होड़ लगा हुआ है वहाँ विज्ञ जनता सहज ही सत्य और असत्य पहचान जाती है । इसमें जो सत्य है और जो अकुटिल है उसे सोम (राजा)

---

१. यो मा पाकेनमनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ऋ० ७।१०४।८.

२. ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः । ऋ० ७।१०४।९.

३. प्रतिशुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥ ५७।१०४।११.

बचाते हैं और जो असत्य है उसका नाश करते हैं'।[1] ऋग्वेदमें हम जिन विपक्षी दासों और आर्योंके सर्वनाशकी प्रार्थनाएँ पाते हैं वे ऐसे ही 'राक्षस' थे जो यज्ञवादके विरुद्ध थे। (ऋ० १०।८३।१; ७।८३।१; ६।६०।६ इत्यादि)। इनका मौखिक द्वंद्व बहुधा दो दलोंके बीच युद्धमें परिणत हो जाता था। इसका एक स्पष्ट प्रमाण हम भारत तथा ईरानके आर्योंमें देख रहे हैं जो एक दूसरेसे बिलकुल अलग हो गये; जिनमें एकके देवता दूसरेके असुर हैं तथा दूसरेके असुर (ईरानी 'अहुर') एकके देवता हैं; इसका फल अच्छा ही हुआ, उपनिषत् कालमें इस धार्मिक मारकाट, इस जहादने विद्वानोंके हृदयमें इसके प्रति महान् घृणा उत्पन्न कर दी। उस समय भी यद्यपि हम पाते हैं कि यम जोरसे कहते हैं 'न सांपरायः प्रतिभाति बालम् प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति न पर इति मानी पुनः पुनः वशमापद्यते मे' (कठोपनिषत् २।६) तो भी सहनशीलता भारतीयोंका सहज गुण बन गयी थी। ज्ञानी पुकार कर कहने लगे थे 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।' (ईशा० ११)।

आज वर्तमान भारतमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच वही पुरातन द्वन्द्व चल रहा है। पाकशंसों और अपशंसोंके पुराने झगड़ोंकी यह नयी प्रतिध्वनि है। एक समय हमारे पूर्वज अपने महद्बलसे, अपनी प्रतिभासे घोर युद्ध लड़नेके बाद इस परिणामपर पहुँचे थे कि 'नेह नानास्ति किञ्चन।' चण्डाशोककी तरह क्रूर सांसारिक युद्धमें वे शत्रुका विध्वंस कर धर्मचक्रका प्रवर्तन करनेमें समर्थ हुए थे। देखें आज उस पुराने झगड़ेका कैसा नया समाधान होता है। अस्तु यह प्रसङ्ग यहाँ गौण है। हमें तो विद्वानोंके सम्मुख प्राचीन ऋग्वैदिक भारतका वह चित्र रखना है जिसके विषयमें इतिहास अभी तक चुप है।

हेमचन्द्र जोशी

---

1. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हंत्यसत्॥ ऋ० ७।१०४।१२

पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें भौगोलिक सामग्री

हमारे पास इस बातकी सिद्धिके लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि पाणिनि आर्यावर्त्तके पूर्वीय एवं उत्तरीय दोनों भागोंका परिज्ञान रखते थे। डा० भाण्डारकरने पाणिनि सूत्र 'कम्बोजाल्लुक्' (४।१।७५) से जिसे वार्त्तिककार कात्यायनने परिष्कृत करके 'कम्बोजादिभ्यो लुक्' लिखा है—इस बातका अनुमान किया कि विन्ध्यपर्वतश्रेणीके दक्षिणवर्त्ती उस भागसे पाणिनि अपरिचित थे जहाँ पाण्ड्य, चोल आदि जातियोंका वास, अभिजन एवं राज्य था। महामहोपाध्याय वासुदेवशास्त्री अभ्यङ्करने डा० भाण्डारकरके उक्त कथनका प्रत्याख्यान किया। उनका कथन है कि पाणिनि सूत्रोंमें आये हुए 'प्राचाम्' शब्दके अन्तःपाती दक्षिणीय एवं 'उदीचाम्' शब्दके अन्तःपाती उत्तरीय भाग हैं। अपने मतकी पुष्टिमें उन्होंने पाणिनिसूत्र 'एङ् प्राचां देशे' (१।१।७५) की काशिकावृत्तिमें उद्धृत प्राचीन कारिकाको उपस्थित किया है। कारिका निम्न है—

'प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदके यथा।
विदुषां शब्दसिध्यर्थं सा नः पातु शरावती॥

शरावती नदी पूर्वोत्तर (ईशानकोण) से प्रवाहित होकर दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) की ओर बहती हुई प्राच्य एवं उदीच्य भारतको विभक्त करती है। यह श्लोक कहाँसे उद्धृत किया गया है इसका प्रमाण नहीं मिलता है तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि यह किसी पुराण या व्याकरणके ग्रन्थका होगा। यह नदी सम्भवतः कुरुक्षेत्रकी नदी हो और आर्यावर्तको भौगोलिक दृष्टिसे द्विधा विभक्त करनेकी सीमा समझी जाती रही हो। हम इस सूत्रके काशिकावृत्तिस्थ उदा-

हरणोंका पर्यालोचन करते हुए पाठकोंको अभिज्ञ कर देना चाहते हैं कि इन उदाहरणोंको वस्तुतः पाणिनिके न समझें। जबतक कि पाणिनिके ही सूत्रोंमें स्वतः ही किसी देश किंवा स्थानका नामग्राहनिर्देश न होवे तब तक हमारे पास कोई प्रमाण इस बातकी सिद्धिके लिये नहीं है कि उदाहरणोक्त स्थानोंसे भी पाणिनि परिचित ही थे। काशिकावृत्तिमें एणीपचन, भोजकट, गोनर्द, आदिको प्राच्यदेशस्थ एवं वाहीक देशवर्त्ती देवदत्तसंज्ञक ग्रामको उदीच्य देशस्थ लिखा है। एणीपचन आदि प्राच्यदेशवासी मनुष्य एणीपचनीय, भोजकटीय, गोनर्दीय आदि रूपसे व्यवहृत होंगे। प्राच्य देशसे भिन्न देशके ग्रामवासी पुरुषोंकी संज्ञाओंको प्रत्ययान्तरसे प्रकाशित कर 'दैवदत्त' आदि रूपसे कहेंगे। इस प्रकार उक्त विधानानुसार पञ्जाब और कुरुक्षेत्र उदीच्य एवं भोजकट तथा गोनर्द प्राच्य भूभाग हैं। हम भारतको ऐतिहासिक दृष्टिसे तीन बड़े भागोंमें विभक्त कर सकते हैं अर्थात् (१) मध्यभाग—जिसमें पञ्जाब एवं न्यूनातिन्यून कुरुक्षेत्र और राजस्थान (२) उत्तरीय भाग जिसमें सिन्धु नदके समीपके भूभाग तथा हिमालयके परवर्त्ती देश और (३) पूर्वीयभाग जिसमें यमुना नदीके परवर्त्ती देश हैं। हमारा मत है कि जब पाणिनि 'उदीचाम्' शब्दका प्रयोग करते हुए उदीच्य पुरुषोंकी भाषाके प्रयोग-भेद प्रदर्शित करते हैं तो उनका अभिप्राय सतलज नदीके उत्तरमें रहने वाले पुरुषोंसे होता है तथा जब वे 'प्राचाम्' शब्दका प्रयोग करके प्राच्य पुरुषोंकी भाषाकी विशेषता प्रदर्शित करते हैं तब उनका अभिप्राय यमुना नदीसे पूर्वका है। इसमें सन्देह नहीं कि उदाहरणोक्त बरार प्रान्तीय भोजकटके सम्बन्धमें पाणिनि स्वसम्मति प्रकट करनेमें असमर्थ हैं क्योंकि विन्ध्यश्रेणीसे दक्षिणीय भागका उनको परिज्ञान नहीं था। पाणिनि पञ्जाबसे पश्चिममें स्थित बलुचिस्तान आदि देशोंका भी परिज्ञान नहीं रखते थे। वे सौराष्ट्र (काठयावाड़) से परिचित थे। उपर्युक्त स्थलोंका परिज्ञान रखते हुए भी इन प्रदेशोंको आर्योंने अभीतक अध्याक्रान्त नहीं किया था और न यहाँ संस्कृत भाषाका ही व्यवहार होता था कि जिसकी विशे-

षताओंके सम्बन्धमें पाणिनि अपने ग्रन्थोंमें प्रकाश डालते। हमारे इस मतकी पुष्टि इतिहाससे भी होती है। यद्यपि पाणिनिका जन्म शालातुरमें हुआ था, जो कि सिन्धु नदीके पार है (ह्युन्त्साङ्गकी यात्रा) तथापि उनकी शिक्षा-दीक्षा और वासकी भूमि कदाचित् तक्षशिला किं-वा—बहुत सम्भव है—कुरुक्षेत्र ही थी। वैदिकयुगके समाप्तिप्राय समयमें वैदिक संस्कृति और सभ्यताका केन्द्र कुरुक्षेत्र ही था। यमुनासे पूर्वकी ओर बिहार पर्य्यन्त आर्योंके राज्य थे। ऐतरेय ब्राह्मणके निर्माणकालमें आर्योंका प्रवेश वङ्ग और कलिङ्गमें भी हो चुका था यद्यपि अभीतक ये प्रदेश आर्य संस्कृति और सभ्यतासे सम्पन्न नहीं हुए थे। अतः पाणिनि सूत्रोक्त 'प्राचाम्' शब्दसे यमुनासे पूर्ववर्त्ती बिहारपर्यन्त भूमिके अधिवासियोंका ग्रहण है। एतद्देशवासियोंकी भाषाओंमें कुछ विशिष्ट प्रकारकी विचित्रताएँ उपलब्ध होती थीं जिनपर पाणिनिने दृष्टिक्षेप किया है। पाणिनिके उत्तरकालीन टीकाकारों और वृत्तिकारोंने 'प्राचाम्' एवं 'उदीचाम्' शब्दोंको साधारणरूपेण विकल्पार्थद्योतक ही मानकर वृत्तियाँ लिखी हैं। ये टीकाकार प्राचीन भौगोलिक-परिस्थिति-मूलक-भाषाभेदके रहस्यको सर्वथा भूल चुके थे। अतः उन्होंने इन शब्दोंको सामान्यरूपेण विकल्पार्थक ही मान लिया, परन्तु पाणिनिका यह अभिप्राय कदापि नहीं था। यदि पाणिनिको सामान्यरूपेण विकल्पार्थ ही प्रकट करना होता तो वे केवल इस ही अर्थको बहुत सुन्दर रूपसे प्रकट करने वाले 'वा' और 'अन्यतरस्याम्' शब्दोंका प्रयोग करते।

उपर्युक्त श्लोकमें तो इस कालकी अपेक्षा भी प्राक्कालका वर्णन है, यद्यपि वह पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं है।

पाणिनिके समयमें आर्यभूमिके प्राच्य, मध्य और उदीच्य तीनों भागोंकी स्थितिकी पुष्टि पाणिनीयाष्टकके निम्न सूत्रोंसे भी होती है पुरे प्राचाम्। अरिष्टगौडपूर्वे च। न हास्तिनफलकमार्देयाः (६।२।९९-१०१)। इन सूत्रोंमें स्वरप्रक्रियाका निर्देश है। प्रथम सूत्रका अर्थ है कि प्राच्य-देशस्थ ग्रामसंज्ञावाची शब्दोंमें 'पुर' शब्द

परे रहनेपर पूर्वपद अन्तोदात्त होता है, द्वितीय सूत्रका अर्थ है कि अरिष्ट और गौड शब्द यदि पूर्वमें आवें और इनके पश्चात् 'पुर' शब्द आवे तो भी पूर्वपद अन्तोदात्त होवे। यहाँ अरिष्ट और गौड इन दो नामोंका ही उल्लेख है। यदि यह दोनों नाम भी प्राच्य देशस्थ ग्रामोंके ही होते तो प्रथम सूत्रसे ही यहाँ भी काम चल जाता।

पृथक् एक स्वतन्त्र सूत्र केवल इन दोनों नामोंके लिये ही न बनाना पड़ता। अतः सिद्ध हुआ कि प्रथम सूत्रके विषयभूत प्राच्यदेशवर्ती ग्रामोंसे पृथक् देशवर्ती यह दोनों ग्राम होंगे। अतः इस स्पष्टोल्लेखके कारण गौड़पूर्वशब्दसे बंगदेशस्थ ग्रामोंका सूत्रमें उल्लेख है इस भ्रममें किसीको नहीं पड़ना चाहिये। नामसादृश्यसे किसीके हृदयमें ऐसे भावके उद्बुद्ध होनेकी सम्भावना थी। परन्तु वराहमिहिरके समय (५०० ई० = विक्रम सं० ५५७) तक गौड़ नाम पश्चिमीय वंग देशका नहीं था अपितु थानेश्वरके समीपवर्ती प्रदेशका ही नाम गौड था।

तृतीय सूत्र प्रथम सूत्रका अपवाद है। प्रथम सूत्रने प्राच्यदेशस्थ संज्ञाशब्दोंके परे 'पुर' शब्द होनेपर पूर्व पदके अन्तोदात्तका विधान किया। यह सूत्र प्राच्यदेशवर्त्ती होनेपर भी हास्तिन, फलक, मार्देय शब्दोंके आगे 'पुर' शब्द आनेपर भी उक्त कार्यका निषेध करता है। इस विशद विवेचनमें सार केवल यह है कि हास्तिनपुर पाणिनिके समयमें प्राच्य भागमें था कुरुक्षेत्रके उधर गङ्गा नदीके उत्तरीय कूलपर स्थित होनेके कारण यह प्राच्य देश ही है जैसा कि हम तीनों भागोंकी परिभाषामें ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं। इस प्रकार प्राच्य देशस्थ ही अहिच्छत्र और कान्यकुब्जका उल्लेख (१।१।७५) है। पाणिनिसूत्र 'अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम्' भी ध्यान देने योग्य है। इससे प्रकट होता है कि प्राच्य और उदीच्य विभागोंके अतिरिक्त एक तृतीय विभाग 'अनुदीच्य' अर्थात् मध्यदेशसंज्ञक भी था।

क्योंकि यदि प्राच्य और उदीच्य नामक केवल दो ही देश-विभाग होते तो पाणिनि 'अनुदीचाम्' के स्थानपर 'प्राचाम्' शब्दका सूत्रमें प्रयोग करते। इस प्रयोगमें एक अक्षरका लाघव भी था अतः स्पष्ट है

कि यहाँ तृतीय विभाग ही पाणिनिको अभिप्रेत है। 'अनुदीचाम्' के उदाहरण काशिकावृत्तिमें सुह्मनगर और पौण्ड्रनगर हैं जो कि प्राच्य नगर हैं परन्तु एक दूसरे टीकाकारने इस अवसरपर विराट नगरका भी उदाहरण दिया है जो कि मध्यप्रदेशका नगर है। उदीच्यके जिन नगरोंका परिगणन काशिकावृत्तिकारने यहाँपर किया है—कान्तिनगर और नान्दीनगर हैं। यह कहां थे इसका जानना सम्प्रति असम्भव है।

इन्द्रप्रस्थ आदि प्रस्थ शब्दान्त नगरवाचक शब्दोंका उल्लेख पाणिनीयाष्टक (६।२।८७) में है परन्तु पुत्र शब्दान्त पाटलिपुत्र सदृश नगरसंज्ञाओंका निर्देश पाणिनिने नहीं किया है। यद्यपि पाटलिपुत्र नगरका उल्लेख काशिकावृत्तिकारने पाणिनि सूत्र (७।३।१४) की वृत्तिमें किया है तथापि यह स्पष्ट है कि पाणिनि इस नगरकी सत्तासे सर्वथा अनभिज्ञ थे क्योंकि इसकी स्थापनाका काल लगभग ४०० ई० पू० है। इन्द्रप्रस्थका परिज्ञान तो पाणिनिको अवश्य होगा। पाटलिपुत्रका नाम पाणिनिके सूत्रमें नहीं आया है इसलिये हमारे इस मतमें किसी प्रकारकी शङ्काका अवकाश नहीं है। पाणिनिको जिन देशों और जातियोंका परिज्ञान था उनका बहुत कुछ उल्लेख सूत्रोंमें है। पञ्जाब तथा पञ्जाबसे उत्तरीय कतिपय जातियोंके नाम सूत्रोंमें उपलब्ध होते हैं जैसे कि मद्र, (७।३।१३) कम्बोज, (४।१।१७५) कपिश, (४।२।९९) (यहाँ कपिश शब्दसे वर्तमान काबुलका अभिप्राय है यह बात काशिकाके उदाहरण 'कापिशायनी द्राक्षा'से सुव्यक्त है। द्राक्षा = दाख सम्प्रति भी काबुलका सुविदित फल है) वाहीक, (४।२।४७) उशीनर, (४।२।११८) गान्धार, (४।१।१६९) साल्वावयव, (अर्थात् साल्व किंवा शाल्व देशके उपविभाग) (४।१।१७३,) युगन्धर, (जिसे महाभारतमें पञ्जाबका कुत्सित प्रदेश कहा है) त्रिगर्त्त, (४।१।१११) प्रत्यग्रथ, कालकूट, भर्ग और यौधेय (४।१।१७५) जो कि प्राच्य प्रदेशोंसे भिन्न हैं। भर्ग, करूष, केकय, कश्मीर, उरश, साल्व, सुस्वात (स्वात) आदि भर्गादिगण

पठित तथा यौधेय, शौभ्रेय, शौक्रेय, वार्तेय, धार्तेय, त्रिगर्त्त, भरत और उशीनर आदि यौधेयादिगणपरिपठित जातियाँ निःसन्देह उदीच्य हैं जैसा कि पाणिनि सूत्र ४।९।१७८ से प्रकट होता है। उदीच्य जातिके अन्तःपाती भरतगोत्रीयोंसे अभिप्राय मूल भरतोंका ही है।

प्राच्यजातियोंमेंसे पाणिनि सूत्रोंमें कतिपयका उल्लेख शब्दतः मिलता है जैसे कि पाञ्चाल और निषध, (४।१।१९२) काशी, (४।२।११६) मगध, कलिङ्ग और सूरमस (४।१।१७०)। 'न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः' (४।१।१७८) की वृत्तिमें काशिकाकारने पाञ्चाल, वैदेह, अङ्ग, वङ्ग और मगधका परिगणन प्राच्योंमें किया है। इनमेंसे मगध और कलिङ्गका निर्देश तो सूत्रकारने भी (४।१।१७०) किया है। ऐतरेयारण्यकके समयमें ही आर्योंका कलिङ्गमें प्रवेश हो चुका था परन्तु वे उस समयतक वहाँ अधिष्ठित नहीं हुए थे। सौवीरका भी पाणिनिसूत्र (४।१।१४८) में उल्लेख है, सौराष्ट्रमें तो आर्य चिरकालसे अधिष्ठित हो चुके थे क्योंकि सौराष्ट्रकी गोपियोंकी ध्वनि 'तक्रँ' का उल्लेख प्रातिशाख्योंमें है। यह तो निश्चय ही है कि पाणिनि वर्तमान दाक्षिणात्योंके प्रदेशका परिज्ञान नहीं रखते थे क्योंकि उनके सूत्रोंमें तद्देशीय एक भी संज्ञाका उल्लेख नहीं है। सम्भवतः उस समय विन्ध्यपर्वततक आर्य बस चुके हों क्योंकि पाणिनि सूत्रोंमें अवन्ति (उज्जैन) और कुन्ति (ग्वालियर राजस्थ कुतवाल) (४ अ० १ पा० १७६ सू०) का उल्लेख है। शूरसेनका उल्लेख काशिकावृत्तिमें इसीके अग्रिम सूत्रमें आया है।

द्वारकाके अन्धक और वृष्णिका उल्लेख शब्दतः पाणिनिसूत्र (४।१।११४) में है। हैहयका भी परिगणन शिवादिगण (४।१।१११) में किया गया है।

पाणिनिसूत्र 'बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु' (२।४।६६) से एक विशेष बात व्यक्त होती है कि भरत पूर्वदेशस्थ पुरुष नहीं थे अपितु मध्यदेशस्थ थे। पञ्जाब तो इनका उद्गमस्थान एवं अभिजन था ही। इसके अतिरिक्त कुछ भरत मध्यदेशस्थ भी थे। काशिकाकारने

इस बातको यथार्थरूपेण न समझ कर प्रकारान्तरसे इसका खण्डन किया है। काशिकाकारने भरतगोत्रके उदाहरणमें भी ऐतिहासिक दृष्टिसे त्रुटि की है। बहुवचनमें यदि युधिष्ठिरकी सन्तानोंको व्यक्त करनेकी आवश्यकता हो तो व्याकरण-नियमानुसार 'युधिष्ठिरा:' प्रयोग शुद्ध होगा। यह काशिकाकारका कथन महाभारतके आख्यानके सर्वथा विपरीत है क्योंकि हमें महाभारतसे भलीभाँति ज्ञात है कि मध्यरात्रिमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके आक्रमणके उपरान्त युधिष्ठिर-की सन्तानका नामावशेष भी नहीं रहा। अतः सूत्रोक्त भरतगोत्र-सम्बन्धी अंशका उदाहरण 'युधिष्ठिरा:' अशुद्ध है।

यदि हम युधिष्ठिर और अर्जुनको भरत गोत्रका समझें तो हमें यह भी स्वीकार करना चाहिये कि भरतगोत्रीय पुरुष पूर्व तथा उत्तर दोनों ही दिशाओंमें फैले हुए थे अतः उदीच्यसे पृथक् प्राच्यभरतका नामोल्लेख करना न्यायसङ्गत ही है। काशिकाकारने इसी प्रकारकी एक अशुद्ध फक्किका अन्यत्र भी 'न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु' (४।२।११३) की वृत्तिमें लिखी है। काशिकाकारका कथन है कि भरतगोत्रीय पुरुष तो प्राच्य-पुरुष स्वतः हैं ही अतः सूत्रके शब्दोंमें प्राच्यके ग्रहणसे वे भी गृहीत हो ही जाते पुनः भरतका पृथक् सूत्रमें ग्रहण करना निरर्थक है, निरर्थक होनेसे इस बातका ज्ञापक है कि अन्यत्र भी जहाँ जहाँ प्राच्य पदका उल्लेख पाणिनि सूत्रोंमें है वहाँ वहाँ भरतोंका प्राच्यशब्द द्वारा ग्रहण नहीं करना चाहिये।

काशिकाकारकी यह व्याख्या अशुद्ध है क्योंकि हमारा विचार है कि काशिकाकारको पाणिनिके समयकी भौगोलिक परिस्थितिका यथार्थ परिज्ञान नहीं था।

भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ (४।२।५४) पाणिनिसूत्रमें भी कतिपय देश एवं जातियोंके नाम निर्दिष्ट किये गये हैं जिनको यथार्थ रूपसे सम्प्रति अवगत कराना कल्पनाके भी बाहर है। भौरिकि तथा ऐषुकारि जातियाँ तथा विधल् और भक्तल् प्रत्ययान्त इन जाति-योंके देशोंके 'भौरिकिविधः' (देशः) 'ऐषुकारिभक्तः' (देशः) सदृश

नामोंका उल्लेख महाभारत तकमें नहीं मिलता है। भौरिक्यादिगणमें सैकयत तथा वैकयत और ऐषुकारिगणमें सौवीर और दासमित्र आदिके नाम परिगणित किये गये हैं।

नगरों और ग्रामोंके नामोंका भी निर्देश कतिपय सूत्रोंमें मिलता है जैसे कि कास्तीर और अजस्तुन्द (६।१।१५५)। चार सूत्रोंमें इस बातका उल्लेख है कि इन ग्रामों और नगरोंकी संज्ञायें किन नियमोंके आधारपर रखी जाती थीं। यह नियम इस प्रकार हैं—(क) किसी विशेष वस्तुके आधारपर जो कि प्रचुरताके साथ वहाँ उपलब्ध होती हो (ख) किसी विशिष्ट पुरुषके नामपर जो कि उसका संस्थापक हो (ग) जिस वर्गके पुरुषोंका वहाँ प्रचुरतया वास हो (घ) और वह नगर या ग्राम जिस किसी विशिष्ट नगरके प्रत्यासन्न हो।

सैकड़ों ग्रामों और नगरोंके निदर्शन काशिकावृत्तिकारने दिये हैं एवं बहुतसे नाम पाणिनिके आदिशब्दान्त सूत्रोंको ध्यानमें रखकर गणपाठमें संगृहीत किये गये हैं जैसे कि वरणादिभ्यश्च (४।२।८२) में आदि पदके द्वारा मथुरा, उज्जयिनी, गया, तक्षशिला और काश्मीरकी उरशा नगरीका परिगणन किया गया है। 'उदक् च विपाशः' सूत्र (४।२।७४) बड़ा ही मनोरञ्जक है। एक तो यह पञ्जाबकी नदी विपाशा (व्यास) का उल्लेख करता है और साथ ही इस बातको प्रकट करता है कि पाणिनिको पञ्जाबके ग्रामोंका कैसा सूक्ष्म परिज्ञान था।

इस सूत्रसे यह दो बातें और भी व्यक्त होती हैं कि व्यास नदीके उत्तरकी ओर खोदे गये कूपोंको व्यावहारिक भाषामें प्रयुक्त करते समय संज्ञानिर्माणका जो प्रकार होगा दक्षिणकी ओर खोदे गये कूपोंकी संज्ञानिर्माणका प्रकार उससे भिन्न होगा तथा साथ ही इन प्रयोगोंमें भाषिक स्वरका भी एक बहुत बड़ा भेद होगा।

'स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु' (४।२।७६) सूत्र भी ध्यान देने योग्य है। इससे विदित होता है कि नगरोंके नाम सौवीर आदिमें स्त्रीलिङ्गके भी होते थे जैसे कि सौवीर देशकी दात्तामित्री नगरी। इस प्रकारके स्त्रीलिङ्ग प्राच्य नगरोंका उदाहरण देते हुए काशिकाकारने काकन्दी और

माकन्दी इन दो नगरोंको लिखा है। इस सूत्रसे यह भी सिद्ध होता है कि पाणिनिके मतानुसार सौवीर और साल्व पूर्वमें नहीं थे, पूर्वोक्त सौवीर तो मध्यदेशमें तथा साल्व उत्तरीय भागमें था।

नदियोंके नाम प्रायः वैसे ही ढंगसे रखे गये हैं जैसे कि महाभारतमें उपलब्ध होते हैं। उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् (४।२।१०६) सूत्रसे यह बात स्पष्ट प्रतिभासित होती है कि पाणिनिके समयमें नगरोंके नाममें भी बोलनेकी भाषामें स्वरवैषम्य था। रङ्कु नगर कहाँ था इस बातका अब कोई पता नहीं चलता है। परन्तु 'राङ्कवो गौः' (५।२।१००) उदाहरणसे इसकी पूर्वसत्ता विदित होती है।

प्रस्थ शब्दान्त नगरोंके सम्बन्धमें हम अभी कह ही चुके हैं परन्तु 'प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् (४।२।११०) सूत्रके पलद्यादि गणमें भी बहुतसे नगरोंका उल्लेख है जिनमेंसे यकृल्लोमन् और कालकूट, महाभारत तथा रामायणमें भी प्रयुक्त होनेके कारण, यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पाणिनि सूत्र (४।३।९४) में तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवारका उल्लेख है (जो कि उत्तरके नगर अथवा बहुत सम्भव है कि उत्तरके प्रदेश हों) परन्तु इनका उल्लेख महाभारतमें नहीं है। इसी सूत्रसे प्रथम सूत्रमें आये तक्षशिलाका उल्लेख तो महाभारतमें भी है। इसी गणमें कश्मीर, उरस् और दरत् भी उपलब्ध होते हैं।

पञ्जाबका कितना सूक्ष्म परिज्ञान पाणिनिको था यह बात 'वाहीकग्रामेभ्यश्च' (४।२।११७) से विदित होती है। इस सूत्रमें केवल वाहीक देशके ग्रामोंके सम्बन्धमें विशेष नियमका उल्लेख है। काशिकाकारने शाकलिका और शाकलिकी वहाँपर उदाहृत किया है।

शाकल वाहीक देशका एक विख्यात नगर था (महाभारत कर्ण पर्वमें 'शाकलं नाम नगरम्' आदिका उल्लेख है। वहाँ शाकल नगरको अधार्मिक कह कर दूषित किया है)। विभाषोशीनरेषु (४।१।११८) सूत्रमें पाणिनिने इस बातका भी उल्लेख किया है कि उशीनर यद्यपि वाहीक देशका ही विभाग है तथापि उक्त नियम उशीनरके सम्बन्धमें विकल्पसे प्रयुक्त होगा। काशिकाकारने इस स्थलपर 'आह्वजालिका,

आह्वजालिकी, आह्वजालीया और सौदर्शनिका, सौदर्शनिकी और सौदर्शनीयाको उदाहृत किया है। इन सूत्रोंसे विदित होता है कि पञ्जाबके नगरों और ग्रामोंके नामोंके भिन्न भिन्न प्रयोगतक भी पाणिनिको विदित थे।

पाणिनि सूत्र (४।२।१२७) से विदित होता है कि ग्रामोंके नाम प्रायः कूल, सूद, स्थल, और कर्ष शब्दान्त होते थे। पाणिनि सूत्र (४।३।१०४) से प्रतीत होता है कि वाहीक शब्दको सामान्यतः पञ्जाब भरके लिये पाणिनि व्यवहार्य समझते हैं क्योंकि 'क्षुद्रकाः' और 'मालवाः' को उन्होंने वाहीक देशस्थोंमें परिगणित किया है। ये यहाँ क्षत्रिय जातिके नहीं हैं परन्तु काशिकाकार इनको क्षत्रिय समझते हैं। पाणिनि सूत्र (५।३।११६) में कुछ और भी युद्धशील (आयुधजीवी) जातियोंका उल्लेख है जिनमें दामन्यादि और त्रिगर्त्तषष्ठ हैं (त्रिगर्त्तोंके साथ सख्यभावमें वह अन्य पाँच जातियाँ तथा स्वयं त्रिगर्त्त आदिका सङ्घ = त्रिगर्त्तषष्ठ)। इन दो गणोंमें जो नाम आये हैं वे महाभारतमें नहीं उपलब्ध होते हैं। पर्श्वादि और यौधेयादि आयुधजीवी जातियोंमें जिनका पृथक् परिगणन यहीं पर अग्रिम सूत्र (४।३।११७) में है कुछ विशेष प्रत्ययोंके साथ भारतसे बाह्य जातियोंका भी उल्लेख है जिनमें पर्शु-असुर-वाल्हीक (वाहीकसे यहाँ अभिप्राय नहीं है) और पिशाच (जिनकी भाषा पैशाची प्राकृत कहलाती है) हैं। यौधेयादि गणमें सुविदित आर्योंकी भारतीय शाखाके यौधेय, त्रिगर्त्त, भरत और उशीनर भी सम्मिलित हैं।

चिन्तामणि विनायक वैद्य

विद्यापीठ

काशी विद्यापीठकी त्रैमासिक पत्रिका

पौष, १९८७

विद्यापीठका उद्देश्य[1]

विद्यापीठका आरम्भ

सज्जनो ! आप सब लोग यहाँ दया करके पधारे हो इससे मेरे मनमें आनन्द और कृतज्ञता और धन्यवादका भाव बहुत है, तौ भी मेरे परम स्नेहभाजन और इस संस्थाके जन्मदाता और माता धाता, तथा अंशतः विधाता, श्री शिवप्रसाद जीके विलायतमें बैठे रहने और यहाँ उपस्थित न होनेसे कुछ सूनापन भी है ।

आपको विदित है कि इस संस्थाका आरंभक हेतु राजनीतिक आवेश (पोलिटिकल् इन्स्पिरेशन)[2] हुआ । नवम्बर १९२० में महात्मा

---

१ सौ० २८ माघ १९८६ वि० के दिन, काशीविद्यापीठके वार्षिकोत्सवके समय, श्री भगवान्‌दासने कुलपतिके रूपसे जो व्याख्यान किया उसका आशय इस लेखमें दिया गया है ।

२ Political inspiration,

गांधीने, अलीगढ़के कालेजके छात्रोंमें असहयोगका प्रचार करके, जामिया मिल्लिया नामके एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विद्यापीठका आरम्भ कराया था। ऐसा ही प्रबन्ध उनको काशीमें स्वयं भी अभीष्ट था, और मुसलमान भाइयोंने भी उनको विशेष रूपसे याद दिलाया कि हिन्दू युनिवर्सिटीमें भी वैसा ही होना चाहिये जैसा अलीगढ़में हुआ। महात्माजी काशी आये। हिन्दू विश्वविद्यालयके छात्रोंमें क्षोभ हो ही रहा था। सेन्ट्रल हिन्दू कालेजके बाहर सबने किरायेपर एक टुकड़ा जमीन ले रखा था, और उसका नाम 'लिबर्टी ग्राउन्ड' रखा था। उसपर महात्माजीका व्याख्यान, जहाँतक मुझे याद पड़ता है, ३० नवम्बर, १९२०, को हुआ। और कुछ लड़कोंने और अध्यापक कृपलानीने हिन्दू युनिवर्सिटीसे सम्बन्ध छोड़ दिया। इससे एक महीना पीछे नागपुरकी कांग्रेसके बाद शिवप्रसाद जी मेरे नाम लिखी एक चिट्ठी महात्माजीकी लेकर काशी आये। महात्माजीने लिखा था कि अब अलग संस्था स्थापित करनेमें देर नहीं करना चाहिये।

यद्यपि शिवप्रसादजी मेरी ढीली प्रकृतिको जानते थे, और यह भी जानते थे कि बिना लक्ष्य और सिद्धान्तोंके निर्धारणके, किसी कार्यमें पैर बढ़ाना मुझे बहुत असमंजस जान पड़ता है, और उस समयतक लक्ष्य और सिद्धांत निर्णीत नहीं हुए थे (न अबतक हुए हैं) जिस प्रकारसे मैं आवश्यक समझता हूँ, तो भी उन्होंने मुझको दैवकी और स्नेहकी प्रेरणासे इस कार्यमें बाँध दिया।

२८ माघ संवत् १९७७ को महात्माजीने काशीविद्यापीठका आरम्भ किया। तबसे यह संस्था आप लोगोंके शुभचिन्तनसे जी रही है और आपके समक्ष अपना कार्य कर रही है।

पास जितनी सामग्री है उसके अनुरूप प्रत्यक्ष कार्य नहीं हो रहा है। इस संस्थाके भीतर जो अध्यापक और कार्यकर्ता हैं उनके मनमें भी ऐसे प्रश्न उठा करते हैं। इस हेतुसे पढ़ाईकी रीतिनीति पर पुनः पुनः विचार होता रहा है, और समय समयपर परिवर्तन भी होता रहा है। आजकाल भी निरीक्षक-सभा नवीन योजनाका विचार कर रही है। एक दृष्टिसे ऐसी अव्यवस्थितता अवश्य दोष जान पड़ती है। पर

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।

जब आरंभक हेतु राजनीतिक आवेश (पोलिटिकल इन्स्पिरेशन) के ही सिद्धांत और कार्यक्रम स्थिर नहीं हैं, तो उसके उत्पादित कार्यमें भी स्थिरता होना कठिन है। महात्माजी एक बार, कई वर्ष हुए, जब विद्यापीठमें पधारे थे, तब मैंने उनसे सार्वजनिक सभाके समक्ष प्रार्थना की थी कि आपने इस संस्थाकी मूर्तिकी स्थापना तो की किंतु प्राण-प्रतिष्ठा बाकी है, सो इसके लक्ष्यका स्पष्ट सुव्यक्त निर्धारण करके इसमें तद्रूपी देवताका आवाहन करके प्राणप्रतिष्ठा भी कर दीजिये। और मैंने यह सूचना भी उनसे की कि, यदि आप उचित समझें तो, "कर्मणा वर्णः" इस मन्त्र-मूर्ति देवताका प्रतिष्ठापन यहाँ कर दीजिये, क्योंकि अध्यात्मशास्त्रका जो कुछ भी प्रयोग, समाजके प्रबन्धके लिये, समग्र व्यावहारिक सुखोंका साधक हो सकता है, वह सब इन्हीं दो शब्दोंमें भरा हुआ है। पर ऐसा करनेको किसी कारणसे वे बचा गये, यह कहकर कि ऐसी प्राणप्रतिष्ठाका काम तुम्हारे ही जिम्मे रहेगा।

क्या सर्वसंग्राहक लक्ष्य, क्या सिद्धान्त, क्या बीजमन्त्र, राज-नीतिके क्षेत्रों, तथा अध्यापनके क्षेत्रमें, तथा पारिवारिक क्षेत्रमें, तथा सामाजिक और वैयक्तिक जीवनके अन्य सब क्षेत्रोंमें होना चाहिये; यह मेरे मनमें तो कुछ कालसे विस्पष्ट हो रहा है। और मेरे जोर देनेसे, उसका यथाकथंचित् समावेश भी संकल्पपत्रमें, तथा अध्यापकसम्बन्धी नियमोंमें, सामान्यतः कर दिया गया है। अर्थात् अध्यात्मशास्त्रके अनुसार भारतीय सामाजिक जीवनके सब अंगोंका पुनः संस्करण। और इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने महात्माजीसे उक्त प्रार्थना की थी।

पर मैं उस लक्ष्य और तत्सम्बन्धी सिद्धान्तोंको अपने सहकारी वर्गके अधिकांशके मनमें उतार नहीं सका हूँ। यह मेरी ही अयोग्यता है। इस कारण भी संस्थाके कार्यमें कुछ शिथिलता होती है। पर मैंने अपना सन्तोष यों कर लिया है कि यह संस्था एक नयी आजमाइश, एक्सपेरिमेंट'[1], है। और ऐसी नयी रीतियोंकी परखमें, आरम्भ में, अवश्य शक्तिका व्यय अधिक होता है। और ढिलाई भी अपने स्थान और समयमें उचित ही है। बढ़ते हुए बच्चेको यदि खूब कसा हुआ कपड़ा पहना दिया जाय तो उसके शरीरकी वृद्धि बन्द हो जाय। द्वन्द्वमय सृष्टि है। सृष्टिके आदि कालसे, दो पक्षके संघर्षसे समुद्र-मन्थन होता है, और उसमेंसे तरह तरहके रत्न भी और विष भी निकलते हैं। तथा कठोर और परस्पर संघर्ष करनेवाली वस्तुओंको बाँधे रहनेके लिये ढीली रस्सी आदिकी आवश्यकता भी रहती ही है जिसमें वे बिखरने न पावें। यथा उस पौराणिक महारूपकमें दोनों पक्षोंकी मथानीका काम मन्दर पर्वतने दिया, दोनोंके खींचनेकी रस्सीका काम वासुकि सर्पराजने, मन्दरका बोझ ढोनेका काम कच्छपरूपी विष्णुने, संघर्षसे उबले क्रोधविषको पी जाने और शमन करने और दोनों पक्षके शिवचिन्तनका काम शिवने, इसीलिये किया कि सृष्टि बिखरने और अकालप्रलय होने न पावे।

देशकी राजनीतिक अव्यवस्था

राजनीतिके क्षेत्रमें भी आप देखते हो कि कई पक्ष हो रहे हैं, और दस वर्षसे वह संघर्ष चल रहा है। एक कोटिपर "मेन्टेन दी प्रेजेन्ट सिस्टम आफ गवर्मेन्ट बाइ वायोलेन्स"[2] अर्थात् वर्तमान शासन-प्रणालीको पाशव बलसे, हिंसासे, जैसे हो तैसे, बनाये रहो, और दूसरी कोटिपर "चेन्ज दी सिस्टम आफ गवर्मेंट बाइ वायोलेन्स"[3], अर्थात् शासनपद्धतिको पाशव बलसे, हिंसासे, जैसे हो तैसे, बदल

---

१ Experiment.

२ Maintain the present system of Government by violence.

३ Change the system of Government by violence.

डालो। ये दो नीतियाँ देखनेमें परस्पर विरुद्ध हैं, पर रीतिमें समान हैं। इन दोनोके बीचमें, एक कोटिसे दूसरी कोटितक फैले हुए, माला-के दाना ऐसे, कई पक्ष हैं। राजोपजीवी (ब्यूरोक्राट), राजभक्त (लायलिस्ट), अपरिवर्तनवादी अथवा वर्तमानभक्त (कांसरवेटिव), विना कष्टके, केवल वाग्बलसे, अपना और देशका सर्वसुख चाहनेवाले नरमदली (लिबरल-माडरेट), असम्बद्ध (इन्डिपेण्डेण्ट) मतलबके अनुसार कभी इस तरफ कभी उस तरफ सम्बंध जोड़नेको तैयार, मुसलिम लीगर, हिन्दू सभाई, राष्ट्रीयताचिन्तक (नैशनलिस्ट), प्रति-सहयोगी (रेसपान्सिविस्ट), स्वराजी, सैद्धान्तिक ऐकान्तिक शांति-मय असहयोगी (नान-वायोलेन्ट नान-कोआपरेटर बाइ फ़ेथ) और नैतिक औपायिक शांतिमय असहयोगी, (नान-वायोलेण्ट नान-को-आपरेटर बाइ पालिसी)[२]—इनकी शृङ्खला एक कोटिसे दूसरी कोटितक फैली हुई है। भारतको स्वराज्य मिलना चाहिये, यह सभी कहते हैं, पर गवर्मेन्ट यद्यपि मुँहसे कहती है, दिलसे, नेकनीयतीसे, चाहनेका कोई प्रमाण, कोई तदनुरूप कार्य, नहीं दिखाती। प्रत्युत बदनीयतीसे प्रजापीडनके कार्य नये नये रोज़ रोज़ करती जाती है लिबरल पक्षमें यह बड़ा गुण है कि उनका लक्ष्य, ग़लत हो या सही, पर विस्पष्ट है। किन्तु उनका महा दोष यह है कि उस लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिये उनके पास सिवाय वाग्मिताके और कोई उपाय नहीं है, कोई साहसका कार्य करनेको, कोई जोखिम उठानेको, वे तैयार नहीं रहे हैं। ईश्वर करे आगे चलकर हो जायँ। इसके उलटे, असहयोगी, कष्ट भोगनेको, गवर्मेंटका शांत विरोध करनेको, तैयार हैं, पर उनका लक्ष्य अव्यक्त है। ईश्वर करे आगे चलकर व्यक्त हो जाय। कलकत्ते-

१ Bureaucrat; Loyalist; Conservative; Liberal-moderate; Independent.

२ Muslim Leaguer; Hindu Sabha-ite; Nationalist; Responsivist; Swarajist; Non-violent Non-co-operator by faith; Non-violent Non-co-operator by policy.

की सन् १९२८ के दिसम्बरकी कांग्रेस और सर्वदलसम्मेलनके बाद सब दलोंका ऐकमत्य होकर सबका लक्ष्य, तत्त्वहीन हो या सर्वांग-सम्पन्न हो, विस्पष्ट होकर एक वर्ष तक स्थिर रहा। दिसम्बर सन् १९२९ की लाहौरकी कांग्रेसके बाद फिर सब एकता बिखर गयी और अनन्त कोलाहल चल पड़ा। स्थूल दृष्टिसे देखनेवालेको तो राजनीतिके क्षेत्रमें इन बहुमतों और दलोंके परस्पर कलहसे प्रगतिकी गाड़ी रुकी ही हुई मालूम पड़ेगी, और निश्चयेन जितना बढ़ना चाहिये उसका अल्प अंश भी नहीं बढ़ सकी है, पर तौ भी सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे जान पड़ेगा कि देश इधर दस बरसमें बहुत आगे बढ़ा है। हवा बदल गयी है, और आबो-हवा, जल-वायु, बदलना दीर्घरोगीको आवश्यक है—यह तो चिकित्साशास्त्रकी कहावत हो रही है। हवा बदलनेका अर्थ नये प्राणका संचार है। आपसके कलह इस बातके सबूत हैं कि समाजके शरीरमें, राष्ट्रके शरीरमें, रोगका कारणभूत सात्म्यरहित मल किट्ट मौजूद है, और जैसे ज्वर और शोथसे पककर फोड़ा फूटता है और मवाद साफ हो जाता है, वैसे ही कलहसे और बुद्धियोंके सम्मर्दसे दुर्लक्ष्य और कुसिद्धांत, कुविचार, फूट कर निकल जायँगे, और सल्लक्ष्य, सत्सिद्धांत, सद्विचार, नयी हवामें, स्थिर होंगे और पनपेंगे। बिना ठोकर खाये बच्चे सीधे चलना सीखते नहीं। अपनी देशी कहावत है, जिसे मैंने अपनी अनपढ़ पत्नीसे पहिले पहल सुना और सीखा, "पढ़े पंडित नहीं होता, पड़े (अर्थात् सिरपर बोझ और क्लेश पड़नेपर) पंडित होता है।"

विद्यापीठकी मुख्य त्रुटि और उसके दोषी

कुछ ऐसी ही दशा इस संस्थाकी भी है। राष्ट्रीय विद्यापीठोंका लक्ष्य राष्ट्रीय शिक्षा और गवर्मेंटकी अनधीनता होनी चाहिये, यह तो अवश्य पुकार पुकार कर कहा जाता है, और ठीक कहा जाता है। पर राष्ट्रीय शिक्षाका क्या स्वरूप है, इसके निर्धारणकी ओर ध्यान प्रायः नहीं ही देख पड़ता। एक बार, संवत् १९७९ में, कई प्रांतोंके

सज्जनोंने यहाँ काशीमें एकत्र होकर राष्ट्रीय शिक्षाके रूपकी योजना बनायी थी। पर उसको व्यवहारमें लानेमें बाधाएँ होती हैं। तौभी कुछ कार्य हो ही रहा है। बाहरी सज्जनोंको तथा भीतरी कार्यकर्ताओंको जो कुछ असन्तोष है उसको, श्रेयसि केन तृप्यते, इसीका रूप समझना चाहिये। देशकी हवा बदलनेका, तथा राष्ट्रीयताके भावसे भावित शिक्षाका, थोड़ा बहुत नमूना दिखानेका, यत्न यह विद्यापीठ कर ही रहा है। मुख्य त्रुटि जो यहांपर समझी जाती है वह विद्यार्थियोंकी कमी है, और इसके लिये सारा देश जिम्मेदार है, केवल यहांके कार्यकर्ता नहीं। मैं समय समयपर आप लोगोंसे वाणी और लेख द्वारा, निवेदन करता रहा हूँ कि विद्यार्थी, युवा और बालक, सब सत्तर अस्सी हैं, और अध्यापक बीस हैं, जिनके द्वारा पाँच सौ विद्यार्थियोंकी पढ़ाई सहजमें हो सकती है, आप हमको विद्यार्थी अधिक संख्यामें दीजिये। यदि आप लोग ऐसा नहीं करते हो तो इस दोषके भागी आप ही हो। हम तो पढ़ानेको तैयार हैं। फ़ीस (शुल्क) भी नहीं मांगते, रहनेको स्थान भी विना शुल्कके देते हैं, और अबतक यथाशक्य विशेष बुद्धिमान् और धनहीन विद्यार्थियोंको अन्नवस्त्रकी सहायता भी करते रहे हैं। गवर्मेंटी संस्थाओंकी अपेक्षा राष्ट्रीय संस्थाओंमें विद्यार्थियोंकी कमीका एक मुख्य कारण यह है कि इनमें पढ़े हुओंको गवर्मेंटी नौकरी आदिकी आशा नहीं रहती, पर जैसा आपको मंत्रीके वार्षिक विवरणसे विदित हुआ है, यहाँके जितने, अर्थात् इक्यावन, शास्त्री आजतक निकले हैं, सब अपनी जीविका साध रहे हैं, कोई जीविकासे विहीन नहीं हैं, और यह भी मेरा विश्वास है, कि साधारणतः यहांका शास्त्री योग्यतासमष्टिमें गवर्मेंटी विद्यालयोंके बी० ए० से कुछ अच्छा ही होता है। इतनेपर भी यदि विद्यार्थी न आवें तो हमारा हृदय हमको विशेष अपराधी नहीं ठहराता, यह अपराध देशकी राजनीतिक कहिये, सामाजिक कहिये, धार्मिक कहिये, अव्यवस्थाका ही है। जैसा मैंने पहिले कहा,

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।

दोषकी चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्साका, कुलज्येष्ठ और कुलकनिष्ठको सुप्रतिष्ठ करनेका, एकमात्र उपाय मुझे तो यही सूझ पड़ता है कि लक्ष्यके मूल-स्वरूपको, और तत्सम्बन्धी सिद्धांतोंको, अच्छी रीतिसे निश्चित, निर्धारित, करके, सारे देशमें, गांव गांवमें, उसका प्रचार कर दिया जाय। लक्ष्य ही तो अन्धेरेमें दीपकका काम कर सकता है। उसके विना, अवश्य इधर उधर भटकना, टटोलना, ठोकर खाना, और नित्य नई आज़माइश करते रहना होगा।

अन्धकारे प्रवेष्टव्यं दीपो यत्नेन धार्यताम्।

जबतक देशभरमें रेलकी लैन न बिछा दी जाय, तबतक एक ट्रेन भी कोने कोने नहीं दौड़ सकती। चिरकालके विविधरोगग्रस्त रोगीके शरीरमें स्वास्थ्यका संचार नहीं हो सकता जबतक सब अंगोंका संशोधन, कायकल्पसे, तनक़ीयासे, न किया जाय। एक कान, एक आंख, या एक हाथकी मरहम पट्टीसे कारबरारी नहीं होनेकी। जिस महासमाजमें, "नेशन" में, मनुष्यसमूहमें, भेदबुद्धिका रोग अङ्ग अङ्गमें व्याप गया है, जो असंख्य जात्युपजात्युपोपजातियोंके, और विधर्म-कुधर्म-परधर्मादि धर्माभासोंके, निरंतर कोलाहल और कलहसे जीर्ण शीर्ण हो रहा है, जो सब प्रकारसे पतित है, उसका पुनरुद्धार फुटकर उपायोंसे नहीं हो सकता। जब उसके अंग प्रत्यंगमें अभेदबुद्धिका, सम्मतिका, एकमतिका, प्रचार किया जायगा, तभी पुनरुद्धार होगा। विलायती शासक तो स्पष्ट कह रहे हैं, "तुम लोग आपसके कलह दूर करो, एकराय होकर एक निश्चित बात कहो, हमको अवश्य मानना ही होगा।" पर हमारे ही कानोंपर, आंखोंपर, बुद्धिपर, पर्दा पड़ा है। हम उनकी बातका अर्थ नहीं समझते, एकताके सच्चे उपायकी ओर ध्यान नहीं देते, पच्छिमकी नक़लके भुलावेमें पड़े हैं, रोज़ राय बदलते है, नयी आज़माइश करते हैं। और विदेशी गवर्मेंट, जिसका भेदनीतिपर ही प्रतिष्ठित होना एक स्वयंसिद्ध बात है, रोज रोज तरह तरहके उपायोंसे इस भेदबुद्धिको

बढ़ाती ही जाती है। क्यों न बढ़ावै? मूर्ख छन्दानुरोधेन, और चराणामन्नमचराः बुधानामबुधास्तथा। जब हम मूर्ख हैं, अबुध हैं, तो बुध लोग क्यों न हमारा छन्दानुरोध करके, हममें भेदबुद्धि अधिकाधिक बढ़ाके, हमको और भी बेवकूफ़ बनाके, हमारे प्राण चूसें?

मेरा दुराग्रह

जब गुजरात विद्यापीठमें, जो स्वयं महात्माजीके साक्षात् देखरेख में रहा है, कुछ ऐसी ही असन्तोषजनक अवस्था है, तो अन्य विद्यापीठोंका क्या कहना है। अभी वहाँ वार्षिक समावर्तनसंस्कारके उत्सवके साथ अखिलभारतीय-शिक्षासम्मेलन हुआ था। उसमें मुख्य विचार इस विषयपर हुआ कि सब राष्ट्रीय विद्यापीठोंका यही कार्य कर दिया जाय कि राष्ट्रीय कार्यके लिये कार्यकर्ता तयार करें। यह एक तात्कालिक, आपत्कालिक, कर्तव्य अवश्य हो सकता है, पर चिरस्थायी विद्यापीठका शाश्वतिक लक्ष्य तो यह स्पष्ट ही नहीं हो सकता है। आपलोगोंको विदित ही है कि मैं आरम्भसे ही लक्ष्यके विवरण, निर्वचन, के लिये देशके नेताओंसे, विशेषकर महात्माजीसे, सदाग्रह अथवा दुराग्रह करता रहा हूँ। महात्माजीने मेरी इस वासनापर दया करके, जो यहाँ पिछले समावर्तनोत्सव पर दीक्षान्त भाषण किया, उसमें एक शब्द यह कह भी दिया कि स्वराजका अर्थ रामराज समझना चाहिये। मुझे तो यह मानो इन्द्रकी टीका विड़ौजा सी जान पड़ी। स्वराजका अर्थ यदि कम समझमें आता था, तो रामराजका तो और भी कम। प्रायः लोग समझ लेंगे कि एक अच्छे आदमीका मनमाना राज, (आटोक्रैसी)[१]। यदि आदमी अच्छा हुआ तो अहोभाग्य। नहीं तो फिर, आज आँखके सामने कितनी ही देशी रियासतें देख पड़ती ही हैं। यदि महात्माजीने कहा होता कि जनताकी ओरसे चुने हुए रामके ऐसे विशिष्ट उत्कृष्ट प्रकृतिवालोंका राज अर्थात् धर्मव्यवसान—तो भी मेरा मतलब सिद्ध होता। मैंने एकांतमें महात्माजीसे प्रार्थना करनेकी धृष्टता भी की, कि

१ Autocracy;।

यदि रामराजका विवरण जनताको समझाया नहीं जायगा तो रामराजके स्थानमें रामकी सेनाका राज हो जायगा। पर वे हंसके चुप रहे। रामकी सेनाके राजका नमूना आप लोगोंको रामायणकी कथासे मालूम ही होगा। सीताका पता तो हनुमानजीने लगाया। पर उनके लघुभ्राताजनने सुग्रीवके मधुवनको लूटपाट कर सब मधु एक ही दिनमें पी डाला, और सुग्रीवके सगे मामा दधिमुख नाम वानरको, जो मधुवनके चीफ़ सुपरिंटेंडेंट थे, मारपीट कर भगा दिया। खैरियत इतनी की कि हाथ पैरकी हड्डियां नहीं तोड़ डालीं। पर आरम्भमें इतने विनयाभाव और व्यूहाभावपर भी, पीछे जब सुग्रीव, जांबवान, अंगद, नील, नल आदि सेनापतियोंने उनका विनयन और व्यूहन कर लिया, तब सब मिलके लंका फ़तह करके सीताको ले ही आये, ऐसा सोचकर मैं भी संतोष किये हूँ। महात्माजीका हृदय अति शुद्ध है, तपस्या बहुत बड़ी है, अवश्य "स तं बुद्ध्या शुभया संयुनक्ति", परमात्मा इनकी बुद्धिको शुभ प्रेरणा करता होगा, और जो कार्यका प्रकार उनके मनमें उदित होता है वह अवश्य देशके लिये हितकारक होगा, ऐसा विश्वास हृदयसे करके बैठा हूँ, यद्यपि मेरी क्षुद्र बुद्धि मुझको सदासे यह कहती रही है कि उनके कार्यक्रममें भारी त्रुटि यह है कि उन्होंने देशको नहीं बताया है कि स्वराजमें क्या आर्थिक प्रबन्ध, क्या सामाजिक व्यूहन (इकोनामिक पालिसी और सोशल आर्गेनिज़ेशन) होगा, वर्ग वर्गका क्या परस्पर सम्बन्ध होगा, अर्थात् स्वराजका क्या स्वरूप होगा, और इसी हेतुसे प्रत्येक वर्गके बहुतेरे लोग उनके स्वराज रामराजकी ओरसे सशंक हैं, और सहायता देनेकी इच्छा रखते हुए भी अविश्वस्त होनेके कारण नहीं देते, और परस्पर त्रस्त और विवादग्रस्त हो रहे हैं। स्यात् महात्माजी यह विचारते हों कि

उपायाः सर्व एवैते बालानामुपलालनाः।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।

पहिले स्थूल बातें दिखा सिखा कर, एक एक शब्द पकड़ा कर, यथा पहिले स्वराज, और अब "इन्डिपेन्डेन्स"[1] (जो शब्द विचारसे देखिये तो स्वराज शब्दसे दस बीस गुना कठिन जान पड़ेगा), पीछे सूक्ष्म अर्थ कभी बतलावेंगे। पहिले अभय, क्लेशसहिष्णुता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, आदि भावोंको जगाकर, पीछे ज्ञानयोगव्यवस्थिति सिखावेंगे। ज्ञानसे इच्छा, इच्छासे क्रिया उत्पन्न होती है, यह साधारण नियम है, पर यह भी सत्य है कि फिर क्रियासे नया ज्ञान, और उससे नयी इच्छा, और उससे नयी क्रिया। और बच्चोंको पहिले क्रिया और तब उसके द्वारा ज्ञान सिखाना ही सहज पड़ता है।

कार्यक्रमकी पूर्तिके लिये प्राचीन दिग्दर्शन

ऐसा विश्वास करते हुए भी, अपने उक्त आग्रहको न छोड़ना भी मैं अपना धर्म समझता हूँ। क्योंकि गीतामें सब साथही साथ कहे हैं।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायः तप आर्जवं॥
अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः शांतिः अपैशुनं।
दया भूतेषु अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलं॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहो नातिमानिता।
भवंति संपदं दैवीं अभिजातस्य भारत॥

(अ० १६, श्लो० १–३)

जोश और होशका, सहस् और मनस्का, विकास साथ ही साथ होना अच्छा है।

अन्य गुण तो महात्माजीसे सीखनेका सामर्थ्य स्वप्नमें भी न हुआ, पर एक गुणकी नक़ल कर लेता हूँ। जैसे महात्माजी संतत सर्वत्र उपदेश देते रहते हैं कि

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

---

१ Independence.

अर्थात् जो चर्खा नहीं चलाता, वह देशका अन्न व्यर्थ खाता है, वैसे मैं भी पुकारता रहता हूँ,

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ।।

अर्थात्

जब मानव जन चाम सम लें लपेट आकाश ।
तब बिनु जाने आतमहिं करिहैं दुःखविनाश ।।

बिना आत्माके स्वरूपको पहिचाने किसी भी दुःखका विनाश नहीं होगा, न वैयक्तिक, न पारिवारिक, न आर्थिक, न सामाजिक, न राजनीतिकका। राजनीतिक बन्धसे भी मोक्ष तभी होगा जब आत्मविद्या, अध्यात्मशास्त्र, के अनुसार कार्य होगा। महात्माजीकी बातसे भी अधिक इस तथ्यमें मेरा विश्वास है, क्योंकि यह मेरा ही कपोलकल्पित नहीं है, किन्तु "हृदयेनाभ्यनुज्ञातः" "स्वस्य च प्रियमात्मनः" होता हुआ भी, अविछिन्न कार्य-कारण-परम्पराकी धाराके भूत-भवद्-भविष्य-दर्शी उपनिषदोंके परमर्षियोंकी प्रतिज्ञा है। महात्माजीके उपदेशोंका शिरसा धारण करता हूँ। उनके बताये कार्यक्रमको परम आवश्यक मानता हूँ। महात्माजीके आदेशोंमें केवल एक आदेश और, भारतवर्ष-के प्राचीन ऋषियोंका, जोड़ देना चाहता हूँ। मानवसमाजके जीवनके सब अङ्गोंका उचित प्रबन्ध, बिना मानवकी प्रकृतिके, पुरुषकी प्रकृति-के, जीवात्माके स्वभावके, मुख्य तथ्योंके ज्ञानके कैसे हो सकता है? जो मनुष्यकी प्रकृतिके शास्त्रको नहीं जानता है, वह मनुष्योंके लिये सर्वसंग्राहक नियम कैसे बना सकता है, वर्ग वर्गका परस्पर कलह कैसे शान्त कर सकता है?

नह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते ।
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
उत्पद्यंते च्यवंते च सर्वास्ताः प्रेत्य निष्फलाः ।।

सामान्यका विशेषसे, अमूर्त्तका मूर्त्तसे, अव्यक्तका व्यक्तसे, वेद

वेदान्त अध्यात्मशास्त्रके तथ्यों और नियमोंका इतिहास-पुराणके उदाहरणों द्वारा उपबृंहण करनेसे, अर्थ समझ पड़ता है। इसलिये

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

आत्मविद्या और इतिहास

आजकाल सभी बातोंमें पश्चिमकी नक़ल इस देशमें की जाती है, महात्माजीके अहिंसात्मक असहयोगके महामन्त्रको छोड़कर। पच्छिमसे लड़ाई लड़नेमें भी पच्छिमके ही भावों और वाक्शास्त्रोंका प्रायः प्रयोग हम लोग कर रहे हैं। यथा "इण्डिपेण्डेन्स" शब्द। संस्कृतमें इसका ठीक पर्याय कोई भी ख्यात नहीं है। ठीक पर्याय तो अनधीनता हो सकता है। पर उसकी चलन नहीं है। इसलिये पूर्ण-स्वराज शब्दका प्रयोग हुआ, जिसमें और स्वराज्यमें कोई ऐसा भेद नहीं मालूम होता, और जिसकी व्याख्याकी भी उतनी ही, या उससे भी अधिक, आवश्यकता है जितनी स्वराजकी। ऐसी नक़लमें यद्यपि दोष है तौभी मैं यह नहीं कहता हूँ कि नक़ल विलकुल नहीं करना चाहिये। हमारे यहां अन्धश्रद्धाके धूएंने स्वावलम्बिनी आत्मज्योतिःप्रकाशिनी बुद्धिके दीपकको प्रायः बुता दिया है, और हमारी आँखें भी दुर्बल हो गयी हैं। हमारे ज्ञाननिधियोंने सब सज्ज्ञानपर घनी धूल जम जाने दी है, अथवा स्वयं जमा दी है, और अस्त्र शस्त्रोंको मुर्चा लगवा कर थोथा कर दिया है। इस लिये, पोथी हमारी और आँख हमारी होते हुए भी, उनकी धूल पोंछनेके लिये, उनका ठीक अर्थ समझनेके लिये, उपस्कर और लालटेन और ऐनक हमको पश्चिमसे लेना पड़ता है, और अभी बीसियों वर्ष तक लेना पड़ेगा। पर यह याद रखना चाहिये कि दीपक और उपनेत्र उनसे लो, किन्तु पुस्तक अपनी पढ़ो और नेत्र अपने काममें लाओ। न अन्धश्रद्धा पूर्वकी करो, न अन्धश्रद्धा पश्चिमकी। इस प्रकारसे कार्य करनेसे दोनों ज्ञानोंका, पूर्वके अध्यात्मज्ञान और शक्तिका तथा पश्चिमके अधिभूत अधिदैव ज्ञान और शक्तिका, परस्पर सम्मेलन होकर उत्कृष्ट सभ्यताका जीर्णोद्धार, पुनर्नवीकरण, प्रति-

संस्करण, प्रतिष्ठापन होगा—जो ही इस संस्थाके संकल्पपत्रका मुख्य आदिम भी, और अन्तिम भी, उद्देश्य है, अथवा होना चाहिये, और बहरहाल संकल्पपत्रमें सूचित होता है।

इतिहासाध्ययनकी व्यावहारिकता

प्रकृतमें इस चर्चाका यह प्रयोजन है कि पश्चिममें इतिहासका बहुत आदर है, और भारतवर्षमें इतिहासके ग्रन्थोंके अभावके कारण भारतीयोंकी बुद्धिका बहुत तिरस्कार किया जाता है, तथा "प्रैक्टिकल" (व्यवहार्य) शब्दकी पच्छिममें मूर्तिपूजासे भी अधिक पूजा है, और भारतीयोंकी "अन्-प्रैक्टिकैलिटी"[1] (अकर्मण्यता) की निन्दा होती है। और उचित मात्रामें यह ठीक भी है। पर अति सर्वत्र वर्जयेत्। अवश्य इधर सैकड़ों वर्षोंसे भारतीय हिन्दुओंने इतिहासकी उपेक्षा कर रक्खी है, और अकर्मण्यता उनकी इसीसे स्पष्ट सिद्ध है कि विदेशियोंकी दासता कर रहे हैं। किन्तु पहिले ऐसा न था। इतिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं भगवोऽध्येमि। इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। ऐसी महिमा इसकी मानी जाती थी। और "प्रैक्टिकैलिटी" का इतना आदर था कि मीमांसाशास्त्रने निर्णय कर रक्खा है कि "सर्वमपि ज्ञानं कर्मपरं"। सत् ज्ञानका प्रयोजन यही है कि सत्कर्ममें उसका उपयोग हो। तो इतिहासका अनन्त विस्तार, कौन कब खांसा और कौन कब छींका, कौन कब उठा और कौन कब बैठा, आजन्म आमरण पढ़ा जाय, और उससे कोई समाजोपकारी काम न लिया जाय, तो इससे तो सहस्त्ररजनीचरित्रकी सी किताबें पढ़ना स्यात् अच्छा हो। स्यात् उनसे मनबहलाव अधिक हो। इसलिये यहाँ प्राचीनोंने बहुत विचार करके यह निर्णय कर दिया है कि इतिहास पढ़नेकी "प्रैक्टिकैलिटी", व्यवहारमें उपयोग, यही है कि "रामयुधिष्ठिरादिवत् आचरितव्यं, न रावणदुर्योधनादिवत्।" ऐसा ऐसा आचरण करनेसे राष्ट्रका, समाजका, उत्कर्ष हुआ, उसके विरुद्ध दूसरे प्रकारके आचरणसे विनाश हुआ,

१ Practical; Unpracticality.

इस लिये वैसा ही आचरण करना चाहिये जिससे उत्कर्ष होता है। पच्छिमका भी मत यही है कि "दी सायन्स आफ़ हिस्टरी इज़ दी सायन्स आफ पालिटिक्स",[1] अर्थात् इतिहासके अनन्त इतिवृत्तोंके, घटनाओंके, वर्णनमें जो शास्त्रांश है, कार्य-कारण-सम्बन्धके ज्ञानका अंश है, वह तो राजधर्म अथवा राजशास्त्र ही है। यही पोलिटिकल सायन्स और आर्ट, इतिहासके अध्ययनकी प्रैक्टिकैलिटी, व्यवहारोपयोगिता, कर्मण्यता, है। अन्यथा इतिहासका अध्ययन अपार्थ और अकर्मण्य, अन्प्रैक्टिकल, होता।

राजधर्म और राजविद्या

अब इस पच्छिमकी लालटेनसे, अपनी स्वतन्त्रबुद्धिरूपी आँखसे, अपनी पुस्तकको देखिये, तो विदित होता है कि राजधर्मका, राजशास्त्रका, घनिष्ठ सम्बन्ध राजविद्या राजगुह्यसे है। यह दोनों एकही पदार्थके अंग अथवा अंश हैं, एक ज्ञानांग, एक क्रियांग। राजशास्त्रका भी मर्म, उसका हृदय, राजविद्या अर्थात् अध्यात्मविद्या है। एक शास्त्र है, दूसरा प्रयोग। एक "सायन्स", दूसरा "आर्ट" अर्थात् "ऐप्लिकेशन आफ़ सायंस"। एक सिद्धांत दूसरा व्यवहार। एक नय दूसरा चार। एक ब्रह्म दूसरा धर्म। पोलिटिकल सायंस की प्रायः सभी ताज़ातर नयी पश्चिमी किताबोंमें "इण्डिविज्युअलिज्म" और "सोशलिज्म"[2] पर अवश्य विचार एक या कई अध्यायोंमें किया रहता है। इसका अर्थ यह है कि जैसे स्मृतियोंमें वर्णधर्म और आश्रमधर्म स्थिर करके तब उसकी बुनियादपर राजधर्म खड़ा किया जाता है, वैसे पच्छिममें भी शास्त्री लोग पहिचानने लगे हैं कि राजशास्त्रका मूल समाजव्यवस्था है। इन दोनोंके लिये व्यक्तिवाद और समाजवाद शब्द यहाँ बर्ते जाने लगे हैं। स्यात् अहंवाद और वयंवाद अधिक अर्थगर्भ और अर्थसूचक हों। इनके सम्बन्धमें उक्त पुस्तकोंमें यह लिखा देख पड़ता है

१. The Science of History is the Science of Politics.

२. Science; Art; Application of Science; Political Science; Individualism; Socialism.

कि प्रत्येक पक्षके मतके प्रयोगमें "साइकोलाजिकल डिफ़िकल्टीज़",[१] आध्यात्मिक कठिनाइयाँ, मानवप्रकृतिमूलक कठिनाइयाँ, आगे आ जाती हैं, जिनके कारण उस प्रयोगमें अदम्य विघ्न पड़ते हैं, अथवा उपद्रव खड़े होते हैं। बस, इसी स्थानपर प्राचीन अध्यात्मशास्त्रसे सहायता लेनेका अवसर आता है। आजकाल व्यक्तिवाद, अहंवाद, के प्रयोगकी अति वृद्धिसे अति पीड़ित होकर देश देशमें जनता दोला-प्रतिक्रिया-न्यायसे, "मन्युस्तन्मन्युमृच्छति", समाजवाद, वयंवाद, की अतिकी ओर झुकी है। और उभय पक्षका परस्पर विरोध प्रचंड हो रहा है। तरह तरहकी आज़माइशें की जा रही हैं—चीनमें, जापानमें, इटलीमें, मध्य यूरोपमें, उत्तर और दक्षिण अमेरिकामें, अंग्रेज़ी उपनिवेशोंमें, तुर्कीमें, ईरानमें, अफ़गानिस्तानमें, अरबमें, और सर्वोपरि रूसमें। पश्चिमके दासभूत मिस्र और भारत आदि देश पहिले अपने बन्धन छुड़ानेका यत्न कर रहे हैं, और भारतमें इस विषयपर गम्भीर विचार नहीं हो रहा है कि राजनीतिक मोक्ष मिलनेपर समाजका और राष्ट्रका क्या स्वरूप करना होगा। प्रायः लोगोंका विचार है कि स्वराज पा लें, तब पीछे उसके अर्थका, स्वरूपका, निर्णय कर लेंगे। मेरी क्षुद्र बुद्धिमें यही जमा हुआ है कि जबतक स्वराजके मूल अर्थका, मुख्य स्वरूपका, निर्णय नहीं कर लेते, तबतक वह एका देशके सब वर्गोंमें होवेगा ही नहीं, बिना जिसके शक्ति नहीं, और शक्ति बिना स्वराज्य मिलना अति कठिन है।

सर्वेषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत् तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत।

सब देवोंके शरीरसे अलग अलग निकला हुआ तेजस् जब एकताको प्राप्त हुआ, और उससे चंडीका, साक्षात् शक्ति-देवीका, शरीर बना, तब असुरोंका दमन हुआ। उपर्युक्त विलायती शासकोंकी सूचना, और कलकत्तेकी, दिसम्बर संवत् १९२८ की, कांग्रेस और सर्वदल-सम्मेलनकी कारवाई, इसमें प्रमाण है।

१ Psychological difficulties.

आर्थिक आदि नीति

स्वराजके स्वरूपके निर्धारणका अर्थ यह है कि अपनी आर्थिक नीति "ईकोनामिक पालिसी", आदि बनाओ। समाजके सब वर्गके मनुष्यों-के अन्न-वस्त्रका, जीविकाका, क्या प्रबन्ध करोगे, सबसे प्रकृत्यनुसार उचित काम लिया जाय, सबको प्रकृत्यनुमार उचित दाम दिया जाय, इसका क्या प्रबन्ध करोगे, यह बताओ। समाजमें वर्ग वर्गका क्या सम्बन्ध रहेगा, यह बताओ। और सर्वोपरि यह बताओ कि इसका क्या प्रबन्ध करोगे कि समाजका उत्तम "स्व" ही कानून बनावेगा, अधम "स्व" नहीं, परार्थी और योग्य सज्जन ही धर्म्म सभाके सदस्य होंगे, और धर्मका आम्नान, व्यवसान, व्यवस्थापन, परिकल्पन करेंगे, स्वार्थी और अयोग्य दुर्जन नहीं। क्योंकि जबतक यह उपाय निर्णीत नहीं हो जाता, जिससे कानून बनानेका काम अच्छे सज्जनोंके हाथमें रहे, तबतक "ईकोनामिक पालिसी" आदिका पहिलेसे निर्देश हो जानेपर भी, बादमें स्थिर रहना कठिन होगा। और इस उपायका पहिला सूत्रपात यह है कि यह भाव देशके एक एक कोणमें, एक एक घरमें, फैला दिया जाय, एक एक बच्चेको सिखा दिया जाय, कि स्वराजका अर्थ है, उत्तम "स्व" का राज, अर्थात् समाजके एक एक वर्गके जो सबसे अधिक निस्स्वार्थ और अनुभवी सज्जन हैं वे ही धर्म-कानून बनावें, और सब धर्म-कानूनके प्रवर्त्तन करनेवाले अधिकारियोंका नियमन नियंत्रण करें। यह बात कहनेमें तो स्वयंसिद्धसी मालूम पड़ती है, पर जैसेही गणितके सीधे सादे स्वयंसिद्ध भी लड़कोंको, बिना बड़ी मिहनतसे सिखाये, नहीं आते, वैसे ही इस नितांत सरल और स्पष्ट तथ्य पर भी, बिना बड़ी मिहनतसे सिखाये, जनताका ध्यान नहीं जमैगा। और जब एक बार परिश्रम करके यह भाव जनतामें व्याप्त कर दिया जायगा, तब धर्म-परिषदोंके लिये पुरो-हितोंके वरणके समय, इसके अनुसार, आपसे आप कार्य किया जायगा। मनुमें, याज्ञवल्क्यस्मृतिमें, तैत्तिरीय उपनिषद्में, इस भावके वाक्य हैं। और एक प्रसिद्ध वाक्य, उपनिषदों का, इसी विषयका है, "उत्तिष्ठत,

जागृत, प्राप्य वरान्निबोधत"। इसका भाष्य, पश्चिमके दीपकसे सहायता लेनेके न्याय पर, यों कीजिये कि जो जाति, जो सभ्यता, दूरदर्शी आचार्य, ऋषि नेता, नहीं पैदा कर सकती (नार्वाचीनेषु ऋषयो जायंते), या जो हैं उनका कहना नहीं मानती, वह नष्ट हो जाती है, इसलिये, हे मनुष्यो, उठो, जागो, अच्छे वरिष्ठ महापुरुषोंको अपने भीतर उत्पन्न करो, बुलाओ, और उनकी बात सुनो, उनका कहना मानो।[१]

इस प्रकारसे स्वराजकी पालिसियों, नीतियों, का स्वरूप पहिलेसे न बतानेका फल यह हुआ है, और होता रहेगा, कि भारतमें इस समय जो, तरह तरहके भेदभावोंके कारण, सैकड़ों वर्ग उपवर्ग हो रहे हैं, उनमें परस्पर विश्वास नहीं। सबके मनमें यही भय है कि "स्वराज" में किसी दूसरे वर्गका राज हो जायगा, और हमारी रोटी मारी जायगी।

---

१ "As soon as a civilisation ceases to produce and respect great leaders, it reaches a crisis and invites invasion and conquest......The more virile and hopeful civilisations are those that develop the imagination and give first place to the poet, the prophet, the teacher and preacher, the inventor and worker, as against all forms of superstition and humbug. The ultimate test of a civilisation is its power to develop in the highest degree admirable character and personality......All economic failure is due to moral and spiritual failure . ...It is not enough, however, that a civilisation should produce (प्राप्य) great leaders and teachers; it has to cultivate a readiness to *heed* them (निबोधत) if progress is to be assured. Nothing is more tragic in the history of civilisation than the divorce between the individual and society, between the martyr and the mob, a fact which tends to throw emphasis all the more on the moral rather than on the intellectual factor in civilisation: Bryan, *The Civilisation of Japan*, pp. 11,12.(H. U. L. Series)

ब्रह्म और धर्म, ज्ञान और चारित्र, विद्या और तपस्, बुद्धि और परार्थिता, दोनों पुरो-हित, पुरः-कृत, आयुक्त, वृत, धर्मपरिकल्पकमें होनी चाहिये।

और इस परस्परके अविश्वासके कारण, सब मिलकर, विदेशी परराजके स्थानमें "स्वराज" क़ायम करनेका यत्न ही नहीं करते।

एकासे स्वराज अथवा स्वराजसे एका ?

अक्सर लोगोंका विचार है कि स्वराज मिलनेपर ये सब भेदभाव आपसे मिट जायँगे। मेरे मनमें उलटी बात बैठी है कि जबतक अधिकांश भेदभाव मिटेगा नहीं तबतक स्वराज मिलनेका नहीं। उसके पानेके लिये पर्याप्त एका ही, शक्ति और यत्न ही, नहीं होगा। हाँ, अल्पांश भेदभाव, जो बच जायगा, उसका निराकरण पीछे स्वराज मिलनेपर होगा, या न भी हो तो कुछ हर्ज न होगा। सर्वथा भेदभाव संसारसे उठ जाय तो संसार ही उठ जाय। ऐसा मेरे मनमें बैठा है। पर यह प्रायः मेरी मूर्खता और दुराग्रह ही होगा। क्योंकि देशके बड़े बड़े नमस्करणीय नेताओंका विचार इसके प्रतिकूल है।

हाँ, एक प्रकार एका हो जानेका और भी है। वह यह कि किसी महाप्रभावशाली "डिक्टेटर" में, अवतारी पुरुषमें, उसकी अद्भुत शक्तियोंको देखकर, सबके मनमें भारी श्रद्धा एकबारगी जाग उठे। सबके, अर्थात् अत्यधिकांशके। जैसा, पुराण कथाको छोड़कर, हालके इतिहासमें, नेपोलियनमें, लेनिनमें, मुसोलिनीमें, और भारतवर्षमें महात्मा गांधीमें, जनताकी श्रद्धा हुई और हो रही है। इस प्रकारकी एकतामें कितनी स्थिरता है, और क्या क्या गुण दोष हैं, इसपर आप लोग स्वयं विचार कर लेंगे, मुझे कहनेका प्रयोजन नहीं। मेरे दुराग्रहके और भी दृढ़ हो जानेका एक अन्य कारण भी है, अर्थात् यह कि एक वर्षतक, सन् १९२९ भर, देशके ठीक ठीक सर्वदलोंमें नहीं तो भी अधिकांश दलोंमें और वर्गोंमें एका रहा, और ऐसा एका कि उसका प्रभाव विदेशी शासकोंपर पड़ा। और उस एकाका मूल कारण यही रहा कि सर्वदलसम्मेलन और कांग्रेसने ऐकमत्यसे एक स्वराजकी योजना तैयार कर ली थी, चाहे उस योजनामें मेरी भ्रान्त दृष्टिसे एक बड़ी त्रुटि भी क्यों न रही हो। तथा यह भी देखता हूँ कि उस योज-

नाको छोड़ देनेसे, तत्काल वह एका बिखर गया। ऐसे हेतुओंसे मेरे मनमें यह विश्वास दृढ़ है कि ऐसी आर्थिक-नीति, सामाजिक वर्गोपवर्ग-संबन्ध-नीति, और धर्मव्यवस्थापकयोग्यता-नीतिका निर्णय करके, भावी स्वराजका ऐसा मूल स्वरूप जनताके आगे उपस्थित कर देना परम आवश्यक है, जिससे अधिकांश वर्ग और दल और जनता सहमत हो, और परस्पर विश्वास और एका करके उसके स्थापनके लिये सब एक साथ यत्न करें।

इतिहासका स्वरूप

भारतमें बहुतोंकी आँख रूसकी ओर लगी है, और लगना ठीक ही है, पर ध्यानसे, विचारसे, विवेकसे, लगना चाहिये। "विद्वान् गुणज्ञो दोषज्ञः"। गुण दोष दोनोंको पहिचानना चाहिये। मेरे मित्र, इस संस्थाकी निरीक्षण सभाके सदस्य, श्री पुरुषोत्तम दासजीने, अंधश्रद्धा, "स्यूपर्स्टिशन",[1] के लिये एक बहुत अच्छा प्रामाणिक शब्द गीतासे ढूँढ निकाला है, मूढग्राह। अन्धश्रद्धा कहिये, स्यूपर्स्टिशन कहिये, अन्धभक्ति कहिये, दुराग्रह कहिये, मूढग्राह कहिये, ये सब हेतुरहित विश्वासके नाम हैं। हेतुसहित विश्वासका नाम ज्ञान, शास्त्र, सायंस, सत्‌श्रद्धा, सदाग्रह, दर्शन, है। अन्धश्रद्धा न प्राचीनकी करनी चाहिये, न अर्वाचीनकी।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यं।
संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजंते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

रूसके वर्त्तमान इतिहासके निदर्शनसे हमको सबक़ सीखना चाहिये।

पच्छिममें कहावत है कि 'हैपी नेशन्स हैव नो हिस्टरी"[2]। सुखी समाजका, सन्तुष्ट सम्पन्न जातिका, इतिहास नहीं होता। ठीक ही है। खाना, पीना, सोना, हँसना, खेलना, गाना, बजाना, प्रेम प्रीतिसे सुख

१ Superstition

२ Happy nations have no history; no news is good news.

जीवन बिताना—इसका इतिहास क्या लिखा जाय ? हाँ, जब काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सरका राज्य हो, जब जय विजय अपना चित्त बदल कर रावण कुम्भकर्ण बन जायँ, जब सुरपक्ष असुरपक्षका, राम रावण-का, नरवानर राक्षसका, युधिष्ठिर दुर्योधनका, ग्रीस ट्रायका संग्राम हो, अथवा सुन्द उपसुन्दका, इङ्गलैण्ड, फ्रांस, रशिया, इटली, अमेरिका आदि एक ओर तेईस, और जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की, बलगेरिया, दूसरी ओर चारमें लाठी सोंटा चले, मारपीट हो, करोरों मनुष्य तोप, बन्दूक़, ज़हरीली गैससे मरें, करोरां भूखे मरें, तब उज्ज्वल और रोचक इतिहास बने और लिखा जाय। इस तथ्यपर ध्यान देनेसे तो कभी कभी यही विचार उठता है कि भारतीयोंने इतिहाससे यदि मन हटा लिया तो स्यात् अच्छा ही किया। प्राचीन समालोचकने रामायण महाभारतपर शंका की ही है।

कामिनो वर्णयन् कामान् लोभं लुब्धस्य वर्णयन्।
नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन्॥

समाधान यह है कि

लोकचित्तावतारार्थमाख्यानैस्ते तु वर्णिताः।
शिक्षार्थं तद्विपाकाश्च दुःखे तत्रैव दर्शिताः॥

अर्थात् नरकके द्वार, काम क्रोध लोभ दर्प आदि, की कथाओंके द्वारा श्रोताका चित्त आकृष्ट कर उनके दुःखांत विपाकको दिखाकर शिक्षा देना, "रामवदाचरितव्यं, न रावणवत्", यह इतिहासका प्रयोजन है।

तो भारतीयोंको चाहिये कि पूर्व पश्चिमका इतिहास पढ़ें लिखें, बड़े परिश्रमसे, और पहिचानें, और मनमें बैठा लें, कि मनुष्योंके वैयक्तिक और सामूहिक सज्ज्ञान और मिथ्याज्ञानके, सद्भावोंके और असद्भावोंके, काम क्रोध लोभादिक स्वार्थी भावोंके तथा स्नेह प्रीति शान्ति परस्पर सहायता आदि परार्थी भावोंके, उद्गारोंके, और उनके दुःखमय अथवा सुखमय फलोंके वर्णनका ही नाम इतिहास है। अर्थात् आध्यात्मिक भावोंको आधिदैविक और आधिभौतिक शब्दोंमें वर्णनके अतिरिक्त, इतिहास अन्य कोई वस्तु नहीं है। ऐसे पूर्व पश्चिम-

के इतिहासको परिश्रमसे पढ़ें, पर उससे ऐसी शिक्षा ग्रहण करें कि भविष्यमें किसी इतिहासके लेखकको भारतकी स्वराजकी प्राप्तिके इतिहासके सिवाय अन्य कोई इसके पीछेके कालका इतिहास लिखनेकी नौबत न आवै, केवल यही लिख सकै कि भारतीय समाजका ऐसा सुप्रबन्ध था कि सहस्रों वर्षतक

न तत्र शोको न जरा न रोगाः
न दैन्यकार्पण्यविषाददोषाः ।
अकृष्टपच्या वसुधा हृष्टपुष्टजनाकुला ॥
रेमिरे बांधवास्तत्र स्निग्धाः प्रीताः परस्परम् ।
मातरश्चोशतीः सर्वाः सुप्रीताश्चापि जामयः ॥
रेमेऽन्तरात्मा भगवान् हरिरप्यत्र निर्वृतः ।
रमंते बांधवा यत्र तत्रैव रमते हरिः ॥

रूस देशकी अवस्था

इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए, रूसके साम्प्रदायिक इतिहासको देखिये।

रूसमें सन् १९१७ में विप्लव और आवर्त्त परिवर्त हुआ। तबसे प्रति वर्ष नयी आजमाइश कर रहे हैं, रोज कार्यक्रम बदलते हैं, अत्यन्त 'प्रैक्टिकल' होते हुए भी कार्ल मार्क्स की 'थियरी'को वेदसे भी अधिक श्रद्धासे मानते हैं, और मानते हुए भी उसके अनुसार शासनपद्धति और समाज-संग्रंथन, जो संग्रंथन ही शासनपद्धतिका मूल भी और फल भी होना चाहिये, और यथाकथंचित् निसर्गतः होता ही है, सन्तोषकर रीतिपर नहीं बना पा रहे हैं। उनके "स्वस्मिन् श्रद्धा"-रूपी दीपकसे अपनी प्राचीन ज्ञाननिधिको, उसपर जमी व्यवहारसे पार्थक्य-रूपी धूलको और अपनी आँखपर जमे शीलाभावकृत दासभाव और दासबुद्धि-रूपी कीचड़को पोंछकर, यदि हम देखें तो जान पड़ेगा कि उनकी 'थियरी' में, सिद्धान्तमें, भारी आध्यात्मिक भ्रन्तियाँ भरी हैं, इसीसे उनकी यह दशा है।

अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ।

वहाँकी खबर ठीक ठीक मिलती नहीं, तरह तरहके परस्पर विरुद्ध हाल सुनने पढ़नेमें आते हैं। तो भी निष्कर्ष यह अवश्य जान पड़ता है, कि साधारण जनताकी अवस्था ज़ार-नामक सम्राटोंके समयके स्वच्छन्द अनियंत्रित एकशासनके समयसे अब, अन्नवस्त्रके विषयमें, अवश्य अपेक्षया अच्छी है, पर स्वतः सर्वथा अच्छी नहीं है। बारह चौदह कोटि कृषकोंकी अवस्था बहुत हीन है, बीस तीस लाख कारखानेवालोंकी अवस्था उनसे बहुत अच्छी है, और पहले लेनिनका और अब स्टैलिनका, नामको नियंत्रित राष्ट्रपतित्व, पर वास्तवमें स्वछन्द ऐकराज्य था और है। जबतक राष्ट्रपति नेकनीयत है तबतक इतनी भी सुविधा है, नहीं तो पहिलेसे भी अधिक दुर्विधा हो जानेकी पूरी सामग्री है, जैसी भारतकी देशी रियासतोंमें। शिक्षाके प्रचारपर बहुत ज़ोर है। किन्तु इहलोक और ऐहिक जीवनके आगे पीछे भी कोई जीवन है, इसका नितान्त विरोध उस शिक्षामें, तथा अन्य प्रकारोंसे, किया जाता है। विवाहसम्बन्ध, पतिपत्नीभाव, पितृ-मातृ-सन्तति-सम्बन्ध, इतना हल्का कर दिया गया है कि नहींके बराबर है। विवाहके विच्छेद बहुतायतसे सुने जाते हैं, और विच्छेद होनेपर सन्ततिका प्रबन्ध क्या होता है, इसका ठीक पता नहीं चलता। एक लेखकने तो यहाँतक लिख दिया है कि लाखों बालक अनाथ कुत्तोंकी तरह गलियोंमें टुकड़े बीनते फिरते हैं, पर वह लेखक इंगलिस्तानी था, और लेखमें अवश्य कुछ अत्युक्ति और झूठ होगा। साम्यवादकी पराकाष्ठापर पहुँच कर एक बार क़ानूनसे परिग्रह (प्राइवेट प्रापर्टी)[१] बिल्कुल मिटा दिया गया, पर इससे बहुत विकार उत्पन्न हुए, अन्नवस्त्रके उत्पादकोंने परिश्रममें बड़ी ढिलाई करना शुरू किया, तब फिर अंशतः परिग्रहकी अनुमति दी गयी। इत्यादि बातें सुन पड़ती हैं।

मनुष्यकी प्रकृति

यदि ऐसा है तो इसमें कारण वही होगा कि मानव प्रकृतिको,

---

१. Private property.

मार्क्स, लेनिन, स्टैलिन आदि महाशयोंने ठीक ठीक नहीं पहिचाना। जबतक मनुष्यजाति स्त्री-पुरुष-भेदात्मक है, जबतक प्रतिशरीर वयंभाव और जातित्व यूथत्वके अभेदभावके साथ ही साथ अहंभाव और व्यक्तित्वका भेदभाव भी है, जबतक मनुष्य, निवृत्ति और वैराग्यके भावको अव्यक्त रूपसे अन्तर्निहित गूढ़ रखता हुआ भी, प्रवृत्तिमार्गपर बहिर्मुख साराग्यसे प्रेरित होकर चलता है, तबतक लोकैषणा, वित्तैषणा, दारसुतैषणासे छूट नहीं सकता। इन एषणाओंका उचित मात्रामें तर्पण करनेका सुप्रबंध करना ही राजधर्मका परम कार्य है। प्रवृत्तिमार्गपर रहते हुए साथ ही साथ निस्संग, निराशीः, निष्परिग्रह, सर्वसम (साम्यवादी) भी हो, यह वैसा ही असम्भव है जैसा कि एकही जीव एक ही समयमें बालक भी और वृद्ध भी हो। दारसुतैषणा और वित्तैषणाके, "मैरेज और फ़ैमिली लैफ़" तथा "प्रापर्टी" के,[1] व्याघातसे साम्प्रत मानव-रूपकी लोकेषणा, अर्थात् पृथग्-व्यक्तित्व, "इन्डिविजुऐलिटो"[2] भी, जीवात्मता भी, नष्ट हो जायगी। ऐन्थ्रोपालोजी और एथ्नालोजी, इतिहास, तथा अर्थशास्त्र, तथा राजशास्त्र, जिन सबकी समष्टिको सोशियालोजी[3] अथवा समाजशास्त्र कह सकते हैं, सभी दिखाते हैं कि मानवजातिमें व्यक्तिता, पति-पत्नी-सम्बन्ध, पृथक् परिग्रह, अर्थात् "इंडिविजुऐलिटी, मैरिज, सेपरेट प्रापर्टी", का विकास साथ ही साथ हुआ है। एकके खंडनसे दूसरोंका भी खंडन हो जाता है। पर, जैसा पहिले कहा, "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। पृथक् होते हुए भी, "सर्वं सर्वेण संबद्धं"। विश्वसमष्टिमें कहीं भी किन्हीं भी दो वस्तुओंका अत्यन्त पार्थक्य नहीं देख पड़ता। मनुकी प्रतिज्ञा है,

एतावानेव पुरुषः यज्जायाऽत्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद् यो भर्ता सा स्मृतांगना॥

एक परमात्माकी प्रकृति त्रिगुणात्मक है। एक परमेश्वर त्रिमूर्ति है।

१. Marriage and family life; separate property.
२. Individuality.
३. Anthropology; Ethnology; Sociology.

घर घरमें प्रत्यक्ष त्रिमूर्ति पिता-माता-अपत्य, शिव-विष्णु-ब्रह्मा, विराजमान है। मनुके मानव समाजका आरम्भक परमाणु, "कांस्टिट्यूएन्ट यूनिट",[1] एक पुरुष या एक स्त्री नहीं है, जैसा कि पच्छिमके आधुनिक शास्त्रियोंने समझ रखा है, किन्तु एक त्रिमूर्त्यात्मक कुल है, जाया-आत्मा-प्रजा इति। और जब ऐसा प्रकृतिसिद्ध त्रिमूर्त्यात्मक कुल ही आरम्भकाणु माना जायगा तभी अन्नसम्बन्ध और यौनसम्बन्धके प्राणसम्बन्ध द्वारा परस्पर सम्बद्ध कुलोंके समूहसे समाज, "सिम्-पथी",[2] अनु-कम्पा, के सूत्रसे बंधा हुआ, सुव्यवस्थित, सुप्रतिष्ठित, संभाव्य है। इसी आध्यात्मिक दर्शनसे देखनेसे विदित होता है कि परिग्रह भी, पृथक् होते हुए भी, सर्वथा पृथक् नहीं हो सकता। पति-पत्नी-अपत्यके शरीर, जैसे पृथक् होते हुए भी पृथक् नहीं हैं, एक ही प्राणका तीनोंमें सञ्चार प्रत्यक्ष हो रहा है, एवं इन तीनोंका परिग्रह भी पृथक् होते हुए पृथक् नहीं है। यही मिश्रित पृथक्त्वापृथक्त्व भाव समाज और राष्ट्रके सभी अंगोंमें व्याप्त है। कहीं पृथक्त्व अधिक व्यक्त है और अपृथक्त्व अव्यक्त है, कहीं अपृथक्त्व प्रधान और पृथक्त्व गौण।

एवं प्रति मनुष्यके जीवनमें स्थूल रूपसे चार अवस्थाएँ होती हैं, बाल-प्रौढ़—वृद्ध-जरठ। तदनुरूप चार कर्तव्य भी होते हैं, अध्ययन-गृह-सञ्चालन-विविधयजन-परलोकचिन्तन।

एवं जबतक मनुष्यका शरीर शिरो-बाहु-उदर-पादमय है तबतक मनुष्यसमूहरूप समाजके शरीरमें भी ज्ञानप्रधान-क्रियाप्रधान-इच्छा-प्रधान-अनुद्बुद्धबुद्धि मानव होंगे। इन सब विषयोंपर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

प्रकृतिके विरुद्ध पद्धतियोंकी अस्थायिता

जो समाजव्यूहन, जो राष्ट्रनिर्माण, जो शासनविधान, इन मूल आध्यात्मिक तत्त्वों और तथ्योंपर ध्यान नहीं देता, वह सदा अस्थिरता चञ्चलतामें, अव्यवस्था दुर्व्यवस्थामें, पड़ा रहेगा।

१ Constituent unit.
२. Sympathy.

उत्पद्यंते च्यवंते च वर्षर्त्ताविव गुच्छकाः ।

इस प्रकारकी बातें मेरे मनमें धस गयी हैं, इसलिये स्थाने अस्थाने, मौके बेमौके, रटा करता हूँ कि लक्ष्यको, उद्देश्यको, मनुष्यकी प्रकृतिके शास्त्रके अनुसार सुस्पष्ट विस्पष्ट कर लो, फिर जो भी काम करोगे ठीक ही होगा, उसमें भूल न होगी। उसके अप्रतिष्ठ होनेसे सभी अप्रतिष्ठ रहेगा। कहाँ जाना है, किस वास्ते जाना है, जब यही नहीं मालूम, तो किस रास्तेसे जाओ यह कैसे बताया जा सकता है।

सैनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं वाऽध्यात्मशास्त्रविदर्हति ॥

अमेरिकाका अनुभव

कई वर्ष हुए युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिकाके न्यूयार्क नगरकी कोलम्बिया युनिवर्सिटीके डिपार्टमेंट आफ़ एड्युकेशनके प्रधान, वृद्ध, प्रिन्सिपल किलपैट्रिक्, मेरे घरपर अचानक आ गये। उनसे मैंने प्रार्थना की कि आपने अपने बहुत वर्षोंके प्रचुर अनुभवसे जो निष्कर्ष निकाला हो, कि कैसी शिक्षा नयी पुश्तको देना चाहिये, उसको यथा-सम्भव सूत्ररूपसे मुझे बताइये। उन्होंने कहा कि "टेल मी ह्वाट सार्ट आफ़ सिविलिज़ेशन यू वान्ट, ऐण्ड आई विल टेल यू ह्वाट सार्ट आफ़ एड्युकेशन यू शुड गिव",[१] अर्थात् "तुम मुझे बताओ कि किस प्रकार-की सभ्यता चाहते हो, तब मैं तुमको बतऊँगा कि किस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिये"। मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। उनसे कहा कि जहाँ-तक मैं समझ सका हूँ, भारतवर्षका प्राचीन विचार भी सर्वथा यही है। अध्ययनाध्यापन साधन हैं, साध्य सामाजिक वैयक्तिक अभ्युदय-निश्रेयस है। इस अभ्युदय-निःश्रेयसका जो रूप निश्चित कर लिया जाय तदनुरूप अध्ययनाध्यापन भी होना चाहिये।

१. Tell me what sort of civilisation you want and I will tell you what sort of education you should give.

प्राचीन भारतका अनुभव

ऋषियोंने रामसे कहा,

वयं तु भवता रक्ष्याः गर्भभूतास्तपोधनाः ।

ऋषि, आचार्य, ज्ञाननिधि, तपोधन, गुरुकुलोंके कुलपति, उपवन-वासी, अपने शिष्यकुलके सहित, समाज और सामाजिक सभ्यताके गर्भरूप हैं । समाज इस गर्भका आधान और पोषण करता है, यह परिपुष्ट होकर गुरुकुलसे निकल कर समाजका उपबृंहण करता है । ऐसा दोनोंका परस्पर संबन्ध है ।

इसी सिद्धांतके अनुसार, काशीविद्यापीठके संकल्प-पत्रमें, मेरे आग्रहपर, मेरी मुरव्वतसे, मेरे सहकारियोंने, आरंभमें अध्यात्मशास्त्र-का नाम रख दिया है । पर, जैसा पहिले कहा, एक ओर अध्यात्मशास्त्र का, और दूसरी ओर राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, तथा दैनंदिन व्यवहारका वैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसा वृक्षके मूलका और शाखा पल्लव-फलका, जैसा भवनके नीवी (नींव) का और ऊपरके भौमों (मंजिलों) का—इस तथ्यमें प्रबुद्ध विश्वासका उदय अभी उनमेंसे अधिकोंके मनमें मैं नहीं करा सका हूँ । इससे यहांके कार्यमें अभी स्थिरता, ऐकबुद्धिक व्यवसायिता, नहीं आयी है । मतद्वैध रहा करता है । पर इससे मुझको कोई नैराश्य अथवा ग्लानि और निर्वेद नहीं है, हां, वयःकृत मानस भी और शारीर भी थकान तो जरूर है ।

बुद्धिके द्वैत और संमर्दके गुण

एक हद तक, ऐसा द्वैत होना कार्यमें सहायक होता है । दोनों पक्ष एक दूसरेको सचेत जाग्रत् बनाये रखते हैं । और द्वंद्व-द्वंद्व, "पोलारिटी", "ड्युआलिटी", "ऐम्बीवालेन्स", तो संसारका स्वरूप ही है । आदि द्वैत पुरुष-प्रकृति, दूसरा द्वैत जीव-देह, फिर जीवमें उत्तम स्व और अधम स्व, अथवा "द्वासुपर्णा सयुजा सखाया", अथवा निवृत्युन्मुख और प्रवृत्युन्मुख, अथवा परार्थी और स्वार्थी, तथा देहमें दक्षिण-वामांग, फिर कुलमें पुरुष-स्त्री, फिर समाजमें अन्तर्मुख-बहिर्मुख मनुष्य (इंट्रोवर्ट-

एक्स्ट्रोवर्ट), तथा स्थितिशील-गतिशील (कांसर्वेटिव-प्रोग्रेसिव, स्टैटिक-कैनेटिक) इत्यादि। एवम् विद्याओंमें संस्कारिणी-अर्थकरी (कल्चरल-वोकेशनल, या ह्युमैनिटीज़-रियालिटीज़, या सायन्स-आर्ट आदि), और प्रत्येकमें पुनः द्वंद्व, ऐसी परंपरा। यथा बुद्धिसंस्कारक शास्त्रोंमें एक ओर अध्यात्मशास्त्र और उसके अंग, और दूसरी ओर समाजशास्त्र और उसके अंग।

समाजशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र

यहांके अधिकांश अध्यापकों और अध्येताओंका मन, समयानुसार, युगधर्मानुसार, कालावस्थानुसार, समाजशास्त्रोंमें अधिक है, और कुछ थोड़ोंका मन अध्यात्मशास्त्रोंमें अधिक। मैं दोनोंका तुल्य रूपसे पक्षपाती, शुभचिंतक, परस्परानुग्रहदर्शी, और अन्योऽन्याधीनत्वेन शुभाकांक्षी हूँ। और यह देखकर प्रसन्न होता हूँ कि जो कोई भी नयी योजना करनेका यत्न किया जाता है, उसमें घूम फिरके, प्रकृत्या, वस्तुगत्या, वही बात फिर फिर आ जाती है कि, "या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी", पढ़ाई कल्चरल भी और वोकेशनल भी, बुद्धिसंस्कारक भी और जीविकासाधक भी, यथासम्भव दोनों प्रकारकी होनी चाहिये, और कल्चरलमें समाजशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र दोनोंपर ध्यान रहना चाहिये।

यह अवस्था निसर्गतः यहां इस कारणसे पुनः पुनः प्राप्त होती है कि यद्यपि संस्थाका आरम्भक प्रेरक हेतु राजनीतिक आवेश है, पर बहुत आर्य उदार स्वदेशप्रेम स्वजात्युद्धारेच्छा स्वराज्येच्छाके रूपका है, और इसलिये यह भाव ऊंचे धार्मिक और आध्यात्मिक भावका, अनुद्बुद्ध रूपसे ही क्यों न हो, रूपान्तर ही है। इतिहासप्रेमी लोग भारतीय इतिहास और भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनावस्था अवश्य ही जानना चाहते हैं, और भारतीय इतिहास और प्राचीन संस्कृति तो

१ Polarity; Duality; Ambivalence; Introvert-Extrovert; Conservative-Progressive; Static-Kinetic; Cultural-Vocational; Humanities-Realities; Science-Art.

भारतीय अध्यात्मशास्त्रसे, भारतीय वर्णाश्रमधर्मसे, भारतीय बौद्ध जैनादि धर्मोंसे, अलग की ही नहीं जा सकती। इससे दोनोंका जानना आवश्यक है। और पच्छिममें भी साइकालोजीकी महिमा बहुत बढ़ रही है। "ह्यूमन नेचर इन पालिटिक्स", "साइकालोजी आफ़ इंडस्ट्री", "सोशल साइकालोजी", "साइकालोजी आफ़ एविडेंस", "साइकालोजी आफ़ रेवोल्यूशन", "साइकालोजी आफ़ दी क्राउड" "साइकालोजी आफ़ लीडरशिप"[1] इत्यादि नामोंके ग्रन्थ, जिनके नामोंसे ही आध्यात्मिक और सामाजिक शास्त्रोंका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है, छपने लगे है।

विद्यापीठके दो अङ्ग

कर्मगतिसे, कालप्रवाहसे, भारतका भाग्य यूरोपके साथ बंध रहा है। हमपर उनका अधिक प्रभाव प्रत्यक्ष और स्थूल रूपसे पड़ रहा है, हमारा उनपर परोक्ष और सूक्ष्म रूपसे। प्राणरूपी अन्न और वस्त्र अति मात्रामें उनको देकर पच्छिमवालोंसे हम थोड़ीसी अच्छी और बहुतसी बुरी बातें ले रहे हैं। अपनी पुरानी मिल्कीयत, पर भूली हुई, अध्यात्मविद्याको, भी हम फिरसे उन्हींसे पावेंगे ऐसा लक्षण देख पड़ता है। जब रवीन्द्र ठाकुरकी कविताका आदर पच्छिममें हुआ और उनको नोबेल प्राइज़ मिली, तबसे हम लोग भी उनका आदर खूब करने लगे हैं। इन सब बातोंको देख कर मुझे आशा है कि तत्काल थोड़ी अव्यवस्था देख पड़ते भी, जिस रास्तेपर काशीविद्यापीठ चल रहा है, उससे भी उचित ठिकाने पहुँच जायगा। कार्यकर्ताओं और अध्यापकोंमें जो कुछ मतभेद है वह यह है कि कुछ लोग कहते हैं कि यदि दोनों तुल्य रूपसे नहीं सिखायी जा सकती तो अर्थकरी विद्या, और विविध शिल्पकला आदिका सिखाना अधिक आवश्यक है, और कुछ लोग कहते हैं कि बुद्धिपरिष्कारक, विचार-शोधक, शास्त्र अधिक आवश्यक है। तथा बुद्धिसंस्कारक शास्त्रोंके पक्षपातियोंमें भी दो पक्ष हैं, एक बहिर्मुख

१. Psychology; Human Nature in Politics; Social Psychology; Psychology of Evidence; Psychology of Revolution; Psychology of the Crowd; Psychology of Leadership.

व्यावहारिक शास्त्रोंपर, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, इतिहास आदिपर अधिक ज़ोर देते हैं, दूसरे अन्तर्मुख दार्शनिक आध्यात्मिक शास्त्रोंपर। जैसा पहिले कहा, इस प्रकारका द्वैत अनिवार्य भी है, और एक हद्तक अच्छा और उपयोगी भी है। इन दो पक्षोंमेंसे कोई एक भी यदि विद्यापीठसे उठा दिया जाय, तो दूसरे ही दिन दूसरे पक्षमें, जो बच रहेगा, उसमें भी उसी "पोलारिटी" वा द्वैतन्यायसे अवश्य दो पक्ष उत्पन्न हो जायँगे, जिनमें मतभेद किसी न किसी अंशमें अवश्य होगा। उदाहरणार्थ आँखके सामनेकी बात देखिये, कि इंग्लिस्तानमें एक रीतिसे दो मुख्य राजनीतिक दल हो रहे हैं, पूंजीवाल (जिसमें एक मानीमें दोनों कान्सर्वेटिव और लिबरल शामिल समझे जा सकते हैं) और श्रमजीवी (लेबर)। ज्यों ही लेबरको शासनाधिकार मिला त्यों ही प्रधान मन्त्री के प्रतिपक्षी उसी दलमें उत्पन्न हो गये। एक रैट विङ् (दक्षिण पक्ष), एक लेफ्ट विङ् (वामपक्ष) उत्पन्न हो गया।[१]

विद्यापीठके उद्देश्य

तो बुद्धिमत्ता, समझदारी, दानिशमंदी, यही जान पड़ती है कि इन प्राकृतिक बातोंको, इन वैज्ञानिक तथ्योंको, जानते मानते हुए, दोनों पक्ष, मतभेद होते हुए भी, एक दूसरेको पकड़े रहें, एक दूसरेको परस्पर पूरक अंग समझते रहें, विरोधी नहीं। एक दूसरेकी त्रुटियोंको दूर करें, एक दूसरेके गुणोंको पहिचानें और बढ़ावें। मतभेदोंको विकल्पोंका रूप दें, विरोधका रूप न पकड़ने दें, समन्वय करके एका दिखावें। क्योंकि एकाका भाव ही तो उत्तम "स्व" का भाव है, जहां एका नहीं वहां उत्तम "स्व" नहीं, स्वराजका सम्भव नहीं। इस प्रकारसे दोनों मिलकर, प्राचीन भारतीय संस्कृतिका अन्वेषण गवेषण अध्ययन, और भावी भारतीय संस्कृतिका उत्तम निर्णयन उन्नयन परिष्करण, वैयक्तिक और सामाजिक सभी अंगोंमें, करनेमें

१ Polarity; Conservative; Liberal; Labor; Right wing; Left wing.

सहायक होंगे। यही भारतीय संस्कृति दोनों पक्षोंको एक दूसरेसे बांधे रखनेकी रज्जु भी है, यही विद्यापीठका संकल्पपत्रोक्त उद्देश्य भी है। यहां शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी ऐसे होने चाहियें जो भारतके खोये हुए स्वराजके प्रत्यानयनमें तत्काल सहायता दे सकें, और उसके मिल जाने पर उसको सुन्दर सर्व-संग्राहक सर्व-सन्तोषक रूप देकर सुव्यवस्थित सुप्रतिष्ठित करनेमें भी योग्यता दिखावें।

मार्मिकान् सर्वधर्माणां धार्मिकान् सर्वकर्मणाम्।
अध्यात्मशास्त्रसिद्धांतान् नितरां व्यावहारिकान्॥
"वर्जयेदति सर्वत्र", "कर्मणा वर्णः" इत्यपि।
"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः॥
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।"
"वयोऽनुसारं चैवापि व्रजेदाश्रममाश्रमात्"॥
दृढं बुद्धौ निधायैतान् शोधकार्ये प्रवर्त्तताम्।
भारतीयः समाजोऽयं व्यूह्यतां च पुनर्नवम्॥
अहंवाद-वयंवादौ व्यक्ति-सामाजिकौ तथा।
पृथक्-परिग्रही वादो वादः सामूहिकस्तथा॥
सर्वसत्ताकवादो वा वादः प्रात्येकिकस्तथा।
साम्य-वैषम्यवादौ च वर्गवादस्तथैव च॥
एवं बहुविधा वादाः साम्प्रतं प्रसृता भुवि।
सर्वेषामेव वादानां घोरं विवदतां मिथः॥
उक्ता ह्याध्यात्मसिद्धांताः विरोधपरिहारकाः।
नैवैकदेशिके शांतिः, सा ध्रुवा सार्वदेशिके॥
भूमैव सुखमात्मैव, नाऽल्पेऽनात्मनि वै सुखम्।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति॥
आत्मनोऽन्यत्र भूतानि लोकान् देवानथापि वा।
ब्रह्म क्षत्रं तथाऽन्यद्वा सर्वं यत्किंचिदेव वा॥
यो वेद तत्तदेवनं परादान् मूढ़चेतनं।

वारंवारमिदं प्राह बृहदारण्यके श्रुतिः ।
गायंति चापि छंदोगा आत्मानंदः स्वराडिति ।।
मयैवैतन् मदर्थं च सर्वमेव विनिर्मितम् ।
इति यो वेद तं नैव पराभवति कश्चन ।।
आत्मनः खलु कामाय सर्वमेतत्प्रियं भवेत् ।
कामायान्यस्य कस्यापि नैवात्मा भवति प्रियः ।।
आत्मज्ञानमनादृत्य न सुखस्यास्ति संभवः ।
आदरेणानुसृत्यैनं न दुःखेनाभिभूयते ।।
न दुःखेनाभिभूयते ।। ॐ ।।

इति । ॐ ।

भगवान्दास

सूचना—इस व्याख्यानको प्रायः दस महीने होगये । "प्रेस आर्डिनन्सके कारण ज्ञानमण्डलके बन्द हो जानेसे पत्रिका भी बन्द हो गयी थी । अब आर्डिनन्सकी षाण्मासिक आयु समाप्त होकर मृत्यु हो जानेसे प्रेस और पत्रिका दोनों निद्रासे जागे हैं । इन दस महीनोंमें देशकी स्थिति कितनी बदल गयी है, यह संसारको विदित है और इतिहासका विषय है । महात्मा गाँधीजीने साबरमतीके सत्याग्रहाश्रमसे १२ मार्च १९३० को' उन्नासी स्वयंसेवकोंके साथ नमक-कानून के भंग करनेकी यात्रा समुद्रतीरस्थ डण्डी स्थानके लिये, जहाँ विदेशी गवर्मेण्ट-का नमक बनवानेका कारखाना है, आरम्भ की । ६ अप्रैल १९३० को वहाँ पहुँच कर नमक कानून भङ्ग किया । उसी दिनसे भारतवर्षमें चारों ओर प्रजाकी ओरसे अतिशान्त पारुष्यरहित विधिसे कई प्रजापीड़क कानूनोंकी अवज्ञा हो रही है, और विदेशी राजकी ओरसे अति घोर पारुष्यपूर्ण, कारावास, धनदंड, लाठी-प्रहार, गोलीप्रहार, आदि द्वारा आजतक दमन हो रहा है । यह ऐतिहासिक वृत्त है । यद्यपि काशी विद्यापीठका काँग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं है और यह विद्यापीठ सर्वथा स्वतंत्र और शिक्षाप्राण संस्था है, तौभी अधिकांश युवा अध्येता और अध्यापक राष्ट्रीय भावसे प्रेरित होकर विद्यापीठको और अध्ययनाध्यापन छोड़कर चले गये, और देशव्यापी आन्दोलनमें पड़कर कारावासमें बन्द होगये । इस दृष्टिसे इस व्याख्यानके कुछ थोड़े अंश यातयाम और पर्युषित (बासी) जान पड़ेंगे । उनको पाठक सज्जन इस दृष्टिसे देखें कि व्याख्यानके समयकी परिस्थितिके द्योतक हैं । अवशिष्ट अधिकांश साधारण सार्वकालिक मानवप्रकृतिके सम्बन्धी हैं । भ० ।

वर्णविभाग और समाज-संघटन

मानव-समाजमें आजकल विचित्र अशान्ति है। पूँजीपतियों और श्रमजीवियोंका कलह दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हड़ताल तो एक साधारणसी बात हो गयी है। बेकारी भी बढ़ती जा रही है। भारतमें ही नहीं यूरोपमें भी आज लाखों नवयुवक बेकार घूम रहे हैं। राजनीतिक क्षेत्रमें भी इधर थोड़े ही वर्षोंमें विचित्र क्रान्ति हुई है। यूरोपीय महाभारतके कारण कितने ही राजाओंके सिरसे मुकुट ऐसे उड़ गये जैसे पतझड़में पत्ते। युद्धके समय डंकेकी चोट घोषित किया गया था कि यह युद्ध छोटे राष्ट्रोंको स्वतन्त्र करने तथा युद्ध-वृत्तिको सर्वदाके लिए पददलित करनेके लिए किया जा रहा है, परन्तु लीग आफ़ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) के निर्माण और केलाग, लोकार्नो इत्यादिके समझौतेके अनन्तर भी अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ। छोटे छोटे राष्ट्र अब भी साम्राज्यवादियोंकी आँखोंमें खटक रहे हैं, रणचण्डिका-की पिपासा इतने बड़े युद्धके बाद भी शान्त नहीं हुई, अब भी अनेक राष्ट्र अपनी अपनी सेना बढ़ाते चले जा रहे हैं। उधर समाजकी वर्तमान परिस्थितिसे विक्षुब्ध होकर रूसने 'बालशविज्म' का रक्त-रञ्जित झंडा अलग खड़ा कर रक्खा है।

मानव-समाज एक जीर्ण रोगीके समान शय्या-ग्रस्त है। अनेक राजनीतिज्ञ और समाज-शास्त्री भिन्न २ औषधोंका निर्देश कर रहे हैं, पर फिर भी रोग घटता हुआ नहीं दिखलाई देता। इन औषधियोंसे बाह्य उपद्रवोंकी थोड़ी बहुत शान्ति चाहे हो जाय, परन्तु जबतक रोग-का पूरा निदान नहीं हो जायगा तबतक वह निर्मूल नहीं किया जा सकता। इसके लिये एक चतुर वैद्यकी आवश्यकता है। आजकल

बहुतसे विद्वानोंने समाज-संघटनके लिए भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। परन्तु जिस प्रकारसे जो शरीरविज्ञान (physiology) नहीं जानता वह वैद्य बननेका अधिकारी नहीं है, वह रोगका कदापि ठीक ठीक निदान नहीं कर सकता, इसी प्रकार जिसने अध्यात्म और मानस-शास्त्रका परिशीलन नहीं किया है, वह सच्चा समाजशास्त्री नहीं हो सकता, वह समाजके रोगका सच्चा निदान नहीं कर सकता क्योंकि समाज मनुष्योंका संघटित समूह है और मनुष्यकी कृतिको हम तबतक ठीक ठीक नहीं समझ सकते जबतक हम मानस-विज्ञानसे परिचित न हों।

अस्तु, हमें यह पहिले देख लेना चाहिये कि जो अनेक समाज-सुधारके सिद्धान्त आजकल प्रतिपादित हो रहे हैं वे मानस-शास्त्रके आधारपर निहित हैं या नहीं। इधर विद्वद्वर बाबू भगवानदासजीने कई वर्षसे इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि वर्ण-विभाग मानस-शास्त्रके नियमोंके अनुकूल है और समाज-संघटनके लिए बहुत ही उपयुक्त साधन है। इस छोटेसे निबन्धमें इसी विषयपर विचार करनेकी चेष्टा की जायगी।

पहिले हमें यह देखना है कि वर्ण-विभागका आधार क्या है। स्कूल और कालेजोंमें इतिहासमें हमें यह पढ़ाया जाता है कि वर्णका अर्थ रंग है और वर्ण-विभाग रंगके अनुकूल हुआ है। आर्य लोग गोरे थे और भारतके आदिम-निवासी द्राविड़ लोग काले थे। अतएव गोरे लोग द्विज कहलाये और काले वर्णवाले आदिम-निवासी शूद्र कहलाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्णका अर्थ रंग है परन्तु क्या वर्ण-विभाग केवल रंगके अनुकूल हुआ था? 'वर्ण' धातुका अर्थ वर्णन करना है। वर्ण + अच् प्रत्यय मिलाकर "वर्णः" शब्द बना है। अतएव यह स्पष्ट है कि 'वर्ण' का मूल अर्थ वर्णन है। श्री आपटेने भी संस्कृत-कोषमें 'वर्ण' का अर्थ रंगके साथ ही साथ class, tribe, kind, species इत्यादि भी दिया है। वर्ण वही है जिससे भिन्न भिन्न मनुष्योंका वास्तविक वर्णन हो जाय। अब हमें देखना चाहिये कि शास्त्रों-

ने वर्णविभाग किस आधार पर किया है। क्या यह विभाग केवल रंगके आधारपर किया है? मनुस्मृतिमें वर्णव्यवस्थाका वर्णन यों आया है—

लोकानां तु विवृध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्॥

अर्थात् लोक-वृद्धिके लिए ब्रह्माने अपने मुख, बाहु, जंघा और पैरसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी उत्पत्ति की। मुख, बाहु इत्यादिसे उत्पत्तिका क्या अर्थ है यह आगे स्पष्ट किया जायगा, परन्तु इस श्लोकसे यह सिद्ध है कि वर्ण-विभाग केवल रंगके आधार पर नहीं हुआ। गीताका भी निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥

भगवान् श्रीकृष्णजी स्पष्ट कहते हैं कि मैंने चारों वर्णोंकी गुण और कर्मके अनुकूल सृष्टि की है। रंगके अनुकूल वह वर्ण-विभाग नहीं बतलाते। रंगके लिये वर्णके अतिरिक्त संस्कृतमें राग और रंग शब्द भी आते हैं, परन्तु इन शब्दोंका जातिके लिए कभी प्रयोग नहीं होता। यदि जातिका आधार केवल रंगपर होता तो वर्णके पर्य्यायवाची शब्द राग और रंग भी इसके लिये अवश्य प्रयुक्त होते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि शब्दोंके अर्थ देखनेसे भी केवल उनका कर्म प्रकट होता है, रंग नहीं। यथा ब्रह्म वेत्ति अधीते वा (अण प्रत्यय) ब्राह्मण अर्थात् जो ब्रह्मको जाने या अध्ययन करे वह ब्राह्मण है। क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः अर्थात् जो क्षत (हानि) से बचावे वह क्षत्रिय है इत्यादि। इतिहासकारोंने प्रायः यह भ्रम विद्वानोंमें फैला रक्खा है कि वर्ण-विभाग रंगके आधारपर किया गया था। इसीलिए मुझे इसके विरुद्ध इतना लिखना पड़ा। इससे यह तात्पर्य्य नहीं कि वर्णसे रंगका अर्थ होता ही नहीं अथवा शास्त्रोंमें कहीं भी रंगका उल्लेख नहीं। महाभारत शान्तिपर्वमें निम्नलिखित श्लोक आये हैं:—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टा हि कर्मभिर्वर्णतां गताः॥

कामभोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोषु वृत्तिं समाधाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठंति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृत प्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः॥

इसमें क्षत्रियोंके लिए 'रक्तांगा' लालवर्णवाले, वैश्योंके लिए "पीताः" पीले वर्णवाले, और शूद्रोंके लिए "कृष्णाः" काले वर्णवाले इत्यादि विशेषण आये हैं। परन्तु यह रंग वर्ण-विभागका आधार नहीं बतलाया गया है। इसमें भी 'कर्मभिर्वर्णतां गता' इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता-द्विजा वर्णान्तरंगताः।

(अर्थात् भिन्न भिन्न कर्मोंसे द्विज भिन्न भिन्न वर्णके हो गये) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है कि कर्म ही वर्णका सच्चा आधार है। यदि कृष्ण वर्णके सभी व्यक्ति शूद्र ही समझे जाते तो दक्षिणके कृष्ण वर्णके लोग ब्राह्मण न होते, परन्तु कर्मानुसार उन कृष्णवर्ण द्राविड़ लोगोंमेंसे अनेक ब्राह्मण हुए और आजतक हैं। अस्तु, यद्यपि यह सम्भव है कि आदि-कालमें आर्योंने जब वर्णविभाग किया तो भिन्न भिन्न विभागके लोगोंका कुछ रंग भी भिन्न भिन्न रहा हो, पर रंग 'वर्ण-व्यवस्था' का "आधार" नहीं था।

अब हमें देखना चाहिये कि वास्तवमें वर्ण-व्यवस्थाका क्या आधार है। भगवान् कृष्णने गुण और कर्म इसका आधार बतलाया है। ये गुण क्या हैं, यह जाननेके लिए हमें मानव-स्वभावकी ओर देखना पड़ेगा। कुछ मनुष्य स्वभावतः ज्ञानप्रिय होते हैं और उनमें सतोगुण प्रधान होता है, कुछ लोगोंको शक्ति अधिक प्रिय होती है और उनमें रजोगुण प्रधान होता है, कुछ लोगोंको लक्ष्मी अधिक प्रिय होती है उनमें थोड़ा रजोगुण और अधिकतर तमोगुण होता है, और कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी केवल यही इच्छा रहती है कि पेट भर खाने-

को मिले और खूब खेल तमाशेमें दिन कटे। इनमें प्रायः तमोगुण प्रधान होता है। इसी मानव-स्वभावके आधारपर मानव-समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन्हीं चार वर्णोंमें विभक्त किया गया था। संसारमें किसी देशके मनुष्यको ले लीजिये—यदि हम मनुष्यके स्वभाव और गुणको देखें तो मानव-समाजको हम केवल इन्हीं चार भागोंमें बाँट सकते हैं। जैसे इन जातियोंके गुण हैं, वैसे ही उनके कर्तव्य भी हैं। ब्राह्मणका कर्तव्य ज्ञान-विस्तार है। अतएव संसार भरमें जितने वैज्ञानिक, विद्वान्, पण्डित, आचार्य, न्यायाधीश इत्यादि हैं, वे सब स्वभावतः ब्राह्मण वर्गमें आयेंगे। संसार भरमें जितने बल, शक्ति, इत्यादिके उपासक सैनिक आदि हैं, उनका स्थान स्वभावतः क्षत्रिय वर्ग में है। इसी प्रकार संसार भरके व्यापारी, पूँजीपति इत्यादि स्वभावतः वैश्य वर्गके हैं और जितने साधारण रूपसे श्रमजीवी सेवक आदि हैं जिनकी बुद्धिका अभी अधिक विकास नहीं हुआ है, वे सब स्वभावतः शूद्र हैं। मानव-स्वभाव ही, मानसशास्त्र ही वर्ण-विभागका सच्चा आधार है। यदि हम मानव-स्वभावको देखें तो यह निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्यकी गणना उसके गुण कर्मानुसार इन्हीं चार विभागों-के अन्तर्गत किसी एक विभागमें हो सकती है। यों तो प्रत्येकके स्वभावमें चारों प्रकारके गुण कुछ न कुछ मिलेंगे, किन्तु एक गुणकी प्रधानता होगी और प्रधानताके अनुकूल ही वर्ण-विभाग किया गया है।

इस वर्ण-विभागसे हमारे देशमें समाजका बहुत ही सुन्दर संघटन हुआ था। पाश्चात्य समाज-शास्त्र-वेत्ताओंने एक उत्कृष्ट समाजकी उपमा शरीरसे दी है। शरीरका अंग, प्रत्यंग, उसका एक एक अवयव, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय, केवल अपने लिए जीवित नहीं है, उसका प्रत्येक अङ्ग जो कुछ करता है वह केवल अपनेही लिये नहीं बल्कि सारे शरीरके लिए। शरीरकी ही पुष्टिसे प्रत्येक अंगकी पुष्टि है, शरीरकी पुष्टिके लिए ही कार्य करनेमें प्रत्येक अंगके जीवनका सारा महत्व और सार है और सारे शरीरकी पुष्टिसे ही प्रत्येक अंगकी पुष्टि हो सकती है। ठीक इसी प्रकारसे समाजका भी सच्चा कल्याण तभी हो सकता

है जब उसका प्रत्येक विभाग अपना अपना नियमित कर्तव्य पालन करे। जब प्रत्येक विभाग अपना अपना निर्धारित कर्तव्य करेगा तभी समाजका भी कल्याण होगा और प्रत्येक व्यक्तिका भी सच्चा कल्याण और विकास होगा। मनु भगवान्ने ब्राह्मणकी तुलना सिरसे, क्षत्रियकी भुजासे, वैश्यकी जंघासे और शूद्रकी तुलना पैरसे की है। इससे स्पष्ट है कि आज जो समाजका शरीरावयवात्मक मनोहर सिद्धान्त पाश्चात्य देशोंमें प्रतिपादित किया जा रहा है, वह मनुमें पूर्णरूपसे वर्तमान है। वर्णव्यवस्थाके अनुसार समाजमें जैसा जिसका काम है वैसाही उसका मूल्य भी है। ब्राह्मणका काम ज्ञान है, उसका मूल्य समाज आदरके रूपमें देता है। हमारे समाजमें एक सच्चे ब्राह्मणका आदर राजासे भी अधिक रहा है। क्षत्रियका काम रक्षा तथा शासन करना है और उपहार स्वरूप समाजसे उसे प्रभुत्व, आधिपत्य, गौरव मिलता है। वैश्यका कार्य कृषि, वाणिज्य, व्यापार इत्यादि है और उसे लक्ष्मी मिलती है। शूद्रकी सेवा-वृत्ति है और उसे यथोचित अन्न-वस्त्र मिलता है और समाज उसके ऊपर विशेष उत्तरदायित्व नहीं रखता। उसका जीवन खेल तमाशेमें व्यतीत हो सकता है।

आजकल समाजकी विचित्र दशा है। अब भी लोगोंके कार्य भिन्न भिन्न हैं, परन्तु सबका मूल्य केवल एक ही है—धन। चाहे कितना ही बड़ा ज्ञानी हो, परन्तु यदि उसके पास धन नहीं तो समाजमें उसका कोई स्थान नहीं। प्रत्येक व्यक्तिकी स्थितिका महत्त्व रुपये, आने, पैसेमें ही गिना जाता है। परिणाम यह हो रहा है कि प्रत्येक मनुष्य, आदर, प्रभुत्व, धन इत्यादि सभी कुछ चाहता है, और विना धनके वह कुछ भी नहीं कर सकता। प्रत्येक मनुष्यके जीवनका लक्ष्य धनके सिवा और कुछ रही नहीं गया है। इस धन-लोलुपताके कारण ही चारों ओर कलह, विद्रोह, वैमनस्य, हड़ताल, संग्राम इत्यादि दिखलाई पड़ता है। आज समाजसंघटन एक जटिल समस्या हो गया है। इस समस्याके हल करनेके लिए पाश्चात्य देशोंने 'साम्यवाद' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। साम्यवादके पक्ष और प्रतिपक्षमें बहुत कुछ लिखा और

कहा जा चुका है। इस लेखका तात्पर्य्य साम्यवादकी अच्छाइयों और बुराइयोंपर विचार करनेका नहीं है। सम्भव है कि साम्यवादसे धन-सम्पत्तिकी विषमता बहुत कुछ अंशोंमें जाती रहे, परन्तु इसके गर्भमें एक बड़ी भारी भ्रान्ति छिपी हुई है। साम्यवाद यह माने हुए बैठा है कि मनुष्यके जीवनका लक्ष्य केवल धन-सम्पत्ति मात्र ही हो सकता है, यदि इसकी विषमता दूर कर दी जाय तो समाजमें पूरी पूरी शान्ति स्थापित हो जायगी। परन्तु क्या वास्तवमें ऐसा हो सकेगा? क्या प्रत्येक मनुष्य सम्मान, शासन, अधिकार प्रभुत्व भी बराबर बराबर नहीं चाहेगा? ये किस प्रकारसे बाँटे जायेंगे? इसका उत्तर केवल मनुके वर्ण—विभागसे ही मिलेगा। यों आहार-वस्त्र तो मानव मात्रके लिए चाहिए, परन्तु जो ज्ञानप्रिय होते हैं उनकी सम्मानसे ही सच्ची तृप्ति होती है, जो शासन-प्रिय होते हैं उन्हें प्रभुत्व और अधिकार भी मिलना चाहिये, जो व्यापार और वाणिज्यमें लगे हुए हैं वे विना धनके इसे नहीं चला सकते, जो श्रमजीवी हैं उनके लिये यथेष्ट आहार-वस्त्र, यथेष्ट अवकाश और जी बहलानेकी सामग्रीकी आवश्यकता है। प्रत्येक का भिन्न भिन्न काम और जैसा काम वैसा दाम—यही समाज-संघटन-का एक आदर्श सिद्धान्त हो सकता है।

यूनानके महत् दार्शनिक अफ़लातून (प्लेटो) का भी यही सिद्धान्त था। उसने समाजके तीन मुख्य विभाग किये थे। एक तो ज्ञान-प्रिय लोगोंका विभाग, ये ही समाजके सच्चे आचार्य, अध्यापक, नियामक, निर्णायक, न्यायाधीश इत्यादि बन सकते हैं। दूसरे वे जिनमें बल तथा साहसकी प्रधानता है, ये समाजके रक्षक तथा सैनिक हैं। तीसरे वे जो वाणिज्य, व्यापार इत्यादि करते हैं। इनमें ज्ञान और साहस की आज्ञापरता होनी चाहिये, सेवकके लिए प्लेटोकी समाज-व्यवस्थामें कोई स्थान न था। प्रत्येक मनुष्यका जीवन न्यायसंगत तभी हो सकता है जब उसका साहस ज्ञानसे प्रेरित हो और उसकी वासनाएँ ज्ञान और साहससे नियन्त्रित हों। ऐसे ही समाजमें भी सच्चा न्याय वही है जिससे प्रत्येक विभाग अपना अपना निर्धारित कर्तव्य करे और समाजके

सञ्चालक ज्ञानी लोग हों, रक्षक, साहसी और बली सैनिक हों, और व्यापारी वही हों जो ज्ञान और साहसके शासनको स्वीकार करते हों।

प्लेटोकी यह समाज-व्यवस्था केवल पुस्तकोंमें ही रह गयी, वह कार्यरूपमें परिणत न हो सकी। उसने स्त्रियों और बच्चोंके 'साम्यवाद' का भी प्रतिपादन किया था। सम्भव है, इसी कारणसे उसकी समाज-व्यवस्था कार्यमें परिणत न हो सकी हो। परन्तु कमसे कम यह बात स्पष्ट है कि यूरोपमें भी ईसवी सन्‌के लगभग ५०० वर्ष पहिले एक दार्शनिकने समाजका विभाग मानस-शास्त्रके आधारपर किया था।

हमारे यहाँ वर्ण-विभाग मानस-शास्त्रके अटल सिद्धान्तोंपर किया गया था। प्रत्येक विभाग अपनेको समाजका एक अङ्ग मात्र मानता था। समाजमें प्रत्येक वर्णके कर्तव्यपर अधिक ज़ोर दिया जाता था, अधिकारोंपर नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके कर्तव्य ही अधिकतर वर्णन किये गये हैं, अधिकारपर ज़ोर नहीं दिया गया है। जिस दिनसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, इत्यादिने अपना कर्तव्य तो छोड़ दिया परन्तु अधिकारको वे अधिक घोषणा करने लगे उसी दिनसे वर्ण-व्यवस्थाका अधःपतन प्रारम्भ हुआ। जिस दिनसे ब्राह्मणोंने पढ़ना, पढ़ाना, ज्ञानका प्रचार तथा धर्मका सदुपदेश तो छोड़ दिया, पर चाहने यह लगे कि सारा समाज उन्हें दान और सम्मान अवश्य दे क्योंकि यह उनका नैसर्गिक अधिकार है, क्षत्रियोंने अपने बाहुबलसे देश और धर्मकी रक्षा करना छोड़ दिया, विलास-प्रियतामें लिप्त हो गये, परन्तु फिर भी चाहते यही थे कि उनकी हुकूमत सभी मानें, उसी दिनसे वर्ण-व्यवस्था अपने उच्च सिद्धान्तसे गिरने लग गयी। और यह दुरवस्था विशेषकर इसीलिये घटित हुई कि लोग वर्णको केवल जन्म-सिद्ध समझने लग गये थे, कर्तव्यसिद्ध नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके जीवनपर जन्मका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। परन्तु वर्ण-विभाग अधिककर कर्तव्यको दृष्टिगत कर किया गया था। प्राणिशास्त्रके दो मुख्य नियम हैं—पैतृकपरम्परा (Law of Heredity और स्वतोभेदन (Spontaneous variation)। इसमें सन्देह नहीं कि माता-पिताके

रज-वीर्यका प्रभाव बालकपर पड़ता है, परन्तु कभी कभी यह भी देखनेमें आता है कि बालककी प्रवृत्तियाँ माता-पितासे भिन्न होती हैं। हम जन्मकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकते, परन्तु हमें कर्मको ही अधिक कर अपना लक्ष्य बनाना चाहिये। शास्त्रोंमें भी कर्म और आचरणके ऊपर अधिक ज़ोर दिया गया है। महाभारत (वनपर्व) में निम्नलिखित श्लोक इस विषयपर बहुत ही स्पष्ट है—

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्॥

जिस प्रकारसे वर्ण-व्यवस्थामें कर्तव्यकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता था, उसी प्रकार सहयोग (कोआपरेशन) वर्णव्यवस्थाका उच्चतम आदर्श था। वर्तमान समाज तथा आधुनिक सभ्यताका सारा आधार प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतियोग (काम्पीटीशन) हो गया है। विद्या, व्यापार, जीविका, श्रम—सबमें प्रतियोगका मलिन भाव फैला हुआ है। यहांतक कि इस भावने लक्ष्मी और गौरीके पवित्र मन्दिरपर भी आक्रमण कर दिया है। हमारा गृहस्थ जीवन भी इस विषाक्त भावसे कलुषित हो रहा है। पुरुष और स्त्रीतकमें प्रतियोगका भाव फैल रहा है। कौन कह सकता है इसका अन्त कहां जाकर होगा? हमारे ऋषियोंने समाजके सामने सहयोगका सुन्दर आदर्श रक्खा था। उन्होंने समाजको चार वर्णोंमें विभाजित कर यह बतलाया कि प्रत्येक वर्ण अपना अपना कर्तव्य करे। प्रत्येक व्यक्तिको अपने वर्ण-धर्मका प्रतिपालन करना चाहिये। इसीमें उसका और समाज दोनोंका कल्याण है। श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें स्पष्ट कहा है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

अर्जुनको उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था कि तुम क्षत्रिय हो, तुम्हें अपना धर्म अवश्य पालन करना चाहिये। अपने धर्मके प्रतिपालनमें नष्ट हो जाना अच्छा है, पर दूसरेका धर्म आपत्तिजनक है। पर आजकल अधिकांश लोग यह जानते ही नहीं कि हमारा धर्म,

हमारा कर्तव्य क्या है। हम क्या करें—फौजमें भर्ती हो जायँ, अथवा वकील या अध्यापक हो जायँ, या कोई दूकान खोलें इत्यादिके निश्चय करनेमें आधा जीवन व्यतीत हो जाता है। हम लोग प्रायः जीवनके प्रत्येक विभागमें ज़ोर मारते हैं और इसीसे जीवनमें सङ्घर्ष प्रारम्भ होता है। हमारे जीवनका कोई कर्तव्य ही नहीं। जिसी विभागमें औरोंके साथ सङ्घर्षमें हम सफल हो गये वहीं जम गये।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक समाज प्रतियोगका गर्व करता है, पर कोई भी सभ्यता प्रतियोगके आधारपर बहुत कालतक नहीं टिक सकती। पाश्चात्य देशोंमें भी लोग प्रतियोगसे तंग आगये हैं और इसकी बुराइयोंको नष्ट करनेके लिये उन्होंने साम्यवादका क्रान्तिकारी झण्डा खड़ा किया है। हमारी वर्ण-व्यवस्था प्रतियोग नहीं बल्कि सहयोगके आधारपर स्थित थी।

संसारके सम्मुख एक और भी विकट प्रश्न है। जब एक उन्नत और शिक्षित जातिका एक हीन और अशिक्षित जातिसे सम्पर्क होता है, तो उस उन्नत जातिके समाजमें उस हीन जातिका क्या स्थान होना चाहिये? इस सम्बन्धमें यूरोपका इतिहास अत्यन्त रोमाञ्चकारी है। यूरोपीय सभ्यताभिमानियोंने अशिक्षित जातियोंको या तो समूल नष्ट कर डाला है अथवा उन्हें बुरी तरह पददलित कर डाला है। अमेरिकाके रेड इण्डियन और आस्ट्रेलियाके आदिम निवासियोंको यूरोपीय जातियोंने समूल नष्ट कर डाला और निग्रो तथा अफ्रिकाके आदिम निवासियोंको इन्होंने पददलित कर डाला है। बेचारी रेडइण्डियन जातिकी शक्तियोंका विकास ही न होने पाया। कौन कह सकता है कि यदि इसे अपनी शक्तियोंके विकास करनेका अवसर मिलता तो संसारके सम्मुख कितने गुणोंको यह जाति अभिव्यक्त न करती। परन्तु सभ्यताभिमानियोंने इसे असभ्य कह कर इसका मूलोच्छेदन कर डाला। क्या स्वयं ब्रिटेनके पूर्वपुरुष असभ्य नहीं थे? ईसा मसीहके दो तीन सौ वर्ष पहिले उनको कोई नामतक नहीं जानता था। उस समय यह कौन कह सकता था कि इसी जातिमें आगे इतने बड़े व्यापारी, कवि,

वैज्ञानिक और दार्शनिक उत्पन्न होंगे ? जिन जातियोंको उन्होंने समूल नष्ट नहीं किया उन्हें वे गुलामों या कोढ़ियोंकी भाँति समाजसे बहिष्कृत रखते हैं। वे यूरोपीय सभ्य समाजके अंग नहीं, यूरोपीय श्रमजीवी और "नेटिव" श्रमजीवी एक नहीं। 'नेटिव' श्रमजीवी केवल दास मात्र हैं।

हिन्दू धर्मने इस समस्याको किस प्रकार हल किया ? यद्यपि प्रारम्भमें वैदिक कालमें आर्य्यों और भारतके आदिम निवासियोंमें युद्ध हुआ, परन्तु उन्होंने आदिमनिवासियोंका मूलोच्छेद नहीं कर डाला। वर्ण-व्यवस्था निर्धारित हो जाने पर उन्होंने आदिम जातियोंको हिन्दू-समाजका एक अंग बना लिया। आर्य्योंके समान शिष्ट न होनेके कारण यद्यपि उनमेंसे अधिकांश चतुर्थ वर्णमें सम्मिलित हुए तथापि वे इस प्रकारसे हिन्दूसमाजके अंग बन गये। वे हिन्दू समाजसे बहिष्कृत नहीं किये गये। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि शूद्रोंकी उस समय वह पतित अवस्था नहीं थी जो अब हो गयी है। कमसे कम इस बातका तो इतिहास साक्षी है कि आर्य्योंने आर्य्य-शूद्र और आदिम-निवासी शूद्रमें कोई भेद नहीं किया। सभी शूद्र एक थे। वे हिन्दू समाजके चतुर्थ अंग थे। वे अपने कर्मसे धीरे धीरे ब्राह्मणतक हो सकते थे। मनुस्मृतिके दशवें अध्यायका बयालीसवाँ श्लोक यों है—

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥

एक जातिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य तपस्या और बीजके प्रभावसे उत्कृष्ट या निकृष्ट जातिको प्राप्त हो सकता है। मनुस्मृतिके नवें अध्याय का तीन सौ पैंतीसवाँ श्लोक यों है—

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥

अर्थात् शरीर और मनको पवित्र रखनेवाला, अपनेसे श्रेष्ठ जातिकी सेवा करनेवाला, मृदुभाषी, अहङ्काररहित, ब्राह्मणका आश्रित शूद्र अपनेसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होता है।

जो हो यह स्पष्ट है कि आर्य्योंने आदिम-निवासियोंको समाजका एक अङ्ग बना लिया। और उन द्राविड़ोंमेंसे कितने ही ब्राह्मणतक हो गये। यहाँतक कि दक्षिणमें अब अधिकतर केवल ब्राह्मण और शूद्र दो ही जातियाँ देखनेमें आती हैं। ऐसे ही पीछे हूण, शक आदि वीर और प्रतापी जातियाँ क्षत्रिय-वर्गमें सम्मिलित हो गयीं। वर्ण-व्यवस्था ही भिन्न भिन्न जातियोंके सम्पर्ककी समस्या हल कर सकती है। भिन्न भिन्न जातियाँ गुणकर्मानुसार जिस वर्णके अनुकूल थीं उसमें सम्मिलित हो वे हिन्दू समाजका एक अंग बन गयीं। कोई भी जाति समाजसे बहिष्कृत नहीं की गयी।

लेख बड़ा हो चला है। वर्ण-विभागके सम्बन्धमें दो एक और भी महत्वपूर्ण बातें हैं, वे एक स्वतन्त्र निबन्धके लिये विषय हो सकती हैं। यहाँपर केवल इतना ही कह देना आवश्यक है कि आजकल समाज-संघटनके जो बहुतसे प्रश्न हैं उनके हल करनेमें वर्ण-विभागके सिद्धान्तोंसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। साम्यवाद आर्थिक गुलथियोंको सुलझानेका यत्न कर रहा है, पर मनुष्यके जीवनका लक्ष्य केवल धन-सम्पत्ति नहीं। केवल इसीके लिये मनुष्यमें आज चारों ओर कलहपूर्ण प्रतिस्पर्धा नहीं चल रही है। अधिकार, सम्मान इत्यादि और भी मनुष्यके लिये आकर्षक लक्ष्य हैं। वर्ण-विभागके सिद्धान्तमें इन सबपर गवेषणापूर्व विचार कर समाज-संघटनका उत्तम आदर्श संसारके सम्मुख रक्खा है। यह केवल आदर्शमात्र ही नहीं रहा है, बल्कि भारतमें सैकड़ों वर्षतक वर्ण-विभागके सिद्धान्तके ही आधारपर सारे समाजका कार्य चलता रहा।

आजकल संसारमें स्वत्व, अधिकारकी ओर लोगोंका अधिक ध्यान है—कर्तव्यकी ओर नहीं। आजकल जिन आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हो भी रहा है, उनका एकमात्र लक्ष्य यही है कि साम्राज्य (स्टेट) के शासन, व्यवस्था अथवा दण्डनीति द्वारा किसी प्रकार समाजका संघटन हो जाय और फिर उसे शासन अथवा दण्डनीति द्वारा स्थायी बनाये रखनेका यत्न किया

जाय। परन्तु वर्ण-विभागका आदर्श और है। वह मानव-स्वभावके अनुकूल समाजका चार विभाग कर यह बतलाता है कि प्रत्येक विभाग-का क्या 'कर्तव्य', क्या 'धर्म' है। अपने अपने वर्ण-धर्मके पालनमें ही अपना और समाज दोनोंका कल्याण है। आजकलके सामाजिक सिद्धान्तोंमें 'तव्य' ('ऑट') और धर्मका भाव नहीं है।

आजकलके समाजका आदर्श प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतियोग है। वर्ण-विभागका आदर्श प्रतियोग नहीं, सहयोग है। इसी सहयोगमें ही समाजका सच्चा कल्याण है।

अशिष्ट और अशिक्षित कहलानेवाली जातियोंका विकट प्रश्न भी वर्ण-विभागसे बहुत कुछ हल हो सकता है। यूरोपमें आजकल अनेक सामाजिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हो रहा है। शोक है कि भारतके इस मानव-स्वभाव-सिद्ध सुपरीक्षित वर्ण-विभागके सिद्धान्तपर पर्य्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। यह आवश्यक नहीं कि हम वर्ण-विभागकी प्रत्येक बातको प्राचीन रूपमें रक्खें। देशकालके अनुसार हम इसमें परिवर्तन कर सकते हैं। आशा है विचारशील सज्जन इसपर विचार करेंगे।

जयदेवसिंह

श्रावस्ती

बुद्ध के समयमें उत्तरभारतमें पाँच बड़ी शक्तियाँ थीं—कोसल, मगध, वत्स, वृजी और अवन्ती। इनमें वृजी वैशालीमें लिच्छवियोंका गणतंत्र था। कोसल और कोसलके अधीन गणतन्त्रोंके सम्बन्धमें भी बहुत सी बातोंका पता लगता है। इस निबन्धमें कोसलकी राजधानी श्रावस्तीके सम्बन्धमें लिखना है। श्रावस्तीके सम्बन्धमें त्रिपिटक और उसकी टीकाओं (अट्ठकथाओं) में बहुत कुछ मिलता है। इसके अतिरिक्त फाहियान, ह्यून् चाङ्के यात्राविवरण ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों तथा जैन प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थोंमें भी बहुत सामग्री है। इसमें सन्देह नहीं इन सब वर्णनोंसे पालि-त्रिपिटकमें आया वर्णन ही अधिक प्रामाणिक है। ब्राह्मणोंके रामायण, महाभारतादि ग्रन्थोंका संस्करण बराबर होता रहा है, इसीलिये उनकी सामग्रीका उपयोग बहुत सावधानीसे करना पड़ता है। जैन ग्रन्थ ईसवी पाँचवीं शताब्दीमें लिपिबद्ध हुए, इसीलिये परम्परा बहुत पुरातन होनेपर भी, पालित्रिपिटकसे दूसरे ही नम्बरपर हैं, जो कि ईसापूर्व प्रथम शताब्दीमें लिपिबद्ध हो चुके थे। जो बात ब्राह्मणग्रन्थोंके सम्बन्धमें है, वही महायान बौद्ध संस्कृत ग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी है।

श्रावस्ती उस समय काशी (आजकलके बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ़, गाजीपुरके अधिकांश भाग), और कोसल (वर्तमान अवध) इन दो बड़े और समृद्धि-शाली देशोंकी राजधानी होनेसे ही एक बड़ा स्थान रखती थी। इसके अतिरिक्त बुद्धके धर्मप्रचारका यह प्रधान केन्द्र था। इसीलिये बौद्ध साहित्यमें इसका स्थान बहुत ऊँचा है। बुद्धने बुद्धत्त्व प्राप्त कर पैंतालीस वर्ष धर्म प्रचार किया। प्रति वर्ष

वर्षाके तीन मास वह किसी एक स्थानपर बिताते थे। उन्होंने अपने पैंतालीस वर्षावासोंमेंसे पच्चीस यहीं बिताये। सूत्रों और विनयोंके अधिक भागका भी उन्होंने यहीं उपदेश किया। ईसा पूर्व ४८३ वर्ष (=वि० सं० पूर्व ४२६) में बुद्धका परिनिर्वाण हुआ, यही अधिक विद्वानोंको मान्य है। उन्होंने अपना प्रथम वर्षावास (ई० पू० ५२७=वि० सं० पूर्व ४७०) ऋषिपतन-मृगदाव (सारनाथ, बनारस) में बिताया। अट्ठकथा[1] के अनुसार चौदहवाँ, तथा इक्कीसवेंसे चौंतालीसवें (ई० पू० ५०७–४८२=वि० सं० पूर्व ४५०–४२५) वर्षावास यहीं बिताये।

श्रावस्तीके नाम-करणके विषयमें मज्झिम निकायके सब्बासवसुत्त. (१।१।२) में इस प्रकार पाया जाता है—"सावत्थी (श्रावस्ती)—सवत्थ ऋषिकी निवासवाली नगरी, जैसे काकन्दी माकन्दी। यह अक्षर-चिन्तकों (=वैयाकरणों) का मत है। अर्थकथाचार्य (भाष्यकार) कहते हैं—जो कुछ भी मनुष्योंके उपभोग परिभोग हैं, सब यहाँ हैं इसलिये इसे सावत्थी (श्रावस्ती) कहते हैं; बंजारोंके जुटनेपर 'क्या चीज है' यह पूछने पर "सब है, इस बातसे सावत्थी[2]।" श्रावस्ती कहाँ थी, "कोसलानं पुरं रम्मं" वचनसे ही मालूम हो जाता है, कि वह

---

१. "तथागतो हि पठम बोधियं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव गन्त्वावसि। पथमक अन्तो वस्सं हि······ धम्मचक्कं पवत्तेत्वा······वाराणसिं उपनिस्साय इसिपतने वसि।·········। चतुद्दसमं जेतवने पंचदसमं कपिलवत्थुस्मिं······। एवं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा, यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव वसि। ततो पट्ठाय पन द्वे सेनासनानि धुवपरिभोगानि अहासि। कतरानि द्वे?—जेतवनञ्च पुब्बारामञ्च।······। उतुवस्सं चारिकं चरित्वापि हि अन्तो वस्से द्विसु येव सेनासनेसु वसति। एवं वसन्तो पन जेतवने रत्तिं वसित्वा पुन दिवसे······दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा सावित्थं पिण्डाय पविसित्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोति। पुब्बारामे रत्तिं वसित्वा पुनदिवसे पाचीन-द्वारेन······जेतवने दिवाविहारं करोति।"

(अङ्गुत्तर० अट्ठकथा, हेवावितारणे ३१४ पृष्ठ)।

२. सावत्थीति सवत्थस्स इसिनो निवासट्ठानभूता नगरी, यथा काकन्दी माकन्दीति। एवं ताव अक्खरचिंतका। अट्ठकथाचरिया पन भणन्ति—यं किं-

कोसल देशमें थी। पाली ग्रन्थोंमें कितनी ही जगहोंपर श्रावस्तीकी दूसरे नगरोंसे दूरी भी उल्लिखित मिलती है—

१. "राजगृह कपिलवस्तुसे साठ योजन दूर, और श्रावस्ती पन्द्रह योजन। शास्ता (=बुद्ध) राजगृहसे पैंतालीस योजन आकर श्रावस्तीमें विहरते थे।"[1]

२. "पुक्कसाती (=पुष्करसाती) नामक कुलपुत्र [तक्षशिलासे] आठ कम दो सौ योजन जाकर जेतवनके सदरदरवाजेके पाससे जाते हुए।"[2]

३. "मच्छिकासंडमें सुधर्म स्थविर क्रुद्ध हो शास्ताके पास [जेतवन जाकर...। शास्ताने [कहा] यह बड़ा मानी है; तीस योजन मार्ग जाकर पीछे आवे[3]।"

४. "दारुचीरिय...सुप्पारक बन्दरके किनारे पहुँचा।...तब उसको देवताने बताया—हे वाहिक, उत्तरके जनपदोंमें श्रावस्ती नामक

च मनुस्सानं उपभोगं परिभोगं सब्बमेत्थ अत्थीति सावत्थी। सत्थ-समायोगे च किं भण्डं अत्थीति पुच्छिते सब्बमत्थीति वचनमुपादाय सावत्थी—

सब्बदा सब्बूपकरणं सावत्थियं समोहितं।
तस्मा सब्बमुपादाय सावत्थीति पवुच्चति॥
कोसलानं पुरं रम्मं दस्सनेय्यं मनोरमं।
दस हि सद्देहि अविवित्तं अन्नपानसमायुतं॥
वुद्धिं वेपुल्लतं पत्तं इद्धं फीतं मनोरमं।
आलकमन्दाव देवानं सावत्थी पुरमुत्तमं॥

(मज्झिम. नि. अ. क. १।१।२)।

1. "राजगहं कपिलवत्थुतो दूरं सट्ठि योजनानि, सावत्थी पन पञ्चदस। सत्था राजगहतो पञ्चचत्तालीसयोजनं आगन्त्वा सावत्थियं विहरति।"

(म. नि. अ. क. १।३.४)।

2. "पुक्कसाति नाम कुलपुत्तो [तक्कसिलातो] अट्ठहि ऊनकानि द्वे योजन-सतानि गतो जेतवनद्वारकोट्ठकस्स पन समीपे गच्छन्तो..."

(मज्झिम. नि. अट्ठ. ३।४।१०)।

3. "मच्छिकासंडे सुधम्मत्थेरो...कुज्झित्वा सत्थुसंतिकं [जेतवने] गन्त्वा। सत्था...मानत्थद्धो एस तिंसयोजनं तावमग्गं गंत्वा पच्छागच्छतु"।

(धम्मपद अट्ठ. देवावतारने पृ० २ ५०)

नगर है, वहाँ वह भगवान् विहरते हैं।...[वह] एक सौ बीस योजनका रास्ता एक एक रात वास करते हुए ही गया।"[1]

५. "शास्ता जेतवनसे निकलकर क्रमशः अग्गालव विहार पहुँचे। शास्ताने [सोचा], जिस कुल-कन्याके हितार्थ तीस योजन मार्ग हम आये।"[2]

६. "श्रावस्तीसे संकाश्य नगर तीस योजन।"[3]

७. "उग्र नगर निवासी उग्र नामक श्रेष्ठि-पुत्र अनाथ पिंडदका मित्र था।...छोटी सुभद्रा यहाँ [श्रावस्ती] से एक सौ बीस योजन पर बसती है।"[4]

८. "उस क्षण जेतवनसे एक सौ बीस योजनपर कुररघरमें।"[5]

९. "तीस योजन......[जाकर] अंगुलिमालका।"[6]

१०. "महाकप्पिन एक सो बीस योजन आगे जा चंद्रभागा नदीके तीर बरगदकी जड़में बैठे।"[7]

११. "साकेत छ योजन"।[8]

---

१. "दारुचीरियो...सुप्पारकपत्तनतीरं ओक्कासि। ..अथस्स देवता आचिक्खि—अत्थि बाहिय, उत्तरेसु जनपदेसु सावत्थिनाम नगरं तत्थ सो भगवा विहरति। ...[सो] वीसं योजनसतिकं मग्गं एकरत्तिवासेनेव अगमासि।" (धम्मपद अट्ठ ८।२ उदान अट्ठ १:१०)।

२. "सत्था जेतवना निक्खमित्वा अनुपुब्बेन अग्गालवविहारं अगमासि।...। सत्था यमहं कुलधीतरं निस्साय तिंसयोजनमग्गो आगतो।" (धम्मपद अट्ठ० १३।७,१५।५)।

३. "सावत्थितो संकस्स नगरं तिंसयोजनानि"। (धम्मपद अट्ठ. १४।२)।

४. "अनाथपिंडिकस्स...उग्गनगरवासी उग्गोनाम सेट्ठिपुत्तो सहायको।... चूळसुभद्दा दूरे वसति इतो वीसतियोजनसत मत्थके..." (धम्म. अट्ठ. २१।८)।

५. "तस्मिं खणे जेतवनतो वीसं योजनसतमत्थके कुररघरे..." (धम्म. अ. २५।७)।

६. "तिंस योजनं...अंगुलिमालस्स"। (मज्झिम. अट्ठ. १३।४)।

७. "महाकप्पिन राजा"'। '''वीसं योजनसतं पच्चुग्गन्त्वा चन्द्रभागाय नदियातीरे निग्रोधमूले निसीदि।" (धम्मपद अट्ठ० ६।४)।

८. महावग्ग। पृष्ठ २८७।

ऊपरके उद्धरणोंमें राजगृह, कपिलवस्तु, तक्षशिला, मच्छिकासंड, सुप्पारक, अग्गालव विहार, संकाश्य, उग्रनगर, कुररघर, अंगुलिमाल को ज्ञान देनेका स्थान, चन्द्रभागा नदीतीर, तथा साकेत इन तेरह स्थानोंसे श्रावस्तीकी दूरी मालूम होती है। इन स्थानोंमें कपिलवस्तु (तिलौरा कोट, नेपालतराई), राजगृह (राजगिर, जिला पटना, विहार), साकेत (अयोध्या, जि० फैजाबाद, यु० प्रा०), तक्षशिला (शाहजीकी ढेरी, जि० रावलपिंडी, पंजाब), सुप्पारक (सुप्पारा, जिला सूरत, बंबई) संकाश्य (संकिसा, जिला फर्रुखाबाद यु० प्रा०) तथा चंद्रभागा नदी (चनाब, पंजाब) यह सात स्थान बहुत कुछ निश्चित हैं।

पालीकोष 'अभिधानप्पदीपिका'के अनुसार योजन विदत्थिका मान इसप्रकार है।

"अंगुद्विच्छ विदत्थि, ता दुवे सियुं।—
रतनं; तानि सत्तेव, यट्ठि, ता वीसतूसभं।
गावूतमुसभासीति, योजनं चतुगावुतं।"

१२ अंगुल = विदत्थि = (·४ गिरह)
२ विदत्थि (बालिश्त) = १ रतन (हाथ)
७ रतन = १ यट्ठि (लट्ठा) = (३$\frac{१}{२}$ गज)
२० यट्ठि = १ ऊसभ (ऋसभ) = (७० गज)
८० ऊसभ = १ गावूत (गव्यूति) = (५६०० गज =
(३$\frac{२}{११}$ मील)
४ गावूत = १ योजन = (१२$\frac{८}{११}$ मील)

अभिधर्मकोशमें[1] २४ अंगुल = १ हस्त, ४ हस्त = १ धनु (= २ गज्र), ५०० धनु = १ कोश (= १००० गज्र), ८ कोश = १ योजन (= ४. ४५ मील) है।

---

१. चतुर्विंशतिरंगुल्यो हस्तो, हस्तचतुष्टयम्।
धनुः, पञ्चशतान्येषां क्रोशो,·········तेऽष्टौ योजनमित्याहुः,
(अभिधर्मकोशः, ३।८८-८)

इस फासिलेको आधुनिक नकशेसे मिलानेपर—

	पुरातन		आधुनिक
	योजन	मील	मील
कपिलवस्तु	१५	१९०. ९	६२. ४
साकेत	६	७६. ३६	५१. २
राजगृह	४५	५७२. ७२	२७६. ८
तक्षशिला	१९२	२४४३. ६२	७२४. ८
सुप्पारक	१२०	१७२७. २६	७९६. ८
संकाश्य	३०	३८१. ८१	१६९. ६
चन्द्रभागा नदी	१२०	१७२७. २६	५९०. ४

श्रावस्ती और साकेतका फासिला थोड़ा और मार्ग चालू था। इसलिये इसकी दूरीमें सन्देहकी कम गुंजाइश है। इस हिसाबसे योजन आठ मीलके करीब होगा। कोसल देशकी श्रावस्तीको विद्वानोंने युक्तप्रांतके गोंडा जिलेका सहेटमहेट निश्चित किया है। उस समय कोसल नामका दूसरा कोई देश न था, इसीलिये उत्तर दक्षिण लगानेकी आवश्यकता न थी। छठी शताब्दीके (= विक्रम सं० ५५८-६५७) बाद जब मध्यप्रदेशके छत्तीसगढ़का नाम भी कोसल पड़ा; तो दोनोंको अलग करनेके लिये, इसे उत्तर कोसल और मध्यप्रदेश वालेको दक्षिण कोसल या महाकोसल कहा जाने लगा। श्रावस्ती अचिरवती (= रापती) नदीके तीर थी[१]। अचिरवती नगरके समीप ही बहती थी, क्योंकि हम देखते हैं कि नगरकी वेश्याएं और भिक्षुणियाँ वहाँ साधारणतः स्नान करने जाया करती थीं। मज्झिम निकाय अट्ठकथामें[२] बतलाया है, कि यह नदी बहुत पुरातन

१. "इध भन्ते भिक्खुनियो अचिरवतिया नदिया वेसियाहि सद्धिं नग्गा एकतित्थे नहायन्ति।.........अनुजानामि ते विसाखे अट्ठवरानीति।......" (महावग्ग चीवरक्खन्धे, ३२७)

२. कस्सपदसबलस्स काले अचिरवती नगरं परिक्खिपित्वा सन्दमाना पुब्बकोट्ठकं पत्वा उदकेन भिन्दित्वा महन्तं उदकदहं मापेसि, समतित्थं अनुपुब्बगम्भीरं।" (म० नि० १-३-६ अ० क० ३७१)।

(काश्यप बुद्ध)-कालमें नगरको घेरकर बहती थी। उसने पुब्ब-कोट्ठकके पास बड़ा दह खोद दिया था। यह दह नहानेका बड़ा ही अच्छा स्थान था। यह स्थान सम्भवतः महेटके पूर्वोत्तर कोनेपर था। इस दरके समीप तथा अचिरवतीके[1] किनारे ही राजमहल था। लेकिन साथही सुत्तनिपातकी अट्ठकथासे[2] पता लगता है कि अचिरवतीके किनारेवाले जौके खेत जेतवन और श्रावस्तीके बीचमें पड़ते थे। इसका मतलब यह है कि अचिरवती उस समय या तो जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिम ओर होती हुई बहती थी, अथवा पूर्वकी ओर। लेकिन पूर्व मानने पर, उसका राजमहलके (जो कि नौशहरा दर्वाजाके पूर्व तरफ था) के पाससे जाना सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये अधिकतर उसका श्रावस्ती और जेतवनके पश्चिम होकर, राजगढ़ दर्वाजेसे होते हुए, वर्तमान नौखानमें होकर बहना अधिक सम्भव मालूम होगा। यह बात यद्यपि पाली उद्धरणके अनुसार ठीक जँचैगी; किन्तु भूमिको देखनेसे इसमें सन्देह मालूम होता है। क्योंकि जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिमी भागमें कोई ऐसा चिह्न नहीं है, जिससे कहा जाय कि यहाँ कभी नदी बहती थी। साथ ही पुरैना और अमहा तालोंके अति पुरातन स्तूपावशेष भी इसके लिये बाधक हैं। रामगढ़ दर्वाजेके पासकी भूमिमें भी ऐसी शक्ति नहीं है, जो अचिरवती ऐसी पहाड़ी नदीकी तेज धारके ऐसे जल्दीके घुमावको सह सके। मालूम होता है, मूल परम्परामें ब्राह्मणके जौके खेतका अचिरवतीकी बाढ़से नष्ट होना वर्णित था। जिसके लिये खेतोंका

---

१. "……राजा पसेनदी कोसलो मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरि पासादवर गतो होति। अद्दसा खो राजा पसेनदि……तेरस वग्गिये भिक्खू अचिरवतिया नदिया उदके कीळन्ते।……" (पाचित्ति अचेलकवग्ग पृ० १२७)

२. "भगवति किर सावत्थियं विहरन्ते अञ्ञतरो ब्राह्मणो सावत्थिया जेतवनस्स च अन्तरे अचिरवती नदी तीरे यवं वपिस्सामीति खेत्तं कसति।……तस्स अज्जवा स्वे वा लायिस्सामीति उस्सुक्कं कुरुमानस्सेव महामेघो उट्ठहित्वा सब्बरत्तिं वस्सि अचिरवती नदी पूरा आगन्त्वा सब्बं यवं वहि।" (सुत्त नि० ४।१, अ० क० ४१९)।

अचिरवतीके किनारे होना कोई आवश्यक नहीं। हो सकता है, सिंगिया नालाकी तरहका कोई नाला जेतवन और श्रावस्तीके पश्चिम भागमें रहा होगा, या उसके बिना भी जौके खेतका अचिरवतीकी बाढ़से नष्ट होना बिलकुल सम्भव है। अचिरवतीकी बाढ़से नष्ट होनेसे ही, खेतोंको पीछे अचिरवतीके किनारे, समझ लिया गया। यह परिवर्तन मूल सिंहाली अट्ठकथा हीमें सम्भवतः हुआ, जिसके आधारपर बुद्धघोषने, अपनी अट्ठकथाएँ लिखीं। अचिरवतीका श्रावस्तीके उत्तर और पूर्व-पश्चिम बहनेका एक और भी प्रमाण हमें मज्झिमनिकायसे[1] मिलता है। आनन्द श्रावस्तीमें भिक्षा करके पूर्वारामको जा रहे थे; उसी समय राजा प्रसेनजित् भी अपने हाथीपर सवार नगरसे बाहर गये थे। राजाने पूर्वद्वार (काँदभारी दर्वाजा) से बाहर पूर्वद्वार और पूर्वारामके बीचमें कहींपर आनन्दको देखा। उस जगहसे जहाँ अचिरवती थी, वहाँपर राजाने आनन्दको चलनेकी प्रार्थना की। सम्भवतः इस समय अचिरवती सहेटके उत्तरी किनारेसे लगी हुई बहती थी। कच्ची कुटीके पासका स्तूप सम्भवतः अनाथपिण्डदके घरको बतलाता है। अनाथपिण्डदका घर अचिरवतीके पास था; शायद इसीलिये हम जातकट्ठकथामें[2] देखते हैं, कि अनाथपिण्डदका

---

१. आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं······सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा······येन पुब्बारामो···तेन उपसंकमि···। तेन खोपन समयेन राजा पसेनदि कोसलो एकपुण्डरीकं नागं अभिरूहित्वा सावत्थिया निय्यासि दिवा दिवस्स। अद्दसा खो राजा······दूरतोव आगच्छन्तं।···येनायस्मा आनन्दो तेनुपसंकमि।···एतदवोच—स चे भन्ते,···न किञ्चि अच्चायिकं करणीयं; साधु,···येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुप संकमतु अनुकम्पं उपादायाति।···अथ खो···आनन्दो येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुपसंकमि, उपसङ्कमित्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले पञ्ञत्ते आसने निसीदि।······अयं भन्ते अचिरवती नदी दिट्ठा आयस्मता चेव···अम्हेहि च, यदा उपरि पब्बते महामेघो अभिप्पवाहेति, अथायं अचिरवती नदी उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छति।" (म० नि० २।४।८)

२ "अचिरवती नदीतीरे निहितधनं नदीकूले भिन्ने समुद्दं पविट्ठं अत्थि।" (जा० १।४।१०)

बहुतसा धन भूमिमें गड़ा हुआ, अचिरवतीके किनारेके टूट जानेसे बह गया।

श्रावस्ती (१) अचिरवतीके किनारे थी, (२) कोसल देशमें साकेत (अयोध्या) से ६ योजन थी; तथा खुद्दकनिकायके पेतवत्थुके[१] अनुसार (३) हिमालय वहाँसे दिखलाई पड़ता था। यहाँ शब्द 'हिमवान्‌को देखते हुए' हैं; जिससे साफ है, कि श्रावस्ती हिमालयके जड़में न होकर वहाँसे कुछ फासिलेपर थी, जहाँसे कि हिमालयकी चोटियाँ दिखलायी पड़ती थीं। महेटसे हिमालय पर्वत चौबीस मीलही दूर है, और खूब दिखलाई पड़ता है।

श्रावस्तीकी जनसंख्या[२] अट्ठकथाओंमें सात कोटि लिखी है, जिसका अर्थ हम यही लगा सकते हैं, कि वह एक बड़ा नगर था। यह बात तो कोसल जैसे बड़े शक्तिशाली राज्यकी पुरानी राजधानी होनेसे भी मालूम हो सकती है। महापरिनिर्वाण सूत्रमें[३], जहाँपर आनन्दने बुद्धसे कुशीनगर छोड़कर किसी बड़े नगरमें शरीर छोड़नेकी प्रार्थना की है वहाँ बड़े नगरोंकी एक सूची दी है। इस सूचीमें श्रावस्तीका उल्लेख है। इससे भी यह स्पष्ट है। निवासियोंमें पाँच करोड़ लोग बौद्ध थे, इसका मतलब भी यही है कि श्रावस्तीके अधिवासियोंकी अधिक संख्या बौद्ध थी। यह इससे भी मालूम हो सकता है कि भगवान् बुद्धके उपदेशका यह एक केन्द्र रहा।

श्रावस्ती नगर

उस समय मकानोंके बनानेमें लकड़ीका ही अधिकतर उपयोग होता था। इमारतें प्राय: सभी लकड़ीकी थीं। यद्यपि श्रावस्तीके बारेमें खास

---

१. "सावत्थि नाम नगरं हिमवन्तस्स पस्सतो।" (पेतवत्थु० ४ : ६)

२. "तदा सावत्थियं सत्तमनुस्स कोटियो वसन्ति। तेसु सत्थु धम्मकथं सुत्वा पञ्चकोटिमत्ता मनुस्सा अरियसावका जाता, द्वे कोटि मत्ता पुथुज्जना।" (अ० प० १।१, अ० क० ३)

३. "मा भन्ते भगवा इमस्मिं कुड्ड नगरके उज्जंगलनगरके साखनगरके परिनिब्बायतु। सन्ति भन्ते अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथीदं चम्पा, राजगहं, सावत्थी, साकेतं, कोसम्बी, बाराणसी।…" (दी० नि० २।३।१३।)

तौर से नहीं आया है, तो भी राजगृहके वर्णनसे हम समझ सकते हैं कि शहरोंके चारों तरफके प्राकार भी लकड़ीके ही बनते थे। पाराजिका[1] (विनयपिटक) से यह बात स्पष्ट है। मेगस्थनीजने भी पाटलिपुत्रके चारों ओर लकड़ीका ही प्राकार देखा था। (उस समय जब चारों ओर जङ्गल ही जङ्गल था, लकड़ीकी इफ्रात थी) जो धनुष बाणके जमानेके लिये नगर रक्षाकी बहुत ही उपयुक्त सामग्री थी, इसीलिये हम पुराने पाटलिपुत्रको भी लकड़ीके प्राकारसे ही घिरा पाते हैं। बुलन्दी बागकी खुदाईमें इसके कुछ भाग भी मिले हैं।

श्रावस्तीमें मुख्यतः चार[2] दर्वाजे थे, जिनमें तीन तो उत्तर[3], पूर्व और दक्षिण दर्वाजोंके नामसे प्रसिद्ध थे। इनमेंसे जेतवनसे नगरमें आनेका दर्वाजा दक्षिण द्वार था। पूर्व्वाराम पूर्व दर्वाजे[4]के सामने था। इन्हीं तीन द्वारोंका वर्णन अधिकतर मिलता है। पश्चिम द्वार होना भी यद्यपि स्वाभाविक है तथापि इसका वर्णन त्रिपिटक या अट्ठकथामें कहीं नहीं देखनेमें आता है। अट्ठकथासे यह भी पता लगता है कि उत्तर द्वारके बाहर एक गाँव बसता था, जिसका नाम 'उत्तरद्वारगाम' लिखा है। यह 'उत्तर[5] द्वारगाम' नगरके प्राकार तथा नदीके मध्यकी भूमिमें झोपड़ियोंका एक छोटा गाँव होगा।

---

१. "अत्थि भन्ते देवगहदारूनि नगरपटिसंखारिकानि आपदत्थाय निक्खित्तानि स चे तानि राजा दापेति, हरापेथ।"

(द्वितीय पराजिका)।

२. "जेतवने रत्तिं वसित्वा पुनदिवसे...दक्खिणद्वारेन सावत्थिं पिण्डाय पविसित्वा पाचीन-द्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोति।"

(मनि १।३।६, अ. क. ३६९)

३. "पाचीनद्वारे सङ्घस्स वसनट्ठानं कातुं ते युत्तं विसाखेति।

(धम्मपद. प. ४ ८ अ. क. १९९)

४. "पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनाथपिण्डकस्स गेहे भिक्खं गहेत्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वापुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तञ्जेव भगवन्तं दिस्वा चारिकं पक्कमिस्सतीति जानन्ति।" (ध. प. ४।८, अ. फ. २००)

५. एकदिवसं हि भिक्खू सावत्थियं उत्तरद्वारगामे पिण्डाय चरित्वा...नगर-

विमानवत्थु[1] तथा उदान[2] अट्ठकथामें 'केवटद्वार' नामक एक और द्वारका वर्णन किया गया है, जिसके बाहर केवटों (मल्लाहों) का गाँव बसा था। उस समय व्यापारके लिये नदियोंका महत्त्व अधिक था। अतः केवट गाँवका एक बड़ा गाँव होना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हमको पिटक और उसकी अट्ठकथाओंसे उत्तर, पूर्व, दक्षिण द्वार, तथा केवट द्वार इन चार दर्वाजोंका पता लगता है, 'सहेट' के ध्वंसावशेष, तथा उसके दर्वाजोंका विस्तृत वर्णन डाक्टर फ़ोगलने १९०७–८ के पुरातत्त्व विभागके विवरणमें विस्तार-पूर्वक किया है। वहाँ, उन्होंने महेट (श्रावस्ती) का घेरा १७,२५० फीट या ३¾ मीलसे कुछ अधिक लिखा है। यद्यपि श्रावस्ती नगर ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें (=विक्रम सं० ११५८–१२५७) मुसलमानों द्वारा वीरान किया गया और इसलिये ईसा पूर्व छठी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीके बीचकी अठारह शताब्दियोंमें हेर फेर होना बहुत स्वाभाविक है तथापि इतना हम कह सकते हैं कि कोसल राज्यके पतन (प्रायः ईसा पूर्व ४ या ५ शताब्दी) के बाद फिर उसे किसी बड़े राज्यकी राजधानीको बनानेका मौक़ा न मिला। पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें फ़ाहियानने भी इसे दो सौ घरोंका गाँव देखा था। युआन चुआङ्ने भी इसे उजाड़ देखा। इसलिये इतना कहा जा सकता है कि श्रावस्ती-की सीमाके बढ़ानेका कभी मौक़ा नहीं आया; और वर्तमान 'महेट' का १७,२५० फ़ीटका घेरा श्रावस्तीकी पुरानी सीमाको बढ़ाकर नहीं सूचित करता है। श्रावस्ती भारतके बहुत ही पुराने नगरोंमें से है; इसलिये उसकी नियम पूर्वक खोदाई होनेसे अवश्य हमें बहुतसी

मज्झेन विहारं आगच्छन्ति। तस्मिन् खणे मेघो उट्ठाय पावस्सि। ते सम्मुखागतं विनिच्छयसालं पविसित्वा, विनिच्छयमहामत्ते लञ्छं गहेत्वा सामिके असामिके करोन्ते दिस्वा, अहो इमे अधम्मिका...

(ध. प. १२।१. अ. क. ५२९)

1. "केवट्ट द्वारा निक्खम्म अहु मरहं निवेसनं।" (वि० व० २ : २)
2. "सावत्थि नगर द्वारे केवट्टगामे...पञ्चकुलसतजेट्ठकस्स केवट्टस्स पुत्तो... यसोजो...।" (उदान. ३.३, अ० क० ११९).

ऐतिहासिक सामग्री हाथ लगेगी। हम पटनामें मौर्योंका तल, वर्तमान धरातलसे १७ फुट नीचे पाते हैं। श्रावस्तीमें भी बुद्धकालीन सामग्री उससे कम खोदाईमें नहीं मिल सकती। डाक्टर फ़ोगलने प्राकारोंको अनेक स्थानोंपर ईंटोंका पाया है, जो तल और लम्बाई-चौड़ाईके विचारसे ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीसे दशवीं शताब्दी तककी मालूम होती हैं। इस प्राकारमें जहाँ कहीं भी ज़मीन कुछ नीची जान पड़ती है, लोग उसे दर्वाजा कहते हैं, जो आसपासके किसी वृक्ष या गाँवके नामसे मशहूर है। ऐसे दर्वाजे अट्ठाइसके करीब हैं। डाक्टर फ़ोगलने इनकी परीक्षा करके इनमेंसे ग्यारहको ही दर्वाजा माना है, जिनमें उत्तर तरफ एक, पूर्व तरफ एक, दक्षिण तरफ चार, पश्चिम तरफ पाँच हैं। इनमेंसे कौन त्रिपिटक और अट्ठकथामें आये चारों दर्वाजे हो सकते हैं, इसपर ज़रा विचार करना है।

उत्तर द्वार

ऊपरके उद्धरणसे मालूम होता है कि जब भगवान् बुद्ध उत्तर दर्वाजेकी तरफ जाते थे तो लोग समझ लेते थे कि अब वे चारिकाके लिये जा रहे हैं। इतनाही नहीं, वहाँ[1] ही हम भद्दियके लिये प्रस्थान करते हुए उन्हें उत्तर द्वारकी ओर जाते हुए देखते हैं। पर 'भद्दिय' अंगुत्तरापमें (गंगाके उत्तर मुंगेर और भागलपुर जिलोंके भाग), वर्तमान बेगूसरायके पास कहीं गंगाके किनारे एक प्रसिद्ध व्यापारी नगर था। श्रावस्तीसे पूर्वकी ओर जानेवाला मार्ग उत्तर द्वारहीसे था; जिसके बाहर अचिरवतीमें[2] काठकी डोंगियोंका पुल रहता था। इससे पार होकर पूर्वका रास्ता था। उत्तर तरफके दर्वाजोंमें सिर्फ नौसहरा[3]

---

१. "अथेकदिवसं सत्था…भद्दियनगरे…भद्दियस्स नाम सेट्ठिपुत्तस्स उपनिस्सय-सम्पत्तिं दिस्वा…उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि।" (ध. प. ४।८, अ. क. २८०)

२. तेन खो पन समयेन मनुस्सा उलुम्पं (raft) बन्धित्वा अचिरवतिया नदिया ओसादेन्ति। बन्धने छिन्ने कट्ठानि विप्पकिण्णानि अगमंसु।"
(पाराजिका २। ए ६८)

३. "Along the river face,.........only one...Nausahra Darwaza ...has proved to be one of the original City-gates"

ही एक दर्वाजा है, जिसे डाक्टर फ़ोगलके अन्वेषणने पुराना दर्वाजा सिद्ध किया है। बाजार-दर्वाजेसे, जिसे हम दक्षिण दर्वाजा सिद्ध करेंगे, कच्ची कुटीतक चौड़ी सड़कका निशान अब भी स्पष्ट मालूम होता है। यही नगरको सर्वप्रधान सड़क थी। दक्षिण दर्वाजेका बाजार-दर्वाजा नाम भी सम्भवतः कुछ अर्थ रखता है। कच्ची कुटीके पाससे एक रास्ता नौसहरा-दर्वाजेको भी जाता है। नौसहरा-दर्वाजा ही श्रावस्तीका उत्तर द्वार है, जिसके बाहर एक गाँव बसा हुआ था। सड़कके किनारे-वाले भागपर कहीं राजकचहरी थी, जिसमें वर्षासे बचनेके लिये भिक्षु चले गये थे, और वहाँ उन्होंने जजोंको घूस लेकर मालिकोंको बेमालिक बनाते देखा।

पूर्वदर्वाजा

यह बहुतही महत्त्वपूर्ण दर्वाजा था। इसके ही बाहर पूर्वाराम था। पूर्वाराम बहुतही प्रसिद्ध स्थान था, इसलिये उस जगह स्तूप आदिक ध्वंस अवश्य मिलना चाहिये। गंगापुर-दर्वाजेको ही डाक्टर फ़ोगलने पूर्व तरफका वास्तविक दर्वाजा माना है। इसके अतिरिक्त काँदभारी-दर्वाजा भी पूर्व-दक्षिण कोनेपर है, जिसे भी पूर्व ओर लिया जा सकता है; लेकिन (१) हमने ऊपर देख लिया है कि आनन्दको राजा प्रसेनजित्‌ने पूर्व दर्वाजेके बाहर देखा था, जहाँसे अचिरवती बिलकुल पास थी। काँदभारीके स्वीकार करनेसे वह दूर पड़ जायगी। (२) भगवान् बुद्ध सदाही दक्षिण दर्वाजेसे नगरमें प्रवेश कर, फिर पूर्व दर्वाजेसे निकलकर पूर्वाराम जाते देखे जाते हैं। यदि काँदभारी-दर्वाजा पूर्व दर्वाजा होता, तो जेतवनसे बाहर ही बाहर पूर्वाराम जाया जा सकता था, जिसका कहीं जिक्र नहीं है। (३) पुब्बकोट्ठक[1]

---

१. पिंडपातपटिक्कन्तो···येन पुब्बारामो तेनुपसङ्कमि। ···सायन्हसमयं पटिसल्लाणा वुट्ठितो···येन पुब्बकोट्ठको···गत्तानि परिसिञ्चितुं···। अथ···आनन्दो अयं भन्ते, रम्मकस्स ब्राह्मणस्स अस्समो अविदूरे,···साधु भन्ते···उपसंकमतु अनुकम्पं उपादायाति।···भगवा···अस्समं पविसित्वा···भिक्खू आमन्तेसि।"
(म. नि. १।३।६)

जो कि अचिरवतीके पास था, पूर्वारामके पासही था, क्योंकि भगवान् सायंकालको स्नानके लिये वहाँ जाते हैं। पासमें रम्यक ब्राह्मणके आश्रममें व्याख्यान भी देते हैं, और फिर पूर्वाराम लौट भी आते हैं।

लेकिन इसके विरुद्ध सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि गङ्गापुर-दर्वाजेके बाहर आसपास कोई ऐसा ध्वंसावशेष डाक्टर फ़ोगलके नकशेमें नहीं दिखाई पड़ता। यदि वास्तवमें कोई ध्वंसावशेष नहीं है, तो यह बड़ी कठिनाई है। साथ ही काँदभारी-दर्वाजेके बाहर ही हम हनुमनवाँके ध्वंसावशेषको देखते हैं।✽

दक्षिणद्वार

दक्षिणद्वार नगरका एक प्रधान द्वार था। जेतवन जानेका यही रास्ता था। इस दर्वाजे और जेतवनके बीचमें अक्सर राजकीय सेनाएँ[1] पड़ाव डालती थीं। कारवाँ[2] भी इसी बीचकी भूमिमें ठहरते थे। यही दर्वाजा साकेत (अयोध्या) जानेका भी था। दक्षिण द्वार और जेतवन[3] के मध्यमें एक जलाशयका वर्णन मिलता है। तमाशे[4] के लिये भी

✽ स्थानको देखकर कांदभारी दर्वाजा ही पूर्व दर्वाजा, तथा हनुमनवाँ पूर्वाराम मालूम होता है।

१. "एकस्मिं समये वस्सकाले कोसलरञ्ञो पच्चन्तो कुप्पि।......। राजा अकाले वस्साने येव निक्खमित्वा जेतवनसमीपे खन्धावारं बन्धित्वा चिन्तेसि।
(जा० १७६, पृ० ४२९)

२. "सेतब्यवासिनो हि......भातरो कुटुम्बिका......अथेकस्मिं समये ते उभोपि भातरो पञ्चहि सकटसतेहि नान· भण्डं गहेत्वा सावत्थिं गन्त्वा सावत्थिया च जेतवनस्स च अन्तरे सकटानि मोचयिंसु।" (ध. प. १. ६ अ. क. ३३)

३. "तेन खो पन समयेन सम्बहुला कुमारका अन्तरा च सावत्थिं अन्तरा च जेतवनं मच्छके बाधेन्ति।......भगवा पुब्बण्हसमयं...सावत्थियं पिंडाय पाविसि।......उपसंकमित्वा भायथ तुम्हे कुमारका दुक्खस्स" (मग्गसमीपे तळाके निदाघकाले उदके परिक्खीणे......।
(उदान. ५।४, पृ० १९६)

४. "......(चन्दाभत्थेरो, सहायको च)...एवं अनुविचरन्ता सावत्थियं अनुपत्ता नगरस्स च विहारस्स च अन्तरा वासं गण्हिंसु।"
(ध प. २६। ३०, अ. क. ६७०)

यही जगह निश्चित थी। श्वेताम्बी कपिलवस्तुके रास्तेमें थी, इसलिये वहाँसे श्रावस्ती आनेमें उत्तर द्वारके सामने नदी उतरना पड़ता था; फिर गाड़ियोंका नगरके दक्षिणमें ठहरना बतलाता है कि श्रावस्ती और जेतवनके बीचकी भूमिमें खुली जगह थी, जो पड़ावके लिये सुरक्षित थी। वैतारा ताल तथा और भी कुछ नीची भूमि, सम्भवतः पुराने जलाशयोंको सूचित करती है। सवाल यह है कि कौनसा प्रसिद्ध दक्षिणद्वार है,[1] जिससे जेतवनमें आना-जाना होता था। डाक्टर फ़ोगलके अनुसार गेलही-दर्वाजा ही वह हो सकता है, क्योंकि यह दर्वाजा सबसे नजदीक है। उसके दर्वाजा न होनेमें एक बड़ी भारी रुकावट यह है कि जेतवनका दर्वाजा पूर्वमुख था। यदि गेलही-दर्वाजा उस समय दर्वाजा होता, तो उसके लिये जेतवनका दर्वाजा उत्तरमुँहका बनाना पड़ता। यद्यपि चीनी यात्रीके अनुसार एक दर्वाजा उत्तरको था, किन्तु पालीग्रन्थोंमें उसका कुछ भी पता नहीं है। इस प्रकार दक्षिणद्वार वैतारा और बाजार-दर्वाजा दोनोंहीमेंसे कोई हो सकता है। पालीग्रन्थोंमें जेतवन श्रावस्ती (दक्षिणद्वार) से न बहुत दूर था न बहुत समीप, यही मिलता है। गेलही-दर्वाजेसे जेतवन १३८६ फीट या चौथाई मीलसे कुछ अधिक है। अट्ठकथासे मालूम होता है कि जेतवन जाते वक्त नगरकी बड़ी सड़कसे[1] जाते थे। दूसरी जगह हम देखते हैं कि श्रावस्ती जानेवाली सड़क जेतवनसे पूर्व होकर जाती थी। इन सारी बातोंपर विचार करनेसे गेलही-दर्वाजा दक्षिणद्वार नहीं हो सकता, बाजार-दर्वाजाही हो सकता है क्योंकि इससे जेतवनके पूर्वमुख होनेकी भी वजह मालूम हो सकती है। बाजार-दर्वाजा दक्षिण द्वार होनेके लायक है, इसके बारेमें डाक्टर फ़ोगल लिखते हैं[2]—"यह १२ फुट

---

१. 'सो एक दिवसम्हि पासादवरगतो सिंहपञ्जरं उग्घाटेत्वा महावीथिय ओलोकेन्तो गन्धमालादिहत्थं महाजनं धम्मसवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा······" (सुवण्णसामजातक ५३९)

२. Archealogical Report 1907-8.

चौड़ा मार्ग एक ऐसे बड़े मार्गपर जाकर समाप्त होता है जो सीधे उत्तरकी ओर जाकर 'कच्ची कुटी' नामक मन्दिरके भग्नावशेषके दक्षिण-पूर्वमें स्थित एक मैदानमें मिल जाता है। बाज़ार-दर्वाजा वस्तुतः किसी पुराने नगर-द्वारके ही स्थानपर है ऐसा माननेके लिए सबल कारण है क्योंकि यहींसे एक बड़ी सड़क या बाज़ारका आरम्भ होता है।"

इस प्रकार बाजार-दर्वाजा एक पुराना दर्वाजा सिद्ध होता है, तथा उसकी सड़क उपरोक्त महावीथी होने लायक है। इसके विरुद्ध वैतारा-दर्वाजेके बारेमें डा० फ़ोगलका कहना है कि इमारतोंके ध्वंसावशेषकी अनुपस्थितिमें इस स्थानपर किसी फाटकके अस्तित्वका सिद्ध करना असम्भव है।

इस तरह वैतारा-दर्वाजेके दर्वाजा होनेमें भी सन्देह है। तिन्दुकाचीर मल्लिकाराम[1] दक्षिण द्वारके पास था। बाजार-दर्वाजेसे प्रायः दो सौ गज पूर्व तरफ अब भी एक ध्वंसावशेष है; इसपर एक छोटा सा मन्दिर चीरेनाथके नामसे विख्यात है। क्या इस चीरेनाथका 'तिन्दुकाचीरे' के चीरेसे तो कोई सम्बन्ध नहीं है? इस प्रकार बाजार-दर्वाजा ही दक्षिण द्वार मालूम होता है, जहाँसे जेतवन द्वार ३७०० फीट पड़ेगा, जो कि गेलही-दर्वाजे (१३८६') की अपेक्षा अधिक ह्वेन-चाङ्के ५,६ (फाहियान—६, ७) ली के समीप है।

केवट्टद्वार

केवट्टद्वारके बारेमें हम सिर्फ इतना ही जानते हैं कि उसके बाहर पाँच सौ घर मल्लाहोंका एक गाँव (केवट्ट गाम) बसता था। मल्ला-

---

१. "भगवा...जेतवने...। पोट्ठपादो परिब्बाजको समयप्पवादके, तिन्दुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे पटिवसति...सद्धिं तिसमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि।' भगवा...सावत्थिं पिण्डाय पाविसि।...अतिप्पगो खो ताव,...पिण्डाय चरितुं, यन्नूनाहं...येन पोट्ठपादो परिब्बाजको तेनुपसंकमेय्यन्ति।'" (दी. नि. १.९) "नगरद्वारसमीपं गन्त्वा अत्तनो रुचिवसेन सुरियं ओलोकेत्वा...," (अ. क. २३९)

का घर इसीके किनारेपर होना भी स्वाभाविक है। इस प्रकार अनाथपिण्डिकके घरके लिये भी इसीके किनारे ढूँढ़ना पड़ेगा। धम्मपद अट्ठकथासे मालूम होता है कि अनाथपिण्डिकका[2] घर ऐसे भागपर था, जहाँसे पूर्व और उत्तर दर्वाजोंको रास्ता अलग होता था। अनाथपिंडिकके घरसे ही उत्तर दर्वाजेकी तरफ होनेको, तभी विशाखा जान सकती थी, जब कि वहाँसे सीधा रास्ता उत्तर दर्वाजेको गया हो। ऐसा स्थान कच्ची कुटी ही है; जो महावीथीके उस स्थानपर अवस्थित है, जहाँसे एक रास्ता नौसहरा-दर्वाजे (उत्तर द्वार) को मुड़ा है। ह्यून-चाङ्ने प्रजापतीके विहारसे इसे पूर्व ओर बतलाया है; लेकिन उसके साथ इसकी संगति बैठानेका कोई उपाय नहीं है, जब कि राजकारामका दक्षिण द्वारके पास प्राकारकी जड़में होना निश्चित है। अनाथपिण्डिकका घर सात महल और सात दर्वाजोंका था। जातकमें[3] उसके चौथे दर्वाजेका भी जिक्र आया है, जिसपर एक देवताका वास था।

विशाखाका घर

विशाखाका श्वशुर मिगार सेठ श्रावस्तीके सबसे बड़े धनियोंमें था। इसका भी मकान अनाथपिण्डिकके मकानके पासमें ही था। क्योंकि ऊपरके उद्धरणमें हम पाते हैं कि भगवान्के अनाथपिण्डिकके घरसे उत्तरद्वारकी ओर जानेकी खबर तुरन्त विशाखाको लग गयी। सम्भवतः पक्की कुटी या स्तूप "ए" विशाखाके घरको चिन्हित करते हैं।

---

१. "घरं सत्तभूमकं सत्तद्वारकोट्ठकपतिमण्डितं, तस्स चतुत्थे द्वारकोट्ठके एका देवता......। (जातक. १, पृ. १९७).

२. "अनाथपिंडिकस्स गेहे भत्तकिच्चं कत्वा उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि। पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनाथपिण्डिकस्स गेहे भिक्खं गहेत्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तं......विसाखापि...... सुत्वा......गन्त्वा......"। (ध. प. ४ : ८. अ. क. २००)

३. १४९ "अनाथपिण्डिकस्स घरे चतुत्थे द्वारकोट्ठके वसनक मिच्छादिट्ठिदेवता।..."(जातक २८४, पृ. ६४९)

राजमहल

यह (१) अचिरवती नदीके किनारे था क्योंकि राजा प्रसेनजित् और मल्लिका देवीने अपने कोठेपरसे अचिरवतीमें खेलते-नहाते हुए छवग्गीय भिक्षुओंको देखा। (२) पुब्बकोट्ठक[1] इससे बहुत दूर न था क्योंकि राजाके नहानेके लिये यहाँ एक खास घाट था। (३) वह[2] विशाखाके घर और पूर्वद्वारके बीचमें, पूर्वद्वारके समीप पड़ता था, क्योंकि विशाखा राजाके पास वहाँ अधिक चुङ्गी लेनेके विषयमें फरियाद करने जाती है, फिर वहाँसे दूर न होनेकी वजह पूर्वाराम चली जाती है, भगवान्के मध्याह्नमेंही आनेका कारण पूछने पर वह राजदर्बारके कामको बतलाती है। विशाखाका घर महावीथीपर अनाथपिण्डिकके घरके पासही था, यह हम पहिले बतला आये हैं। (४) राजा प्रसेनजित्के हाथीपर सवार होकर नगरसे बाहर जाते वक्त आनन्दसे पूर्वद्वारके बाहर भेंट होना भी बतलाता है कि राजमहल पूर्वद्वारके समीप था। राजाकी यह यात्रा किसी विशेष कामके लिये न थी, अन्यथा उसे आनन्दसे अचिरवतीके किनारे पेड़के नीचे बैठकर व्याख्यान सुननेकी फुर्सत कहाँ होती ? बिना कामके दिलबहलावके

१. "कस्सपदसबलस्सकाले अचिरवती···उदकेन भिन्दित्वा महन्तं उदकदहं मापेसि समतित्थं अनुपुब्बगम्भीरं। तत्थ एको रञ्ञो नहानतित्थं, एकं नागरानं, एकं भिक्खुसंघस्स, एकं बुद्धानन्ति ··।" (म. नि. १ : ३ : ६, अ. क ३७१)

२. "विसाखाय···कोचिदेव* अत्थो रञ्ञे पसेनदिम्हि···पटिबद्धो होति। तं राजा पसेनदि···न यथाधिप्पायं तीरेति। अथ खो विसाखा···दिवादिवस्स उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा···निसीदि।···हन्त ! कुतो नु त्वं विसाखे आगच्छसि दिवादिवस्स ? (उदान. २ : ९)

* "जातिकुलतो······मणिमुत्तादिरचितं भण्डजातं तस्सा पण्णाकारत्थाय पेसितं। तं नगरद्वारप्पत्तं सुङ्किका······सुंकं······अतिरेकं गण्हिंसु। दिवादिवस्साति······मज्झन्तिके कालेति अत्थो। राजनिवेसनद्वारं गच्छन्ती तस्स अत्थस्स अनिट्ठितत्ता निरत्थकमेव उपसङ्कमि, भगवति उपसङ्कमनमेव पन······सत्थकन्ति······इमाय वेलाय इधागताति।

[उ. अ. क. १०५ (११०)].

लिये नगरसे बाहर निकलनेमें उसका महलके नजदीक वाले दर्वाजेसे ही शहरके बाहर जाना अधिक सम्भव मालूम होता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि राजकीय प्रासाद उत्तरमें नौसहरा-दर्वाजेसे बाँकी-दर्वाजे तक, और दक्षिणमें महावीथीके मकानसे गङ्गापुर-दर्वाजे तक था। ह्यूनचाङ्का[१] कहना है कि "राजप्रासादसे थोड़ीही दूर पूर्वकी ओर एक स्तूप है जो पुरानी बुनियादोंपर खड़ा है। यह वह स्थान है जहाँ राजा प्रसेनजित् द्वारा बुद्धके उपयोगके लिये बनवायी हुई शाला थी। इसके बाद एक बुर्ज है। यहींपर प्रजापती-का विहार था।" इसके अनुसार राजमहल राजकारामसे पश्चिम था। लेकिन ऐसा स्वीकार करने पर, वह अचिरवतीके किनारे नहीं हो सकता, जिसका कि प्रमाण अट्ठकथासे भी पुराने विनयग्रन्थोंसे मिलता है।

कचहरी

हमें मालूम है, कि उत्तर द्वारसे नगरके भीतर होकर आते हुए भिक्षुओंको 'विनिच्छयसाला' (कचहरी) मिली थी, जहाँ उन्होंने जजोंको घूस लेकर अन्याय करते देखा था। कचहरीका राजकीय महलके हलकेसे मिला हुआ होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। इस प्रकार यह कचहरी राजमहलके उत्तर-पश्चिमके कोणवाले भागपर नौसहरा-दर्वाजेके पास ही होगी।

महावीथी

(१) यह नगरकी प्रधान सड़क थी, यह इसके नामसे ही स्पष्ट है।
(२) सुवण्णसामजातकोल्लिखित[२] धनी सेठका मकान, सम्भवतः अन्य

---

१ Beal: pp 92,93

२. "सावत्थियं किर अट्ठारसकोटिविभवस्स एकस्स सेट्ठिकुलस्स एकपुत्तो अहोसि। सो एक दिवसम्हि पासादवरगतो सीहपञ्जरं उग्घाटेत्वा महावीथियं ओलोकेन्तो गन्धमालादिहत्थं महाजनं धम्मस्सवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा……। (सुवण्णसामजातक ५३९)

सेठोंकी भाँति, इसी महावीथीपर था। यह वीथी जेतवन जानेवाले द्वार—दक्षिणद्वार—को सीधी जाती थी, तभी तो वह सेठ अपने मकानसे लोगोंको गन्धमाला लेकर भगवानन्के दर्शनार्थ जाते हुए देखकर उनका जेतवन जाना निश्चित कर रहा है। (३) अनाथपिण्डिकके मकानसे निकलते ही मालूम हो जाता था, कि भगवान् पूर्व दर्वाजेको जा रहे हैं, या उत्तरवाले दर्वाजोंको। दक्षिण दर्वाजेको जानेवाली वीथी हमें मालूम ही है जिसकी विशेषता इस समय भी स्पष्ट है। इस प्रकार दक्षिण (बाजार) दर्वाजेसे उत्तर मुँहको जो चौड़ी सड़क सी हमें मालूम पड़ रही है, यही महावीथी है; जिसके बारेमें डा० फ़ोगलने सर्वे रिपोर्टमें[१] लिखा है।

दक्षिणदर्वाजेका बाजार-दर्वाजा नाम भी इस विषयमें खास अर्थ रखता है।

गण्डम्बरुक्ख

यद्यपि भगवान्के समयमें इस आमके[२] वृक्षका होना सम्भव नहीं है, किन्तु, परवर्ती कालमें इसका अधिक महत्त्व पाया जाना बिल्कुल निश्चित है। ५२२ ई. पू. (= विक्रम पूर्व ४६४) की आषाढ़ी पूर्णिमाके दिन नगरमें प्रवेश करने पर, कहते हैं, गण्ड उद्यानपालने एक पका आम

---

१. "A passage 12' wide which gives access to a broad path leading almost due north and widening out into a glade, which is situated south-east of the ruined temp'e known as the kachhikuti,............the Bazar Darwaza it seems to be the starting point of a broad street or bazar........."

A. S. R., 1907-8, P. 86

२. "सत्था आसाळ्हिपुण्णमदिवसे अन्तोनगरं पाविसि। रञ्ञो उय्यानपालो गण्डो नाम······अम्बपक्कं······आदाय गच्छन्तो अन्तरामग्गे सत्थारं दिस्वा चिन्तेसि—राजा इमं अम्बं खादित्वा मय्हं अट्ठ वा सोळस वा कहापणे ददेय्य।······ सो तं अम्बं सत्थु उपनामेसि।··· ····· सत्था······ अम्ब-पानकं पिवित्वा गण्डं आह—इमं अम्बट्ठिं इधेव······रोपेहीति।······हत्थे धोतमत्ते येव······पण्णासहत्थो अम्बरुक्खो······पुप्फफलसंछन्नो हुत्वा···।"

(ध प. १४२, अ. क. ४४८)

भगवान्को दिया। भगवान्ने खाकर उसे वहीं रोपवा दिया, और उनकी अद्भुत शक्तिसे वह उसी समय बड़ा वृक्ष हो गया। कुछ भी हो, परवर्ती कालमें बाजार-दर्वाजेके अन्दर बाजारके घरोंसे पहिले ही, अर्थात् दर्वाजेसे थोड़ा ही आगे एक आमका वृक्ष था, जो इस प्रकारके चमत्कारका स्मारक था। इस स्थानपर भी कोई स्तूप अवश्य रहा होगा। सम्भवतः यह वृक्ष महावीथीसे राजकाराम जानेवाले मोड़पर ही था।

पञ्चछिद्दकगेह, ब्राह्मणवाटक

पञ्चछिद्दकगेह भी एक बड़े चमत्कारका स्थान है। चमत्कारिक स्थानोंके लिये जनताका अधिक उत्साह सभी धर्मोंमें देखा जाता है। इसका 'पञ्चछिद्दकगेह' नाम कैसे पड़ा, यह अट्ठकथा[1]में दिया गया है। यद्यपि ऐसे किसी स्थानका वर्णन फाहियान और ह्वेनचाङ्में से किसीने नहीं किया है; तो भी यह थेरवादियोंकी पुरानी परम्परापर अवलम्बित है। ह्वेनचाङ्के समयमें भी श्रावस्ती और उसके आसपासके विहार सम्मितीय सम्प्रदायके भिक्षुओंके अधीन थे जो कि हीनयानी थे, और महायानकी अपेक्षा विभज्जवाद (थेरवाद) से बहुत मिलते जुलते थे। वस्तुतः ह्वेनचाङ्का वर्णन श्रावस्तीके विषयमें अत्यन्त सङ्क्षिप्त है, इस लिये पञ्चछिद्रगेहका छूट जाना स्वाभाविक है। कथा यों है—एक ब्राह्मणीने बड़े थेरोंको निमन्त्रित किया; किन्तु सात वर्षके लड़कोंको देखकर ब्राह्मणी असन्तुष्ट हुई, क्योंकि वह तो वृद्ध

---

१. एका किर ब्राह्मणी चतुन्नं भिक्खूनं उद्देसभत्तं सज्जेत्वा ब्राह्मणं आह—विहारं गन्त्वा चत्तारो महल्लकब्राह्मणे उद्दिसित्त्वा आनेहीति।··· । तत्थ संकिच्चो, पण्डितो, सोपाको, रेवतोति सत्तवस्सिका चत्तारो खीणासवसामणेरा पापुणिंसु। ब्राह्मणी सामणेरे दिस्वा कुपिता। अथ तेसं गुणतेजेन (सक्को) जराजिण्ण-महल्लकब्राह्मणो हुत्वा तस्मिं ब्राह्मणवाटके ब्राह्मणानं अग्गासने निसीदि। ब्राह्मणो···तं आदाय गेहं अगमासि।···पञ्च पि जना आहारं गहेत्वा एको कण्णिकामंडलं विनिविज्झित्वा एको छदनस्स पुरिमभागं एको पच्छिम-भागं एको पठविया निमुज्जित्वा सक्कोपि एकेन ठानेन निक्खमित्वाति एवं पञ्चधा अगमंसु। ततो पट्ठाय च पन तं गेहं पञ्चछिद्दकगेहं किर नाम जातं। (ध. प. २६ : २३, अं. क. ६६३, ६६४)

ब्राह्मणोंको चाहती थी। फिर उसने अपने पतिको ब्राह्मणवाटसे ब्राह्मण लेनेको भेजा। उन श्रामणेरोंके तपोबलसे शक्र वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर ब्राह्मणवाटमें ब्राह्मणोंके बीच अग्रासनपर जाकर बैठ गया। ब्राह्मण शक्रको लेकर घर लौटा। चार श्रामणेर और शक्र भोजन कर पाँच ओर चले गये। श्रामणेरोंमेंसे एक कोनियामें घुस गया; एक छाजनके पूर्व भागमें, एक पश्चिम भागमें और एक पृथ्वीमें घुस गया। शक्र भी किसी स्थानसे बाहर चला गया। उस दिनसे उस घरका नाम पञ्चछिद्रकगेह पड़ गया। यह ब्राह्मणवाट शायद श्रावस्तीमें ब्राह्मणोंका कोई विशेष पवित्र स्थान था, जहाँ ब्राह्मण इकट्ठे हुआ करते थे। घुसुण्डी (पुरातन माध्यमिका) के पास के ई० पू० द्वितीय शताब्दीके शिलालेखमें[1] 'नारायणवाट' शब्द आया है। 'यज्ञवाट' भी इसी प्रकारका एक शब्द है। यह 'वाट' शब्द विशेष पवित्र स्थानोंके लिये प्रयुक्त होता था। यह ब्राह्मणवाट कहाँ था, यद्यपि इसके लिये और कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है, तथापि अनुमान किया जा सकता है, कि यह ब्राह्मणोंके लिये बहुतही पवित्र स्थान रहा होगा। यद्यपि छठी शताब्दी-ई० पू० (वि० पू० ४४३-५४२) में यज्ञोंका युग था, अभी मूर्तिपूजा आरम्भ न हुई थी; तो भी मूर्तिपूजाके युगमें इस स्थानकी पवित्रताका ख्याल कर अवश्य इसे भी उपयुक्त किया गया होगा। हम देख आये हैं, कि श्रावस्तीकी दक्षिण दीवारसे सटे हुए वैतारा-दर्वाजेसे शोभनाथ-दर्वाजे तककी भूमि हिन्दू और जैन मन्दिरोंके लिये सुरक्षित थी। भिक्षुणियोंके आराम (राजकाराम) को भी हमने यहीं निश्चित किया है। ऐसी हालतमें राजकाराम और जैनमन्दिरोंके बीचकी भूमि, जिसमें कि हिन्दू मन्दिर स्थित हैं, अधिकतर ब्राह्मणवाट होनेके लायक है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपयुक्त स्थान ब्राह्मणवाटके लिये अचिरवतीके किनारेकी तरफ सूर्यकुण्ड या मीरासैयदकी कब्रकी जगहोंपर, विशेषतः पूर्व, ढूँढा जा सकता है।

---

१. श्री काशीप्रसाद जायसवाल, एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १६, पृ० २७।

सड़कें

महावीथीके अतिरिक्त एक ही और सड़क है, जिसका हमें पता है, यह है अनाथपिण्डिकके घरसे पूर्व द्वारको जानेवाली ।

चुङ्गीकी चौकियाँ

हम देख चुके हैं, कि नगरके दर्वाजोंपर चुङ्गीकी चौकियाँ थीं । चुङ्गीवालोंने अधिक चुङ्गी ले ली थी, जिसके लिये विशाखाको राजाके पास जाना पड़ा था ।

नगरकी भीतरी बातोंसे सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंमेंसे जिन जिनके विषयमें त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओंमें जो कुछ आया है, उनका हम वर्णन कर चुके । सबसे प्रधान है जेतवन । उसके बाद पूर्वाराम, समयप्पवादक आराम, अन्धवन, ये तीन स्थान हैं, जिनका वर्णन हमें त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओंमें मिलता है ।

राहुल सांकृत्यायन

मेरी तिब्बत-यात्रा

नेपाल-प्रवेश

तीन मार्च १९२९ ई० को सूर्योदयके समय मैं रक्सौल पहुँच गया। छः वर्ष पहिले जब मैं इसी रास्ते नेपाल गया था, उस समयसे अब बहुत फर्क पड़ गया। अब यहाँ से झुण्डके झुण्ड नरनारियोंका पैदल बीरगञ्जकी ओर जाना, और वहाँ कतारमें होकर डाक्टरको नब्ज दिखलाना, तथा इस प्रान्तके उच्च-अधिकारीसे राहदानी लेना आवश्यक नहीं है। रक्सौलके बी. एन. डबल्यू. आर. के स्टेशनकी बगलमें ही नेपाल-राज्य-रेलवेका स्टेशन है। लाइन बी. एन. डबल्यू. आर. से भी छोटी है। यात्री अब सीधे वहाँ पहुँच जाते हैं। राहदानी लेकर कितने ही आदमी खड़े रहते हैं। उसके मिलनेमें न कोई दिक्कत न देरी। नब्ज दिखलानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। दरअसल उसकी आवश्यकता है भी नहीं क्योंकि असल नब्ज-परीक्षा तो सीसागढ़ी, चन्दागढ़ीकी चढ़ाइयाँ हैं; जिनपर स्वस्थ आदमीको भी हाँपते-काँपते पहुँचना पड़ता है।

मेरे यहाँ पहुँचनेकी तारीख कुछ मित्रोंको मालूम थी। पूर्व-विचारके अनुसार यह यात्रा लम्बी होनेवाली थी। वस्तुतः मैंने अपनी इस यात्राका प्रोग्राम आठ-दस वर्षका बनाया था। तिब्बतसे चौदह मास बादही लौट आनेका जरा भी विचार न था। इसीलिये कुछ मित्रोंको बिदाई देनेकी आवश्यकता भी प्रतीत हुई थी। उनमेंसे एक तो गाड़ीसे उतरते ही मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे बिदाई ले मैं नेपाली स्टेशनपर पहुँचा। राहदानी तो मैंने ले ली, लेकिन अभी सीधा अमलेखगञ्ज नहीं जाना था। अभी कुछ साथियों और एक बिदा करने-

वाले मित्रकी, बीरगञ्जमें प्रतीक्षा करनी थी। मैं रेलमें बैठकर बीरगञ्ज पहुँचा। गाड़ियोंकी कमीसे मालके डब्बे भी जोड़ दिये गये थे। मुझे भी मुश्किलसे एक मालके डब्बेमें जगह मिली।

वस्तुतः रेल-यात्रासे यात्राका मज़ा कितना किरकिरा हो जाता है, यह अबकी मालूम हुआ। जिस वक्त इञ्जन नेपाल-हिन्दुस्तानकी सीमा बनानेवाली छोटी नदीपर पानी ले रहा था, उस समय मैंने कुछ दूरपर इसी नदीके किनारे सड़कपरकी उस कुटियाको देखा, जिसमें दस वर्ष पूर्व आकर मैं कुछ दिन ठहरा था। उस समय तो साधारण आदमीके लिये बीरगञ्ज भी पहुँचना, सिवाय शिवरात्रिके समयके, मुश्किल था। मैं भी उस समय वैशाख मासमें राहदानीकी अड़चनसे ही नहीं जा सका था। उस समयका वह तरुण साधु भी मुझे याद आया, जो रूसके मुल्ककी ज्वालामाईसे लौटा हुआ अपनेको कह रहा था। मैंने उसके किस्सेको सुना तो था, किन्तु उस समय इसका विश्वास ही न था कि रूसमें भी हिन्दुओंकी ज्वाला-माई हैं। यह तो पीछे मालूम हुआ कि बाकूके पासमें रूसी सीमाके अन्दर दर-असल ज्वालामाई हैं, और वह उक्त साधुके कथनानुसार बड़ी ज्वाला-माई हैं। रक्सौलसे बीरगञ्ज तीन-चार मील ही दूर है। इतनी दूरीको हमारी बची गाड़ीको भी काटनेमें बहुत देर न लगी।

गाड़ी बीरगञ्ज बाजारके बीचसे गयी है। सड़क पहिले हीसे बहुत अधिक चौड़ी न थी, अब तो रेलकी पटरी पड़ जानेसे और भी सङ्कीर्ण हो गयी है। स्टेशनपर उतर कर अब धर्मशालामें जाना था। रेलसे ही धर्मशालाका मकान देखा था। आकृतिसे ही मालूम हो गया था कि यह धर्मशाला है, इसलिये किसीसे रास्ता पूछनेकी आवश्यकता न थी। सीधे धर्मशालामें पहुँचा। दूसरा समय होता तो धर्मशालामें भी जगह मिलना आसान न होता, किन्तु मालूम होता है, जैसे अन्यत्र रेलोंने पुरानी सरायोंकी चहल-पहलको नष्ट कर दिया, वैसे ही यहाँ शिवरात्रिके यात्रियोंकी बहारको भी। मुझे एक दो दिन ठहरना था। आज फागुन सुदी अष्टमी (३ मार्च १९२९) थी। इसलिये अभी नेपाल पहुँचनेके लिये काफी दिन थे। एकान्तके लिये मैं ऊपरी तलकी

एक कोठरीमें ठहरा। यह धर्मशाला किसी मारवाड़ी सेठकी बनवायी हुई है। यह पक्की और बहुत कुछ साफ है; पीछेकी ओर कुआँ और रसोई बनानेकी जगह भी है। दर्वाजेपर ही हलवाई तथा आटा चावलकी दूकानें हैं। आसन रखकर मैंने पहिले मुहँ-हाथ धोया, और फिर पेट भर पूरियाँ खायीं। थोड़ी ही देरमें एक बारात आ पहुँची, और मैंने देखा कि मेरी कोठरी भर गयी। असलमें हवा और धूपके लोभसे मैंने बड़ी कोठरी लेकर गलती की थी। अन्तमें बारातकी भीड़में उस कोठरीमें मेरा रहना असम्भव मालूम हुआ, इस लिये दूसरी छोटी कोठरीमें चला गया, जिसमें बारातके दो-तीन नौकर ठहरे हुए थे। यह अच्छा भी था।

यह सब हो जाने पर, अब बिना काम बैठे दिन काटना मुश्किल मालूम होने लगा। पासमें ऐसी कोई किताब भी न थी, जिससे दिल-बहलाव करता; न यहाँ कोई परिचित ही था, जिससे गप-शप करता। खैर, किसी तरह रात आयी। आज भी मेरे मित्रके आनेकी प्रतीक्षा थी। वह न आये। तरह तरहके ख्याल दिलमें आ रहे थे। सवेरे उठा तो पासकी दालानमें किसीके ऊँचे स्वरमें बात करनेकी आवाज़ मालूम हुई। मथुरा बाबूकी आवाज़ पहिचाननेमें देर न लगी। मालूम हुआ, वह रातमें ही आकर यहीं आसन लगाकर पड़ गये थे। बहुत देरतक बात होती रही। पिछले दिन मुझे थोड़ा सा ज्वर भी आगया था, इसलिये भोजनमें स्वाद नहीं आता था। भातका वहाँ प्रबन्ध न था। मथुरा बाबूके परिचित मित्र यहाँ निकल आये, और मेरे लिये भातका प्रबन्ध बराबरके लिये हो गया।

दस बजेके करीब मथुरा बाबू लौट गये। अब मुझे नेपालके साथी मित्रोंकी ही प्रतीक्षा करनी थी, जिन्हें नेपाल तकका साथी बनना था। उनके लिए भी बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दोपहरके क़रीब वह भी पहुँच गये। लेकिन और आनेवाले साथी उनके साथ न थे। मालूम हुआ, उनमेंसे एक बीमार हो गया, और दूसरोंने यात्रा स्थगित कर दी। मेरे इन मित्रको भी आगे जाना नहीं था। जिसको अकेले

यात्रा करनेका अभ्यास हो उसके लिये यह कोई उदास होनेकी बात तो थी ही नहीं। हाँ, मुझे इसका जरूर ख्याल हुआ कि उन्हें छपरासे इतनी दूर आनेका कष्ट उठाना पड़ा। लेकिन यह तो अनिवार्य भी था, क्योंकि मेरी यात्राका सामान और रुपये उन्हींके पास थे।

दोपहरके बादवाली गाड़ीसे उन्हें लौट जाना था। मुझे भी अब प्रतीक्षाकी आवश्यकता न थी। मैंने वीरगञ्जमें प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा उसी गाड़ीपर रक्सौल जाकर लौटना अच्छा समझा। सभी गाड़ियाँ रक्सौलसे भरी आती थीं, इससे बीरगञ्जमें चढ़नेकी जगह मिलेगी, इसमें भी सन्देह था। इस प्रकार अपने मित्रके साथही एक बार फिर मैं भारत-सीमामें आया, और अपने जान चिरकालके लिये वहाँसे बिदा ले लौटती गाड़ीसे अमलेखगञ्जकी ओर चला। यात्रा आरामसे हुई, लेकिन जो आनन्द पैदल चलनेमें पहिले आया था, वह न रहा। अँधेरा होते होते हमारी गाड़ी जङ्गलमें घुस पड़ी। कुछ रात जाते जाते हम अमलेखगञ्ज पहुँच गये।

काठमाण्डवकी यात्रा

अमलेखगञ्ज नयी बस्ती है। दिनपर दिन बढ़ती ही जा रही है। रेलके आनेके साथ ही साथ इसकी यह उन्नति हुई है। रेल यहीं समाप्त हो जाती है। आगे, सम्भव है धीरे धीरे रेल भीमफेरी तक पहुँच जाय। आजकल सामान और माल यहाँसे लारियोंपर भीमफेरी जाता है। स्टेशनसे उतरने पर मैंने ख्याल किया कि किसी लारीवालेसे बातचीत ठीक कर वहीं सोना चाहिये, जिसमें बहुत सवेरे यहाँसे चलकर भीमफेरी पहुँच जाऊँ, और सीसागढ़ी ठण्डे ठण्डेमें चढ़ सकूँ। एक बसवालेसे बात की, उसने सवेरे जानेका वचन दिया। उसी बसमें सो गया। सवेरे देखा कि लारियाँ दनादन निकलती जा रही हैं, लेकिन हमारे बसवालेने अभी कुछ भी चलनेका विचार नहीं किया है। आखिर मैं थोड़ी देरमें ऊब गया। पूछने पर उसने कहा, सवारी तो मिल जाय। उसका कहना वाजिब था। आखिर मैंने खुली माल ढोनेवाली

लारीके मालिकसे बात की। किराया भी बहुत सस्ता, एक रुपया। लारी तय्यार थी। किराया कम होनेसे यात्रियोंके मिलनेमें देर न लगती थी।

हमारी लारी चली। हमने समझा था, अब कोई भी भीमफेरी तक पैदल चलनेका नाम न लेता होगा। लेकिन रास्तेमें देखा तो झुण्डके झुण्ड आदमी चले जा रहे हैं। दरअसल यह सभी लोग अधिक पुण्यके लिये नहीं पैदल जारहे थे, बल्कि इसका कारण उनकी भयानक दरिद्रता है। दूरके तो वही लोग पशुपतिकी यात्रा करते हैं, जिनके पास रुपया है; परन्तु पासके चम्पारन, आदि जिलोंके लोग सत्तू लेकर भी चल पड़ते हैं। वह तो मुश्किलसे एक आध रुपया जमा कर पाते हैं। उनके लिये तो खुली माल ढोनेकी लारीपर चढ़ना भी शौकीनी है। मैं प्रतीक्षा कर रह था कि अब चुरियाघाटीपर चढ़ना होगा, किन्तु थोड़ी ही देरमें हम एक लम्बी सुरङ्गके मुँहपर पहुँचे। मालूम हुआ, चुरियापरकी चढ़ाईको इस सुरङ्गने खतम कर दिया। अब हम तराईके जङ्गलसे आगे पहाड़ोंमें जा रहे थे। हमारे दोनों तरफ जङ्गलसे ढँके पहाड़ थे; जिनपर कहीं कहीं जङ्गल काट कर नये नये घर बसे हुए थे। कितनी ही जगह जङ्गल साफ करनेका काम अब भी जारी था, कितनी ही जगह छोटी छोटी पहाड़ी गायें चरती दिखाई पड़ती थीं। रास्तेमें लोग कहीं पशुपति और भैरवके गीत गाते चल रहे थे; कहीं कहीं "एक बार बोलो पस्-पस्-नाथ बाबाकी जय", "गुञ्जेसरी (=गुह्येश्वरी) माईकी जय" हो रही थी। देखादेखी हमारी लारीके आदमियोंमें भी यह बीमारी फैल गयी। और इस प्रकार हमें यह मालूम भी न हुआ कि हम कब भीमफेरी पहुँच गये। सारी यात्रामें तीन घण्टेसे कम ही वक्त लगा।

भीमफेरी बाजारके पास ही रोप-लाइनका अड्डा है। लारियोंपर अमलेखगञ्जसे माल यहाँ आता है, और यहाँसे तारपर बिजलीके जोरसे काठमाण्डव पहुँचता है। भीमफेरीमें घुसनेके पूर्व ही सिपाही पहुँच गये। उन्होंने राहदानी देखी। देखनेवालोंकी सङ्ख्या अधिक होनेसे छुट्टी पानेमें देर न लगी। यद्यपि मेरे पास सामान न था, तो

भी एक भरिया (=बोझा ढोनेवाला) लेना था; जो कि रास्तेमें भोजन भी बना कर खिलाता जाय। थोड़ी ही देरमें डेढ़ रुपयेपर एक भरिया मिल गया। यद्यपि मुझे उसकी जातिसे काम न था, तो भी कुतूहलवश पूछनेपर मालूम हुआ, उसकी जाति लामा है। जैसे अपने यहाँ वैरागी संन्यासी, जो किसी समय गृहस्थ होगये थे, अब भी अपनेको उन्हीं नामोंसे पुकारते, तथा एक जाति होगये हैं, वैसे ही पहाड़में जो बौद्ध भिक्षु कभी गृहस्थ होगये, उनकी सन्तान लामा कही जाती है। लामा, गुरङ्ग, तमङ्ग आदि जातियाँ नेपाल-घाटीके पासवाले पहाड़ी प्रदेशोंमें बसती हैं। इनकी भाषा तिब्बती भाषाकी ही एक शाखा है, किन्तु गोर्खाके राष्ट्रभाषा होनेसे सभी इसको बोलते हैं।

भीमफेरीमें भोजन कर आदमीको ले आगे बढ़े। सीसागढ़ीकी चढ़ाई थोड़ा आगेसे शुरू होती है। चढ़ाई शुरू होनेकी जगहपर ही कुलियोंका नाम-ग्राम लिखनेवाला रहता है। यह प्रबन्ध इस लिये है, जिसमें कि कुली अनजान आदमीको धोखा देकर, पहाड़में कहीं खिसक न जायँ। सीसागढ़ीका रास्ता अबकी उतना कठिन न था। पहिलेका रास्ता छोड़कर राजकी ओरसे अब बहुत अच्छा रास्ता बन गया है। इसमें चढ़ाई क्रमशः है; पहिलेकी भाँति सीधी नहीं। इस प्रकार सीसागढ़ीके आधे गौरवको तो इस नये रास्तेने ही खतम कर दिया, और यदि कहीं इसपर भी मोटर दौड़ने लगी तो खातमा है। रास्तेमें कहीं कहीं हमने अपने सिरपरसे रोप-लाइनके रस्सेपर माल दौड़ते देखा। दोपहरके करीब हम सीसागढ़ीके ऊपर पहुँचे। पहरेवालोंने तलाशी लेनी शुरू की, लेकिन मेरे पास सामान बहुत थोड़ा होनेसे उन्होंने सामान खोलकर देखना भी पसन्द न किया। वस्तुतः मैंने भिक्षुओंके पीले कपड़ोंकी मोटरी बाँध कर बहुत गलती की थी। इस सारी यात्रामें उनका कोई काम न था, और दूसरोंको उनके देखने मात्रसे पूरा सन्देह हो जानेका अवसर था।

भरियाने कहा और मेरा भी विचार हुआ कि आजही चन्द्रागढ़ीको भी पार कर जायँ। पिछली बार भीमफेरीसे चलकर जिस भैसा-

दहमें रात्रिवास किया था, उसे अबकी हम दो-तीन बजेके समयही पार कर गये। सीसागढ़ीके इस ओरके प्रदेशमें जहाँ तहाँ गाँव बहुत हैं, तो भी उतनी हरियाली और जङ्गल नहीं है। चार बजेके करीब चन्द्रागढ़ीके पार करनेकी प्रतिज्ञा छूटती जान पड़ी, तोभी हिम्मत बाँधे अबभी आगे आगे चलता जा रहा था। बहुत रोकनेपर भी कुली आगे चला जाता था। उसी समय सारन ज़िलेके दो-तीन परिचित जन मिल गये। उनमें एककी तो अवस्था मुझसे भी खराब थी। खैर, किसी तरह मर पिट-कर हम चितलाङ् पहुँचे। ऐसी यात्रामें दिनसे ही चट्टीपर पहुँच जाना अच्छा होता है, हम अँधेरा होते होते पहुँचे। उस समय सभी जगहें भर चुकी थीं। सर्दी काफी पड़ रही थी। बड़ी मुश्किलसे एक छोटीसी कोठरी मिली। हम पाँचो आदमी उसमें दाखिल हुए। उस थकावटमें तो सबसे मीठा लेटना ही लगता था, किन्तु बिना खाये कलकी चढ़ाई पार करना कठिन था। खैर, हमारे साथी पाण्डेजीने भात बनाया। सबने भोजन किया; और लेट रहे।

सवेरे तड़के ही चल पड़े। अब मुझे अपने सारनके साथियोंसे पिण्ड छुड़ाना था। यद्यपि उनका मेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था, तो भी उन्हें इतना ही मालूम था, कि मैं भी उनकी भाँति पशुपतिका दर्शन करने जा रहा हूँ। चन्द्रागढ़ीकी चढ़ाईमें आप ही वह पीछे पड़ गये; और मुझे आगे बढ़ जानेमें कोई कठिनाई न हुई। मैं प्रतीक्षा कर रहा था, अभी चन्द्रागढ़ीकी सख्त उतराई आनेवाली है। लेकिन आकर देखा, तो यहाँ भी कायापलट, रास्ता बहुत अच्छा बन गया है। नीचे आकर मालपूएके सदाव्रतपर मुझे भी लेनेके लिये जानेको कहा; और मेरे कुलीने भी जोर दिया। खैर, मैं भी गया। देखा पासमें कितने ही महात्मा लोग भी बैठे हुये हैं। गाँजेकी चिलम दम-पर दम लग रही है। मुझे भी कहा 'आओ सन्तजी!' मैं बहाना बना, मालपूआ ले, आगे चल पड़ा। थानकोटमें केला और दूध मिला। आगे देखा इधर भी लारियाँ रोपलाइनके स्टेशनसे माल ढो रही हैं। मेरे साथी कुलीने पहिले ही अपनी गाथा सुना दी थी कि किस प्रकार

पहिले जब रोप-लाइन न थी, तब हम लोग सालभर भीमफेरीसे काठ-माण्डव माल ढोनेमें लगे रहते थे। हजारों परिवारोंका इस प्रकार सुख-पूर्वक पालन होता था। लेकिन अब तो रोप-लाइनपर छः आने मन भाड़ा लगता है, किसको पड़ी है जो अठगुना भाड़ा देकर अपने मालको महँगा बनावे। वस्तुतः इन हजारों परिवारोंकी जीविका-वृत्तिका कोई दूसरा प्रबन्ध किये बिना रोप-लाइनका निकालना बड़ा क्रूर काम हुआ है।

काठमाण्डव शहरमें होते हुए दस बजेके करीब हम थापाथलीके वैरागीमठमें पहुँचे। यद्यपि पिछली बार हफ्तोंतक रहनेसे महन्तजी परिचित हो गये थे, और उनके जन्म-स्थान छपरासे मेरा सम्बन्ध भी उन्हें मालूम था, पर भीड़के समय देखे आदमीका परिचय किसको रहता है। तो भी उन्होंने रहनेके लिये एक साफ स्थान दे दिया।

डुक्पा लामासे भेंट

छः मार्च (२२ फाल्गुन) को मैं नेपाल पहुँच गया था। उस दिन तो मैं कहीं न जा सका। शिवरात्रिके अवसरपर कई दिन तक थापाथलीके सभी मठोंमें साधुओंके लिये भोजन, गाँजा, तम्बाकू, धूनीकी लकड़ी महाराजकी ओरसे मिलती है। साधारण तौरपर भी इन मठोंमें प्रति दिनकी हण्डियाँ बँधी हैं। एक हण्डीसे मतलब एक आदमीका भोजन है। इन्हीं हण्डियों और वार्षिक भोजसे बचाकर यहाँके महन्त लोग धनी भी हो गये हैं; यद्यपि यों देखनेसे यह महन्त लोग बड़े गरीबसे मालूम होते हैं। नेपालकी घाटीके महन्त ही क्या, राजपरिवारको छोड़, सभी लोग अपने धनके अनुसार ठाठ-बाटसे नहीं रहते। राजा तथा उच्चाधिकारी सर्वज्ञ तो हैं नहीं, पर चुगलखोरोंकी भी कमी नहीं है, इसीलिये लोगोंको आत्म-गोपन करके रहना पड़ता है। मैंने नेपालमें जिन साहूकारोंके घर मामूलीसे देखे, ल्हासामें उन्हींकी बड़ी बड़ी सजी कोठियाँ लाखोंके मालसे परिपूर्ण पायीं। अस्तु। महन्त बेचारोंकी हालत तो और भी बुरी है। वह तो सदा

अपनेको बारूदके ढेरपर समझते हैं। जिन लोगोंसे डरते हैं, उन्हें भी पूजा देनी पड़ती है, स्वयं भी रुपये बचाकर नेपाल राज्यसे बाहर कहीं इन्तिजाम करना पड़ता है; जिसमें पदच्युत होने पर आश्रय मिल सके। शिवरात्रिके भोजोंके समय राजकर्मचारी भी देखभालके लिये रहता है, लेकिन इससे प्रबन्धमें कोई मदद नहीं मिलती, उसीका कुछ फायदा हो सकता है। वस्तुतः यह दोष तो उन सभी शासनोंमें होता है, जहाँ लोक-मतका कोई मूल्य नहीं है, और इसलिये शासकको अधिकतर अपने पार्श्ववर्ती लोगोंकी बातपर चलना पड़ता है।

दूसरे दिन मैंने विचार किया कि योंहीं बैठे रहना ठीक नहीं है। नेपालसे कई दिनोंके रास्तेपर भोटकी सीमाके पास मुक्तिनाथ और गोसाईं कुण्डके तीर्थ-स्थान हैं। मालूम हुआ, कहनेसे वहाँ जानेके लिये आज्ञा मिल सकती है, लेकिन राज्यके खर्च और प्रबन्धसे साधु लोग नियत समयपर जाते आते हैं। मैंने इस परतन्त्रतामें सफलता कम देखी। इस लिये किसी भोटिया साथीको ढूँढना ही उत्तम समझा। पशुपतिनाथके मन्दिरसे थोड़ी ही दूरीपर बौधा स्थान है। इसे नेपालमें भोटका एक टुकड़ा समझना चाहिये; जैसे कि बनारसमें बङ्गाली, मराठे, तिलङ्गे आदिके महल्ले हैं। मैंने सोचा था कि वहीं कोई भोटिया साथी मिल सकेगा। ७ मार्च (२३ फाल्गुन) को पशुपति, और आगे गुह्येश्वरीका दर्शन करके, नदी पार हो, मैं बौधा गया।

बौधाको भोटिया लोग छोर्तन्-रिम्पोछे (चैत्य-रत्न) या ब-युल-छोर्तन् (नेपाल चैत्य) कहते हैं। कहते हैं पहिले पहिल इस स्तूपको महाराज अशोकने बनवाया था। यह बीचमें सुनहले शिखरवाला विशाल स्तूप है, और परिक्रमके चारों ओर घर बसे हुए हैं। इन घरों-में अधिकांश भोटिया लोग रहते हैं। विशेष कर जाड़ेमें तो यह एक तरह भोट ही मालूम होता है। अपनी पहिली यात्रामें भी मैं यहाँके प्रधान चीना लामासे मिला था। मैंने सोचा था, उनसे मेरी यात्रामें कुछ सहायता मिलेगी, लेकिन वहाँ पहुँच कर बड़े अफसोससे सुना, कि अब वह इस संसारमें नहीं रहे। जिस समय स्तूपकी भीतरसे

प्रदक्षिणा कर रहा था, उस समय मैंने कितने ही भोटिया भिक्षुओंको हाथके बने पतले कागजोंको दोहरा चिपकाते देखा। मैंने अपनी टूटी-फूटी भोटियामें उनका देश पूछा। मालूम हुआ, उनमें तिब्बत, भूटान और कुल्लू (काँगड़ा) तकके आदमी हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब मैंने कुल्लूके दो भिक्षुओंको हिन्दी बोलते देखा। उन्होंने बतलाया, हम लोग बड़े लामाके शिष्य हैं, जो प्रायः दो माससे यहाँ विराज रहे हैं, और अभी एक मास और रहेंगे। यह बड़े सिद्ध अवतारी पुरुष हैं। इनका जन्म डुक्पा (= भूटान) देशका है, इसलिये लोग इन्हें डुक्पा लामा भी कहते हैं। केरोङ् (नेपालकी सीमाके पास भोटमें) तथा दूसरे स्थानोंमें इन्होंने बड़े बड़े मन्दिर बनवाये हैं। रात-दिन योगमें रहते हैं। हम लोग तीस चालीस भिक्षु-भिक्षुणी उनके शिष्य, इस वक्त गुरुजीके साथ हैं। वह वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता (= दोर्जे-चोद्पा) पुस्तकको धर्मार्थ वितरण करनेके लिये छपवा रहे हैं। उसीके छापने और कागज तय्यार करनेका काम हम लोग कर रहे हैं।

पिछली बार जब मैं लदाख गया था, तबके और कुछ पीछेके भी, लदाखी बड़े लामोंके थोड़ेसे पत्र मेरे पास थे। उनमें मेरी तारीफ काफी थी, और मेरी यात्राका उद्देश्य तथा सहायता करनेकी बात लिखी थी। मैंने उक्त चिट्ठियोंको दिखलाया। निःसंशय उन्होंने परिचय करानेमें बड़ी सहायता की। कुल्लवासी भिक्षु मुझे डुक्पा लामाके पास ले गया। उन्होंने भी पत्रोंको पढ़ा। उनमेंसे एक उनके अत्यन्त परिचित तथा एक-सम्प्रदायके बड़े लामाका पत्र था। मैंने उनसे कहा—बुद्ध-धर्म अपनी जन्म-भूमिसे नष्ट हो चुका है। वहाँ उसकी पुस्तकें भी नहीं हैं। उन्हीं पुस्तकोंके लिये मैं सिंहल गया। कितने ही बड़े बड़े आचार्योंकी पुस्तकें वहाँ भी नहीं हैं, लेकिन वह तिब्बतमें मौजूद हैं। मैं तिब्बतकी किसी अच्छी गुम्बा (= विहार) में रहकर तिब्बती पुस्तकोंको पढ़ना, उनका सङ्ग्रह करना और उन्हें भारतमें लाकर कुछका संस्कृत या दूसरी भाषामें तर्जुमा करना चाहता हूँ। ऐसा करनेसे, भारतवासी फिर बौद्ध-धर्मसे परिचित होंगे। भारतमें फिर बौद्ध-धर्मका

प्रचार होगा। आप मुझे अपने साथ तिब्बतमें ले चलें, तो बड़े धर्मका काम होगा।

डुक्पा लामाने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया, लेकिन उस जल्दीके स्वीकारसे मुझे यह भी मालूम हो गया कि वह मेरा जाना भी वैसाही आसान समझते हैं, जैसा दूसरे भोटियोंका। मैं शिवरात्रिको सामान लेकर आजानेकी बात कह, वहाँसे फिर थापाथली आया। आजकी बातसे मैंने समझ लिया कि मैदान मार लिया।

आठ मार्च (२४ फाल्गुन) को मैं अपने एक पूर्वपरिचित पाटनके बौद्ध वैद्यको देखने गया। मालूम हुआ, वह भी इस संसारमें नहीं हैं। फिर मैंने पाटनके कुछ और संस्कृतज्ञ बौद्धोंसे मिलना चाहा। दो-चारसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी मेरे विचारसे सन्तुष्ट थे। कोई ब्राह्मण बौद्ध धर्मकी ओर खिँचेगा, यह उनके लिये आश्चर्यकी बात थी। तिब्बत जानेके बारेमें उन्होंने भी डुक्पा लामा छोड़ दूसरा उपाय नहीं बतलाया। उस दिन भोजन भी मैंने पाटनके एक बौद्ध गृहस्थके यहाँ किया। पाटनको ललितपट्टन और अशोकपट्टन भी कहते हैं। नेपालकी पुरानी राजधानी यही है। निवासी अधिकांश बौद्ध और नेवार हैं। शहरके बीचमें पुराने राजमहल अब भी दर्शनीय हैं। जहाँ तहाँ मन्दिरों और चैत्योंकी भरमार है। गलियोंमें बिछी ईंटें बतला रही हैं कि किसी समय यह शहर अच्छा रहा होगा। लेकिन आज-कल तो गलियाँ बहुत गन्दी रहती हैं। जहाँ-तहाँ पाखाना और सूअर दिखाई पड़ते हैं। शहरमें पानीकी कल लगी है। पाटनके पुराने भिक्षु-विहार अब भी पुराने नामोंसे मशहूर हैं, जिनमें इस समय भी लोग रहते हैं। उनमें कितने अब भी अपनेको भिक्षु कहते हैं—हाँ, गृहस्थ-भिक्षु। वस्तुतः यह वैसे ही भिक्षु हैं, जैसे घरबारी गोसाईं संन्यासी। विद्याका भी अभाव है। पिछली यात्रामें, जब कि मेरा विचार तिब्बत जानेका नहीं था, पाटनके एक साहूकारने मुझे तिब्बत ले जानेका प्रस्ताव किया था, किन्तु अब जब कि मैं स्वयं जानेके लिये उत्सुक था, किसीने कुछ नहीं कहा।

पाटनसे लौटकर मैं फिर थापाथली अपने स्थानपर आया। मेरा इरादा उसी दिन उस स्थानको छोड़ देनेका था, लेकिन मैंने फजूल सिंहल-चीवरोंकी एक बला मोल ली थी। वह न होते तो मुक्त हो विचरता। किसीके उनके देख लेनेमें भी अच्छा न था। इन चीवरोंके लिये मैं बहुत दिनोंतक पछताया। और मैं अपनी परिस्थितिके दूसरे पुरुषोंको यही कहूँगा कि हरगिज इस प्रकारकी चीजोंको साथ न रखें। मैं उन्हें एक नेवार सज्जनके पास रख छोड़ना चाहता था। उन्हें मैं एक जगह खड़ाकर चीजोंको लेने गया, लेकिन उस समय मेरे आसनके पास और लोग बैठे थे. और मेरे असबाब उठानेसे उन्हें सन्देह हो जानेका डर था, इस कारण मैं कुछ न कर सका; और उस रात फिर वहीं रहना पड़ा।

नौ मार्च (२५ फाल्गुन), शनिवारको महाशिवरात्रि थी। बड़े तड़के ही मैंने अपना कम्बल, गठरी बहुत यत्नसे इस प्रकार बाँधी, जिसमें किसीको मालूम न हो कि मैं क्यों बिदाईसे पहलेही आसन ले जाता हूँ। मैं पहिले वाग्मतीके किनारे पुलके नीचेसे ऊपरकी ओर चला, फिर पशुपतिकी ओरसे आनेवाली धारको मुड़ गया। सूर्योदयके क़रीब मैं पशुपति पहुँचा। एक तो ऐसेही माघ-फाल्गुनका महीना, दूसरे नेपालमें सर्दी भी अधिक पड़ती है। लेकिन उस जाड़ेमें भी श्रद्धालु हजारोंकी सङ्ख्यामें नहा रहे थे। अधिकांश स्त्री-पुरुष उत्तरी बिहारके थे, उसके बाद पूर्वी संयुक्तप्रान्तके, वैसे तो कुछ कुछ सभी प्रान्तोंसे आदमी शिवरात्रिमें बाबा पशुपतिनाथके दर्शनके लिये आते हैं। मुझे आज न नहानेकी फुर्सत थी, न बाबा पशुपतिनाथके दर्शन करनेकी। पुल और पहाड़ी टेकरी पार कर गुह्येश्वरी; और वहाँसे नदी पार हो बौधा पहुँचा।

अभी सवेरा ही था, जब मैं बौधा पहुँच गया। कुल्लूका भिक्षु रिञ्चेन् मुझे डुक्पालामाके पास ले गया। उन्होंने मेरे पास जो सिंहली भिक्षुओंके कपड़े थे उन्हें देखा। कैसे पहिना जाता है, यह उनको दिखाया। फिर रिञ्चेन् मुझको एक बगलके मकानमें ले गया, जहाँ वह और उसका दूसरा साथी छवङ् रहता था। यह दोनों ही हिन्दी समझते

थे, इसलिए मुझे कोई कठिनाई न होती थी। नाश्तेके लिये भात आया। मैंने कहा, जो यहाँ और लोग खाते हैं, वही मैं खाना चाहता हूँ। मुझे इसका अभ्यास भी तो करना है। मैं इस वक्त भी काली अल्फी पहने हुआ था, और यह मेरे लिये खतरनाक था। मैंने रिञ्चेन्से कहा कहींसे एक भोटिया छुपा (=लम्बा कोट) और एक भोटिया जूता लेना चाहिये। जाड़ेके महीनोंमें इन चीजोंका मिलना मुश्किल नहीं है। भोटिया लोग भी खर्चके लिये चीजें बेच दिया करते हैं। बौधामें दूकान करनेवाले नेपाली लोग भी ऐसी चीजें खरीद कर रख छोड़ा करते हैं। मैंने सात-आठ रुपयेमें एक छुपा लिया। जूता तुरन्त नहीं मिल सका। जूतेके न होनेपर भी, छुपा पहिननेसे ही अब कोई मधेसिया (=मध्य देशका आदमी) तो नहीं कह सकता था। रिञ्चेन् और छवङ् दिन भर पुस्तक छापनेमें लगे रहते थे, तो भी बीचमें आकर पूछताछ कर जाया करते थे।

छुपा पहिन कर दूसरे दिन फिर लामाके पास गया। डुक्पालामाका असल नाम गेशे-शेरब्-दोर्जे (=अध्यापक प्रज्ञावज्र) है। पढ़ने लिखनेवाले भिक्षुको भोटिया लोग गे-शे (=अध्यापक) कहते हैं। इनकी अवस्था साठके करीब थी। खाम् और तिब्बतमें बहुत दिनोंतक इन्होंने भोटिया पुस्तकोंको पढ़ा था, वहीं तिब्बतके एक बड़े तान्त्रिक लामा शाक्य-श्रीसे तान्त्रिक क्रिया सीखी थी। पीछे डुक्पा लामा अपने देश भूटानमें गये। राजाने रहनेके लिये बड़ा आग्रह किया, लेकिन इनका चित्त वहाँ न लगा। वहाँसे भाग कर काठमाण्डवसे उत्तरकी ओर, सीमा पार भोट देशके के-रोङ् स्थानमें यह बहुत दिनों पूजा और तन्त्र-मन्त्र करते रहे। तिब्बतमें, और नेपालमें भी बिना तन्त्रमन्त्रके कोई सम्मानित नहीं हो सकता। गेशे शेरब् दोर्जे पढ़े लिखे भी थे, चतुर भी, तन्त्रमन्त्र, रमल फेंकने, भूत झाड़नेमें भी होशियार थे। आदमियोंको कैसे रखना चाहिये, यह भी जानते थे, इस प्रकार धीरे धीरे इनके चारों ओर भिक्षु चेले-चेलियों और गृहस्थ चेले-चेलियोंकी एक जमात बन गयी। इन्होंने धीरे धीरे केरोङ्के अवलोकितेश्वरके

पुराने मन्दिरकी अच्छी तरह मरम्मत करवा दी। वहाँ भिक्षु-भिक्षुणियोंके लिये एक मठ बनवा दिया। केरोङ् और आस पासके इलाकेमें इनकी बड़ी ख्याति है। केरोङ्के मन्दिरमें नेपालके बौद्धोंने भी मदद की थी। इस प्रकार यह गेशे-शेरब्-दोर्जेसे डुक्पा लामा होगये।

डुक्पा लामाकी बड़ी बड़ी शक्तियाँ मेरे साथी कुल्लूवाले बयान किया करते थे। मैं भी दूसरे दिन जब जाकर लामाके सामने बैठा, तो देखा वह बात करते करते बीचमें आँख मूँदकर निद्रित हो जाते थे। यह मैंने कई बार और दिनमें बहुत बार देखा। उस समय इसे निद्रा न समझा। मैंने ख्याल किया, यह जीवन्मुक्त महात्मा बारम्बार इस हमारी बाहरी दुनियासे भीतरकी दुनियामें चले जाया करते हैं। दो-तीन दिन तक तो मैं हदसे अधिक प्रभावित रहा। मैंने समझा, मेरे भाग्य खुल गये। कहाँ मैं कागज बटोरने जा रहा था, और कहाँ रत्नाकर मिल गया। लेकिन मेरे ऐसे शुष्क तर्कीकी यह अवस्था देर तक नहीं रह सकती थी, पीछे मैंने भी समझ लिया, वस्तुतः वह समाधि नहीं, नींद ही थी। यह लोग रातमें भी लेटकर बहुत कम ही सोते हैं, और इस प्रकार बैठे बैठे सोनेकी आदत पड़ जाती है। उसी वक्त यह भी समझमें आगया कि यदि मेरे जैसेपर तीन-चार दिन तक इनका जादू चल सकता है तो दूसरे श्रद्धालुओंपर क्यों नहीं चलेगा। नेपालके लोग लामाके पास पहुँचा करते थे। बराबर उनके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। लोग आकर दण्डवत करते, मिश्री-मेवा तथा यथाशक्ति रुपये चढ़ाते थे। कभी कोई अपना दुःख-सुख पूछता, तो वह रमल फेंककर उसे भी बतला देते थे। बाधा हटानेके लिये कुछ यन्त्र मन्त्र देते, कभी कोई छोटी-मोटी पूजा भी बतला देते थे।

दो-तीन दिन अलग मकानमें रहकर मैंने सोचा, मुझे भी भोटियोंके साथ ही रहना चाहिये, इससे भोटिया सीखनेमें आसानी होगी। फिर मैं उनके पास ही आगया। पहिलेसे अब कुछ भोटिया बोलनेका अधिक मौका तो मिला, लेकिन उतना नहीं; क्योंकि सभी भिक्षु-भिक्षुणियाँ सूर्योदयसे पहिलेही उठकर किताब छापनेकी जगहपर चली

जाती थीं। किताब छापनेको कोई प्रेस न था। एक लकड़ीकी तख्तीके दोनों ओर किताबके दो पृष्ठ खुदे हुए थे। तख्तीको ज़मीनपर रख कपड़ेसे स्याही पोती, और कागज रखकर छोटेसे बेलनको ऊपरसे चला दिया। डुक्पा लामा कई हज़ार प्रतियाँ वज्रच्छेदिकाकी छपवाकर मुफ्त वितरण करवा चुके हैं, और कहते थे, दस हज़ार प्रतियाँ और छपवा रहे हैं।

यद्यपि मैं अब भोटिया छुपा पहिने था, किन्तु अब भी आत्म-विश्वास न था। इस आत्म-विश्वासका अभाव आधे जून (ज्येष्ठ) तक रहा, यद्यपि अब मैं सोचता हूँ उसकी कोई आवश्यकता न थी। मैं समझता था, मैंने कपड़ा पहिन लिया है, दो चार वाक्य भी बोल सकता हूँ, लेकिन चेहरा मेरा कहाँसे छिपा रह सकता है। अपने साथी रिब्चेन्का चेहरा भी मैं देखता था, तो वह भी भोटियोंसे ज़रा भी मेल न खाता था, तो भी मुझे विश्वास न होता था। इसका कारण दर-असल सुनी सुनाई अतिशयोक्तियाँ, और मेरी जैसी परिस्थितिवाले भारतीयको इन रास्तोंको कैसे पार करना चाहिये—इस ज्ञानका अभाव था। वस्तुतः जब तुमने भोटिया कपड़ा धारण कर लिया, और थोड़ी भाषा भी सीख ली, तो तुम्हें निडर हो जाना चाहिये, दुनिया अपना काम छोड़कर तुम्हारी देखरेखमें नहीं लगी है।

कोई देख न ले इसके लिये नौ से तीस मार्च (२५ फाल्गुनसे १६ चैत्र) तक मैं गोया जेलमें था। दिनमें घरसे बाहर निकलनेकी हिम्मत ही नहीं थी, रातको भी पेशाब-पाखाना छोड़ एकाधही बार मैं बौधा चैत्यकी परिक्रमाके लिये गया होऊँगा। इस समय बस हैण्डर्सनका तिबेतन्-मेनुअल दोहराया करता था। बीच बीचमें शब्दोंका प्रयोग भी करता था, लेकिन तिब्बतके प्रदेश प्रदेशमें भिन्न भिन्न उच्चारण है। ल्हासा राजधानी होनेसे उसका उच्चारण सर्वत्र समझा जाता है, लेकिन हैण्डर्सन महाशयकी पुस्तकमें चाङ् (= शील्हुकोके पासके प्रदेश) का ही उच्चारण अधिक पाया जाता है। इसके लिये सर् चार्लस् बेल्की पुस्तक अधिक अच्छी है, जिसमें उच्चारण भी ल्हासाका है।

डुकूपा लामाने सत्सङ्गमें जब योग-समाधिकी बात न करके मन्त्र-तन्त्रकी ही बात शुरू की तभी मालूम हो गया, बस, इतना ही है। लेकिन मुझे तो उनके साथ साथ भोटकी सीमाके भीतर पहुँच जानेका मतलब था। और इस कारण वह मेरे लिये बड़े योग्य व्यक्ति थे। सप्ताहके बाद ही मैं फिर घबराने लगा, जबकि बनारसके ब्राह्मण पण्डितको खोज खोजकर कितने ही नेपाली मेरे पास पहुँचने लगे। मैं चाहता था शीघ्रातिशीघ्र यहाँसे चल दूँ किन्तु यह मेरे बसकी बात न थी। डुकूपा लामाकी छपाई पूरी न हुई थी। अभी गर्मी भी न आयी थी कि पिछले वर्षकी तरह एकाध साथी मरणासन्न होते, और गर्मीके डरसे लामाको जल्दी करनी पड़ती।

जब लामाने करुणामयकी पूजाकी विधि साङ्गोपाङ्ग बतलाना स्वीकार किया, तो रिञ्चेन्‌ने कहा, आप बड़े भाग्यवान् हैं जो गुरुजीने इतनी जल्दी इस रहस्यको देना स्वीकार कर लिया। लेकिन उसको क्या मालूम था कि जो आदमी करुणामय (=अवलोकितेश्वर) को ही एक बिल्कुल कल्पित नाम छोड़ और कुछ नहीं समझता, वह कहाँतक इस रत्नका मोल समझेगा। कई दिन टालते टालते सत्ताइस मार्च (१३ चैत्र) को मालूम हुआ, पुस्तककी छपाई समाप्त होगयी। इस समय काठमाण्डव और पाटनके कुछ आदमी मेरे पास उपदेश सुनने आया करते थे। भय तो था ही, कुछ कहनेमें भी मुझे सङ्कोच होता था, क्योंकि मैं तो पुरुषोत्तम बुद्धका पूजक था, और वह अलौकिक बुद्धके। जबसे बौधा आया, तबसे मैंने स्नान नहीं किया था, मैं चाहता ही था, पक्का भोटिया बनना। आते ही वक्त कुछ दिनों तक पिस्सुओंने निद्रामें बाधा डाली, पीछे उतनी तकलीफ न होती थी।

पुस्तक छप जानेपर मुझे बतलाया गया, कि अब गुरुजी स्वयम्भूके पास एकाध दिन बैठकर यल्मोंमें और फिर वहाँसे यावज्जीवन बैठनेके लिये लबू-चीकी गुहामें जायँगे। मुझे प्रसन्नता हुई कि यदि नेपाली सीमासे नहीं पार हो सकता तो भोटिया जातिके देश यल्मोंमें पहुँच जाना भी अच्छा ही है। चैतमें अब गर्मी भी मालूम होने लगी, एकाध

भोटिया साथियोंका सिर भी दर्द करने लगा। अन्तमें इकतीस मार्च, (१७ चैत्र) रविवार को सायं काल सब बौधा छोड़ किन्दूको गये। आज इतने दिनोंपर मैं बाहर निकला था। बौधासे काठमाण्डवके पास पहुँचते पहुँचते ही भोटिया जूतेने पैर काट खाया। इसपर भी मैं उसे नहीं छोड़ना चाहता था, समझता था जूता उतारनेपर मेरा भोटियापन कहीं न हट जाय, यद्यपि मेरे अधिकांश साथी नङ्गे पैर जा रहे थे। जिस समय मैं गलियोंमेंसे गुजर रहा था, उस समय मैं समझता था सारे लोग मुझे ही मधेसिया समझकर घूर रहे हैं, यद्यपि काठमाण्डवके लोग चिर-अभ्यस्त होनेसे भोटियोंकी ओर जल्दी नजर भी नहीं डालते। नेपालके एक गृहस्थने और भी कितनी ही बार घर आनेके लिये आग्रह किया था, इसलिये आज वहाँ जाना हुआ। उन्होंने बड़े आग्रहपूर्वक एक अप्रैलसे दो अप्रैल (१८,१९ चैत्र) तक अपने यहाँ मुझे रखा। यह बिचारे बड़े भोलेभाले थे, उन्हें इसमें भी डर नहीं मालूम होता था कि चाहे कितना ही मेरा काम और भाव शुद्ध हो, लेकिन मालूम हो जानेपर नेपाल सर्कार मेरे लिये उनको भी तकलीफ पहुँचा सकती है। चौथे दिनकी रातको मैं काठमाण्डव छोड़ स्वयम्भूके पास पहुँचा।

नेपाल राज्य

नेपाल उपत्यका, जिसमें काठमाण्डव, पाटन, भातगाँवके तीन शहर और बहुतसे छोटे छोटे गाँव हैं, बड़ी आबाद उपत्यका है। इस उपत्यकाका भारतसे बहुत पुराना सम्बन्ध है। कहते हैं पाटन, जिसका नाम अशोकपट्टन, और ललितपट्टन भी है, महाराज अशोकका बसाया है, और अशोक-कालमें यह मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत था। यही नहीं, बल्कि नेपालके अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वयम्भूपुराणमें सम्राट् अशोकका नेपाल-यात्रा करना भी लिखा है। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भ तक वर्तमान बीरगञ्जसे नेपालका रास्ता ऐसा चालू न था। उस समय भिखना-टोरीसे पोखरा होकर नेपालका रास्ता था।

भारत और नेपालका सम्बन्ध कितना ही पुराना क्यों न हो, किन्तु नेपाल उपत्यकाकी नेवारी (=नयपाली, नेपाली=नेपारी=नेवारी) भाषा, संस्कृत और संस्कृतके अनगिनत अपभ्रंश शब्दोंके ले लेनेपर भी आर्यभाषा नहीं है। यह भाषाओंके उसी वंशकी भाषा है, जिसमें बर्म्मा और तिब्बतकी भाषाएँ शामिल हैं। समय समयपर हजारों आदमी मध्यदेश छोड़कर यहाँ आ बसे, तो भी मालूम होता है, यह कभी उतनी अधिक संख्यामें नहीं आये, जिसमें कि अपनी भाषाको पृथक् जीवित रख सकते। आज यद्यपि बहुत कम नेवार लोगोंके चेहरेपर मङ्गोल मुख-मुद्राकी छाप है, तो भी इनकी भाषा अपना सम्बन्ध दक्षिणकी अपेक्षा उत्तरसे ही बतलाती है। सातवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें, जब कि भारतमें सम्राट् हर्षवर्द्धनका शासन था, नेपाल तिब्बतके शासक स्रोङ्-चन-गेम्बोको अपना सम्राट् मानता था। मुसल्मानी कालमें भारतसे भागे राजवंशोंने भी कभी कभी नेपालपर शासन किया है।

ऐसे तो नेपाल उपत्यका एक छोटा सा देश है ही, किन्तु सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें राजा यक्षमल्लने अपने राज्यको अपने पुत्रोंमें बाँटकर नेपालको बहुत ही कमजोर बना दिया। इसी समयसे पाटन, काठमाण्डव और भातगाँवमें तीन राजा राज करने लगे। उधर इसके पश्चिम और गोर्खा प्रदेशमें सीसोदियोंका वंश स्वदेश-परित्याग कर धीरे धीरे अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। गोर्खाका दशम राजा पृथ्वीनारायण बहुत मनस्वी था। उसने नेपालकी कमजोरीसे लाभ उठाना चाहा; और अल्प परिश्रमसे २९ सितम्बर सन् १७६९ ईसवी (सं० १८२६ के १३ आश्विन) को काठमाण्डव दखल कर लिया तबसे नेपालपर गोर्खावंशका शासन आरम्भ हुआ। सहस्राब्दियोंसे यद्यपि नेपालपर प्रायः बौद्धशासकोंका ही शासन रहा है, और गोर्खा राजा ब्राह्मण धर्मके माननेवाले हैं, तो भी भारतकी तरह यहाँ भी धर्मके नामपर कभी किसीको कठिनाईमें नहीं पड़ना पड़ा।

महाराज पृथ्वीनारायणसे महाराज राजेन्द्र विक्रमशाहके समय

तक नेपालका शासन-सूत्र गोर्खाके ठकुरी क्षत्रियोंके वंशमें रहा; किन्तु १८४६ ई० के सितम्बर (सं० १९०३ के भाद्रपद) मासकी क्रान्तिने नेपालमें एक नयी शासन-रीति स्थापित की, जो अब तक चली जारही है। इस क्रान्तिके कारण महाराज जङ्गबहादुरने राज-शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। उन्होंने यद्यपि अपने लिये महामन्त्रीका ही पद रखा तो भी इसमें शक नहीं, कि १७ सितम्बर सन् १८४६ (१ आश्विन सं० १९०३) से पृथ्वी नारायणका वंश सिर्फ नामका ही अधिराज (महाराजाधिराज) रह गया, और वास्तविक शक्ति महाराज जङ्ग-बहादुरके रानावंशमें चली गयी।

महाराज जङ्गबहादुरने अपने भाइयोंकी सहायतासे इस क्रान्तिमें सफलता पायी थी। इसलिये उत्तराधिकारके बारेमें अपने भाइयोंका ख्याल उन्हें करना ही था। उन्होंने नियम बना दिया कि महामन्त्रीकी, जिसे तीन सरकार (=श्री ३) और महाराज भी कहते हैं, जगह खाली होनेपर बाकी बचे भाइयोंमें सबसे बड़ेको यह पद मिले। भाइयोंकी बारी खतम हो जानेपर, दूसरी पीढ़ी वालोंमें जो सबसे जेठा होगा वही अधिकारी होगा। महाराज जङ्गबहादुरके बाद उनके भाई उदीपसिंह तीन सरकार (१८७७–८५ ई०) हुए। उस समय जङ्गबहादुरके पुत्रोंने कुछ षड्यन्त्र रचे, जिनके कारण उन्हें नेपाल छोड़ भारत चला आना पड़ा। महाराजा उदीपसिंहके बाद उनके भतीजे और वर्तमान महाराजके सबसे बड़े भाई वीरशमसेर (१८८५–१९०१ ई०) चचाके गोलीका निशान बन जानेपर गद्दीपर बैठे। उनके बाद (१९०१ ई० में) महा-राज देवशमसेर कुछ महीनों तक ही राज्य कर पाये, और वह वहाँसे भारत निकाल दिये गये; तबसे २५ नवम्बर १९२९ (९ मार्गशीर्ष, सं० १९८६) तक नेपालपर वर्तमान तीन सरकार महाराज भीम शमसेर जङ्गबहादुरके बड़े भाई महाराज चन्द्र शमसेरने शासन किया।

मैं कह चुका हूँ, पृथ्वी नारायणका वंश अबभी नेपालका अधि-राज है, तो भी सारी राज-शक्ति प्रधान मन्त्रीके हाथमें है, जिसके बनाने-बिगाड़नेमें अधिराजको अधिकार नहीं है। जगह खाली होनेपर

स्वयं राना खान्दानका दूसरा ज्येष्ठतम व्यक्ति आजाता है। प्रधान मन्त्री-के नीचे चीफ साहेब (कमाण्डर-इन्-चीफ), फिर लाट साहेब (= फ़ौ-जी लाट), और पीछे राज्यके चार जनरलोंका दर्जा आता है। महा-राज जङ्गबहादुरके भ्रातृवंशमें उत्पन्न होनेवाला हर एक बच्चा नेपाल-का प्रधान मन्त्री होनेकी आशा कर सकता है; लेकिन ऐसे लोगोंकी सङ्ख्या सैकड़ोंसे अधिक हो जानेसे अब उस आशाका पूर्ण होना उतना आसान नहीं है; और यही भविष्यमें चलकर इस पद्धतिके विनाशका कारण होगा।

नेपालका शासन एक प्रकारका फौजी शासन समझना चाहिये। राना खान्दान (जङ्गबहादुरके खान्दान) का बच्चा जन्मतेही जनरल होता है, यद्यपि इस प्रथाको महाराज चन्द्र शमसेरने बहुत अनुत्साहित किया है। वह अपनी उम्र और सम्बन्धके कारण ही राज्यके भिन्न भिन्न दायित्वपूर्ण पदोंपर पहुँच सकता है। वह हजारों सैनिकोंका "जर्नैल" बन सकता है, चाहे उसे युद्धविद्याका क-ख भी न आता हो। इस बड़ी आशाके लिये उसे अपनी रहनसहनमें वित्तके अनुसार नहीं, बल्कि खान्दानके अनुसार जीवन बसर करना पड़ता है। राज्यको किसी न किसी रूपमें एक ऐसे खान्दानके सभी मेम्बरोंकी पर्वरिश करनी पड़ती है, जिनमें अधिकांश अपनी किसी योग्यतासे या परिश्रमसे राज्यको कोई फायदा नहीं पहुँचाते। बहु-विवाहकी प्रथासे अभी ही इस खान्दानके पुरुषोंकी सङ्ख्या दो सौके करीब पहुँच गयी है, ऐसा ही रहनेपर कुछ दिनोंमें यह हज़ारोंपर पहुँच जायेगी। यद्यपि महाराज चन्द्र शमसेरने अपने लड़कोंकी शिक्षाका पूरा ध्यान रखा, और वैसे ही कुछ और भाइयोंने भी, किन्तु जब इन सैकड़ों खान्दानी "जर्नैलों" पर ध्यान जाता है, तो अवस्था बहुत ही असन्तोषजनक मालूम होती है।

नेपालकी भीतरी भयङ्कर निर्बलताका ज्ञान न होनेसे बहुतसे हिन्दू उससे बड़ी बड़ी आशाएँ रखते हैं। उनको जानना चाहिये कि नेपालमें प्रजाको उतना भी अधिकार नहीं है जितना भारतीय बिगड़े देशी राज्योंकी प्रजाको है। इसलिये राष्ट्रकी शक्तिका यह स्रोत उसके

लिये बन्द है। जिस तीन सरकारके शासनसे कुछ आशा की जा सकती है, उस पदके अधिकारी अधिकांशत: वे हैं, जिनमें उसके लिये उपयुक्त शिक्षा नहीं, और जो अपने राजसी खर्चके कारण बड़ी शोचनीय आर्थिक अवस्थामें रहते हैं। मेरा ध्यान एक दो व्यक्तियोंपर नहीं है, बल्कि राना खान्दानके उन सभी पुरुषोंपर है, जो जीते रहनेपर एक दिन उस पदपर पहुँच सकते हैं। अनियन्त्रित व्यक्तिगत शासनके कारण शासकका जीवन हमेशा खतरेमें रहता है। यही हाल नेपालमें भी है। कहावत है, नेपालकी तीन सरकारीका मूल्य एक गोली है, जितनेसे महाराज जङ्गबहादुरने इसे खरीदा था। उससे बचनेपर वैसे षड्यन्त्रोंका भी भय रहता है, जिनके कारण महाराज देवशमसेर कुछ ही मासमें देशसे बाहर निकाल दिये गये। ऐसी स्थितिमें तीन सरकारके पदपर पहुँच कर कोई भी क्षण भरके लिये निश्चिन्त नहीं बैठ सकता; उसको यह डर बना रहेगा कि कहीं मैं भी किसी कुचक्रमें न पड़ जाऊँ। इसलिये उसे पहिले अपनी सन्तानोंके लिये जितना हो सके उतना धन जमा करना पड़ेगा; उसे भी सुरक्षाके लिये नेपालसे बाहर किसी विदेशी बैंकमें; जिसमें ऐसा न हो कि उसके परिवारकी सारी सम्पति जब्त हो जाय।

जनवृद्धिके अनुसार ही तीन सरकारीके भुक्खड़ उम्मेदवारोंकी भी सङ्ख्या बढ़ रही है। ऐसी अवस्थामें निश्चय ही अच्छे दिनोंकी आशा कम होती जारही है। यदि राना खान्दानके लड़कोंको देश-विदेशमें भेजकर भिन्न भिन्न विषयोंकी उच्च शिक्षा दिलायी जाती, यदि नेपाल विदेशी राज्योंमें अपने राजदूत भेजता, तो इसमें शक नहीं कि बेकार राना खान्दानवालोंको भी काम मिलता, और देशको भी कई तरहसे नफा होता। किन्तु आधुनिक सभी पाश्चात्य विलासिताओंको अपनाकर भी, यह लोग विद्या-ग्रहणमें विदेश-गमनके अनुकूल नहीं हैं; और आगे भी, ढोंगबाजीमें एक दूसरेसे बाजी लगानेवाले इन लोगोंको कब अक्ल आयेगी, कोई नहीं जानता; सम्भव है, उसी वक्त होश आये, 'जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत'।

नेपालकी वर्तमान अवस्थासे यदि किसीको अधिक सन्तोष हो सकता है, तो अङ्ग्रेजोंको। वह जानते हैं कि यहाँकी प्रजा शक्ति-शून्य है, सिंहासनाधिपति अधिराज शक्ति-शून्य है और तीन सरकार अपने खान्दानके दावपेंचोंसे ही शक्ति-शून्य है। इसलिये वह चाहे सैनिक-शक्ति-सम्पन्न जनताका देश ही क्यों न हो, उसके नामके 'जर्नैल' और खुशामदके बलपर होनेवाले टकेसेर 'कपटेन' और 'कर्नैल' मौका पड़ने पर क्या अपने देशकी भी रक्षा कर सकेंगे। अगर अङ्ग्रेजोंने इस तत्त्व-को न समझा होता, तो जिस प्रकार कश्मीर धीरे धीरे बृटिश साम्राज्य-के अन्तर्गत आ गया, वैसेही नेपाल भी आ गया होता। इन्हीं बातोंके कारण अङ्ग्रेजोंने भी आसानीसे १९२३ ई० (=वि० सं० १९८०) की सन्धि-द्वारा नेपालको "स्वतन्त्र" राज्य स्वीकार कर लिया, और काठमाण्डवमें रहनेवाले रेजीडेण्टका नाम बदलकर "एनवाए" राजदूत कर दिया गया।

यल्मो ग्रामको यात्रा

किन्दू स्वयम्भूके पासही है। अभी यहाँ नया विहार बनाया गया है। डुक्पा लामाको यहाँ कुछ दिन रहना था। मैं तीन अप्रैलकी रातको वहाँ पहुँचा। लामाने मुझे भी पासमें आसनके लिये जगह दे दी। परन्तु मैं रातको ही समझ गया कि इस जगहपर, जहाँ दिनभर सैकड़ों आदमी आते रहते हैं, मेरा रहना ठीक न होगा। मैंने यह भी सुन लिया कि और भी एक संन्यासी तिब्बतकी यात्राके लिये ठहरे हुए हैं। वह यहाँ आये थे, और उनको मेरी सूचना भी दे दी गयी है। पीछे यह भी मालूम हुआ कि मेरे उक्त स्थानको छोड़नेके दूसरे दिन वह वहाँ भी मुझे खोजनेके लिये गये थे। उनको तो राज्यसे ठहरनेकी इजाजत मिल गयी थी, और वह राज-कर्मचारियोंकी सङ्गतिमें रहते भी थे। मैंने सोचा यह बड़ी गल्ती हुई, अगर कहीं ऊपर खबर हुई तो इतने दिन बेकार गये और मैं फिर रक्सौल उतार दिया जाऊँगा।

रातको ही मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अलग किसी एकान्त जगहमें जाऊँगा। संयोगसे मुझे इस काममें मदद देनेके लिये एक सज्जन मिल गये। उन्होंने एक खाली मकानमें मेरे रहनेका प्रबन्ध किया। दिनभर मैं एक कोठरीमें पड़ा रहता था, सिर्फ रातको पाखाने-के लिये एक बार बाहर निकलता था। कोठरीका अभ्यास तो मुझे हजारीबागमें दो सालके कारावासमें काफी हो चुका था; किन्तु यह एकान्तवास उससे कठिन था। हर समय चिन्ता बनी रहती कि कहीं यह रहस्य खुल न जाय। मालूम हुआ, अभी डुक्पा लामाको जानेका कोई विचार ही नहीं हो रहा है। उन्होंने दो-चार ही दिन रहनेका ख्याल किया था, किन्तु मालूम हुआ, पूजा यहाँ काफी चढ़ रही है। यहाँ भी धीरे धीरे कुछ लोग आने लगे। फिर तो मैं दूना चिन्तित हो उठा। डुक्पा लामाको यल्मो जाकर कुछ दिन रहना था, इसलिये मैंने सोचा कि मुझे वहाँ ही जाकर ठहरना चाहिये।

मेरे अकारण मित्र कोशिश करनेपर भी किसी यल्मोवासीको न पा सके। अन्तमें निश्चय हुआ कि वही मुझे यल्मो पहुँचा आयें। ८ अप्रैल (२५ चैत्र) को अँधेरा रहते ही हम चल पड़े। स्वयम्भूके दर्शनको न जा सके। स्वयम्भूका दर्शन पहिली नेपाल-यात्रामें कर चुका था। यह नेपालका सर्वश्रेष्ठ बौद्ध तीर्थ है। चन्द्रागढ़ीसे भी इसके दोनों जुड़वें मन्दिर, एक छोटी टेकरीपर, काठमाण्डवसे बाहर दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान मन्दिर और दूसरे मकानोंमें कुछ भी वैसा पुराना नहीं है, जैसा कि स्वयम्भू-पुराणमें बतलाया गया है। तो भी स्थान रमणीय है। कुछ वर्षों पूर्व इसकी भी मरम्मत हो चुकी है। हम स्वयम्भूकी परिक्रमा कर नगरसे बाहर ही बाहर यल्मोकी ओर चले। कुछ देर तक रोप-लाइनके खम्भोंके सहारे चले, खम्भोंको देखकर फिर हजारों बेरोजगार मजदूर परिवार याद आये। हमारे पास एक छोटी गठरी थी। बेचारे मित्र उसे ले चले, किन्तु उनको भी अभ्यास कहाँ? अङ्ग्रेजी रेजीडेन्सीके नीचेसे हमलोग गुजरे। यह जगह शहरसे बाहर एक टीलेपर है। बहुत दिनोंसे रहनेके कारण बाग-बगीचे अच्छे लग

गये हैं। हमको थोड़ा ही आगे चलनेपर एक आदमी मिला, हमने उसे सुन्दरीजलतक मजदूरीपर चलनेको कहा। वह पूछनेके बहाने घर गया। थोड़ी देर इन्तिजार करनेपर मेरे साथी उसका पता लगाने गये। मालूम हुआ वह नहीं जायेगा। नाहकमें ठण्ढे समयका आधा घण्टा बरबाद किया।

हाँ, मैंने इस समयकी अपनी पोशाककी बात नहीं कही। यल्मो-तकके लिये मैंने नेपाली पोशाक स्वीकार की। नेपाली बगलबन्दी, ऊपरसे काला कोट, नीचे नेपाली पायजामा, सिरपर नेपाली टोपी, पैरमें नेपाली फलाहारी जूता (कपड़े और रबड़का), आँखोंपर काला चश्मा। ऊपरसे नेपाली तो बन गया था, लेकिन दिलमें चैन कहाँ! वस्तुतः नेपालमें भोटिया पोशाक ही अधिक उपयुक्त है। मालूम हुआ, इस रास्तेपर भी सरकारी पुलिस चौकी है। हमारे भाग्य अच्छे थे, जो उस दिन घुड़दौड़ थी। सिपाही लोग भी घुड़दौड़ देखने काठमाण्डव चले गये थे। दोपहरमें मेरे साथीने एक जगह भात बनाया; किन्तु भूख मुझे उतनी न थी। मध्याह्नकी धूपसे बचनेके लिये थोड़ा विश्राम किया, और फिर चल पड़े।

नये जूतेने पैर काट खाये थे; महीने भरकी टाँगोंकी बेकारीने चलनेकी शक्तिको बेकार कर दिया था; तो भी उत्साहके बलपर मैं चला जा रहा था। काठमाण्डवसे सुन्दरीजलतक मोटर जाने लायक सड़क भी बनी है, किन्तु आजकल एक जगह नदीका पुल टूटा हुआ है। यहाँ मैंने ईंटोंको पत्थरके कोयलोंसे पकाते देखा। वही कोयले, जिन्हें छः वर्ष पूर्व जब मैंने एक राजवंशिकके सामने जलाकर दिखाया तो उसे आश्चर्य हुआ था। उस समय लोग इस नर्म कोयलेको कुदरती खाद समझते थे, और उसका व्यवहार खेतमें डालना भर था। नेपाल-की भूमि रत्नगर्भा है, नाना प्रकारकी धातुएँ हैं, और उत्तम फलोंके लिये यहाँ उपयुक्त भूमि है, परन्तु इधर किसीका ध्यान हो तब न।

चार-पाँच बजे हम सुन्दरीजल पहुँचे। यहाँसे भी नलों द्वारा पानी काठमाण्डवको ले गये हैं। इस नलके रास्तेको हमने जनरल

मोहन शमसेरके महलके पाससे ही पकड़ा था। महाराज चन्द्र शमसेरने अपने सभी लड़कोंके लिये अलग अलग महल बनवा दिये हैं। मकान बनवानेका उन्हें बहुत शौक था। अपना महल भी उन्होंने बहुत सुन्दर बनवाया है। कहते हैं, इसपर करोड़ों रुपया खर्च हुआ है। इस महलको तो अपने जीवनमें ही वह सभी तीन सरकारोंके लिये नियत कर गये हैं। उनके लड़कोंके भी छः अलग अलग महल हैं। इनमें जितनी भूमि और रुपयोंका खर्च हुआ है, यदि ऐसा ही भविष्यके भी तीन सरकार करें, तो बीसवीं शताब्दीके अन्ततक काठमाण्डवके चारों ओरका भूभाग तो महलोंसे भर जायगा, और सारे उपजाऊ सुन्दर खेत उनके पार्कोंके रूपमें परिणत हो जायँगे। देशके करोड़ों रुपये, कलाशून्य इन विलायती ढङ्गकी ईंटोंके ढेरमें चले जायँगे सो अलग।

सुन्दरीजलकी चढ़ाई शुरू होगयी। अभी तक तो हम मैदानमें जा रहे थे, अब मालूम हुआ, पहाड़ पार करना आसान नहीं होगा। संयोगसे ऐन मौकेपर एक हट्टा कट्टा तमङ्ग मजदूर मिल गया। उसे चार दिनके लिये नेपाली आठ मोहर (३ रुपयेसे कुछ ऊपर) पर ठीक किया। साथ ही यह भी ठहरा कि वह मुझे भी ढोकर ले चलेगा। आदमी बहुत मजबूत और साधारण गोर्खेके कदसे लम्बा था। हम सुन्दरीजलके सहारे ऊपर बढ़े। थोड़ी ही देरमें हरियालीसे भरे सुहावने जङ्गलमें पहुँच गये। हमने नीचेसे जानेवाले रास्तेको छोड़ दिया था, क्योंकि उसमें कुछ चौकियाँ पड़ती हैं। यह ऊपरका रास्ता पहाड़ोंके डाँड़ों डाँड़ों गया है; यह कठिन तो है, किन्तु निरापद है। लगातार चढ़ाई ही चढ़ते शामको हम ऊपर एक गाँवमें पहुँचे। यहाँ ऊँचाईके कारण ठण्ढक थी। सभी रास्तोंपर नेपालके पहाड़ोंपर छोटी छोटी दूकानें हो गयी हैं; जहाँ खाना बनानेका सामान मिल जाया करता है।

मुझे तो दिनभरकी थकावटमें सबसे मीठी नींद मालूम हो रही थी। मेरे साथीको कोई पर्वाह न थी। उन्होंने भोजन तय्यार किया, फिर तीनों आदमियोंने भोजन किया।

सबेरे बड़े तड़के हमलोग रवाना हुए। अभी भी चढ़ाई काफी चढ़नी थी। इन ऊपरी भागोंमें भी कहीं कहीं आबादी थी। जगह-जगह नये जङ्गल साफ हो रहे हैं, और लोग अपनी झोपड़ियाँ डाल रहे हैं। नेपालमें जनवृद्धि अधिक हो रही है, इसलिये दार्जिलिङ्ग और आसाममें लाखों नेपालियोंके बस जानेपर भी, वर्तमान खेत उनकी जीविकाके लिये काफी नहीं हैं और नित्य नये खेतोंकी आवश्यकता पड़ रही है; जिसके लिये जङ्गल बेदर्दीसे काटे जा रहे हैं। जङ्गलका वर्षासे सम्बन्ध है ही, लेकिन यह तो प्रत्यक्ष है कि जङ्गल कट जानेपर पानीके सोते कई जगह सूख गये या क्षीण होगये। जङ्गलोंकी इस कटाईने कई जगहोंपर पहाड़ोंको नङ्गा कर दिया है।

अस्तु, हम डाँडोंसे होते दोपहरको दो डाँडोंके बीचकी रीढपरके एक गाँवमें पहुँचे। सुन्दरीजलके ऊपरसे तमङ्गोंका देश शुरू होता है। अङ्ग्रेजी गोर्खा फौजोंमें वीर तमङ्गोंकी बड़ी खपत है। यह चेहरेमें भोटिया लोगोंसे अधिक मिलते हैं, भाषा और भी समीप है। धर्म यद्यपि बौद्ध है, तो भी वर्तमान अवस्था देखनेसे मालूम होता है, कि वह बहुत दिनों तक शायद ही टिके। मेरे साथी तमङ्गसे मालूम हुआ कि मरनेपर तो उनके यहाँ लामा आता है, और विजया-दशमीके दिन वह पूरे शाक्त होते हैं। इस गाँवमें भी एक साधुकी टीनसे छाई हुई अच्छी कुटी है। कहते हैं, किसी समय बौद्ध तमङ्गोंको ब्राह्मण धर्ममें दीक्षित करनेके लिये ही यह कुटी बनवायी गयी थी, और यहाँ एक प्रसिद्ध साधु भी रहता था। दूसरे डाँडेको पारकर अब हम दूसरी ओरसे चल रहे थे। रास्तेमें अब हमें मानियाँ (= पत्थरोंपर मन्त्र लिखकर बनाये स्तूप या लम्बे ढेर) मिलीं; मालूम होता था, चिरकालसे वह उपेक्षित हैं।

रात तो एक झोपड़ेमें कटी; सवेरे उतराई शुरू हुई। दो दिनकी यात्रामें पैरोंमें थोड़ी मजबूती भी आ गयी, और रास्ता भी उतराई-का था, इसलिये अब मैं चलनेमें किसीसे पीछे न था। आठ बजेके करीब हम नीचे नदीके तटपर पहुँच गये। नदी पार कर नीचेकी ओर

जानेपर थोड़ी देरमें हम यल्मो नदीके सङ्गमपर पहुँच गये। यहाँ कुछ दूकानें हैं। खानेके लिये कुछ चीजें ली गयीं और हम फिर चल दिये। दोपहरको एक छोटे गाँवमें पहुँचे। नीचे पूजाके लिये पुराने पीपल और वर्गदके पेड़ हैं। किन्तु सर्दीकी प्रतिकूलतासे बिचारे उतने प्रसन्न नहीं। यहाँ पहाड़ोंके ऊपरी भागमें, मालूम हुआ, यल्मो लोग बसते हैं, निचला भाग अपेक्षाकृत गर्म और जङ्गलहीन होनेसे, उसे यह पसन्द नहीं करते। उन्हें अपनी चँवरी गायों और भेड़ोंके लिये जङ्गलकी अनिवार्य आवश्यकता है।

जिस घरमें हमें भोजन बनाना था, वह खेत्रीका था। नेपालमें अब भी मनुके अनुसार अनुलोम असवर्ण विवाह होता है। क्षत्रियका अपनेसे नीची जातिकी कन्यामें उत्पन्न लड़का खेत्री कहा जाता है; कुछ पीढ़ियों बाद वह भी पक्का क्षत्रिय हो जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणका अब्राह्मण स्त्रीमें उत्पन्न लड़का जोशी होता है और कुछ पीढ़ियों बाद पूरा ब्राह्मण हो जाता है।

उसी दिन शामको हम असल यल्मो लोगोंके गाँवमें पहुँचे। यह लोग भोटिया समझे जाते हैं। स्टैण्डर्ड भोटिया इनमें खूब समझी जाती है। इनका रङ्ग बहुत साफ गुलाबी होता है, और सुन्दरता भी है, इसीलिये इनकी लड़कियाँ राज-घरानोंमें लौंडीके कामके लिये बहुत पसन्द की जाती रही हैं। आज पिस्सुओंने रातको सोना हराम कर दिया। मालूम हुआ, कल हम पहुँच जायँगे।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही उठे। रास्ता चढ़ाईका था। तीन घण्टेमें हम घने जङ्गलोंमें पहुँच गये। यहाँ गेहूँमें अभी दाना नहीं आया था। कहीं कहीं आलू भी बोया हुआ था। दोपहरको हमें भी तरकारीके लिये आलू मिला। भोजनोपरान्त हमलोग चले। पहाड़की एक फैली बाँहको पार करतेही मानो नाटकका पर्दा गिर गया। चारो ओर गगनचुम्बी मनोहर हरे हरे देवदारु वृक्ष खड़े थे। नीचेकी ओर जहाँ तहाँ हरे भरे खेत भी थे। किन्तु कहीं भी प्रकृति देवी अनीलवसना न थी। जगह भी बहुत ठण्ढी थी।

११ अप्रैल को तीन बजेके करीब हम यल्मोके उस गाँवमें पहुँच गये। ग्राम-प्रवेशके पूर्वही पानीके बलसे मानी (=मन्त्रोंसे भरा लकड़ीका घूमता ढोल) चलती दिखाई पड़ी।

डुक्पा लामाकी खोज

अब जिस गाँवमें मैं था वह यल्मो लोगोंका था। यह लोग यल्मो नदीके किनारे पहाड़के ऊपरी भागोंमें रहते हैं। इनमें पुरुष तो दूसरे नेपालियों जैसी ही पोशाक पहिनते हैं, किन्तु स्त्रियोंकी पोशाक भोटियोंकी सी है। वस्तुतः इन्हें भाषा, भूषा, भोजन आदिसे भोटिया ही कहना चाहिये; यद्यपि दूसरी जातियोंके सत्सङ्गसे इनमें भोटियोंसे अधिक सफाई पायी जाती है; यह लोग हाथ मुँह धोना भी पसन्द करते हैं।

यह गाँव बड़ा है। इसमें सौसे ऊपर घर हैं। सभी मकानोंकी छतें लकड़ीकी हैं। पास ही देवदारुका जङ्गल होनेसे लकड़ी इफ़रात है। इसलिये मकानमें लकड़ीकी भरमार है। मकान अधिकतर दो मञ्जिले तिनमञ्जिले हैं। सबसे निचली मञ्जिलमें लकड़ी या दूसरा सामान रखते हैं। पशुओंके बाँधनेकी भी यही जगह है। जाड़ेके दिनोंमें यहाँ बर्फ पड़ा करती है। आजकल भी, आधे अप्रैलके बाद, काफी ठण्ढक है। पहाड़के ऊपरी भागोंमें तो मईके पूर्वार्द्ध (वैशाख) तक मैंने कभी कभी बर्फ पड़ते देखा। इन लोगोंमें बौद्धधर्म अधिक जाग्रत है। हरएक घरके पास नाना मन्त्रोंकी छापवाले सफेद कपड़ोंकी ध्वजायें, पतले देवदारुके स्तम्भोंमें फहरा रही हैं। मकान, आदमी, खेत, पशु इत्यादिके देखनेसे मालूम होता है कि यल्मो लोग नेपालकी दूसरी जातियोंसे अधिक सुखी हैं। इनके गाँवोंकी मानियाँ सुन्दर अवस्थामें हैं। हर एक गाँवमें एक दो गुम्बायें (=विहार, मठ) हैं। लामा भी एकाध रहते हैं। खेतीसे भी बढ़ कर इनकी सम्पत्ति भेड़, बकरी, और चँवरी हैं। जाड़ेके महीनोंमें ही, यह इन जानवरोंको घरमें ले आते हैं, अन्यथा जहाँ सुन्दर चरागाह देखते हैं, वहीं एक दो

घरके आदमी अपना कुत्ता और डेरा लेकर पशुओंको चराते फिरते हैं। मक्खन मिलाकर बनायी हुई चाय और सत्तू इनके भी प्रधान खाद्य हैं।

मैं एक भोटिया (=यल्मो) के घरमें ठहरा। आतेही मैंने भोटिया चोगा और जूता पहिन लिया। दूसरे दिन मेरे मित्र भी लौट गये। मालूम हुआ, यहाँसे चार दिनमें कुत्ती और चारही दिनमें केरोङ् पहुँचा जा सकता है। दोनोंही स्थान भोट (=तिब्बत) देशमें हैं। यहाँ घूमने फिरनेकी रुकावट न थी। दिन काटनेके लिये तिब्बतीय पुस्तककी एकाध आवृत्ति रोज करता था। कोई कोई लोग हाथ दिखाने और भविष्य पूछने आते थे। अधिकोंको मैं निराश ही किया करता था, यद्यपि भाग्य देखना, दवा देना, और मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग करना यही तीन इन प्रदेशोंमें अधिक सम्मानकी चीजें हैं।

मेरे यहाँ पहुँचनेके तीन दिन बाद डुक्पा लामाके शिष्य भिक्षु-भिक्षुणी भी आगये। अभी भी उन्हें कई हजार पुस्तकें छापनी थीं। उन्होंने यह भी बतलाया कि बड़े लामा भी जल्दी आयेंगे। वह लोग गाँवसे थोड़ा हटकर एक बड़ी गुम्बाके भीतर ठहरे। मुझे भी गाँव छोड़कर वहाँ ही जाना पसन्द हुआ, क्योंकि वहाँ मुझे भाषा सीखनेकी भी सहूलियत थी। यहाँ आनेपर मुझे बुखार आने लगा था, किन्तु वह दो-तीन दिनमें ही छूट गया। अब मैं उक्त गुम्बामें आगया। सवेरे उठतेही वह लोग तो पुस्तक छापने या दो दो कागजों-को चिपका कर एक बनानेमें लग जाते थे और मैं शौचसे फुर्सत पा अपने 'तिबेतन् मेनुअल' के पाठमें। आठ बजेके करीब थुक्पा (=लेई) तय्यार हो जाता था। सभी तीन-तीन चार-चार प्याले पीते थे। मैं भी अपने लकड़ीके प्यालेसे थुक्पा पीता था। यह थुक्पा मकई, मँडुए या जौके सत्तूको उबलते पानीमें डालकर पकानेसे बनाया जाता था। कभी कभी उसमें जङ्गलसे कुछ साग भी लाकर डाल देते थे। ऊपरसे थोड़ा नमक पड़ जाता था। दोपहरको उसी तरह गाढ़ा सत्तू पकाया जाता था, साथही कुछ जङ्गली पत्तोंकी सब्जी होती थी; शामको सात बजे फिर वही थुक्पा। अधिकतर मँडुए और मकईका ही सत्तू होता

था। मँडुएके सत्तूको यह लोग ग्यगर्-चम्पा (=भारतीय सत्तू) कहते थे; मैं इसपर बड़ी टिप्पणी किया करता था।

इस वक्त मेरा घनिष्ठ मित्र (=रोक्पो) एक चार-पाँच वर्षका लड़का तिन्-ज़िन् (=समाधि) था। यह मुझे भाषा सिखलाया करता था। कभी कभी मेरी भाषा सम्बन्धी गल्तीभी दूर किया करता था। थोड़े-ही दिनोंमें मैं ग्यगर्-चम्पासे ऊब गया। फिर मैंने मक्खन, चावल और जौका सत्तू मँगा लिया। मेरे खानेमें मेरा मास्टर तिन्-जिन् भी शामिल रहता था। उस समय जङ्गली स्ट्राबरी बहुत पक रही थी। मैं रोज चुन चुनकर ले आता था। तिन्-ज़िन बड़ा खुश होता था। वह डुक्पा लामाकी चचेरी बहिनका लड़का था। इस एक मासके साथ रहनेमें सचमुच ही वह मेरा बड़ा प्रिय मित्र बनगया और चलते वक्त मुझे उसके वियोगका दुःख भी हुआ।

बड़े कुत्तोंकी नसल यहाँसे शुरू होती है। इसीलिये यहाँ अब गाँवोंमें, या चरवाहोंके डेरोंमें, जाना आसान नहीं था। मैं गाँव-में दो तीन ही बार गया। किन्तु रोज एक दो बार पहाड़के नीचे ऊपर काफी दूरतक टहलने जाया करता था। खेतोंमें जौ और गेहूँ लहरा रहे थे, किन्तु उनके तैयार होनेमें अभी एक मासकी देर थी। ठण्ढककी वजहसे यहाँ मकई और धान नहीं होता; आलू काफी होता है। लेकिन वह हालमें बोया गया था। कभी कभी पुराना आलू और पिछले साल-की मूली तर्कारीके लिये मुझे भी मिल जाती थी। बेचारे डुक्पा लामाके चेले भी कुछ दिनोंमें मकई मँडुएके सत्तूसे तङ्ग आगये। एक दिन चार पाँच मीलपरके एक गाँवमें एक बैल मरनेकी खबर पाकर गये। लेकिन वहाँ उसका मूल्य छः सात रुपया माँगा गया, और उसमें चर्बी भी नहीं थी। लोग यहाँ यह आशा कर रहे थे, कि आज पेट भर मांस खायेंगे, किन्तु उनके खाली हाथ लौटनेपर बड़ी निराशा हुई। पीछे शामके वक्त उन्होंने किसी किसी दिन मकई भूनकर खाना शुरू किया, और कड़ुवा तेल डाल कर चाय पीना शुरू किया। मक्खन उनके लिये आसान न था, इसलिये उन्होंने तेलका आविष्कार किया था।

कहते थे, अच्छा लगता है। मैं तो दोपहर बाद कुछ खाता ही न था। खानेका सामान मँगा लेने से अब आराम हो गया था।

हमारी गुम्बासे प्रायः एक मील ऊपरकी ओर देवदारुके घने जङ्गलमें एक कुटी थी, वहाँ एक लामा कितने ही वर्षोंसे आकर बैठा था। ऐसे लामा प्रायः बस्तीसे बाहर ही रहा करते हैं। उनके एकान्त-वासके वर्ष और दिन भी नियत रहते हैं। सफेद कुटी देखनेमें बड़ी सुन्दर मालूम होती थी। अपना दिल कई बार ललचाया, कि क्यों न कुछ दिन यहीं रमा जाय। लेकिन फिर ख्याल आया—'आये थे हरिभजनको ओटन लगे कपास' वाली बात नहीं होना चाहिये। इसी गाँवके ठीक ऊपरकी तरफ कुछ हट कर, एक खम्पा (खम् = चीनकी सीमापरका भोटिया प्रदेश) लामा कई वर्षोंसे वास करते थे। एक दिन वह इस गुम्बामें आये। मुझसे भी बात हुई। फिर उन्होंने मुझसे अपने यहाँ आनेके लिये आग्रह किया। यहाँ मैं इस गुम्बाका कुछ वर्णन करना चाहता था। मैं नीचेके तलमें प्रधान देवालयमें था। मेरे सामने खून पीती, अँतड़ियाँ चबाती, लाल लाल अङ्गारोंकी सी आँखों वाली मिट्टीकी एक मूर्ति थी। इस मन्दिरमें और भी कितने ही देवताओं और लामाओंकी मूर्तियाँ थीं। मुख्य मूर्त्ति लोबन्-रिम्पो छे या गुरु पद्मसम्भवकी थी। यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि इनकी बनावट सुन्दर थी, कलाकी कोमलता भी थी। छतसे कितने ही चित्र लटक रहे थे, यह भी सुन्दर थे। गुम्बाके ऊपरी तलमें भी कुछ मूर्तियाँ और शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताकी भोटिया भाषामें बड़ी सुन्दर हस्तलिखित पुस्तकें थीं। कभी यहाँ भिक्षु रहा करते थे; किन्तु पीछे उनके चेलोंने ब्याह कर लिया। अब उनकी सन्तान इस गुम्बाकी मालिक है। गुम्बाकी बगलमें थोड़ा खेत भी है। इसीपर यह लोग गुजारा करते हैं। पूजासे कुछ अधिक आमदनी होती होगी, इसकी आशा नहीं मालूम होती।

१२ मईको (२९ वैशाख) मैं खम्पा लामाके पास गया। उन्होंने मेरा बहुत स्वागत किया। उनके सादगीके साथ निकले हुए शब्द 'तू भी

बुद्धका चेला, मैं भी बुद्धका चेला' अब भी स्मरण आते हैं। रातको वहीं रहना हुआ। यह लामा न्यूमा (= उपवास) व्रत करते हैं। एक दिन अनियम भोजनके साथ पूजा, दूसरे दिन दोपहरके बाद भोजन न करके पूजा, और तीसरे दिन निराहार रह कर पूजा—यही न्यूमा है। ऊपरसे रोज हजारों दंडवत् भी करने पड़ते हैं। लोगोंका अवलोकितेश्वरके इस व्रतमें बहुत विश्वास है। खम्पा लामाके पास कुछ और भी श्रद्धालु स्त्री पुरुष इसी व्रतको करते हैं। यह लामा व्रतके साथ कुछ झाड़-फूँक भी जानते हैं, फिर ऐसे आदमीको क्या तकलीफ हो सकती है! रातको मुझे खाना नहीं था। पर मक्खन डालकर चाय उन्होंने अवश्य पिलायी। बड़ी देरतक भोटके और भोटके धर्मके बारेमें बात चीत होती रही। उन्होंने खम् देश जानेके लिये भी मुझे बहुत कहा।

दूसरे दिन उनका निराहार था, किन्तु मेरे लिये उन्होंने अपने हाथसे चावल और आलूकी तरकारी बनायी। भोजन कर मध्याह्नके उपरान्त मैं अपनी गुम्बामें आगया। उसी दिन शामको काठमाण्डवसे डुक्पा लामाके बाकी चेले आगये। उनसे मालूम हुआ कि डुक्पा लामा काठमाण्डवसे सीधे कुत्तीको रवाना हो गये; वह इधर अब नहीं आयेंगे। डुक्पा लामा अब जीवन भरके लिये भोटिया सिद्ध और कवि जेसुन्-मिला-रेपाके सिद्ध स्थान लप्चीमें बैठने जा रहे थे। इसकी खबर पाते ही शिष्यमण्डलीमें कितनोंने ही फूट फूटकर रोना शुरू किया। मेरे लिये तो अब विषम समस्या थी। पूछने पर मालूम हुआ कि मेरे बारेमें उन्होंने कुछ नहीं कहा। दो महीनेतक मैं उनकी प्रत्याशामें बैठा रहा, और अब इस तरहका बर्ताव! दर् असल् यह चित्तको धक्का लगाने वाली बात थी; लेकिन इतने दिनोंमें मैं भोटिया-स्वभावसे कुछ परिचित होगया था। मैंने उसी समय निश्चित कर लिया, कल यहाँसे चल दूँगा, और कुत्तीके रास्तेमें ही कहीं उन्हें पकड़ूँगा। मुझे एक साथीकी तलाश थी। मालूम हुआ आजकल बहुत लोग कुत्तीकी ओर नमक लाने जाते हैं। यही सालभरके नमक लानेका समय है। मालूम हुआ दो चार दिन ठहरने पर ही आदमी मिल सकेगा। किन्तु मुझे

तो डुक्‌पा लामाके साथ नेपालकी सीमाको पार करना था। पहिलेसे यह मालूम नहीं था।

राततक किसी आदमीका प्रबन्ध न होसका था। उसी गुम्बामें रहनेवाला एक नवयुवक नमकके लिये कुत्ती जानेवाला था, लेकिन उसे अपना पका खेत काटना था। इस प्रकार आदमीके अनिश्चय और जानेके निश्चयके साथ ही मैं सो गया।

तिब्बतमें प्रवेश

आज (१४ मई) सवेरे थोड़ा थोड़ा पानी बरस रहा था। बड़े सवेरे ही शौच आदिसे निवृत्त हो मैंने तमङ्ग तरुणसे साथ चलनेको कहा। उसे पके खेतको काटना था, इसलिये अवश्य कठिनाई थी। अन्तमें मैंने उसे तातपानीतक ही चलनेके लिये कहा। उसके मनमें भी न जाने क्या ख्याल आया, और वह चलनेको तय्यार हो गया। तब तक आठ बज गये थे। बूँदें भी कुछ हलकी होगयी थीं। मैंने सबसे विदाई ली। गाँवसे थोड़ा मक्खन और सत्तू लेना था। मक्खन तो न मिल सका, सत्तू लेकर हम चल पड़े। मालूम हुआ, हमारे रास्तेके बगलमें ही चरवाहोंका डेरा है, वहाँ मक्खन मिल जायगा। हमारा रास्ता पहाड़के ऊपरी हिस्सेपरसे जा रहा था। यहाँ चारों ओर जङ्गल था। रास्ता कहीं कहीं तो काफी चौड़ा था। इन रास्तोंकी मरम्मत आदि गाँवके लोग ही किया करते हैं।

छः घण्टे बाद हम चरवाहोंके डेरेमें पहुँच गये। मोटी जंजीरमें बँधे कुत्तोंने कानके पर्दे फाड़ना शुरू किया। गृहिणीने कुत्तेको दबाया, तब फिर हम डेरेके भीतर घुसने पाये। डेरा क्या था, चटाइयोंसे छाया हुआ झोंपड़ा था जिसके भीतर खाने-पीनेका सामान, कपड़े, बिछौने, बर्तन सभी ठीकसे रक्खे हुए थे। जामो (=गाय और चमरेसे उत्पन्न मादा) दुही जा रही थी। गृहपति लकड़ीके छोटे बर्तनोंमें दूध दुह दुहकर लाता था। गृहपत्नी चारा तय्यार कर रही थी। इस देशमें दुहनेके वक्त गायके सामने कोई खानेकी चीज अवश्य रखनी होती है। डेरेके एक

कोनेमें लकड़ीका बड़ा बर्तन छाछसे भरा हुआ था। डेरेवालोंने दूध पीनेको कहा, किन्तु मैंने छाछ पसन्द की। इसके बाद उन्होंने खानेका आग्रह किया। आगे रास्तेमें कुछ खानेको मिलेगा या नहीं इसका कुछ ठीक न था; इसलिये मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उसी समय उन्होंने चावल और तरकारी बनायी। हमारे खाना समाप्त करने तक उन्होंने मक्खन भी तैयार कर दिया। इस प्रकार ग्यारह बजेके करीब हमें छुट्टी मिली।

विशालकाय वृक्षोंके बीचसे रास्ता बड़ा सुहावना मालूम होता था। जङ्गली पक्षियोंके मधुर शब्द कर्णगोचर हो रहे थे। मेरा साथी भोटिया भाषा अच्छी जानता था, उसकी दूसरी बोली मैं नहीं जानता था। दोनों बीच बीचमें भोटियामें बात करते, कभी स्ट्राबरी चुनते, कभी जोकोंसे पैर बचाते, आगे बढ़ रहे थे। ऊपर कहीं कहीं गाँव भी मिलते थे। यह सभी गाँव यल्मो लोगोंके थे। सारा गाँव सफेद ध्वजाओंका जङ्गल था। गाँवके पास रास्तेमें 'मानी' का होना अनिवार्य था। मानियोंके दोनों ओर रास्ता बहुत साफ बनाया गया था। बौद्ध यात्री सदा इन मानियोंको दाहिने रख परिक्रमा करते चला करते हैं। यद्यपि इस प्रकार चारों ओर परिक्रमा नहीं होती, तो भी उसकी लम्बी परिक्रमा हो जाती है या भविष्यकी यात्राओंसे परिक्रमा पूरी हो जाती है; और आदमी महापुण्यका अधिकारी होजाता है। एक गाँवमें तो 'मानी'की दीवारोंमें पत्थरोंपर खुदी हुई तस्वीरोंपर रङ्ग भी ताजा ही लगा हुआ था। ऊपर कह चुका हूँ, यल्मो लोगोंमें लामा-धर्म बहुत जाग्रत है, और वह खाने पीनेसे भी खुश हैं।

एक बजेके करीब हम डाँडेके किनारेपर आये। यहाँसे हमें दूसरी ओर जाना था। ऐन 'ला' (दर्रा) पर बड़ी मानी थी। दूसरी ओर पहुँचते ही सीधी उतराई शुरू हुई। थोड़ा नीचे उतरने पर जङ्गल आँखोंसे ओझल हो गया। चारो ओर खेत ही खेत थे। थोड़ी ही देरमें पके जौ और गेहूँके खेत भी ऊपर छूट गये। जितना ही हम नीचे जाते थे, उतना ही ताप-मानका स्पष्ट प्रभाव खेतोंपर

दिखाई पड़ता था। मैं भी अब चलनेमें कमज़ोर न था, मेरे साथीको भी खेत काटनेके लिये जल्द लौटना था। इसलिये हम खूब तेज़ीसे उतर रहे थे।

तमङ्गोंके कितने ही गाँवोंको पारकर, निचले हिस्सेमें गोर्खोंके गाँव मिले। यहाँ मकई एक एक बालिश्त उगी थी। तीन चार बजे हम नीचे नदीके पुलपर पहुँच गये। यहाँ भी एक सरकारी सिपाही रहता था; किन्तु उसे एक भोटिया लामासे क्या लेना था। पार होकर चढ़ाई शुरू हो गयी। चढ़ाईमें अब उतनी फुरती नहीं हो सकती थी। पाँच बजेके बाद थकावट भी मालूम होने लगी। हमने सवेरे ही बसेरेका निश्चय कर लिया। पासके गाँवमें एक ब्राह्मणका घर मिला। गृहपतिने लामाको आसन दे दिया। साथीने भात बनाया। रात बिताकर फिर हम ऊपरकी ओर बढ़े। कितने ही गाँवों और नालोंको पार करते दोपहरके क़रीब हम डँडेपर पहुँचे। डँडेको पार करते ही फिर वृक्षोंसे शून्य पहाड़ मिला। बारह बजेके बाद दूसरा डाँडा भी पार कर लिया, और अब हम काठमाण्डवसे कुत्ती जानेवाले रास्तेपर थे। यह रास्ता ऊपर ऊपरसे जानेवाला है। नीचेसे एक दूसरा भी रास्ता है, लेकिन वह बहुत गर्म है।

इस डँडेको पार करनेपर फिर हमें घना जङ्गल मिला। आजकल कुत्तीसे नमक लानेका मौसम था, इसलिये झुण्डके झुण्ड आदमी या तो मकई, चावल लेकर कुत्तीकी ओर जारहे थे, या नमक पीठपर लादे पीछे लौट रहे थे। दो बजेके क़रीबसे फिर उतराई शुरू हुई। अब भी हम शर्वोंकी बस्तीमें थे। यल्मो लोग भी शर्वा भोटियोंकी एक शाखा हैं। यह शर्वा भोटिये दार्जिलिङ्गतक बसते चले गये हैं, शर्-बाका मतलब है पूर्व-वाला। एक शर्वासे पूछनेसे मालूम हुआ कि डुक्पा लामा अभी इधरसे नहीं गुजरे हैं। विश्वास हो चला, शायद पीछे ही हैं। एक घण्टेकी उतराईके बाद मालूम हुआ, डुक्पा लामा अगले गाँवमें ठहरे हुए हैं। बड़ी प्रसन्नता हुई। तीन बजे हम जाकर उनके सामने खड़े हुए। मेरा उनका कोई झगड़ा तो था नहीं, सिर्फ़

जातीय स्वभावके कारण उन्होंने मेरी उपेक्षा की थी। सभी लोग 'पँडिता' को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस रातको वहीं रहना हुआ। गाँव तमङ्गों-का था। ये लामा धर्मके माननेवाले कहे जाते हैं, लेकिन डुक्पा लामा ऐसे बड़े लामाके लिये भी उनको कोई श्रद्धा न थी। दाम देनेपर भी मुश्किलसे चीज़ मिलती थी। मेरे दिलमें अब पूर्ण शान्ति थी। कुल्लूके रिश्वन् साथ थे। डुक्पा लामाका शरीर बहुत भारी था, और चलनेमें बहुत कमज़ोर थे, इसलिये बीचबीचमें उनको ढोनेके लिये दो आदमी साथ ले लिये थे। हमारी जमातमें चार लामा और चार गृहस्थ थे। इस प्रकार सब मिलाकर हम आठ आदमी थे।

सवेरे फिर उतराई शुरू हुई। यहाँ नदीपर लोहेका झूलेवाला पुल था। आम रास्ता होनेसे यहाँ चट्टीपर दूकानें थीं। खानेकी और कोई चीज़ तो न मिली, हाँ आगमें भुनी मछलियाँ मिलीं। चढ़ाई फिर शुरू हुई। शामतक चढ़ाई चढ़ते हम तमङ्गोंके बड़े गाँवमें पहुँचे। वहाँ रात बिता गुरुको ढोनेके लिये दो आदमी ले फिर सवेरे चल पड़े। एक डाँडा और पार करना पड़ा, फिर उतराई शुरू हुई। अन्तमें हम काली नदीके किनारे पहुँच गये। अब हम काठमाण्डवसे आनेवाले बड़े मार्गपर आगये। सड़कपर नमकवालोंका मेलासा जाता हुआ मालूम होता था। अब हम शर्बा लोगोंके प्रदेशमें थे। १८ मई (४ ज्येष्ठ) को हम काली नदीके ऊपरी भागपर शर्बोंके एक बड़े गाँवमें ठहरे। साथियोंने बतलाया, कल हम नेपालकी सीमान्त चौकी पार करेंगे।

इस यात्रामें और लोग तो थुक्पा सत्तूसे काम चला लिया करते थे, किन्तु मेरे और डुक्पा लामाके लिये भात बना करता था। कभी कोई जङ्गली साग मिल जाया करता। कभी भुनी मछलीका झोल मिल जाता था। आज तो इस गाँवमें मुर्ग़ीके अण्डोंकी भरमार थी। हमने चालीस पचास अण्डे खरीदे, और रातको ही सबने उन्हें चट कर दिया। नीचे तो मुझे इन चीज़ोंसे कुछ सरोकार न था, किन्तु मैंने इस यात्रामें मांसका परहेज छोड़ दिया था। लड़कपनमें तो इसका अभ्यास था ही, इसलिये घृणाकी कोई बात नहीं। उसी रातको मैंने यल्मोमें लिखे

कुछ कागज़ोंको जला दिया। मैंने सोचा कि तातपानीमें कोई देखभाल न करने लगे।

हम काली नदीके ऊपरी भागपर थे। धीरे धीरे नदीकी धारकी ऊँचाईके साथ साथ हम भी ऊँचेपर चढ़ते जाते थे। नदीके दोनों ओर हरियाली ही हरियाली थी। सभी जगह जङ्गल तो नहीं था, किन्तु नङ्गा पर्वत कहीं न था। दो बजेके क़रीब हम तात-पानी पहुँचे। गर्म पानीका चश्मा होनेसे इसे तात-पानी कहते हैं। गाँवमें नेपाली चुङ्गी-घर और डाकखाना है। मेरी तबियत घबरा रही थी। डर रहा था, 'तुम मधेसका आदमी कहाँसे आया' तो नहीं कहेगा। हमारे लामा पीछे आ रहे थे। चुङ्गीवालोंने पूछा—लामा कहाँसे आते हो ? हमने बतला दिया, तीर्थसे। चुङ्गीसे छुट्टी मिल गयी। रिञ्चन्‌ने कहा—'अब हो गया न काम खतम ?' उसी वक्त मुझे मालूम हुआ कि फौजी चौकी आगे है। मैंने कहा—भाई ! असली जगह तो आगे है।

थोड़ी देरमें लामा भी आ गये। इस वक्त वर्षा हो रही थी। थोड़ी देर एक झोपड़ीमें हमें बैठना पड़ा। फिर चल पड़े। आगे एक ऊँचे पर्वत-बाहुसे हमारा रास्ता रुक सा गया। नदीकी धार भी किधर-से होकर आती है, नहीं मालूम पड़ता था। अब मेरी समझमें आया, क्यों तात-पानीकी फौजी चौकी तात-पानीमें न होकर आगे है। वास्तवमें यह सामनेकी महान् पार्वत्य दीवार सैनिक दृष्टिसे बड़े महत्वकी है। नीचेसे जानेवाली बड़ी पल्टनको भी कुछ ही आदमी इस दीवारपरसे रोक सकते हैं। थोड़ी देरमें चढ़ाई चढ़ते हम वहाँ पहुँच गये जहाँ रास्तेमें पहरावाला खड़ा था। पहरेवालेने सबको रोक कर बैठाया, फिर हवल्दार साहेबको बुला लाया। यही वह असल जगह थी, जिससे मैं इतना डरा करता था। मैं अपनेको साक्षात् यमराजके पास खड़ा समझ रहा था। पूछनेपर हमारे साथीने कह दिया, हमलोग केरोङ्के अवतारी लामाके चेले हैं। लामा भी थोड़ी देरमें आगये। हवल्दारने जाकर कप्तानको खबर दी। उन्होंने सूबेदारको भेज दिया। आते ही एक एकका नाम-ग्राम लिखना शुरू किया। उस समय यदि किसीने मेरे चेहरेको देखा होता, तो उसे

मैं अवश्य बहुत दिनोंका बीमार सा मालूम पड़ता। भरसक मैं अपने मुँहको उनके सामने नहीं करना चाहता था। अन्तमें मेरी बारी भी आयी। रिम्बेन्ने कहा—इनका नाम खुनू छवङ् है। सबको छुट्टी मिली। मैं भी परीक्षामें पास हो गया। पेट भरकर साँस ली। शाम क़रीब थी, इसलिये अगले ही गाँवमें ठहरना था। सूबेदारने गाँवके आदमीको कह दिया कि अवतारी लामाको अच्छी जगहपर टिकाओ और देखो तकलीफ न हो। हमलोग उसके साथ अगले गाँवमें गये। यह गाँव फैजी बाँहको आड़में ही था। रातमें रहनेके लिये एक अच्छा कोठा मिल गया।

आज (१९ मई = ५ ज्येष्ठ) डुकूपा लामाने देवताकी पूजा आरम्भ की। सत्तूकी पिण्डियोंपर लाल रङ्ग डालकर मांस तय्यार किया गया। घरसे बढ़िया अरक (= शराब) आया। घीके बीसों दीपक जलने लगे। थोड़े मन्त्रोंके जापके बाद, डमरू गड़गड़ाने लगा। रातके दस बजेतक पूजा होती रही। पीछे प्रसाद बाँटनेका समय आया। शराबकी प्रसादी मेरे सामने भी आयी। मैंने इन्कार कर दिया। इसपर देवताके रोष आदिकी कितनी ही दलीलें पेश की गयीं; लेकिन यहाँ उन देवताओंको कौन मानता था। इधर चढ़ाईसे ही मैंने दोपहरके बाद न खानेका नियम तोड़ दिया था। लाल सत्तूसे मैंने इन्कार नहीं किया।

दूसरे दिन सवेरे चल पड़े; दो घण्टेमें हम उस पुलपर पहुँच गये, जो नेपाल और तिब्बतकी सीमा है। तिब्बतकी सीमामें पैर रखते ही चित्त हर्षसे विह्वल हो उठा। सोचा, अब सबसे बड़ी लड़ाई जीत ली।

(क्रमशः)

राहुल सांकृत्यायन

काल-निर्णयकी विद्या

इस विश्वकी सम्पूर्ण घटनाएँ एक साथ नहीं हुई हैं किन्तु इन घटनाओंमें पूर्वापरका क्रम है। पूर्वापरके क्रमको निर्धारित करनेके लिये गणनाकी रीति एवं गणनाके सङ्केतकी आवश्यकता होती है। आजकलके बहुतसे प्रचलित संवतोंको इसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये मनुष्योंने अपनाया है। इस प्रकारसे घटनाओंके पूर्वापरको निर्दिष्ट करनेका अङ्गरेजी नाम क्रानोलाजी है। क्रानोलाजीसे हमें इस वातके ज्ञानमें सहायता मिलती है कि अमुक घटना दूसरी घटनासे कितने पहिले अथवा कितने दिन बादमें हुई है। पृथिवी अपनी धुरी अथवा कीलीपर जितने समयमें एक चक्कर लगाती है उतने समयको हम एक दिन कहते हैं। पृथिवी सूर्यके चारों ओर अपना चक्कर जितने समयमें समाप्त करती है उसका नाम वर्ष है।

पृथिवीकी गतिके स्थानमें हम और कोई अन्य सङ्केत भी कालके मानदण्डका स्थिर कर सकते हैं। कालका ज्ञान हमें किसी वस्तुके परिवर्तनके साक्षात्कार करनेसे ही होता है। यदि विश्वमें परिवर्तन न होवें तो काल जैसे किसी पदार्थके माननेकी आवश्यकताही न पड़े। गुलाबके पेड़पर अभी कुछ घण्टे पूर्व एक छोटी कली थी। कुछ घण्टोंके बाद उस कलीकी पँखुरियाँ विकसित देख पड़ती हैं। इस परिवर्त्तित दशाने कालका हमें ज्ञान कराया। ठीक इसी प्रकारसे अन्य और भी बहुतसे परिवर्त्तन होते रहते हैं, जिनको देखकर हम काल अथवा समय जैसे किसी पदार्थकी सत्ताको माननेमें विवशसे हो जाते हैं। पृथिवीकी गतिके स्थानमें यदि हम अन्य किसी ग्रह अथवा उपग्रहकी गतिको कालका

मानदण्ड मान लेवें तो हमारे दिनरात तथा महीनों और वर्षोंके समय-में बहुत अन्तर आसकता है ।

हम थोड़ी देरके लिये कल्पना कर लेते हैं कि आजसे हम सूर्यके उदय और अस्त होनेके परिवर्त्तनको देखकर दिन और रात्रिके काल-को नहीं माना करेंगे । आजसे चन्द्रमाकी गति और परिभ्रमणके आ-धारपर मासकी अवधि भी नहीं निश्चित की जायगी । किन्तु कालका मानदण्ड प्रकाशकी चालके आधारपर स्थिर किया जायेगा । तो इस मानदण्डके रखनेसे क्या होगा इसे अब देखना है ।

प्रकाश एक सेकण्डमें एक लाख ८६ हज़ार मीलकी गतिसे चलता है—यह बात तो मानी हुई है । सूर्य हमारी पृथिवीसे ९ करोड़ २० लाख मीलके लगभग दूर है । सूर्यसे चली हुई प्रकाशकी लहरका धक्का हमारी आँखपर चलनेसे ८ मिनिटके बाद आकर लगता है, तब हमें आकाशके मध्यमें स्थित सूर्यकी सत्ताका ज्ञान होता है । यदि काल-का मानदण्ड प्रकाशकी चालके आधारपर रखकर हम यह मान लेवें कि एक इञ्च स्थानके चलनेमें प्रकाशको जितना समय लगता है वह हमारी सबसे छोटी तथा व्यावहारिक कालकी इकाई होगी, उसका ही नाम हम आजसे सेकण्ड अथवा निमेष मान लेंगे, तब यह सेकण्ड आजके माने हुए सेकण्डसे ११ अरब ७६ करोड़ ४९ लाख ६० हजार गुना छोटा होगा ।

$$\frac{\text{१ सेकण्ड}}{१८६००० \times १७६० \times ३ \times १२} = \frac{१}{११७६४९६००००}$$

मील × गज × फीट × इञ्च

इस कालके सम्मुख हमारा आजकलका सेकण्ड कल्प जैसा महान् मालूम पड़ेगा । मिनिट और घण्टोंकी महत्ता कल्पनातीत हो जायेगी । यदि इञ्चके भी और विभाग करते चले जावें और उन छोटे छोटे विभागोंमेंसे एक विभागके मध्यके प्रकाशकी चालके आधारपर कालकी इकाई नियत करना चाहें तो बड़ा विचित्र परिणाम निकलेगा । वह यह होगा कि किसी स्थानपर पहुँच कर इस इञ्चके छोटे छोटे टुकड़े होने

बन्द हो जायेंगे। उसका कल्पित नाम परमाणु अथवा एलक्ट्रान अथवा अन्य कुछ रख लिया जा सकता है। यह विभाग रूपरहित होंगे। समय भी रूपरहित ही है। रूपरहित दोनों पदार्थ अर्थात् देश और काल अब एकरूप हैं। अर्थात् दोनों ही नीरूप हैं। यह नीरूपता दोनों-का ही समान लक्षण है। अब इन दोनोंको एक कहें अथवा दो, यह भी शङ्का उत्पन्न हो सकती है। इसकी विवेचना सम्भवतः कठिनतम विषयोंमें गिनी जा सकती है। यह तो एक कल्पनाका परिणाम निकला। अन्य कल्पनाकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। हम कालके कल्पित विभागोंको ही स्वीकार कर लेना श्रेयस्कर समझते हैं। मनुजीने मनुस्मृतिमें कालका विभाग सबसे पहिले अध्यायमें किया है।

मनुजीने सबसे छोटी और व्यावहारिक कालकी इकाईकी संज्ञा निमेष रखी है। मनुष्यकी आँखके उन्मीलन और निमीलनका जो स्वाभाविक काल है उतने समयको निमेष कहते हैं।

१८ निमेषकी १ काष्ठा
३० काष्ठाकी १ कला
३० कलाका १ मुहूर्त्त
३० मुहूर्त्तका १ दिनरात

हमारे इस दिनरातकी अपेक्षा ३० गुना बड़े पित्र्य दिन और रात हैं। अर्थात् हमारे १५ दिनके बराबर पित्र्य एक दिन होगा और हमारी १५ रात्रियोंके बराबर एक पित्र्य रात्रि होगी।

एक दैव दिन हमारे ६ महीनेके बराबर होगा और एक दैव रात्रि भी हमारे ६ महीनेके बराबर होगी।

ब्राह्म दिन तो बहुत ही बड़ा होता है। उसका प्रमाण यह है। १७ लाख २८ हजार मानुषवर्षोंका कृतयुग होता है। १२ लाख ९६ हजार मानुषवर्षोंका त्रेतायुग होता है। ८ लाख ६४ हजार मानुषवर्षोंका द्वापर होता है। ४ लाख ३२ हजार मानुषवर्षोंका कलियुग होता है। इन चारोंको मिलानेसे एक चतुर्युगी अथवा एक महायुग होता है। इस एक चतुर्युगीमें ४३ लाख २० हजार मानुषवर्ष होते हैं।

७१ चतुर्युगियोंकी अर्थात् ३० करोड़ ६७ लाख २० हज़ार वर्षों-की संज्ञा मन्वन्तर है।

ऐसे ६ मन्वन्तर अर्थात् (१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) उत्तम (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष यह तो व्यतीत हो चुके हैं। सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। ज्योतिषके सिद्धान्तसे सातवें मन्वन्तरकी यह २८वीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युगीमें कलियुगके पाँच हजार इकतीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। और आजकल (१९८७ विक्रम) बत्तीसवाँ वर्ष चल रहा है।

इन उपर्युक्त एक हज़ार चतुर्युगियोंका एक ब्राह्मदिन होता है। सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष्के ग्रन्थोंमें पराद्धर्य सङ्ख्याका उल्लेख है। एक अङ्कके आगे १७ और बिन्दु रखनेसे पराद्धर्य काल होता है।

ज्योतिष्के ग्रन्थोंमें ब्रह्माकी आयु इसी पराद्धर्यकालसे निश्चित की गयी है। हिन्दुओंके वार्षिक पञ्चाङ्गोंके अनुसार हिन्दुओंके धार्मिक कृत्योंकी तिथि आदि नियत की जाती है। कृत्यके प्रारम्भमें जो सङ्कल्प किया जाता है उसमें देश और कालकी बिल्कुल ठीक स्थिति प्रदर्शित कर दी जाती है। उस सङ्कल्पके वाक्यसे कालके विषयका हिन्दुओंका विश्वास बहुतही अच्छी तरह व्यक्त हो जाता है। सङ्कल्पके वाक्यमें मन्वन्तर, युग, संवत्, मास, दिन और मुहूर्त्त आदि सबका सन्निवेश किया गया है। सामान्यरूपसे यही मत माना जाता है कि सम्प्रति सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। परन्तु थियासोफिस्ट लोगोंका एक यह भी विचार है कि दो मनुओंके बीचके कालको मन्वन्तर कहते हैं। एक मनु तो मूल-मनु समझने चाहिये, एक बीज-मनु। इनके मध्यमें मन्वन्तरका काल है। इनकी गणनाके अनुसार गणितके हिसाबको शुद्ध करनेके लिये वर्त्तमान मन्वन्तरका काल एक मनुका ही काल है। काल-गणनाका उपर्युक्त प्रकार हिन्दुओंमें परम्परासे चला आरहा है। इस एक प्रकारके अति-रिक्त कालकी गणनाके और भी बहुतसे प्रकार भिन्न भिन्न देशोंमें काममें लाये जाते हैं।

कालनिर्णयकी विद्याको दो बड़े भागोंमें विभक्त किया जा सकता है।

(१) निरपेक्ष अर्थात् अनन्य सम्बद्ध काल-निर्णय (२) अन्य सापेक्ष अर्थात् परस्पर अन्वित काल-निर्णय ।

कालनिर्णयकी विद्याके महत्त्वको भूविद्याके अनुसन्धानोंने बहुत बढ़ा दिया है । भूविद्याके अनुसन्धान करनेवालोंने पृथिवीके गर्भमें दबी हुई विकृताकार परतों और स्तरोंको देखकर सबसे पहिले इस बातको बड़े ही विश्वाससे कहा कि जो स्तर ऊपर हैं वे नवीन हैं, और जो स्तर जितने ही नीचे हैं वे उतनेही प्राचीन हैं ।

उनकी गवेषणाओंसे यह बात भी मालूम हुई कि भिन्न भिन्न परतोंके जमनेके समयमें इस पृथिवीके प्राणिजात एवं ओषधिजातका क्या रूप था, तथा किस प्रकारसे उनकी उन्नति और अवनति हुई, और कब किस परिस्थितिमें जाकर उनका सर्वनाश तक होगया । यह बात तो स्पष्ट ही है कि कालक्रमसे शनैः शनैः जैसे अन्य विषयोंका ज्ञान दृढ़ भित्तिपर सुव्यवस्थित होता जा रहा है वैसे ही काल-निर्णयकी विद्याको भी आजतक सुन्दर रूपमें पहुँचनेका पर्याप्त अवसर मिल चुका है । इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अन्य घटनाओंकी अपेक्षा सूर्योदय और सूर्यास्तकी घटना अथवा दिन और रातका होना मनुष्यों-के ध्यानको अपनी ओर अधिक आकृष्ट करता है । सूर्योदय और सूर्यास्तको मनुष्योंने कालका मानदण्ड सभ्यताकी पर्याप्त अभिवृद्धि कर लेनेके पश्चात् ही नियत किया होगा । घटनाओंके पूर्वापर-क्रमको सुव्यवस्थित करनेके लिये कालके मानदण्डके अतिरिक्त गणित और लेखनकलाके ज्ञानकी भी आवश्यकता स्वतः सिद्ध है ।

सूर्यके उदयसे लेकर सूर्यके अस्त होनेतक सौर दिनका परिमाण हिन्दू लोग मानते हैं । रोमन लोग भी सूर्योदयसे सूर्यास्त तक ही दिन-का स्वाभाविक काल मानते थे । इङ्गलैण्ड आदि कुछ पाश्चात्य देशों-में रात्रिके ठीक मध्यसे दिनका प्रारम्भ होता है । हिन्दुस्तानमें भी रेलगाड़ियोंके समय और टिकटोंकी तारीख आदिके लिये मध्य रात्रि-से ही दिन प्रारम्भ होता है । बराबर समयके २४ घण्टोंमें दिन और रातका विभाग बहुत पुराने समयसे चला आता है । पहिले पहिल इस

प्रकारके विभागके करनेमें जो कठिनता आयी होगी, उसका हम आज अनुमान भी नहीं कर सकते हैं। आर्य लोग इसके आविष्कारक हैं। बैबिलोनियाके रहनेवालोंने सेक्साजिसीमल डिवीजनका आविष्कार किया।

सेक्साजिसीमलका अर्थ है साठवाँ हिस्सा। ६० सेकण्डका एक मिनट होता है अर्थात् एक सेकण्ड, एक मिनिटका साठवाँ हिस्सा है। ६० मिनिटका एक घण्टा होता है अर्थात् एक मिनिट, एक घण्टेका साँठवाँ हिस्सा है। इस प्रकार ६० को विभाजक रखनेकी शैलीका नाम सेक्साजिसीमल डिवीजन है। ईसासे १५० (विक्रमसे ९३) वर्ष पूर्व हिप्पर्चासने[१] इसे सीखा। भूगोल शास्त्रके प्रसिद्ध ज्ञाता टालेमी[२] ने ईसासे १५० (वि० २०७) वर्ष बाद इसी विभागको अङ्गीकार कर इसका सर्वत्र बहुत प्रचार कर दिया।

जब फ्रान्सवालोंने घड़ियोंको बनाना शुरू किया तब उन्होंने भी घड़ियोंकी तीनों सूइयाँ इसी प्रचलित विभागके अनुसार ही घड़ीके मुख भागपर व्यवस्थित कीं।

सप्ताहमें भी रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन्हीं सात दिनोंका आवर्त्तन न मालूम कबसे होता चला आ रहा है।

पुराने समयके आर्य, असीरियन, बैबिलोनियन तथा अन्य पौरस्त्य देशवासी लोग इन्हीं सात दिनोंको मानते थे। पश्चिममें भी आकाश-के सात नक्षत्रोंके आधारपर ही इन सात दिनोंके नाम रखे गये। परन्तु पुराने नामोंमेंसे कुछ नाम भाषाभेदके कारण बदल दिये गये हैं।

सूर्य और चन्द्र दोनों ही आकर्षक थे। अतः मनुष्योंने सौर मास और चान्द्रमास दोनोंको ही अपनाया। चान्द्रमास कहीं कहीं अमान्त है और कहीं कहीं पूर्णिमान्त। चन्द्रमा पृथिवीके चारों ओर चक्कर लगा रहा है। पृथिवीके चारों ओर इसका एक चक्कर २९ दिन १२ घण्टे ४४ मिनिट और ३ सेकण्डमें हो जाता है। सूर्य अपने अयनवृत्त

१. Hipporchos.
२. Ptolemi.

अथवा क्रान्तिमण्डलसे चल कर पुनः अपने क्रान्तिमण्डलपर प्रायः ३६५ दिन ५ घण्टे ४८ मिनिट और ५१·६ सेकण्डमें आ जाता है। यह एक वर्षका परिमाण हुआ। इसीके अनुसार ऋतुओंकी व्यवस्था होती है।

पश्चिममें पहिली जनवरीसे प्रारम्भ करके ३१ वीं दिसम्बर तक वर्ष माना जाता है। हिन्दू लोगोंके पञ्चाङ्गोंमें चैत्रसे फाल्गुन तक वर्ष माना जाता है। इस उपर्युक्त बातसे यह स्पष्ट ही है कि सौर और चान्द्र पञ्चाङ्गोंमें भेद पड़ेगा। मिश्रके प्राचीन रहनेवाले सौर और चान्द्र दोनों प्रकारके पञ्चाङ्गोंसे परिचित थे। उन्होंने सौर और चान्द्र पञ्चाङ्गोंके प्रबल भेदसे आनेवाली अशुद्धियोंको दूर करनेके लिये एक सीधा नियम बना लिया था। उन्होंने सम्पूर्ण चान्द्रमासोंको तीस तीस दिनका मान लिया था, १२ महीनोंमें इस प्रकारसे ३६० दिन होगये। सौर वर्षसे इस चान्द्र वर्षमें लगभग ५ दिन कम रहे। इसके लिये वे लोग १२ वें महीनेमें ५ दिन और अधिक जोड़ देते थे अर्थात् १२ वाँ महीना ३० दिनके स्थानमें ३५ दिनका मानकर चान्द्र वर्ष और सौर वर्षके दिनोंका सादृश्य कर लेते थे। यहूदी लोग भी चान्द्रमासके अनुसार ही पञ्चाङ्ग बनाते थे। सौर वर्षके अनुकूल ऋतुओंकी व्यवस्था आदिके लिये कभी कभी एक और तेरहवाँ मास अतिरिक्त मास अथवा मलमासके नामसे जोड़ दिया करते थे। यह मलमास हिन्दुओंके यहाँ भी जोड़ दिया जाता था, ऐसा उल्लेख कहीं कहीं मिलता है। रोम और यूनानके लोग भी चान्द्रमासको ही व्यवहारमें लाते थे। इस प्रकार चान्द्रमासोंके द्वारा सौर वर्षके साथ आनेवाली विभिन्नताको भिन्न भिन्न उपायोंसे दूर किया करते थे। अन्तमें जूलियस सीज़रने जूलियन केलेण्डरको प्रचलित किया। इसके अनुसार वर्षमें ३६५ दिन कर दिये गये और प्रत्येक चौथे वर्षमें फरवरीके महीनेमें २८ दिनके स्थानमें २९ दिन कर दिये गये। इस प्रकार अब पूर्ण सौर वर्षका शुद्धकाल ११ मिनिट और कुछ सेकण्ड अधिक होगया। जूलियन केलेण्डर १ जनवरी ४६ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। ११ मिनिट और कुछ सेकण्डोंके बढ़ जानेसे

बहुत बड़ा और तात्कालिक परिवर्त्तन तो दृष्टिगोचर नहीं हुआ, परन्तु बढ़ते बढ़ते १५८२ ई० (१६३९ वि०) में पूरे १० दिन बढ़ गये । तब गिर्जाघरोंके उत्सवोंमें अड़चन पड़ने लगी । अतः १३ वें पोप ग्रेगरीने इस अशुद्धिको दूर करनेका उपाय सोचना शुरू किया । उसे एक बात मौकेकी सूझ गयी । ३२५ ई० (३८२ वि०) में वासन्तिकसम्पात २१ मार्चको हुआ था, यह बात नाइसकी प्रसिद्ध सभाके कारण उसे भली भाँति विदित थी । इस वर्ष अर्थात् १५८२ ई० (१६३९ वि०) वासन्तिकसम्पात ११ मार्चको हो रहा था । अतः पोप ग्रेगरीने आज्ञा दी कि आगामी ५ अक्टूबरको १५ अक्टूबर समझा जावे । इस प्रकार से १० दिनोंको कम करके इस अशुद्धिको उसने दूर किया । और आगेसे इस प्रकारकी त्रुटिको दूर करनेके लिये भी उसने आज्ञा दी कि साधारणतया १०० वें वर्षका फरवरीका महीना २९ दिनका न माना जाया करे, केवल प्रत्येक ४०० वें वर्षमें ही यह २९ दिनका समझा जाय । इस प्रकार कृत्रिम उपायोंसे जहाँतक सम्भव था इस अव्यवस्थाको दूर किया गया । अब इस ग्रेगेरियन पञ्चाङ्गसे ५ हजार वर्षोंमें एक दिनका अन्तर आकर पड़ेगा । रोमन कैथोलिक धर्मके माननेवालोंका जहाँ प्रमुत्व था वहाँ तो यह कैलेण्डर तत्काल प्रचलित होगया । परन्तु जर्मन लोगोंने तथा अन्य प्रोटेस्टैण्ट लोगोंने इसे १७०० ई० (१७५७ वि०) तक नहीं स्वीकार किया । इङ्गलैण्डमें १७५१ (१८०८ वि०) में एक नियम इस केलेण्डरको स्वीकृत करनेके लिये बनाया गया ।

वर्षका आरम्भ कबसे माना जाना चाहिये, इस विषयमें भी भिन्न भिन्न देशवासियोंके भिन्न भिन्न मत रहे हैं । मिश्र, असीरिया और ईरानके लोग शारदीय सम्पातसे वर्षका आरम्भ मानते थे । यूनानके लोग ४३२ ई० पू० (३७५ वि० पू०) मेटनके समयतक मकरकी सङ्क्रान्तिसे वर्षका आरम्भ मानते थे ।

यहूदी लोगोंका धार्मिक वर्ष तो वासन्त सम्पातसे प्रारम्भ होता था परन्तु उनका राजकीय वर्ष शारद सम्पातसे प्रारम्भ होता था । रोमन

लोगोंने सबसे पहिले वर्षकी गणना १ जनवरीसे करनी शुरू की परन्तु अन्य देशवालोंने इसे धीरे धीरे बहुत समयके उपरान्त अपनाया।

फ्रान्समें १५६३ ई० (१६२० वि०) में, स्काटलैण्डमें १६०० ई० (१६५७ वि०) में और इङ्गलैण्डमें १७५२ ई० (१८०९ वि०) में वर्षका आरम्भ पहिली जनवरीसे माना जाने लगा। इसके पहिले पश्चिममें भी वर्षके आरम्भकी कोई निश्चित तथा सर्वसम्मत तिथि नहीं थी। प्राय: २५ वीं मार्चसे वर्ष प्रारम्भ हुआ करता था।

भिन्न भिन्न देशोंमें कालकी गणनाके लिये भिन्न भिन्न ऐतिहासिक संवत् प्रचलित हैं।

यूनानके लोग प्रथम ओलिम्पियडसे, जिसका समय ७७६ ई० पू० (७१९ वि० पू०) है, अपने संवत्को प्रारम्भ करते हैं। हमें इतिहाससे विदित है कि यह संवत् ४४० ई० (४९७ वि०) तक चलता रहा। रोमन लोग अपनी राजधानीकी आधार-शिलाके समयसे संवत्की गणना प्रारम्भ करते हैं। इसका समय ७५३ ई० पू० (६९६ वि० पू०) है। बैबिलोनियाके लोग नवूनसारके संवत्से अपने संवत्को प्रारम्भ करते हैं। इसका समय ७४७ ई० पू० (वि० पू० ६९०) है।

चीनके लोग सम्राट् यओके समयसे अर्थात् २ हजार वर्ष ई० पू० से अपना संवत्सर चलाते हैं। ईसवी सन् ईसामसीहके जन्मसे प्रारम्भ होता है। इस ईसवी सन् ने कब और कैसे भिन्न भिन्न जातियोंके अन्य संवतोंको दबा दिया, इसका शुद्ध ज्ञान सम्प्रति बहुत कठिन है। तथापि इतना स्पष्ट है कि ईसाई धर्मके प्रचारके कारण ही ईसवी सन्का अधिक प्रसार हुआ है।

इटलीमें ईसवी सन् छठी शताब्दीमें अपनाया गया। फिर फ्रांसमें इसका प्रवेश हुआ। ८ वीं शताब्दीमें इङ्गलैण्डमें इस सन्का व्यवहार होने लगा। डाइओनिसिअस एक्सिगुअसने इस सन्को सबसे प्रथम प्रवृत्त किया था। वैदिक साहित्यमें तथा उत्तर कालके अन्य साहित्यमें भी इस बातके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि पहिले कालकी अवधिको सूचित करनेका सरल तरीका शरत् और

हेमन्त आदि ऋतुओंके न्यूनाधिक्यके आधार पर व्यवस्थित था। 'सौ शरद् ऋतु पर्यन्त हम जीवें।' 'सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त हम अग्निहोत्रकी अग्निको प्रज्वलित करते रहें।' इस प्रकारकी प्रार्थनाओंमें शरद् और हेमन्तका अर्थ वर्ष ही है। वर्ष शब्द भी वर्षा ऋतुके आधारपर बना है। १०० वर्षका अभिप्राय है सौ वर्षा ऋतु।

कालके सम्बन्धमें आजकल गम्भीर विवेचना हुआ करती है। परन्तु पहिले कालकी गणनापर इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। आदमके समयसे कितने वर्षके बाद ईसाका जन्म हुआ, इस विषयमें न्यूनातिन्यून ३२ मत भेद मिलते हैं। ६ हज़ार ९ सौ ८४ वर्षसे लेकर ३ हज़ार ७ सौ ८४ वर्ष तक इस कालके लिये स्वीकृत किये गये हैं। अर्थात् इसी एक घटनाके विषयमें सबसे बड़ी और सबसे छोटी वर्ष संख्याओंके बीचमें ३ हज़ार २ सौ वर्षोंका अन्तर है। यह कुछ कम अन्तर नहीं है। आजकल भारतमें बहुतसे संवतोंका व्यवहार होता है। भारतीयोंके आमोद-प्रमोद तथा विनोदके त्योहारोंके साथ भी कालकी गणनाका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। यज्ञके कार्योंके साथ कालज्ञानका सम्बन्ध एक ऋत्विज् शब्दसे ही विस्पष्ट हो जाता है। ऋत्विज् शब्द यज्ञके कार्यकर्त्ताओंके लिये प्रयुक्त होता है। ऋत्विज्का अर्थ है ऋतु ऋतुमें यज्ञ करनेवाला। जबतक ज्योतिषियोंका सम्प्रदाय पृथक् नहीं हुआ था तबतक ज्योतिष सम्बन्धी सम्पूर्ण बातोंका निर्णय भी यही याज्ञिक लोग किया करते थे।

ऋग्वेदके मन्त्रोंसे स्पष्टतया यह बात विदित होती है कि उस समय सौर वर्षमें चान्द्रमासोंकी गणनासे आनेवाली विभिन्नताको दूर करनेके लिये मलमासकी उत्पत्ति हो चुकी थी। वैदिक साहित्यमें (१) संवत्सर, (२) परिवत्सर, (३) इदावत्सर (४) अनुवत्सर, (५) उद्वत्सर, इन पाँच कालके विभागोंका भी प्रचार था। बादमें चलकर इस प्रकारके भेदोंका प्रचार न्यून होता गया।

वैदिक साहित्य और उत्तर-वैदिक साहित्यमें वर्षके आरम्भका मास आग्रहायण अर्थात् मार्गशीर्ष है। हायनका अर्थ वर्ष है। अग्रका अर्थ

है अगला। समुदित आग्रहायण शब्दका अर्थ वर्षका मुख है। यजुर्वेद में मधु और माधवको भी जो कि वसन्त ऋतुके दो मास हैं—वर्षके प्रारम्भिक मासोंमें परिगणित किया है।

आजकल ५ बड़े संवत् भारतवर्षमें प्रचलित हैं। छोटे छोटे तथा गौण संवत् तथा अब्द तो बहुत अधिक हैं। इन पाँच संवतोंमें से दो संवत् राजकीय हैं, दो धार्मिक तथा एक सामान्य। प्रथम राजकीय संवत् विक्रमका है। यह लगभग ईसासे ५७ वर्ष पूर्वसे प्रारम्भ होता है। पहिले इसे 'संवत्' इस सामान्य शब्दसे व्यवहारमें लाते थे। संवत् का अर्थ है वर्ष। बादमें दूसरे और संवतोंसे इसको बिल्कुल विस्पष्ट सूचित करनेके लिये इस संवत्के साथ विक्रमका नाम भी व्यवहृत होने लगा। दूसरा राजकीय संवत् शक (सीदियन) है। यह ईसासे ७८ वर्ष (१३५ वि०) पश्चात् प्रारम्भ होता है।

बौद्धोंका धार्मिक संवत् लङ्का तथा ब्रह्मदेशमें व्यवहृत होता है। जैनियोंका धार्मिक संवत् उत्तरीय भारतमें काममें लाया जाता है। गौतमबुद्धका जन्म विक्रम संवत्से लगभग ५ सौ वर्ष पूर्व हुआ। उनकी मृत्युका समय ४७७ वर्ष ईसासे पूर्व (४२० वि० पू०) है। वे ८० वर्षकी आयुमें परलोक वासी हुए थे। कोई कोई व्यक्ति ईसासे ५४४ वर्ष पूर्व ही (४८७ वि० पू०) बुद्धके निर्वाणका काल स्थिर करते हैं। महावीरका निर्वाण सम्भवतः ६६२ ई० पू० (६०५ वि० पू०) में हुआ।

परन्तु कोई कोई व्यक्ति इनके निर्वाणका समय भी ईसासे ४७० वर्ष पूर्व (४१३ वि० पू०) स्थिर करते हैं। इसी समयसे इन संवतोंका भी प्रचार हुआ।

सबसे पुराना संवत् कृष्ण भगवान्की मृत्युके उपरान्तसे प्रारम्भ हुआ माना जाता है। इसका नाम कलियुग संवत् अथवा कलि है। यह ईसासे ३१०१ वर्ष पूर्व (३०४४ वि० पू०) से प्रारम्भ होता है। ईसा-से ४०७७ वर्ष पूर्व (वि० पू० ४०२०) सप्तर्षिमण्डलका संवत् उनकी आकाशकी गति और स्थितिके आधारपर व्यवस्थित हुआ था। महा-

भारतमें युधिष्ठिरके राज्यका समय इस सप्तर्षिमण्डलकी स्थितिके आधारपर सूचित किया गया है। उस समय यह मघापर थे।

प्रो० मैक्समूलरने सर्व प्रथम इस बातकी घोषणा करनेका साहस किया कि विक्रम संवत्के व्यवहारको प्रमाणित करनेवाला कोई भी शिलालेख ५४३ ई० सन्से (६०० वि०) पूर्वका नहीं मिलता है परन्तु फिर भी यह माना जाता है कि विक्रम संवत्का प्रचार ईसासे ५६ अथवा ५७ वर्ष पूर्वसे है।

प्रो० कीलहार्नने कुछ शिलालेखोंको उक्त तिथिसे पूर्वका भी प्रमाणित किया जिनमें विक्रम संवत्को ही प्रयोगमें लाया गया था। परन्तु एक बातपर प्रो० कीलहार्नने भी बल दिया।

विक्रम नामका मालव संवत् कार्त्तिकादि है। शक संवत् चैत्रादि है। वर्षाके बाद शरदृऋतु सङ्ग्रामके लिये उपयुक्त समय समझा जाता था। यह विक्रम प्रदर्शनका काल था। विक्रमादित्य नामका मालवाका कोई राजा इस समयमें नहीं हुआ है। बादमें लोगोंने मालवाके विक्रमादित्य राजाकी और उसकी सभाके नवरत्नोंकी कल्पना कर ली है। इस प्रकारके वादविवादोंका कभी पूर्ण अन्त हो जायेगा, इसकी बहुत कम सम्भावना है, अतः इस मतके विरुद्ध भी बहुतसे मत हैं। कोई विक्रमादित्यको ही उपाधि मानते हैं। कोई इसी राजाकी सत्ताको ही प्रमाणित करनेका उद्योग करते हैं। इस समय हमारा तात्पर्य केवल विक्रम संवत्से ही है। इसे प्रो० कीलहार्नने भी स्वीकार ही किया है।

भारतवर्षके मुसलमानोंमें जिस हिज़री सन्का प्रचार है उसका उत्पत्तिक्षेत्र भारत नहीं किन्तु अरब है। हिज़रका अर्थ भागना है। २२ सितम्बर सन् ६२२ ई० (६७९ वि०) को मुहम्मद साहिबने अपने शत्रुओंसे व्यथित होकर मक्कासे मदीनाकी ओर प्रस्थान किया था। इस प्रस्थानके ६८ दिन पूर्वसे अर्थात् मुहर्रमके मासके प्रारम्भसे हिज़री सन् शुरू होता है। मुसलमान मज़हबको माननेवाली जातियोंमें इसका प्रचार है। कहीं २ परशुरामका संवत् भी प्रसिद्ध है।

हम इस कालनिर्णयकी विद्याको दो भागोमें विभक्त कर सकते हैं। (१) अनन्य संबद्ध (२) अन्य सापेक्ष। अनन्य संबद्धका अंग्रेजी नाम अब्सोल्यूट क्रानोलाजी है।

उपर्युक्त सब विषय इसी अनन्य संबद्ध कालनिर्णयके अन्तःपाती हैं। अन्यसापेक्ष कालनिर्णयका विषय भी बहुत विस्तृत है। अन्यसापेक्ष कालनिर्णयकी विद्याका एक स्थान ऐसा है जहाँपर इसे पुरातत्त्वकी विद्यासे पृथक् करना बड़ा कठिन हो जाता है। पुराण वस्तु शास्त्र अर्थात् आर्केआलाजीका मुख्य विषय प्रागैतिहासिक विषयोंकी विवेचना करना है।

एक स्थानपर यह दोनों विद्याएँ गङ्गा और यमुनाके समान परस्पर मिली हुई हैं। इस अन्यसंबद्ध अथवा अन्य सापेक्ष कालनिर्णयकी विद्याके लिये पृथिवीकी खुदाईसे बहुतसी उपयुक्त सामग्रियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं। पृथिवीके भीतर दबे हुए पुराने स्तरोंके साथ मिले हुए धातु द्रव्यों और अस्थियोंको देखकर पुरातत्त्वविशारद भूतकालकी बहुतसी विनष्ट और विपर्यस्त बातोंका पता चला लेता है।

पुराने समयके मृत प्राणियोंके कङ्काल और अस्थियोंके चित्र किन्हीं किन्हीं ऐसी शिलाओंपर खचित मिल जाते हैं, जिन शिलाओंका उत्पत्ति-काल उन जीवधारियोंके समयका ही है। बहुतसे ओषधिजात और प्राणिजातके चित्र इन शिलाओंपर ऐसे भी मिल चुके हैं, जिनका अस्तित्व अब इस संसारमें नहीं है। इस प्रकारकी विवेचना करते समय नदी आदिकी धारा और अन्य प्रकारके भौतिक परिवर्त्तनोंपर भी पर्याप्त विचार किया जाता है। न्यागरा प्रपातमें नदीकी धारा सैकड़ों फीटकी ऊँचाईसे गिरती है और अपने पतनव्यापारसे नीचेकी भूमिको काटती जाती है। उसके इस व्यापारका पूर्ण हिसाब लगाकर सर चार्ल्सलायलने इस बातके कहनेका साहस किया है कि ३५ हजार वर्षोंमें इस प्रपातसे नीचेकी भूमिका इतना कटाव सम्भव है। मिश्रकी नाइल नदीकी लहरों और धारा-प्रवाह आदिके कारण त्रिभुजाकार जिस डेल्टाकी भूमिका निर्माण हुआ उस भूमिका उत्खनन

करते हुए एक मूर्त्ति ९ फीट ४ इञ्चकी गहराईमें पहुँचकर मिली। नदीके द्वारा एक शताब्दीमें वस्तुतः कितनी कीचड़ जमा रह सकती है, इसका संकलन और व्यवकलन करनेके उपरान्त हार्नर साहिब इस परिणामपर पहुँचे कि एक शताब्दीमें ३½ इञ्च मोटी परत इस व्यापार-से जम सकेगी। अतः उन्होंने ९ फीट ४ इञ्च मोटे स्तरके नीचे दबी हुई इस उपलब्ध मूर्तिके आधारपर इस बातकी घोषणा की कि यह स्थल लगभग १३ हजार वर्ष पूर्व मनुष्योंसे अधिवासित था। और लोगोंने भी इसका समर्थन किया, क्योंकि मिश्रके इतिहासका नवीन प्रस्तरकाल अर्थात् निओलिथिक पीरियड विक्रमसे ७ हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है, यह बात प्रमाणित हो चुकी थी। मानवविज्ञान अर्थात् अन्थ्रापालाजीसे भी इस विषयमें बहुत सहायता ली गयी है।

विकासवादके माननेवाले लोगोंका विचार है कि जड़जगत्से ही चेतन जगत्की उत्पत्ति हुई। चेतनजगत्की वृद्धि होते होते बहुत कालके उपरान्त मनुष्याकार बन्दरोंसे अर्थात् गोरिल्ला, चिम्पाञ्जी, गिवन और औराङ्ग उटान आदिसे बढ़ते बढ़ते मनुष्यका वर्त्तमान रूप हो सका हैं। मनुष्य सीधा खड़ा हो सकता है। मनुष्यका यह रूप भी शनैः शनैः हुआ है। मनुष्य और मनुष्याकार बन्दरोंके मध्यमें एक और प्राणी भी था। उस प्राणीकी अब इस विश्वमें सत्ता नहीं है। कुछ प्राचीनकालकी ठठरियों और अस्थियोंको देखकर इस प्राणीकी सत्ताका अनुमान किया गया है। इसका कल्पित नाम डा० यूज़ीन डुबोइसने[1] सन् १८९२ ई० (१९४९ वि०) में पिथेकन्थ्रोपस एरक्टस[2] रखा है। इस प्रकारके क्रमविकासके आधारपर भी कालका सापेक्ष निर्णय बहुधा किया जाता है।

मिश्रके एक पिरामिड अर्थात् स्तूपका समय उसके कोणोंकी स्थिति और तत्कालीन एक नक्षत्रकी स्थितिके आधारपर सर जान हर्शेल[3] ने ईसासे ३४४० वर्ष पूर्व (३३८३ वि० पू०) स्थिर किया

१. Dr. Eugene Dubois. २. Pithecanthropus erectus.

३. Sir John Herschel.

है। सर नार्मन लकियर[१] ने स्टोनहेञ्ज सूर्य मन्दिरका निर्माणकाल उस समयके मन्दिरोंके निर्माणकी शैलीके नियमोंका विवेचन करके ईसासे १६८० वर्ष पूर्व (१६२३ वि० पू०) स्थिर किया है। उनके मतसे इसमें २०० वर्षों तकका हेरफेर किया जा सकता है।

बाल गङ्गाधर तिलकने वेदके एक मन्त्रमें आये हुए मृगशिरा नक्षत्र अर्थात् ओरायन की तात्कालिक स्थितिके आधारपर उसकी गतिका हिसाब लगाकर वेदके उस मन्त्रका समय विक्रमसे ४५०० वर्ष पूर्वके लगभग स्थिर किया है।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने भी शतपथ ब्राह्मणमें आये हुए 'एता वै कृतिकाः प्राच्यै दिशो न' अर्थात् ये कृत्तिका ठीक पूर्वमें स्थित हैं, इस वाक्यके आधारपर कृत्तिका नक्षत्रोंकी गति और स्थितिका हिसाब लगा कर शतपथ ब्राह्मणका काल विक्रम संवत्से लगभग ३ हजार वर्ष पूर्व स्थिर किया है। इन्हीं शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने वेदाङ्ग ज्योतिषके 'प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसौ उदक्', अर्थात् श्रविष्ठा नक्षत्रके प्रारम्भमें सूर्य और चन्द्रमा उत्तर दिशाकी ओर प्राप्त होते हैं, इस वाक्यके आधारपर गणितके द्वारा वेदाङ्ग ज्योतिषका समय भी विक्रमसे लगभग १४०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है।

सापेक्षकाल निर्णयकी विद्यामें अन्य भी बहुतसे अनुसन्धान हुए हैं। स्थालीपुलाकन्यायसे यह थोड़ेसे निदर्शन हैं। इस कालनिर्णयकी विद्यापर आजकल बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। गणित, इतिहास आदि विषयोंके अतिरिक्त साहित्य, दर्शन, धर्म, कला, और अनुदिन प्रतिक्षण उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंके भी प्रारम्भिक कालका अन्वेषण यह विद्या करती चली जा रही है।

रुद्रदेव शास्त्री

---

१. Sir Norman Lockyer.

भाग २ संख्या ४

विद्यापीठ

काशी विद्यापीठकी त्रैमासिक पत्रिका

चैत्र, १९८७

भौतिक और मानसिक जगत्

"सर्व एव जगत्यस्मिन्द्विशरीराः शरीरिणः ।
एकः मनः शरीरन्तु क्षिप्रकारिसदाचलम् ॥
अकिञ्चित्करमन्यत्तु शरीरं मांसनिर्मितम् ।"
योगवासिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग १२, श्लोक १०

संसारमें सदासे द्वन्द्व भावना रही है। मन-शरीर, आत्मा-प्रकृति, शक्ति-जड़ आदि द्वन्द्व-सूचक शब्द नित्य ही सुनाई पड़ते हैं। किन्तु वास्तवमें मानसिक और भौतिक जगत्की सीमा कहाँ है, यह विचारणीय है। साधारणतया ऐसा मालूम होता है कि पहले कोई वेदना होती है, जिससे ज्ञान होता है, बादमें इच्छा और क्रिया

उद्भूत होती है। हम देखते हैं कि पुष्पसे किसी संवेदनाने भीतर प्रवेश किया और उथलपुथल मचा दी। तब हमें पुष्पका ज्ञान हुआ, सुगन्धकी प्रतीति हुई। अब इच्छा हुई कि पुष्पका अवचय करें। हम उठ बैठे और पुष्प बटोरने लगे। ऐसी ही अनेक क्रियाएँ नित्य होती रहती हैं। ज्ञानके बाद इच्छा तथा क्रिया; और क्रियाके बाद पुनः ज्ञान तथा इच्छा हुआ करती है। शरीरके बिना ज्ञान नहीं हो सकता। शरीरसे ही, इन्द्रियोंसे ही संवेदनाएँ भीतर घुसती हैं और हमें ज्ञान होता है और ज्ञानसे सम्बद्ध वृत्तियाँ हैं। तब मनका अस्तित्व कहाँ है? मालूम होता है कि व्यर्थ ही शास्त्रकारोंने मनकी कल्पना की है। स्थूल दृष्टिसे देखनेवालेका मत यही है।

किन्तु वास्तवमें व्यक्तिके जीवनके दो भेद करना आधारहीन नहीं है। लोगोंकी धारणाका भी आलम्बन है। जीवनको मानसिक और शारीरिक भेदसे विभक्त करनेके लिए पर्याप्त कारण हैं। भेद इसलिये नहीं मालूम पड़ता कि मानसिक वृत्तियाँ और शारीरिक वृत्तियाँ परस्पर इतनी सम्बद्ध हैं कि स्थूल दृष्टिसे उनका विवेचन करना दुष्कर है। केवल अज्ञानी ही मानसिक और शारीरिक भेद नहीं मानते हों, ऐसी बात नहीं है। अनेक शास्त्रवित् भी इस प्रकारकी धारणामें उनके साथ हैं।

योगवासिष्ठके उपर्युक्त श्लोकसे हमें शारीरिक और मानसिक जगत्-का विभाग स्पष्ट मालूम होता है। उसमें कहा गया है कि शरीरीके दो शरीर होते हैं—एक मनोमय और दूसरा मांसनिर्मित। उपनिषद् भी मनोमय और अन्नमय कोश अलग मानते हैं। पश्चिमके अनेक शास्त्रज्ञ भी मन और शरीर ('माइण्ड' और 'बाडी') अलग मानते हैं। ऐसा माननेके लिए आधार क्या है? इसके लिए कुछ प्रमाण तो अवश्य ही होगा? इस प्रश्नका उत्तर उसी श्लोकमें है। शरीर मांस-निर्मित है। मांस स्थूल है, प्रत्यक्ष-गोचर है। वह छुआ जा सकता है, देखा जा सकता है। शरीरका उपचय और अपचय, वृद्धि और ह्रास हम चर्मचक्षुसे देख सकते हैं। लेकिन मनका या मानसिक वृत्तियोंका प्रत्यक्ष ज्ञान हमें नहीं होता।

मनोवृत्तियाँ ज्ञान, इच्छा, सङ्कल्प, अध्यवसाय आदि हैं। व्यक्ति और विषयके सन्निकर्षसे, सम्बन्धसे, विषयका ज्ञान, तद्विषयक इच्छा या अनिच्छा और उसे लेनेकी या छोड़नेकी किसी प्रकारकी क्रिया अथवा क्रिया करनेकी इच्छा, ये सभी मनोवृत्तियाँ अथवा चित्तवृत्तियाँ कही जाती हैं। उनमें एक प्रकारकी शक्ति या चेतनाका अनुभव होता है। इच्छा आदिका जो अनुभव हमें होता है वह स्थूल नहीं है। इच्छा-को कोई देख नहीं सकता, कोई उसे छू नहीं सकता। उसके अस्तित्व-का अनुमान ही किया जाता है। मान लीजिये, किसी व्यक्तिने कोई काम किया। यह काम उसने कैसे किया ? उसके और उस विषयके बीच सन्निकर्ष हुआ अथवा यों कहिये कि विषयका प्रकाश उसकी आँखों-पर पड़ा—उसकी कृष्ण तारा (रेटीना) में उसका चित्र प्रतिबिम्बित हुआ। इतना बाह्य संसारका व्यक्ति भी जानता है और वह देखता है कि व्यक्ति उसे लेनेके लिए हाथ बढ़ाता है। इससे वह अनुमान करता है कि विषयका उसे ज्ञान हुआ होगा और उसे लेनेके लिए किसी अन्तरङ्ग शक्तिने उसको विवश किया होगा अर्थात् व्यक्तिके मनमें उस विषयको लेनेकी इच्छा हुई होगी।

इस प्रकारसे शरीरमें और इच्छामें एक विशेष प्रकारका भेद अथवा गुण-वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। एक स्थूल और क्रियाहीन दिखाई देता है और दूसरा शक्तिशाली एवं वेगवान् मालूम होता है। इसी स्थूल भेदसे शरीर और मनका विभिन्न ज्ञान होता है।

अब देखना चाहिये कि यह भेद माननेके लिए कारण हैं या नहीं। सम्भव है, इच्छा भी शारीरिक हो। 'शारीरिक' शब्दका अर्थ क्या है ? शारीरिक शब्दसे ही मांसादिका ज्ञान होता है। 'मेरे शरीरको चोट लगी' ऐसा कहनेसे लोग समझ लेते हैं कि हाथ, पैर आदि किसी अङ्गको चोट लगी। शरीर कई अङ्गों और प्रत्यङ्गोंका समवाय है। शरीर अवयवी है। उसके अनेक अवयव हैं। उसमें चेतनाकी कोई भावना ही नहीं है। चेतना या शक्ति शरीरका अङ्ग नहीं है। यदि कोई उसे भी शारीरिक अवयव सिद्ध करे तो मनको भी शारीरिक

माननेमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। मनुष्य केवल चेतन नहीं है अथवा केवल शरीर नहीं है। वह शक्ति और शरीर, चेतन और जड़का समवेत रूप है। ऐसा होने पर भी यह प्रश्न रह जाता है कि इन दोनों—चेतना और शरीर—में परस्पर क्या सम्बन्ध है?

इस प्रकारके प्रश्नोंके उत्तरमें कुछ लोगोंने कहा कि चेतना भी शारीरिक है, क्योंकि जिस प्रकार यकृत् और प्लीहासे रक्त, पित्त आदि निकलते हैं, उसी प्रकार मस्तिष्कसे विचार, इच्छा आदि निकलती हैं। मस्तिष्क विचारका अवयवी है। उसमें विचार रहता है और उसीमेंसे निकलता है। सामान्यतः लोग कहा भी करते हैं कि अमुक बात मेरे दिमाग़में नहीं घुसती। प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है कि विषयके साथ सम्बन्ध होने पर व्यक्तिके मस्तिष्कके पदार्थोंमें, द्रव्योंमें, कुछ अन्तर होता है। वहाँका धूसर द्रव्य रूप-रङ्ग बदलता है और व्यक्तिको ज्ञान हो जाता है। यदि मस्तिष्कके विशेष केन्द्रको निकाल दें तो विशेष प्रकारके विचार रुक ही जाते हैं। वे होते ही नहीं। इन सबसे यही सिद्ध होता है कि चेतना अथवा विचार भी शारीरिक ही हैं। अतः फिर प्रश्नने घूम-फिर कर वही रूप धारण किया कि शारीरिक शब्द-का क्या अर्थ है? शारीरिक द्रव्योंका उदाहरण ही इस 'शरीर-वाद' का विरोध करता है। पित्त, रक्त आदि द्रव्य हैं। यदि एक स्थलपर उन्हें रखें तो रह जाते हैं। उनका वज़न हो सकता है। शक्तिका प्रयोग करके उन्हें बहा सकते हैं। उनमें कौन कौनसे पदार्थ हैं, अलग अलग देख सकते हैं। किन्तु ठीक इसी तरह विचार मस्तिष्कसे निकलते दिखाई नहीं देते। उनमें क्या क्या द्रव्य हैं, यह दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः विचार इत्यादिको हम शारीरिक नहीं कह सकते। चूँकि मस्तिष्कमें विचार होते हैं, (क्योंकि प्रत्येक संवेदनाके अनन्तर उसके द्रव्योंमें अन्तर होता है) अतएव मस्तिष्कसे ही वे उत्पन्न होते हैं, ऐसा माननेके लिए कोई कारण नहीं है। शरीर-रचना एक बात है और क्रिया दूसरी बात। रचना और क्रियामें सम्बन्ध होनेसे क्रिया रचना नहीं हो सकती और रचना क्रिया नहीं हो सकती। इस

प्रकार विदित होता है कि जिस भेदको हमने शुरूमें स्थूल भेद कहा था, वही वास्तविक भेद भी है।

मन और शरीरमें गहरा सम्बन्ध है। शारीरिक क्रियाओंके अनन्तर मनोवृत्तियाँ होती हैं और मनोवृत्तियोंके बाद शारीरिक कार्य। मनोयन्त्रके चालनमें वेदना कारण है। 'मनो यन्त्रस्य चलने वेदनां कारणं विदुः'। संविद्से मनमें ज्ञान होता है। इन्द्रियाँ केवल साधन हैं। उनके मार्गसे संवित्प्रवाह प्रवेश करता है, जिसके कारण मनोवृत्तियाँ होती हैं। इस प्रकारका अन्योन्य सम्बन्ध मन और शरीरमें है। फिर भी मनका बल अधिक मालूम होता है। व्यक्तिका शरीर मनोगत वृत्तियों और वेगोंसे इधर उधर चलाया जाता है। शारीरिक स्वास्थ्यके लिए मानसिक स्वास्थ्य अत्यावश्यक है। एक प्रकारसे मन ही शरीरका नियन्ता है। जीवित शरीर और शवमें क्या भेद है? दोनों शरीर हैं किन्तु एकमें कार्य होते हैं, दूसरेमें नहीं। यही कार्यकरण चेतनाका, सङ्कल्पादियोंका काम है। मन जैसा सोचता है, शरीर वैसा ही करता है 'यदा वै मनुते ऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति', 'स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते, कर्माणि कुर्वीतेत्यथ कुरुते। पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेत्यथेच्छते। इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते। मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्वेति'[1]॥

मनका शरीरपर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिसके जैसे विचार होते हैं, वह वैसा ही बन जाता है। 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' ब्रह्मविद् ब्रह्म ही हो जाता है। मानसिक शक्तियोंसे हम शरीरको बदल सकते हैं। पायोनियरके सितम्बर १९२९ के किसी अङ्कमें एक विचित्र घटना प्रकाशित हुई थी। इटली राष्ट्रकी पताका फहरायी जा रही थी। चारों ओर जोश फैला हुआ था। बैण्ड बज रहा था। उस समय वहाँ एक गर्भिणी खड़ी हुई थी। उसने जोशमें आकर कहा कि मेरी कोखसे जो शिशु

---

१. छान्दोग्य उप०, ७.१७; ७.१–३.

उत्पन्न होगा उसकी दाहिनी बाहुपर इस पताकाका चिन्ह रहेगा। कुछ दिन बाद जब शिशुका जन्म हुआ, तब उसकी दाहिनी बाहुपर ठीक उसी पताकाका चित्र, जन्मसे ही, शरीरकी बनावटमें ही, बना हुआ देखा गया। इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ होती हैं। इसीसे लोग कहते हैं कि गर्भिणीकी दोहद पूरी करनी चाहिये, क्योंकि उसके विचारोंका प्रभाव शिशुपर पड़ता है[१]। सङ्कल्प शरीरको ही बदल देता है। प्राच्यवासी प्रारम्भसे ही मानसिक और भौतिक जगत्को विभिन्न मानते आये हैं और मान रहे हैं। पश्चिममें अभी हाल तक बहुतसे लोग मनको शरीरसे पृथक् नहीं मानते थे[२]। आधार आधेय भावको

---

१. "The conception of a maternal impression rests on the belief that a powerful mental influence working on the mother's mind may produce an impression either general or definite on the child she is carrying...p. 218

"It would seem, on the whole, that while the influence of maternal impressions in producing definite effects on the child within the womb, has by no means been positively demonstrated, we are not entitled to reject it with any positive assurance...But how the mother's psychic disposition can, apart from heredity, affect specifically the physical conformation or even the psychic disposition of the child within her womb, must remain for the present an insoluble mystery even if we feel disposed to conclude that in some cases such actions seem to be indicated" Havelock Ellis, *Studies in the Psychology of Sex*, Vol. V, p 225.

मानसिक भावसे शारीरिक क्रियाओंमें भी आमूल परिवर्तनका वर्णन अध्यापक बनज्युर (Dr. Bonjour of Lausanne) ने किया है, जिसमें उन्होंने एक स्त्रीके प्रसवकालको तीन सप्ताह पहिले कर दिया था। Quoted in C. Baudouin; *Suggestion and Auto-Suggestion;* George Allen and Unwin, Lond; 1924; pp. 21-22.

२. प्राच्यवासियोंमें इसी प्रकारका शरीरवाद था। वह चार्वाकवाद है। उनका कहना यह था कि हाथीके किण्वसे जिस प्रकार मद उत्पन्न होता है उसी प्रकार महाभूतोंके मिलापसे चैतन्य उत्पन्न होता है।

उन्होंने एक ही मान लिया था; अतः उन्हें भ्रम हुआ कि मन और उसकी वृत्तियाँ शरीर और उसकी क्रियाओंसे भिन्न नहीं हैं।

इसका फल यह हुआ कि पाश्चात्य विद्वान् सभी चैत्त वृत्तियोंको शारीरिक दृष्टिसे समझानेका प्रयत्न करते थे। इस प्रकारके विचारसे ही पश्चिमके प्रयोग-मनोविज्ञान[१] की उत्पत्ति हुई। इसके अग्रयायी विद्वान् बूण्ट थे। इनके अनुयायी सभी चैत्त वृत्तियोंको शारीरिक कहते थे। वे हर एक बातके लिए मेरुदण्ड और मस्तिष्ककी नाड़ियाँ खोजने लगते थे। अतः एक विचार-प्रकार[२] (कानसेप्ट) का आविष्कार हुआ। विचार-प्रकारका काम अलग अलग घटनाओंके मर्म समझाना ही है। उदाहरणके लिए अणुको लीजिये। अणुको न किसीने देखा है, और न किसीने उसे छुआ है। सचमुच अणुका अस्तित्व है कि नहीं, यह हम नहीं जानते। लेकिन डाल्टनने अणुओंके विषयमें एक सिद्धान्त निकाला। उस सिद्धान्तका उद्देश्य रासायनिक सम्मिश्रणोंको समझाना है। जलमें उज्जन (हाइड्रोजन) और ओषजन (आक्सीजन) दो बाष्प रहते हैं। वे दोनों रासायनिक पद्धतिसे सम्मिश्रित हैं। लेकिन दोनों किन नियमोंके अनुसार मिल गये अथवा एकके कितने भाग दूसरेके कितने भागोंके साथ मिले, यह नहीं कहा जा सकता था। ऐसी घटनाओंको समझानेके लिए डाल्टनने अणुवादका प्रतिपादन किया। विचार-प्रकार और घटनामें भेद यही है। घटनाओंको तो सभी जानते हैं, किन्तु किस नियमके प्रभावसे वे घटनाएँ उसी प्रकार होती हैं, यह सब लोग नहीं बतला सकते। ऐसी घटनाओंको समझानेके लिए और भविष्यमें होनेवाली घटनाओंका पूर्व-कथन कर सकनेके लिए शास्त्रज्ञ विशेष विचार-प्रकारोंका आश्रय लेता है।

'चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यः चैतन्यमुपजायते
....किण्वेभ्यो मदशक्तिवत् ॥' 'सर्वदर्शन संग्रह'
(चार्वाक दर्शन)

१ Experimental Psychology (एक्सपेरीमेण्टल साइकोलाजी)
२ Concept.

इसी प्रकार ज्ञान, इच्छा आदिको समझानेके लिए बूण्टके अनुयायियोंने शारीरिक विचार-प्रकार (फिजिऑलाजिकल कनसेपशन)[१] का आश्रय लिया। उनका सारा ध्यान शारीरिक परिवर्तनोंपर ही था। विचार, ज्ञान, इच्छा, क्रोध आदिके पूर्व और पश्चात् मस्तिष्कमें कौन कौनसे विकार, कौन कौनसे परिवर्तन होते हैं—यही उनके अध्ययनका उद्देश्य था। चैतन्यके फल जो विचार आदि हैं उनसे उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वे यह जाननेका प्रयत्न नहीं करते कि क्रोध क्या चीज है। वे यही देखना चाहते हैं कि क्रोधके पूर्व और पश्चात् मस्तिष्कमें क्या परिवर्तन होते हैं। उनका दूसरा उद्देश्य उन परिवर्तनोंको समझानेके लिए नियम बनाना है। ऐसे अध्ययनके फलस्वरूप मनके विषयमें अनेक वाद प्रचलित हुए। उनमें मुख्य तीन हैं[२] (१) स्फोटवाद, (२) अनुबन्ध सिद्धान्त और (३) केन्द्रवाद[३]।

(१) स्फोटवाद—

इसके आचार्य कहते हैं कि मस्तिष्कके अनेक भाग हैं। उनपर जब बाहरसे कोई संवेदना प्रहार करती है, उसके अणु अपने आप फूट निकलते हैं और उससे शक्ति चारों तरफ फैल कर अपने अनुकूल अणुओंको मिला कर एक रास्ता बना लेती है। इसीके कारण ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।

(२) अनुबन्ध-सिद्धान्त—

---

१ Physiological conception.

२ Automism, Association of Ideas, Compartment Theory.

३ चार्ल्स फाक्सने अपने 'एजुकेशनल साइकोलाजी' में और कुछ वादोंका नाम दिया है। इनमें प्रधान Faculty theory (फैकल्टी थ्यूरी) और Gestalt Theory (जेस्टाट थ्यूरी) हैं। जेस्टाट थ्यूरी यही है कि "That what we perceive cannot be accounted for by a union of perceptual element" p. 16. इसके विषयमें और भी जाननेकी जिन्हें इच्छा हो वे चार्ल्स फाक्स कृत एजुकेशनल साइकोलाजी देखें। मनोविज्ञानके आज तकके क्रमविकासके ज्ञानके लिए Murphy: *Historical Introduction to Modern Psychology*. Kegan Paul, Lond, द्रष्टव्य।

इस सिद्धान्तके प्रतिपादक अरिस्टाटल थे। उनका कहना था कि स्मरण करते समय हम अनेक पूर्व अनुभवोंको जगाते रहते हैं। अन्तमें इस प्रकारका एक न एक अनुभव जग जाता है जिससे हमारे स्मर्तव्यका कोई सम्बन्ध हो अथवा जिसमें और स्मर्तव्यमें सादृश्य हो, अथवा जो स्मर्त्तव्यसे विपरीत हो, अथवा जो स्मर्त्तव्यके ठीक आगे या पीछे हुआ हो। इन दोनों विषयोंकी स्मृति चिन्ह-रूपमें मस्तिष्कमें रहती है और प्रयत्नके कारण वे चिन्ह उत्तेजित होकर अपने पूर्वमार्गकी सभी स्मृतियों-को उद्धृत कर देते हैं। यही बात डेकार्टेने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है[1]—"जिस प्रकार कागजको एक बार मोड़नेके बाद पुनः उसी तरहसे मोड़नेमें कोई श्रम नहीं होता, उसी प्रकार मस्तिष्कमें चिन्ह पड़ जानेके कारण वेदना एक बार जिस रास्तेसे बहती है उसी रास्तेसे पुनः पुनः बहने लगती है। इससे याद करनेमें सरलता होती है।" मान लीजिये, एक व्यक्ति बार बार अपनी माताको देखता है। ऐसा करनेसे उसके मस्तिष्कमें एक प्रकारका रास्ता बन जाता है, माताका चित्र मस्तिष्कमें रह जाता है। वह जब जब माताकी किसी चीज़को देखता है, तब तब वह रास्ता मानो जाग्रत् हो जाता है और उसे माताका स्मरण हो आता है। यहाँ हमें कोई मानसिक शक्ति अथवा इच्छा मानने-की आवश्यकता नहीं है। घटनाएँ एकके पीछे एक होती हैं। इसी क्रमसे वेदनाएँ, भावनाएँ आदि भी अनुबद्ध होती हैं। एक स्मरणमें आ जाय तो उससे अनुबद्ध सभी बातें स्मरणमें आ जायँगी।[2]

---

१. "The vestiges in the brain render it fit to move the soul in the same fashion as it was moved before and thus to make it remember something even as the folds which are in a piece of paper or a cloth make it more fit to be folded as it was before". Charles Fox: *Educational Psychology*: Kegan Paul, Lond:, Chap. I. p. 7.

२. "Thus Bain, one of the chief exponents, stated the Law of Association by contiguity thus :—

'Contiguity joins together things [he meant sensations, images, etc.] that occur together, or that are, by any

३. केन्द्र सिद्धान्त—

इसके समर्थकोंका कथन है कि मस्तिष्कमें अलग अलग विचारोंके अलग अलग केन्द्र होते हैं। यदि उस केन्द्रके द्रव्यको हटा दें तो उस प्रकारके विचार उठ ही नहीं सकते।

इस रीतिसे और भी अनेक सिद्धान्त प्रकट हुए। लेकिन इनसे सभी चैत्त वृत्तियोंके हेतु, तथा उनके भीतर कौन कौन नियम काम कर रहे हैं, आदि प्रश्न हल नहीं हुए। उन लोगोंने स्वप्न आदि चित्त-वृत्तियोंका मर्म नहीं समझाया। उन्होंने मानव जीवनकी अनेक बातोंपर किसी प्रकारका प्रकाश नहीं डाला। जो मनोवृत्तियाँ कही जाती हैं उनके मूलमें कौनसे नियम, शारीरिक ही सही, काम करते हैं, यह साफ़ साफ़ नहीं बताया गया। मानसिक व्याधियोंकी कारणभूत मांस-पेशियाँ उन्हें मिलीं ही नहीं। फलतः उन्होंने जिस कार्यको उठाया उसे अधूरा ही छोड़ दिया। उनकी स्थिति उस भ्रूण-विज्ञानवेत्ताके समान हुई जो भ्रूणके सभी अंशोंपर, सभी बातोंपर, प्रकाश नहीं डाल सकता। इसके उदाहरण-स्वरूप हम चारकोको ही ले सकते हैं। हिस्टीरियाके विषयमें चारकोके कारण बहुतसी बातें मालूम हुईं। लेकिन वे भी उसके शारीरिक कारण खोजनेमें ही तत्पर थे, अतः वे हिस्टीरियाके बहुत थोड़े ही रोगियोंको अच्छा कर सके। इसी प्रकारसे हिस्टीरिया, उन्माद, अपस्मार, संन्यास आदि व्याधियोंका उपशमन शारीरिक नियमोंके अनुसार नहीं हो सका। फलतः प्रयोग-मनोविज्ञानने विज्ञानके मूल तत्वोंको ही पूरा नहीं किया।

विज्ञानका कार्य त्रिविध है। वह घटनाओंका परिशीलन करता है, उन घटनाओंको अलग अलग समूहोंमें विभक्त करता है और इस बातका प्रयत्न करता है कि इस प्रकारके सिद्धान्त अथवा सूत्रोंका प्रतिपादन किया जाय जिनके अनुसार वे सभी घटना-समूह समझाये जा सकते हों, तथा जिनके आधारपर भावी घटनाओंके सम्बन्धमें पूर्व-कथन किया जा सके।

---

circumstance presented to the mind at the same time' Charles Fox: '*Educational Psychology*', chapt. II

यह कार्य पूरा करनेमें प्रयोग-मनोविज्ञान समर्थ नहीं हुआ। अतः शारीरिक विचार-प्रकार ठीक नहीं है। जब चेतन शरीरसे भिन्न है, तब शरीरवादी कैसे किसी चैत्त वृत्तिका मर्म स्पष्ट बता सकते हैं! इस विचार-प्रकारकी सत्यताका परिशीलन करके मरीना नामक शास्त्रज्ञने शरीरवादकी अनुपयोगिताका अनुभव किया।[१] मरीनाने एक प्रकारके बन्दरोंके विषयमें प्रयोग किया। लोग कहते हैं कि आँखपर धूलि डालने जायँ तो वह आप ही बन्द हो जायगी। आँखको बचानेके लिए पलक है। भयके सामने, प्रहारके सामने उसकी रक्षा करनेके लिए पलक उसको अपने भीतर छिपा देती है। इसमें विचारका स्थान नहीं है। कोई हमारी आँखपर मुक्का मारे तो हम उस परिस्थितिका विचार करके, पलक बन्द करना अच्छा है अथवा बुरा ऐसा सोचकर, आँखें बन्द नहीं करते। पलक अपने आप, विना किसी व्यक्तिकी इच्छाकी परवाह किये, बन्द हो जाती है। ऐसी क्रियाओंको शरीरवादी 'स्वतः सिद्ध कार्य' (रिफ्लैक्स एक्शन्स) कहते हैं। इन्हें वे अपने सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए अटूट प्रमाण मानते हैं, क्योंकि इनमें चेतनाका अथवा विचारका ज्ञान किसीको नहीं होता। इसीसे वे अन्य क्रियाओंको भी मनका अस्तित्व माने विना ही समझानेका प्रयत्न करते हैं। मरीनाने इसीकी सचाईका परिशीलन करना चाहा। उनकी इच्छा यह जाननेकी हुई कि स्वतःसिद्ध कार्य विचारके विना होते हैं या नहीं, वे परम्परासे सङ्क्रान्त हैं अथवा नहीं। यदि वे परम्परासे सङ्क्रान्त हैं तो उस इन्द्रियकी, उदाहरणार्थ आँखकी, मांसपेशियोंमें रद्दोबदल करनेसे उस प्रकारकी क्रिया नहीं होनी चाहिये; क्योंकि मांस-पेशियोंकी जो सङ्क्रान्त रचना है वह बदल गयी। मरीनाने एक बन्दरकी आँखके कुछ भागोंमें अन्तर कर दिया। जो मांसपेशी आँखको बाहरकी तरफ घुमानेमें काम देती है उसे निकाल कर दूसरे स्थानपर रख दिया और उस पेशीको जो वास्तवमें आँखको ऊपरकी तरफ घुमानेमें काम देनेवाली

१. Charles Fox: *'Educational Psychology'*, chap. V, p. 123.

थी, प्रथम पेशीके स्थानमें कर दिया। घाव भरनेके बाद उस बन्दरको अपनी आँख सिर्फ ऊपरकी ओर ही घुमानी चाहिए थी, पर ऐसा नहीं हुआ। वह उसे पूर्ववत् ही चारों ओर घुमाता था। इस उदाहरणसे मरीनाने सिद्ध किया कि कोई शारीरिक अनुबन्ध मार्ग रूढ़ नहीं है। इस प्रकार अनुबन्ध सिद्धान्तकी शारीरिक नींवपर घोर आघात पहुँचा।

फिर, यद्यपि यह समझमें आ सकता है कि यदि पहले मस्तिष्कमें कोई मार्ग बना हो, तो उसीसे दूसरी बार क्रिया हो सकती है, लेकिन प्रश्न यह है कि पहले वह रास्ता किसी चेतन शक्तिके विना बना कैसे? दूसरी बात यह है कि जेम्सके अभ्यास सिद्धान्त (थ्यूरी ऑफ हैबिट) के अनुसार कागज़को बार बार जिस रीतिसे मोड़ते हैं, ठीक उसी रीतिसे कागज़ आपही आप अपनेको नहीं मोड़ता। उसे उस रीतिसे मोड़नेके लिए बाहरका चेतन कर्त्ता चाहिये। यदि ऐसा न होता तो शामको अपने कपड़ोंको छोड़ रखनेके बाद सवेरे किसी व्यक्तिको वे कपड़े पुनः ठीक ठीक तह की हुई स्थितिमें मिलने चाहिए। इस प्रकारके शारीरिक विचार-प्रकारके ठीक विपरीत एक मानसिक विचार-प्रकार[१] है। इसका अनुसरण करनेवालोंका यह विश्वास है कि मनोवृत्तियोंका अध्ययन स्वतन्त्र रूपसे किया जा सकता है। मस्तिष्कमें क्या परिवर्तन होते हैं, इसे जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं। शारीरिक विचार-प्रकारके अनुसार चित्त-वृत्तियोंको मस्तिष्कके परिवर्तनोंकी अभिव्यक्ति मानना पड़ता है, किन्तु मानसिक विचार-प्रकार उन्हें स्वतन्त्र घटनाएँ समझता है। इस प्रकारका दृष्टिकोण ग्रहण करनेसे वह चैत्त वृत्तियोंके उस वैचित्र्यको समझा सका जो तबतक या तो छोड़ दिया जाता था या अस्पष्ट और अपूर्ण रूपसे समझाया जाता था। इस विचार-प्रकारकी सहायतासे अनेक मानसिक व्याधियोंका यथार्थ निदान किया जा सका। रोगग्रस्त कई स्त्री-पुरुष, जो जीवन-

१ Psychological concept.

में अनुपयुक्त समझे जाते थे, पुनः एक बार जीवनके रसका अनुभव करने लगे। इस विचार-प्रकारका ग्रहण करनेसे बिना किसी प्रकारकी तकलीफके सारी चित्तवृत्तियोंकी क्रियाएँ समझमें आने लगती हैं।

मन अथवा चित्त क्या है? यह अभीतक हमने नहीं कहा। अनेक शास्त्रज्ञ प्रारम्भसे ही निर्वचनके पीछे पड़ जाते हैं। वे घटनाओंको उतने ध्यानसे नहीं देखते, जितने ध्यानसे नियमोंको और निर्वचनोंको देखते हैं। वे समझते हैं कि निर्वचनमें किसी प्रकारका दोष नहीं रहे तो पर्याप्त है। किन्तु सच्चे विद्वान् निर्वचनकी उतनी परवाह नहीं करते, जितनी घटनाओंकी करते हैं। चित्तका कोई ठीक ठीक सर्वतोमुख निर्वचन नहीं है। लेकिन उसका स्वरूप स्थूलतः बताया जा सकता है। पश्चिमके लोग जिसे सामान्यतः 'माइण्ड' कहते हैं, उसीको प्राच्यवासी मन कहते हैं। 'माइण्ड' कहनेसे पाश्चात्यके लोग तीन वृत्तियाँ समझ लेते हैं—ज्ञान, इच्छा और सङ्कल्प[१] (कागनीशन, एफेक्ट या डिज़ायर, वालीशन)। पहले चित्तवृत्तियोंके अन्तर्गत इच्छा अथवा भाव नहीं गिना जाता था। अरिस्टाटलसे लेकर रूसो तक सभी चित्तकी दो ही वृत्तियाँ मानते थे—ज्ञान और सङ्कल्प। सर्वप्रथम रूसोने पश्चिमके लोगोंके सामने भावका प्राधान्य निरूपित किया। उनके बाद काण्टने उसे अपना कर अपने ग्रन्थोंमें 'ज्ञान-इच्छा-सङ्कल्प', इस प्रकारसे त्रिविध मनोवृत्तियोंका उल्लेख किया। उस समयसे ज्ञान-इच्छा-सङ्कल्प ही चित्तवृत्तियाँ कही जा रही हैं।[२] इस त्रिगुटमें कोई कोई

---

१ Cognition, Affect or Desire, Volition,

२ Very different names have been proposed for the three: intellect, feeling, volition; thought, emotion, conation; will, feeling, intelligence; thinking, feeling, willing; imagination will, activity; cognition, affection conation; presentation, attention, feeling; intellection, emotion, will; wisdom, will and love; will, wisdom, activity; will, wisdom, power; reception, affection, action; and so on" Bhagawan Das, 'The Science of Religion', p, 31.

थोड़ा अन्तर कर देते हैं। कोई मनोवृत्तियोंमें इच्छाके स्थानपर भावावेगका और सङ्कल्पके स्थानपर क्रियाका परिगणन करते हैं।

प्राच्यवासियोंने इन्हें ज्ञान, इच्छा, और क्रिया कहा है। कहीं कहीं क्रियाको कृति भी कहते हैं। नीचेके अवतरणोंसे विदित होगा कि पुराने ग्रन्थोंमें ज्ञान-इच्छा-क्रिया निर्विवाद रूपसे मानी गयी हैं।

"प्रथमा रेखा···सा क्रियाशक्तिः, द्वितीया रेखा सा···इच्छाशक्तिः, तृतीया रेखा···सा ज्ञानशक्तिः,

—कालाग्नि रुद्रोपनिषद्।

'स्थिरं चरं च यद्विश्वं सृजतीति विनिश्चयः।
ज्ञानक्रियाचिकीर्षाभिस्तिसृभिः स्वात्मशक्तिभिः॥
इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्यनियामिका।
ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्य्यं कारणं करणं तथा॥
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाऽध्यवस्यति।
यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथा ऽध्यवसितं जगत्।
कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात्सङ्कल्परूपिणी॥

—शिवपुराण, वायुसंहिता, उत्तराखण्ड।

ज्ञानेच्छाक्रियाणां व्यष्टीनां महासरस्वती-महाकाली-महालक्ष्मीरिति नामान्तराणि।—गुप्तवती टीका—दुर्गा सप्तशती।

'जानाति, इच्छति, यतते; यद्ध्यायति तदिच्छति, यदिच्छति तत्करोति, यत्करोति तद्भवति।"[१]

प्रथम रेखा क्रियाशक्ति है, द्वितीय इच्छाशक्ति, और तृतीय रेखा ज्ञानशक्ति है।

ब्रह्मा ज्ञान, क्रिया और सृष्टि करनेकी इच्छा, इस प्रकारकी

इस विषयमें पाश्चात्य और पूर्व वासियोंके मतभेद और इसके समन्वयके लिए श्री भगवान्दास कृत *The Science of the Emotions* (दि साइन्स आफ इमोशन्स) का अध्याय ३ (अ) देखना चाहिये।

१ श्री भगवान्दास कृत *Sanatana Vaidika Dharma*, (सनातन वैदिक धर्म), *p. 32*

अपनी तीन शक्तियोंसे चराचर सृष्टिका सृजन करता है। महेशकी इच्छा-शक्ति नित्य कार्यनियामिका है। हेतु-फल-सन्ततिका नियमन करने वाली है। ज्ञान-शक्ति उसका कार्य है, कारण भी और करण भी। ज्ञानरूपा (बुद्धिरूपा) जो शक्ति है वह अर्थका तत्त्वतः निश्चयपूर्वक ज्ञान कराती है। जैसी इच्छा होती है उसी प्रकारसे क्रिया-शक्ति परिणत होती है। जैसा ज्ञान होता है उसीके अनुरूप क्रिया और ईप्सित भी होते हैं। इसी प्रकारसे सङ्कल्प रूपिणी शक्ति क्षण भरमें सभी कार्यको सम्पन्न करती है। व्यष्टिगत ज्ञान, इच्छा और क्रियाके समष्टिरूपमें महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी नामान्तर हैं। जानता है, चाहता है, प्रयत्न करता है; जिसका ध्यान होता है वही चाहता है, जिसकी चाह होती है वही करता है, जो करता है वही बन जाता है।

किन्तु ज्ञान, इच्छा, क्रिया ये तीनों ही मनोवृत्तियोंमें, विशेषकर ज्ञात मनोवृत्तियोंमें, सर्वप्रधान हैं। अन्य सभी वृत्तियाँ इन्हींमें अन्तर्भूत होती हैं। किन्तु इतनेसे सम्पूर्ण मनका अथवा चित्तका निर्वचन नहीं हुआ। पश्चिमके विद्वान् जिसे मन कहते हैं उसमें ज्ञाता, कर्ता और अन्तरात्मा आदि अन्तर्भूत हैं। उनके यहाँ मनसे भिन्न कोई अहङ्कार ('ईगो') नहीं है। सभी वही मन है। अतः उसे स्थूल दृष्टिसे अन्तःकरण कह सकते हैं। अन्तःकरण क्या है, इसका निश्चित रूपसे निर्वचन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक शास्त्र पहले निर्वचनोंका ठीक ठीक निश्चय कर तब गवेषण और परिशीलनका आरम्भ करता हो, ऐसी बात नहीं है। अगर ऐसा होता तो शायद ही किसी शास्त्रका विकास और उन्नति हुई होती। तात्कालिक सिद्धान्तोंको मानकर चलते चलते ही शास्त्र बलवान् होता है और उसके विकासमें एक ऐसी स्थिति उपस्थित होती है जब वह अपने मूल तत्त्वोंका निर्वचन कर सकता है। आजतक कीटाणु-शास्त्री 'प्राण' का निर्वचन नहीं कर पाये हैं। वे प्रतिदिन जीवित प्राणियोंपर प्रयोग करते रहते हैं, किन्तु अभी तक यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकते कि प्राण क्या है। पदार्थ-

विज्ञान-वेत्ताओंने आजतक ईथर, अणु, शक्ति, इत्यादिका निर्वचन नहीं किया है। गणित और ज्यामितिके आचार्य विन्दुको मानकर चलते हैं। इस रीतिसे सभी शास्त्रोंके मूलमें जो तत्त्व समझे जाते हैं, उन्हींका निर्वचन अधुनापि नहीं हुआ है। निर्वचन करनेका प्रयत्न सदा विफल ही रहा है। प्रसिद्ध मनोविज्ञान-वेत्ता और दार्शनिक जेम्स कहते हैं—"वही राज्याङ्गको भलीभाँति जानता है जो उसके निर्वचनके विषयमें कोई झञ्झट नहीं उठाता। उसी प्रकार निर्वचनोंके ज्ञान और वास्तविक वैषयिक ज्ञानमें कोई सम्बन्ध नहीं है।[१] अर्थात् निर्वचनोंके ज्ञानके पूर्ण हुए बिना वैषयिक ज्ञान हो सकता है। मूल तत्त्वोंका निर्वचन जटिल और दुःसाध्य है, क्योंकि वास्तवमें सभी शास्त्र एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं और खास कर मनोविज्ञान। मनोविज्ञान प्रत्येक शास्त्रका अत्यावश्यक भाग है। व्यक्ति और विषयके सम्बन्धसे सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है। उस सम्बन्धका एक मात्र प्रभु और नियामक मन है। मनकी रीतियोंपर शास्त्रोंकी सत्ता है। मनुष्यकी वासनाएँ सदा उसे आगे लिये जा रही हैं। और उन वासनाओंकी योनि मन है। अतः मानसिक शास्त्रका महत्त्व प्रत्येक शास्त्रने मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया है। अभी तक कोई शास्त्रकार मनोविज्ञानके क्षेत्रमें किसी प्रकारके सम्बद्ध ज्ञानकी आवश्यकता नहीं देखता था। वह समझा करता था कि मन सब किसीको है। उसे जाननेके लिए किसी शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है। चित्तविकलन शास्त्रके उदयसे इस प्रकारकी धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई और उस शास्त्रके शैशवमें ही उसके विरोधी निर्वचनोंके लिए ज़ोर देने लगे।

किसी वस्तुका ठीक ठीक निर्वचन नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक वस्तु सलक्षण है और उसके लक्षणका पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं है।

१. "The man who knows governments most completely is he who troubles himself least about a definition which shall give their essence...And why may not religion be a conception equally complex?" *The Varieties of Religious Experience*', Lecture II, p. 26-7.

ऐसा होते हुए भी प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओंसे सम्बद्ध है। प्रत्येक शास्त्रका उदय अन्य शास्त्रोंसे हुआ है। शास्त्रोंके या वस्तुओंके इस परस्पर सम्बन्धको जानना दुष्कर है, क्योंकि प्रत्येक शास्त्रके मूलतत्त्व मनुष्यज्ञानके अतीत हैं। जीव क्या है, कोई नहीं कह सकता। विन्दुके बिना गणित एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकता। दोनोंका निर्वचन ठीक ठीक नहीं किया गया है। मनुष्य और पशुका अन्तर कहाँ है? जानवर और वनस्पति इत्यादिको विभिन्न मण्डलियोंमें कर देनेवाली विभाजक रेखा कहाँ है, यह किसीने नहीं बताया। किन्तु दोनोंमें भेद मालूम होता है। दोनोंमें भेद है और है भी नहीं। सभी मूलतः एक ही पाशमें बँधे हैं। मनोविज्ञान अथवा मानसिक और भौतिक जगत् इसके अपवाद नहीं हैं।

"सर्वत्र सर्वथा सर्वं सर्वदा सर्वरूपिणी।
अहो नु विषमा माया मनोमोहविधायिनी॥"[1]

सभी सभी प्रकारसे सब जगह विद्यमान हैं। सदा सभी सब रूपवाले हैं। माया विषमा है, मनको मोह लेती है।

'सर्वं सर्वेण सम्बद्धं सर्वं सर्वत्र सर्वदा'।

सभी सभीसे सम्बद्ध हैं। सभी सदा सब जगह हैं।

इस दृष्टिसे देखनेसे भौतिक तथा मानसिक जगत्का भेद तत्त्वतः लुप्त हो जाता है। इन दोनोंमें जो भेद है, वह है व्यावहारिक। वस्तुतः शरीरी अपने भोगके लिए दो शरीरोंका ग्रहण किये हुए है—एक भौतिक और दूसरा मानसिक। ये दोनों शरीरीके ही शरीर हैं, इस कारण एक दूसरेके साथ अच्छेद्य सम्बन्धसे सम्बद्ध हैं; और इन दोनों-के भीतर व्यक्त अथवा अव्यक्त रूपसे शरीरीका तत्त्व काम कर रहा है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि जड़ पूर्णतः जड़ नहीं और मन पूर्णतः मानसिक या चैतन्य रूप नहीं है। जड़में भी अव्यक्त रूप-में मानसिक शक्ति अथवा चित्-शक्ति काम कर रही है, जो मनमें व्यक्त रूपमें प्रकाशित है। इसीसे देहके ऊपर मनके और मनके ऊपर

१ योगवासिष्ठ, निर्वाण प्रक०, उत्तरार्द्ध १५९. ४१.

देहके घात-प्रतिघात होते रहते हैं। इसका प्रमाण है, शरीरीका भौतिक अथवा मानसिक आहार-ग्रहण। मनमें यदि अच्छा भाव आ-जाय, तो उस मानसिक भावमें व्यक्त रूपसे रहनेवाली चित्-शक्तिके कारण मन प्रफुल्ल होता है और उसी भावमें अव्यक्त रूपसे विद्यमान जड़-शक्तिके कारण देहकी जड़-वस्तुओंमें परिवर्तन होता है और तद्-नुसार देहमें विशेष परिवर्तन देख पड़ते हैं। अन्यान्य मानसिक वृत्तियोंकी भी यही कथा है। दूसरी ओर जिस समय शरीरी या देही किसी जड़वस्तुको आहार-रूपमें ग्रहण करता है, उस समय उस जड़-वस्तुके भीतर अव्यक्त रूपमें रहनेवाली चित्शक्ति शरीरकी चित्शक्तिके साथ मिल जाती है, और इस मिलनसे वही जड़-वस्तु जीवन्त जीव-कोषमें परिणत हो जाती है, जिससे उसीके भीतर व्यक्त रूपसे रहनेवाली जड़-शक्तिसे देहकी पुष्टि और अव्यक्त रूपसे रहनेवाली चित्शक्तिसे मनकी पुष्टि होती है। इस कारणसे ही शास्त्रका कथन है कि अचैतन्य कुछ है ही नहीं—

"अचैतन्यं न विद्यते।"

प्रज्ञानपाद (स्वामी)
वेंकटेश्वर शर्म्मा

मानवविज्ञान और मनुष्यजातिके उपविभाग ।

संसारमें नाना प्रकारके प्राणी हैं । इन प्राणियोंकी आनुमानिक सङ्ख्या बृहद् विष्णुपुराणमें दी हुई है । प्राचीन कालके भारतीय शास्त्रकारोंने उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज नामके चार बड़े भागोंमें इनको विभक्त किया है । जरायुजका दूसरा नाम पिण्डज भी है । सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके न्यूनाधिक्यके आधारपर सूक्ष्म ईक्षण करनेवालोंने इन सब प्राणियोंको तीन ही वर्गोंमें विभक्त कर दिया है—(१) ऊर्ध्व स्रोतस्, (२) तिर्यक् स्रोतस्, (३) अर्वाक् स्रोतस् । इनके आधुनिक नाम कुछ भिन्न हैं । (१) मैमल्स[१] अर्थात् सस्तन, (२) बर्ड्स[२] अर्थात् पक्षी, (३) रैप्टाइल्स[३] अर्थात् सर्पणशील, (४) बैट्रकिअन्स[४] अर्थात् मण्डूकजातीय, (५) फिशेज[५] अर्थात् मत्स्यजातीय । स्थावरोंका विभाग इनसे पृथक् है । बृहद् विष्णुपुराणके अनुसार चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करके जीव मनुष्य योनिको प्राप्त होता है । उन योनियोंमें स्थावर बीस लाख, जलज नव लाख, कूर्म नव लाख, पक्षी दस लाख, पशु तीस लाख, बानर चार लाख प्रकारके बताये गये हैं । इन सब योनियोंमें भ्रमण करनेके उपरान्त मनुष्यदेह मिलती है । तपस्याकी मात्रा अधिक होनेसे द्विजपद मिलता है । विद्या, तप[६], और विनयादि गुणोंसे युक्त तथा सत्कर्मपरायण व्यक्ति अपने गुणों और कर्मोंसे उत्कृष्ट हो जाता है ।

स्थावरं विंशतेर्लक्षं जलजं नवलक्षकम् ।
कूर्माश्च नवलक्षं च दशलक्षं च पक्षिणः ॥

---

१. Mammals. २. Birds. ३. Reptiles. ४. Batrachians. ५. Fishes.
६. तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ मनु० १२।१०४

त्रिंशल्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः ।
ततो मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत् ॥
एतेषु भ्रमणं कृत्वा द्विजत्वमुपजायते ।
सर्वयोनिं परित्यज्य ब्रह्मयोनिं ततोऽभ्यगात् ॥

—बृहद् विष्णुपुराण[१] ।

इन श्लोकोंमें एक प्रकारका विकासवाद दृष्टिगोचर हो रहा है । साङ्ख्य दर्शनमें भी 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारः ·········पञ्चविंशतिर्गणः इत्यादि प्रथमाध्यायस्थ सूत्रसे एक दूसरे प्रकारका विकास सूचित किया गया है ।

तैत्तिरीयोपनिषद्के एक वाक्यमें साङ्ख्यदर्शनकी प्रकृतिके स्थानमें आत्माको सब वस्तुओंका मूल मानकर कहा है कि—तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्याःओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नं, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । इन वाक्योंमें उत्पत्तिकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंके वर्णनके कारण कुछ भेद भासित होता है । परमार्थतः इनमें भेद नहीं है । एकसे अनेकका हो जाना यही परमार्थ है । यह तत्त्व दोनों वाक्योंमें सदृश है ।

सम्पूर्ण विश्वमें मनुष्य ही सबसे विलक्षण और उत्कृष्ट प्राणी है । बृहद् विष्णुपुराणके श्लोकोंको विचारपूर्वक पढ़नेसे यह बात आपाततः मनमें आ जाती है कि चार्ल्स डार्विनके विकासवादका इनसे बहुत कुछ साम्य है । दोनों ही मनुष्यको इस विश्वमें सर्वोत्कृष्ट प्राणी कहते हैं । सम्पूर्ण योनियोंमें भ्रमण करके मनुष्यत्वकी प्राप्ति भी बहुत अंशोंमें दोनोंको एकसी ही अभिमत है । मनुष्यके साथ मनुष्याकार बन्दरोंका बहुतसी बातोंमें साम्य है तथा बहुत सी बातोंमें वैषम्य । इनके विकाससे ही मनुष्यकी उत्पत्ति हो गयी है । इस सिद्धान्तकी प्रक्रिया और शैलीमें भले ही कुछ भेद हो परन्तु

१. The Science of Social Organisation. श्री भगवान्दास जी प्रणीत, व्याख्यान १, पादटिप्पणी ।

वस्तुगत्या वह भेद केवल काल्पनिक बातोंका ही है। काल्पनिक बातों-को पृथक् कर यदि केवल परिणामपर दृष्टि-प्रक्षेप किया जाय तब तारतम्यकी विवेचनामें मनुष्याकार वानरोंके उपरान्त ही मनुष्यका स्थान सम्भव है। इन मनुष्याकार वानरोंकी कई जातियाँ हैं। दक्षिण-पूर्वीय एशियाकी एक प्रकारकी वानर-जातिका नाम गिबन है। बोर्नियो तथा सुमात्रा आदिमें इस गिबनसे कुछ भिन्न आकृतिका एक अन्य प्राणी पाया जाता है; उसका नाम औराङ्ग उटान है। पश्चिमीय अफ्रीका-में इसके समान आकारका एक और प्राणी मिलता है, जिसका नाम गोरिल्ला है। पश्चिमीय और मध्य अफ्रीकामें इसी प्रकारका एक अन्य जीव मिलता है; उसे चिम्पाञ्जी कहते हैं। यह सब भिन्न भिन्न जातिके वानर ही हैं। वानर शब्द संस्कृतके दो शब्दोंके योगसे बना हुआ है—वा और नर। 'वा' का अर्थ है विकल्प और 'नर' का अर्थ है मनुष्य। तात्पर्यार्थ यह हुआ कि जो मनुष्यसे भिन्न परन्तु मनुष्यके सदृश हो उसे वानर कहते हैं। अङ्ग्रेजीमें इनका नाम 'अन्थ्रोपाइड'[1] एप्स है। वानर और अन्थ्रोपाइड एप्सका तात्पर्यार्थ एकही है। इन मनुष्याकार बन्दरोंसे ही विकास होते होते मनुष्यकी उत्पत्ति हो सकी है। यह क्रमविकासवादका सिद्धान्त है। मनुष्यके आविर्भावपर विचार करनेके लिए मानवविज्ञानकी उत्पत्ति हुई। मानवविज्ञानको अङ्ग्रेजीमें अन्थ्रा-पालाजी[2] कहते हैं। इथनालाजी[3] और इथनाग्रेफी अर्थात् मानव-जाति-विज्ञान और मानववंश-विज्ञान, फिजियालाजी अर्थात् आङ्गिरस-तन्त्र, सोशियालाजी अर्थात् समाजशास्त्र, एथिक्स अर्थात् आचारशास्त्र, फ़ाइलालाजी अर्थात् भाषाविज्ञान आदिका विचार करते हुए कुछ थोड़ा सा विचार मानवविज्ञानपर भी किया जाता है। परन्तु इस मानव-विज्ञानका कुछ क्षेत्र ऐसा भी अवशिष्ट रह जाता है जिसपर विचार करना केवल इसीका विषय है। विज्ञानकी अन्य शाखाओंमें वह विषय गतार्थ नहीं होता। मानवविज्ञानमें इतस्ततः प्रकीर्ण निम्न बातें प्रधानतया गुम्फित कर दी जाती हैं।

१. Anthropoid Apes. २. Anthropology. ३. Ethnology.

(१) मनुष्यके अवयव-संस्थानोंकी विशेषता (२) अस्थि आदिके अवशिष्टांशोंके आधारपर गतपीढ़ियोंके मनुष्योंके अवयव-संघटनपर विचार। (३) मनुष्यके हस्तलाघव एवं मनुष्यकी शिल्प-कलाका विवेचन। (४) अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यकी विशिष्ट बुद्धिपर विचार (५) मनुष्यका सामाजिक विकास तथा (६) पशु-जगत्से मनुष्यकी अन्य विशिष्ट बातोंपर तुलनात्मक विचार।

मनुष्य और बन्दर आदि बहुतसे प्राणियोंकी गर्भावस्थासे लेकर उत्पत्ति तकका बहुतसा इतिहास परस्पर बिलकुल अभिन्न है। इस प्रकारकी अभिन्नताको देख कर चार्ल्स डार्विनने अपनी पुस्तक 'डिसेण्ट आफ मैन'[१] में मनुष्यके वैकासिक इतिहासका विचार करते हुए मनुष्यकी उत्पत्ति मनुष्याकार बन्दरोंके विकाससे स्वीकार की है। हक्सलेके समयसे यह बात वैज्ञानिक क्षेत्रमें स्वीकार की जाने लगी है कि उन्नतावस्थाके सर्वोच्च बिन्दुपर पहुँचे हुए मनुष्यों और अवनता-वस्थाके सबसे प्रथम बिन्दुपर स्थित मनुष्योंमें जितना अन्तर है उससे कम अन्तर अवनतावस्थाके मनुष्यों तथा मनुष्याकार बन्दरोंके बीचमें है। यदि श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण जातिके भिन्न भिन्न रूपके मनुष्यों-का प्रादुर्भाव एक स्थानसे स्वीकार किया जा सकता है, यदि नीग्रो और काकेशस जातिके पुरुषोंमें परिस्थितिके कारण ऐसा स्पष्ट अन्तर आ सकता है तो मनुष्याकार बन्दरोंसे भी परिस्थितिवशात् अधमावस्थाके मनुष्यकी उत्पत्ति मान लेनेमें कोई बाधा नहीं होनी चाहिये। इस बातको क्रमविकासवादियोंने बहुतसे अच्छे अच्छे सुन्दर उदाहरणोंसे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। हाथ और पैरकी अङ्गुलियों तथा अँगूठोंके कारण मनुष्यमें बहुतसी विशेषताएँ आ गयी हैं। इन अङ्गोंके सहारे मनुष्य कला-कौशलकी वृद्धि करने और कृत्रिम उपकरणोंको अपने उपयोगमें लानेमें समर्थ होता है। मुखकी आकृति तथा समुन्नत नासिका भी मनुष्यकी विशेष उन्नतावस्थाकी सूचक हैं।

मनुष्यका मस्तिष्क मनुष्यकी सबसे सुन्दर विशेषता है। मनुष्यके

---

१. Descent of Man.

दाँतोंमें तथा अन्य मनुष्याकार प्राणियोंके दाँतोंमें भी बहुत अन्तर है। मनुष्यके कुक्कुरीय दाँत बहुत छोटे हैं। इनसे मनुष्यके आहारद्रव्यका सरलतया अनुमान किया जा सकता है।

मनुष्यकी रीढ़ तथा एँड़ी आदिकी बनावट भी विचित्र प्रकारकी है। अतः मनुष्य उत्तान होकर स्थित रह सकता है। यह भी मनुष्यकी मुख्य विशेषता है।

मनुष्यने अपने मस्तिष्क एवं हाथोंको सम्यक् रीतिसे उपयोगमें लाकर इस संसारके आदि चित्रको सर्वथा बदल दिया। इन्हीं उपकरणोंके सहारे मनुष्यने सम्पूर्ण पशुओंके ऊपर अपना आधिपत्य भी स्थापित किया है। [१]लिनीअसने वर्तमान मनुष्य-जातिके आकार आदिके अनुसार मनुष्यजातिके चार बड़े विभाग किये हैं—(१) नीग्रो, (२) मङ्गोलियन, (३) काकेशियन, (४) अमेरिकन। किसी किसी व्यक्तिने मलाया जातिका एक पाँचवाँ विभाग भी स्वीकार किया है। और कोई कोई (१) काकेशियन, (२) मङ्गोलियन, (३) इथिओपियन नामके तीन ही विभाग मानते हैं।

मनुष्यजाति-विज्ञान अर्थात् इथनालाजीका अध्ययन करनेवालोंने इनपर उचित विचार किया है। मनुष्यके यह विचित्र रूप जगत्‌के परिवर्त्तनोंके सम्मुख बहुत ही गौण हैं।

मनुष्यकी बाहु, चिड़ियोंके पङ्ख और छिपकली आदिके अगले पैर एक ही मूल वस्तुके विकासके भिन्न भिन्न रूप हैं। एक वस्तु कितने विचित्र रूपोंमें परिवर्तित हो सकती है, इसके लिए एक मेढक और एक तितलीकी प्रारम्भिक दशाओंके चित्रोंका निरीक्षण बहुत मनोरञ्जक होगा।

उत्पत्तिके बाद मेढक बहुत सी भिन्न भिन्न स्थितियोंको पार करता हुआ अपने सामान्य रूपको प्राप्त होता है। सामान्य रूपमें मेढकको देखकर इस बातकी कल्पना नहीं की जा सकती कि अभी हालमें ही इस देहके साथ एक लम्बी पूँछ भी थी जिसका अब अभाव है।

---

१. Linnaeus.

एक रङ्ग-बिरङ्गी उड़ती हुई तितलीको देखकर इस बातकी कल्पना भी नहीं होती कि अभी कुछ समय पहले यह भी गिड़ार जैसी ही थी। उस समय इसके इस सौन्दर्यकी कल्पना करना उसी भाँति क्लिष्ट था जैसे अब इस तितलीके उस कीड़े जैसे रूपकी कल्पना क्लिष्ट हो रही है। मनुष्य भिन्न भिन्न योनियोंके, नाना परिवर्तनोंके बाद वर्त्तमान रूपमें आ सका है। यह विकासवादियोंका मत है।

पृथिवीके उत्खननसे ऐसी बहुतसी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध हो चुकी है, जिससे प्राचीन कालके मनुष्योंकी संस्थितिका बहुत सुन्दर ज्ञान होता है।

१८९१—१८९२ ई० (=१९४८–१९४९ वि०) में डा० यूजीन डुबोइसने जावामें उत्खननके अवसरपर एक प्राचीन कालका कर्पर पाया। यह कर्पर अथवा कपाल जावा-कर्परके नामसे प्रसिद्ध है। प्राक्कालीन मनुष्योंके अद्यावधि जितने प्राचीन कङ्काल अथवा कपाल मिले हैं, सम्भवतः उन सबमें यह सबसे प्राचीन है। जावामें इस कपालके साथ एक जङ्घास्थि तथा दो दाढके दाँत—जिन्हें चर्वण-दन्त अथवा बुद्धि दशन भी कह सकते हैं—मिले। डा० डुबोइसने एक सचित्र लघु पुस्तिकामें इन सबका विवरण देते हुए अपना मत प्रकाशित करते समय इन अस्थियोंको पिथेकन्थ्रोपस् एरक्टस्की बतलाया। अतीत कालमें इस जन्तुकी सत्ता मनुष्याकार वानर और मनुष्यके मध्यमें थी। मनुष्याकार बन्दरोंके वैकासिक इतिहासमें यह जन्तु मनुष्योंका पूर्ववर्त्ती था[1]। इस जन्तुके अनन्तर वैकासिक इतिहासमें मनुष्य

1. भिन्न भिन्न समयके और भी बहुतसे कपाल तथा कङ्काल भिन्न भिन्न स्थानोंमें मिले हैं। उन कपालोंके आधारपर पिथेकन्थ्रोपस् एरक्टस्से लेकर मनुष्यके आविर्भाव तककी वैकासिक उन्नतिका बहुत कुछ परिज्ञान होता है। पिल्ट डाउनमें उपलब्ध कपाल तथा होडलबर्ग और रोडेसिया आदिके कपाल जावाके ट्रिनिल स्थानमें मिले उक्त कपालसे अर्वाक् कालके हैं। होडल बर्गीय मनुष्योंको अर्द्ध मनुष्य अथवा मनुष्यकल्प कहा जाता है। पिल्ट डाउनके कपालधारी प्राणीको मनुष्यकी प्रथम उषा समझना चाहिये। उसका कल्पित नाम इवोअन्थ्रोपस् रखा गया है। इन सबके

आता है। इन अस्थियोंपर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करनेके लिए भिन्न भिन्न देशोंके बीस व्यक्ति एकत्र हुए थे, परन्तु उन सबका मत एक न था। उन सबकी विवेचनासे यह बात तो प्रमाणित होगयी कि बर्फानी लहरके आनेसे पहिले भी उत्तानस्थितिके जन्तुका अस्तित्व था। बहुतोंका यह भी मत था कि इस उत्खननमें उपलब्ध हुई जङ्घास्थि तो मनुष्यकी ही है।

मनुष्यकी मुख्य विशेषता उसका मस्तिष्क है। गोरिल्लाके मस्तिष्कका अधिकसे अधिक भार बीस औन्स होगा परन्तु मनुष्यके मस्तिष्कका न्यूनातिन्यून भार बत्तीस औन्स होगा। इसी प्रकारके और भी अवयव-संस्थानोंमें मनुष्य और मनुष्याकार वानरोंमें आनुपातिक भेद है।

सम्प्रति उपलब्ध प्राचीन कालके बहुतसे कपालों और वर्त्तमान कालके बहुतसे नरकपालों तथा वानर आदिके कर्परोंकी परस्पर वैज्ञानिक तुलना करनेसे जावामें मिला हुआ यह कर्पर मनुष्य और वानरोंके मध्यवर्त्ती किसी विनष्ट प्राणीका सिद्ध हुआ है।

इसी प्रकार जर्मनीमें ड्यूस्सेल नदीके दक्षिण तटके किनारेकी नियण्डर्थल[1] स्थानकी एक प्राचीन कन्दरामें एक कङ्काल मिला था। इसका नाम प्रो० स्काफहासेन[2] ने नियण्डर्थल कपाल रखा है।

इस कपालमें और आजकलके मनुष्योंके कपालोंमें बड़ा भारी अन्तर है। यह कपाल बिल्कुल पशु-कपालोंके सदृश है। इस कपालका मस्तिष्कस्थान भी अत्यन्त छोटा है। उन्नतावस्थाके अन्य लक्षण भी इसमें बहुत ही न्यूनमात्रामें अभिलक्षित हो रहे हैं।

बेलजियमके नमुर प्रान्तके स्पाई स्थानमें भी दो मानव-कङ्काल पृथिवीमें दबे हुए मिले हैं। इन कङ्कालोंके साथ कुछ पत्थरोंके टुकड़े तथा कुछ प्राचीन कालके जानवरोंकी अस्थियाँ भी मिली हैं। इनपर

आनुमानिक कालको सूचित करनेके लिए एच० जी० वेल्सने एक रेखा-चित्र अपने मनोरञ्जक ग्रन्थमें दिया है। उसे हम इस लेखमें यथावसर दे रहे हैं।

१. Neanderthal. २. Schaaffhawsen,

समुचित विचार करनेवालोंका मत है कि यह बहुत प्राचीन कालके नरकङ्काल हैं। सम्भवतः उस समय नर-तनुधारी इन पुरुषोंके साथ वे प्राणी भी वहीं विचरते होंगे जिनकी अस्थियाँ इन कङ्कालोंके साथ मिली हैं, और इन पत्थरके उपकरणोंसे उस समयके इन जन्तुओंका यह लोग वध किया करते होंगे।

मनुष्य विशिष्ट बुद्धियुक्त प्राणी है। अपनी बुद्धिके बलसे मनुष्य-ने आत्मरक्षाके लिए नाना प्रकारके उपकरणोंको उपयोगमें लाना बहुत पहिले ही आरम्भ कर दिया था। मनुष्यके अतिरिक्त इस प्रकार-के उपकरणोंको निर्माण करने और उनको उपयोगमें लानेकी बुद्धि अन्य किसी भी प्राणीमें नहीं है। यह बात बहुत ही गौण है कि कभी कभी हाथी आदि अपनी सूँड़से ढेला अथवा लकड़ी आदि फेंक कर प्रहार करनेकी चेष्टा किया करते हैं। इसमें और उपकरणोंको प्रस्तुत कर उनको प्रयोगमें लानेकी विधिमें महान् अन्तर है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अन्य और भी बहुतसे प्राणी समवाय अथवा सङ्घमें रहते हैं। एक दूसरेके कार्योंमें यत्किञ्चित् सहायता भी देते हैं, जैसे मधु-मक्षिका, चींटी और दीमक आदि। तथापि मनुष्यकी सामाजिकता इन सबसे अनेक अंशोंमें बहुत भिन्न है। मनुष्य-की सामाजिक परिस्थिति प्रतिदिन बदलती जा रही है। उस परिवर्त्तित परिस्थितिके कारण मनुष्यके स्वयं अर्जित किये हुए गुणोंमें प्रतिदिन अन्तर आता जा रहा है। अतः प्रारम्भिक मनुष्य और वर्त्तमान समुन्नत जातिके किसी विशिष्ट व्यक्तिमें अर्जित गुणोंके कारण कल्पनातीत परिवर्त्तन हो गया है। अन्य प्राणी केवल प्रकृतिके पुत्र कहे जा सकते हैं परन्तु मनुष्यको केवल प्रकृतिका पुत्र कहना सर्वांशमें शुद्ध न होगा। मनुष्य तो प्रकृति और सामाजिक परिस्थिति, इस द्वन्द्वका पुत्र है। इस बातकी स्पष्ट विवेचना फ्रान्सके प्राणि-विद्या-विशारद लामार्क और इङ्गलैण्डके प्राणि-तत्त्ववेत्ता चार्ल्स डार्विनने की है। लामार्क और चार्ल्स डार्विनके अभिव्यक्ति-नियम और तिरोभाव-नियम पूर्ण रूपसे एक जैसे नहीं हैं। उनमें कहीं कहीं पार्थक्य भी है।

अभिव्यक्तिके नियमोंपर विचार करनेसे पूर्व इस विश्वकी क्रिया-ओंपर विचार कर लेना आवश्यक है। इस विश्वके समस्त क्रिया-कलापोंको यास्काचार्यने प्रधानतया छः भागोंमें विभक्त किया है। निरुक्तके प्रथम पादमें वे लिखते हैं—

षड्भावविकाराः भवन्ति, जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति।—निरुक्त, नैघण्टुककाण्ड १ अ०, १ पाद।

इसका सरलार्थ यह है कि सम्पूर्ण क्रियाओंको स्थूलरूपसे छः बड़े बड़े भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) पैदा होता है, (२) है, (३) बदलता है[1], (४) बढ़ता है[2], (५) कम हो रहा है, (६) नष्ट होता है। संसारकी और सब क्रियाएँ इन छः में से किसी न किसीके भीतर समाविष्ट हो जाती हैं।

इनमें वर्द्धन दो प्रकारका है—(१) स्वाङ्गाभ्युच्चय अर्थात् अपने अङ्गोंका भीतरी कारणोंसे बढ़ना, (२) सांयौगिकार्थाभ्युच्चय अर्थात् बाह्य पदार्थके संयोगसे बढ़ना। इसी प्रकार क्षय भी दो प्रकारका है—(१) स्वाङ्गापक्षय अर्थात् अपने अङ्गोंका भीतरी ह्रास, (२) सांयौगिकार्थापक्षय अर्थात् बाह्य पदार्थोंका अपक्षय। इन भेदोंमें स्वाङ्गाभ्युच्चय और स्वाङ्गापक्षय यह दोनों चेतन जगत्के अर्थात् जीवके प्रधान लक्षण हैं। जहाँ जहाँपर स्वाङ्गाभ्युच्चय और स्वाङ्गापक्षय दृष्टिगोचर होते हैं वहाँ वहाँ जीवकी सत्ता इन्हीं लक्षणोंसे लक्षित होती है। स्वाङ्गाभ्युच्चयके लिए मुख्यतः अभीष्ट वस्तु आहार है। जीवनरक्षाके लिए भी मुख्यतः यही आहार अपेक्षित है।

'आहार' शब्दका धात्वर्थ तो है अपनी ओर खींच कर लाना। परन्तु इस शब्दका अभिधार्थ है भोजन। बाहरसे भोजनको खींच कर लानेके लिए शक्तिकी आवश्यकता होती है। बिना बलके इस गतिका अर्थात् आहाराकर्षणका होना सर्वथा असम्भव है। किसी भी प्रकार-की गतिके लिए बलकी आवश्यकता होती है, यह भौतिक शास्त्रके

---

१. इसमें differentiation of species भी सम्मिलित है।

२. इसमें modification of species भी सम्मिलित है।

पण्डितोंका स्थिर सिद्धान्त है। सम्पूर्ण प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ और सब प्रयत्न केवल आहारकी सिद्धिके लिए हैं। 'सर्वाश्चेष्टा मनुष्याणां सन्ति ह्याहारसिद्धये' इस बातको हम बहुत समयसे सुनते चले आ रहे हैं।

संसारमें जितने प्राणी हैं उतना आहार नहीं है। आजकल भिन्न भिन्न देशोंकी मनुष्यगणना हुआ करती है। सम्पूर्ण देशोंकी गणनाओंको जोड़नेसे इस पृथिवीपर बसनेवाले मनुष्योंकी सङ्ख्या सरलतासे विदित हो जाती है। भिन्न भिन्न देशोंकी उपजके सम्पूर्ण आकड़ोंको जोड़नेसे इस बातका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि समस्त पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले गेहूँ, यव, मक्का, बाजरा और चावल आदि धान्योंसे समस्त प्राणी अपनी क्षुधानिवृत्ति करनेमें असमर्थ हैं। मनुष्य स्वभावतः सामिष भोजी है अथवा निरामिष भोजी, इस विषयकी विवेचना करनेसे अधिक युक्तियुक्त यही सिद्धान्त मालूम पड़ता है कि मनुष्य स्वभावतः मांसभक्षी नहीं है। मनुष्यके आहारपर विचार करनेवालोंने मनुष्यके दाँतोंकी बनावट आदिके आधारपर मनुष्यको निरामिषभोजी कहा है, परन्तु अन्नाभावके कारण मनुष्यको अपने स्वभावमें परिवर्तन[1] करना पड़ा। अपनी क्षुधाको दूर करनेके लिए मनुष्यने मछली, कछुआ, हरिण, बकरा और सूअर आदिका भी आहार करना प्रारम्भ कर दिया। इतने पर भी आहारकी समस्या पूर्ण रूपसे नहीं सुलझ पायी। जो दशा मनुष्योंके आहारकी है वही दशा सम्भवतः अन्य प्राणियोंके आहारकी भी होगी, यद्यपि उसके हिसाबका प्रयत्न व्यर्थ समझ कर अद्यावधि किसीने नहीं किया है। यदि आहारकी मात्रामें अधिक कमी न होती, केवल एक व्यक्ति भरके लिए अपेक्षित आहार ही न्यून होता तो भी समस्या बहुत टेढ़ी होती, क्योंकि कौनसा एक व्यक्ति निराहार रहे, इसका निर्णय विना सङ्ग्रामके न होता। परन्तु वास्तविक स्थिति इस

---

१. चार्ल्स डार्विन इत्यादिके मतानुसार आरम्भमें मनुष्य मनुजाद था। आर्च विशप उशरके मतानुसार ४००४ ई० पू० में मनुष्य और पृथिवीका निर्माण हुआ। इतनेही दिनोंमें इतना महान् परिवर्तन ?

कल्पनासे अधिक भयङ्कर है। आहारकी प्राप्तिके लिए जीवनभर घोर सङ्ग्राम करना पड़ता है। एक जीव दूसरे जीवको खा जाता है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्'[१] का सिद्धान्त मानकर चार्ल्स डार्विनने 'सरवाइवल आव् द फिटेस्ट'[२] अर्थात् योग्यतमावशेषके नियमको अङ्गीकार किया। योग्यतमावशेषका नियम मनुके निम्न श्लोकका सारभूत है।

चराणामन्नमचराः दंष्ट्रिणाञ्चाप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणाञ्चैव भीरवः॥ मनु-अ० ५ श्लो० २९

अर्थात् जङ्गम हरिणादिके भक्ष्य स्थावर तृण आदि हैं, तीव्र दंष्ट्रा वाले सिंह आदिके भक्ष्य हरिण आदि अदंष्ट्री हैं। हस्तरहित मत्स्यादि सहस्त मनुष्यादिके भक्ष्य हैं, एवं शूरोंके भक्ष्य डरपोक हैं।

केवल आहारको प्राप्त कर लेनेसे ही जीवनकी रक्षा नहीं हो जाती है। जीवनकी रक्षाके लिए दूसरी अपेक्षित वस्तु स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य शब्दका पर्यायवाची एक ही शब्द अन्य भाषामें कठिनतासे मिलेगा। स्वास्थ्यका अर्थ बहुत गम्भीर है। स्वास्थ्य शब्दकी उत्पत्ति स्वस्थ शब्दसे भाववाचक प्रत्ययके करने पर हुई है। स्वस्थका अर्थ है अपनेमें स्थित। बाहरके आहारको उदरमें पहुँचा कर पचाना, उस आहारको अपनेमें मिला लेना, स्वयं उस आहारसे अभिभूत न होना, इत्यादि—यह स्वास्थ्य शब्दका तात्पर्यार्थ है।

कन्द, फल, दुग्ध और अन्नादि नाना प्रकारके विजातीय द्रव्योंको उदरमें पहुँचा कर यदि उन्हें हम स्वस्थ नहीं कर सकते, अर्थात् यदि उनके द्वारा हमारी रसादि धातुओंकी उत्पत्ति यथावत् नहीं होती तो वह आहार हमारे जीवनकी रक्षाके लिए अपर्याप्त है।

प्रसिद्ध जल-चिकित्सक लुई कूनेके मतसे यही फारेन मैटर अर्थात् विजातीय द्रव्य है। यही रोगोंकी जड़ है। जीवनकी रक्षाके लिए इस विजातीय द्रव्यका पृथक्करण आवश्यक होगा।

---

१. प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ मनु० अ० ५। २८

२· Survival of the fittest.

जिस प्रकार स्वास्थ्य व्यष्टिके लिए अपेक्षित है ठीक इसी प्रकार वह समष्टिके लिए भी अभीष्ट है। भिन्न भिन्न देशोंमें रहनेवाली जातियाँ अपने इस स्वास्थ्यकी सर्वदैव चिन्ता किया करती हैं। भिन्न भिन्न मतोंके अनुयायियोंको भी इसी उद्देश्यसे अपने इस स्वास्थ्यकी रक्षाके प्रयत्न आवश्यक हो जाते हैं। मनुष्य व्यक्तिकी परिमित शक्तिको बाह्य द्रव्योंको स्वस्थित करनेके लिए परिस्थितिके साथ सर्वदैव घोर सङ्ग्राम करना पड़ता है। जबतक मनुष्यकी शक्ति इन बाह्य द्रव्योंको अपनेमें मिलाती रहती है, इनसे अभिभूत नहीं होती तबतक मनुष्य व्यक्तिका जीवन रहता है। और जब व्यक्ति इन बाह्य द्रव्योंसे स्वयं अभिभूत होकर परास्त हो जाता है तब वह इस संसारसे विदा हो जाता है। इसी महाप्रयाणका नाम है—मृत्यु।

यदि प्राणीको अपनी पूर्णायुके उपभोगका अवसर मिल सके तो उसके जीवनकी अवस्थाओंको चार बड़े भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। सुश्रुतके शारीरस्थानमें लिखा है—

चतस्रोऽवस्था शरीरस्य, वृद्धिः, यौवनं, सम्पूर्णता, ततःकिञ्चित्परिहाणिश्चेति।

अर्थात् शरीरकी चार अवस्थाएं होती हैं (१) वृद्धि, (२) यौवन, (३) सम्पूर्णता और (४) परिहाणि।

जन्मके समय मनुष्यकी अथवा किसी भी अन्य प्राणीकी जो दशा होती है, कालमृत्युके समय उसकी दशा प्राक्तन दशासे सर्वथा भिन्न होती है। कालमृत्युका अर्थ है नियत समयपर मरना। शास्त्रकारोंने अकालमृत्युको भी माना है, यद्यपि इसमें परस्पर तीव्र मतभेद है। एक दीपकमें तैल भरा हुआ है, बत्ती भी ठीक है परन्तु यदि हवाका झोंका आजाय तो वह दीपक निर्वाणको प्राप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार किसी आगन्तुक कारणवश प्राणीकी मृत्यु अकालमें भी हो जाती है। दूसरा उदाहरण घड़ीका दिया जा सकता है। एक घड़ीमें चौबीस घण्टेकी चाभी भर दी गयी है। यदि वह ठीक ठीक रखी हुई चलती रहे तो चौबीस घण्टे चलेगी परन्तु यदि कोई व्यक्ति उस घड़ी-

को ईंट आदिके प्रहारसे फोड़ डाले तो वह घड़ी अब कैसे चौबीस घण्टे चल सकेगी। ठीक इसी प्रकारसे अकाल मृत्युको समझना चाहिये। इन उदाहरणोंमें पहिला उदाहरण चरक संहिताका है। भिन्न दशाकी स्पष्ट प्रतीतिके लिए कालमृत्युका ही निदर्शन ठीक होगा। वृद्धावस्थामें मृत्युशय्यापर लेटे हुए वृद्ध पुरुषको यदि उसके बाल्यकालका अदृष्टपूर्व चित्र दिखलाया जाय तो वह स्वयं ही अपने परिवर्त्तित रूपको देखकर अपने प्राक्कालीन रूपकी प्रत्यभिज्ञा करनेमें सर्वथा असमर्थ होगा। जन्मसे पूर्व यदि गर्भावस्थाका विचार किया जाय तो इस वृद्ध देह तथा यौवनावस्थाके शरीर और गर्भावस्थाके भिन्न भिन्न रूपोंको एक कहना केवल साहसका कार्य समझा जायेगा।

गर्भावस्थाका प्रारम्भिक रूप शुक्र और रज है। रज स्त्रीके शरीरमें और शुक्र पुरुषके शरीरमें ठीक उसी प्रकार प्रच्छन्न रूपसे निहित है जैसे तिलोंमें तैल अथवा दूधमें घृत। तिलोंके निष्पीडनसे जैसे तैलकी उपलब्धि होती है, ठीक इसी प्रकार कामोद्रेकसे वीर्यवाहिनी नाडियों अथवा नालियोंके द्वारा समस्त देहसे निचुड़ कर शुक्रका कुछ भाग वृषणस्थानमें पहुँच जाता है। यही वीर्य पुरुषकी उत्पत्तिका बीज है। बीज यदि परिपक्व, अकीटकिट्ट और अदग्ध होगा, तो वह उर्वराभूमिमें बो देनेके उपरान्त, जलादि सेकके द्वारा कालान्तरमें अङ्कुरादिके क्रमसे वृत्तरूपमें परिणत हो जायेगा। इस वृक्षपर भी फल लगेंगे, उन फलोंमें बीज होंगे, उन बीजोंसे पुनः वृक्ष होंगे, इसी बीज-वृक्ष न्यायसे वह प्रारम्भिक वृक्ष ही नये नये रूपोंमें होता जायेगा। इस प्रकार हजारों वर्षों तक उसी प्रारम्भिक बीजके अंशको लेकर नये नये वृक्ष और बीज उत्पन्न होते रहेंगे। बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज, इस धाराको विज्ञानभिक्षुने साङ्ख्य दर्शनके भाष्यमें पुराणादिके श्लोकोंके आधारपर प्रवाहसे अनादि कहा है।

प्रारम्भिक वृक्षके सहजधर्म अथवा वंशपरम्परागत पैतृक धर्मोंमें बहुधा परिवर्तन भी हो जाता है। एक वृक्षकी शाखाको दूसरे वृक्षकी शाखाके साथ वनस्पति शास्त्रके नियमोंके अनुसार यथाविधि यथासमय

संयुक्त कर देनेसे इस नूतन वृक्षके गुणोंमें मूलवृक्षके गुणोंसे स्पष्ट परिवर्तन देख सकते हैं।

आम, बेर, नीबू इत्यादि फलों और गुलाब, मोतिया आदि फूलोंकी इस प्रकारकी कलमोंके कारण बहुत सी नयी नयी जातियाँ पैदा होती जा रही हैं। एक खट्टे नीबूके वृक्षको स्कन्ध मानकर उसकी अन्य शाखाओंमें शर्बती नीबू, नारङ्गी, सन्तरा चकोतरा आदिकी कलम लगा देनेसे एकही वृक्षपर खट्टे, मीठे, लाल, पीले तथा छोटे, बड़े बहुत प्रकारके फल लगने लगते हैं। यह इस वृक्षके कृत्रिम अथवा अर्जित धर्म हैं। जिस प्रकार वनस्पितियोंमें सहज और अर्जित दो प्रकारके धर्म दृष्टिगोचर होते हैं ठीक इसी प्रकार मनुष्यादि प्राणियोंमें भी सहज और अर्जित दोनों प्रकारके धर्मोंका सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। 'ला आफ हेरिडिटी'[१], पर विचार करनेसे यह बात भली भाँति विदित हो जाती है कि सन्तानमें पैतृक धर्म स्वभावतः ही सङ्क्रान्त होते हैं। यास्कने निरुक्तमें पुत्रों और कन्याओंके दायभागपर विचार करते हुए इस विषयको भी निम्न भाँति विशद किया है—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥

अर्थात्:—अङ्ग अङ्गसे पैदा होता है और हृदयसे उत्पन्न होता है अतः पुत्र नामधारी तू आत्मा ही है। 'आत्मा[२] वै जायते पुत्रः', आदि-वाक्योंका भी यही अभिप्राय है कि आत्मा ही पुत्र रूपसे नया जन्म लेता है ठीक इसी प्रकारसे यही बात ऐतरेयब्राह्मणके हरिश्चन्द्रोपाख्यानमें पत्नीके पर्यायवाची जाया शब्दकी व्याख्या करते हुए कही है कि पत्नीका नाम जाया इसलिये है कि पिता इस पत्नीमें पुत्र रूपसे पुनः उत्पन्न होता है।

---

१. Law of Heredity.

२. जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः। आत्मा वै जायते पुत्रो नवो-भूत्वा पुनः पुनः। मनु अ० ९।८

मनुष्यकी उत्पत्तिका क्षेत्र नारी है। मनुने कहा है—

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
बीजक्षेत्रसमायोगात् संभवः सर्वदेहिनाम्॥

मनु अ० ९। ३३ श्लो०

अर्थात्—खेत तुल्य नारीको समझना चाहिये, बीजतुल्य पुरुष है। बीज और क्षेत्रके संयोगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। जैसे छोटेसे वटबीजमें महान् वटवृक्ष सूक्ष्म रूपसे निहित है, ठीक उसी प्रकार पुरुषके बीजमें महान् पुरुष भी निहित है।

जीवनके सङ्घर्षमें आहारकी प्राप्तिके लिये लुहारको हथौड़ेसे काम करना पड़ता है, कृषकको हल और फावड़ेसे कार्य करना होता है, धोबीको कपड़े धोनेके समय एक विशेष प्रकारका व्यायाम करना पड़ता है, अतः वंशपरम्परागत अभ्यासके कारण भिन्न भिन्न पेशोंसे जीविकार्जन करनेवाली जातियोंमें पुरुषानुक्रम अभ्याससे भिन्न प्रकारके अवयव संस्थान होगये हैं। अभ्यासके कारण पहाड़ी लोग अधिक बोझ लेकर ऊँची पहाड़ियोंपर चढ़ सकते हैं और इसी अभ्यासके कारण शुतुर्मुर्ग जैसा महान् पक्षी अब उड़ नहीं सकता है। अभ्यासके कारण ही भैंसा, घोड़ा और गदहा सतत परिश्रम करते हुए घोरातिघोर यातनाओंको सह कर भी जीवित रह सकते हैं। इसी अभ्यासके कारण स्त्रियोंको प्रसवके उपरान्त बहुत समयतक नानाविध उपचारोंकी आवश्यकता पड़ती है और इसी अभ्यासके कारण गौरैया और हरिणी प्रसवके पश्चात् फौरन उछलने लगती हैं।

मनुष्य सहज धर्मोंके अतिरिक्त कुछ नये धर्मोंको अपनी परिस्थिति-के प्रभावसे स्वयं भी अर्जित करता है। इन अर्जित धर्मोंके कारण मानवी परिस्थिति सर्वदा बदलती रहती है अतः आज विक्रमकी बीसवीं शताब्दीमें समाजकी वर्त्तमान परिस्थिति मनुष्योंके अर्जित गुणोंके कारण एक सहस्र वर्ष पूर्वकी सामाजिक परिस्थितिसे बहुत अंशोंमें बदली हुई है। इस परिवर्त्तित परिस्थितिके कारण आजके मनुष्यमें वंशपर-

म्परागत पैतृक धर्मोंकी एक ही धारा होनेपर भी प्राक्तन मनुष्यसे कुछ भेद मानना ही युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है।

गङ्गोत्रीसे प्रवाहित होनेवाली जाह्नवीकी धारामें वही जलतरङ्ग द्वितीय बार उसी स्थानमें उसी रूपमें पुनः कभी भी नहीं प्रवाहित होती है, यद्यपि इस नयी धाराका भी नाम गङ्गा ही होता है। दीप-शिखा प्रतिक्षण बदलती रहती है, पूर्वक्षणमें विद्यमान दीपशिखाकी जन्म-सामग्री उत्तर क्षणमें वर्त्तमान दीपशिखाकी जन्म-सामग्रीके सदृश है। अतः कारणकी एकतासे इस भिन्नतामें भी अभिन्नताकी प्रतीति होने लगती है। ठीक इसी प्रकारका भेदाभेद प्राक्तन और नूतन मनुष्योंके मध्यमें समझना चाहिये। कालक्रमसे भिन्न भिन्न परिस्थितियों और भिन्न भिन्न प्रकारके आहार आदिसे मनुष्य बहुत कुछ परिवर्त्तित होता जा रहा है। प्रत्येक प्राणीकी दशाका परिवर्त्तन जिन हेतुओंसे होता है उनमें काल तथा आहार यह दो सबसे प्रधान हैं। मनुष्यकी अन्य प्राणियोंसे जो मुख्य विशेषता है वह यास्कमुनिने मनुष्य शब्दका निर्वचन करते हुए विस्पष्ट कर दी है। यास्कमुनिने मनुष्य शब्दके कई निर्वचन किये हैं, उनमें 'मत्वा कर्माणि सीव्यति इति मनुष्यः', यह निर्वचन अधिक भावपूर्ण और सुन्दर प्रतीत होता है। पूर्वापरका विचार कर, कार्य-कारण-भावको पूर्णरूपसे सोच समझ कर कार्यको करना मनुष्यकी विशेषता है। सङ्कल्प, विकल्प, ज्ञान, ऊह, प्रतिभा आदि मनके कार्य हैं, यह बात न्याय दर्शनके 'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्', इस प्रथमाध्यायस्थ सूत्रके भाष्यमें वात्स्यायन मुनिने लिखी है। इस मनकी उत्पत्ति अन्नसे होती है, यह बात छान्दोग्योपनिषद्के 'अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाक्', इस वाक्यसे प्रतीत होती है। लोकप्रसिद्ध अन्नके अतिरिक्त मानसिक आहार ज्ञानार्जन भी है। गीतामें सत्त्व, रजस् और तमस्पर विचार करते हुए इन तीनोंकी भिन्न भिन्न मात्रा बहुतसे पदार्थोंमें स्थाली-पुलाक न्यायसे दर्शायी है। पुरुष सात्त्विकी राजसी और तामसी प्रकृतिके होते हैं। आहार भी सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे त्रिविध होता है। अतः इस आहारका परिणामभूत

मन भी प्रधानतया त्रिविध होगा। इनके अवान्तर भेद तो अपरिसङ्ख्येय होंगे।

मनुष्यमें मन ही प्रधान है। शरीर गौण है। मनकी शक्तियोंकी रक्षाके लिये और इसकी कार्यकारिणी शक्तिको अभिव्यक्त करनेके लिये ही मनुष्यको इस विचित्र शरीरकी आवश्यकता होती है। 'अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' बृहदारण्यक उपनिषद्के इस वाक्यसे यह बात भलीभाँति विदित होती है कि सशरीर चेतन ही कार्यके निष्पादनमें समर्थ होता है। शरीररहित चेतन ठीक उसी प्रकार कार्यके निष्पादनमें असमर्थ है जैसे चेतनारहित शव कार्य करनेमें अशक्त होता है। चेतनकी रक्षाके लिये ही यह आवरणभूत शरीर है। चेतन रथी है, शरीर रथ है इत्यादि कठोपनिषद्में निबद्ध रथी–रथका उदाहरण भी इसी बातका अभिव्यञ्जक है।

न्यायदर्शनमें एक स्थलपर यह शङ्का की गयी है कि जिन षोडश पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस्की प्राप्ति होती है, उनमें जल्प और वितण्डाको क्यों परिगणित किया गया है। इसका उत्तर स्वयं गोतम मुनिने यह दिया है 'तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोह-संरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत्' (अर्थात् निर्णीत तत्त्वकी रक्षाके लिये जल्प और वितण्डाकी आवश्यकता इस तत्त्वज्ञान प्रसङ्गमें ठीक उसी भाँति समझनी चाहिये जैसे बोये हुए बीजकी रक्षाके लिये कटीली शाखाओंका वेष्टन आवश्यक होता है)। बहुतसे स्थानोंमें प्रायः देखनेमें आता है कि गोभी, बैगन, करेला आदिके खेतोंकी मेंड़पर अथवा खेतके चारों ओरकी समुन्नत भूमिपर नागफनीके कटीले वृक्ष भी लगे होते हैं। यह वृक्ष भी इच्छा पुरस्सर लगाये जाते हैं। इन वृक्षोंका स्वतः कोई उपयोग नहीं होता है। यह केवल खेतमें बोये गये बीजोंकी रक्षाके लिये होते हैं। ठीक इसी प्रकार यह शरीर भी बाह्यावरण मात्र है, चेतनकी रक्षा करता हुआ उसके नानाविध व्यापारोंका द्वार है। जब यह शरीर चेतनके अभीष्ट व्यापारोंके अयोग्य हो जाता है तब इस आवरणभूत शरीरको छोड़ कर शरीरी

चेतन दूसरा अन्य नूतन शरीर ग्रहण कर लेता है। गीतामें यह बात बड़े सरल शब्दोंमें दर्शायी गयी है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि॥
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

गीता, अध्याय ३

अर्थात्—जैसे कोई मनुष्य पुराने कपड़ोंको त्याग कर नये दूसरे कपड़े ग्रहण करता है, ठीक इसी प्रकार देहधारी चेतन भी पुरानी कार्याक्षम देहको त्याग कर नयी देहको ग्रहण कर लेता है।

यही बात बृहदारण्यकोपनिषद्में तृणजलौकाके दृष्टान्तसे प्रकट की गयी है। शुक्रमें, जो कि मनुष्यकी उत्पत्तिका बीज है, बीज-भाग और आवरण भाग दोनों ही विद्यमान रहते हैं। बीज-भाग ही मुख्य है, आवरण भाग गौण। बीज-भाग अपनी परिस्थितिके अनुसार अपना आवरण स्वयं बना लेता है। इस सिद्धान्तसे यह बात स्पष्ट होती है कि भिन्न भिन्न वर्णोंकी और भिन्न भिन्न प्रकारके अवयव संस्थानोंकी जिन मनुष्य जातियोंकी सत्ता भिन्न भिन्न देशों और प्रदेशोंमें है, उन सबमें आवरण भागके भिन्न होने पर भी एक बात सामान्य है अर्थात् 'मनुष्यत्व'। इस मानवविज्ञानपर विचार करने वाले पौरस्त्य और पाश्चात्य देशके बहुतसे पण्डित हुए हैं। सबके मतका निष्कर्ष यही है कि मनुष्यमात्रमें 'मनुष्यत्व' यह धर्म अनुगत है, अतः सब मनुष्य हैं। उनमें वर्णादिसे किसी प्रकारका तात्विक भेद नहीं होता है। आधुनिक पण्डितोंमें कोई कोई पण्डित वर्ण और जाति शब्दको पर्यायवाची समझ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र अथवा श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णोंको जन्मना ही भिन्न भिन्न जातिका मान लेते हैं। यदि वे स्वाध्यायशील होकर मानव-विज्ञानपर विचार करेंगे तो उन्हें स्वयं अपनी भ्रान्तिको शुद्ध करनेका अवसर उपलब्ध हो जायेगा। यास्कमुनि

(९०० वि० पू०), चरकमुनि (१०० विक्रम), लिनीअस[१] (१७०७–१७७८ ई० = १७६४ वि०—१८३५ वि०), बफ्फन[२] (१७०७–१७८८ ई० = १७६४–१८४५ वि०), लामार्क[३] (१७४४–१८२९ ई० = १८०१–१८८६ वि०) चार्ल्स डार्विन[४] (१८०९–१८८२ ई० = १८६६–१९३९ वि०) आदिने मानवविज्ञानपर जिस प्रकारसे विवेचन किया है उससे यही प्रतीत होता है कि वर्णादिके द्वारा मनुष्यत्वमें किसी प्रकार अन्तर नहीं आता है। वर्ण-विवेचन मानवविज्ञानका विषय नहीं है।

यहाँ पर हम 'द आउटलाइन आफ हिष्ट्री' के ३८ वें पृष्ठसे उद्धृत कर एक रेखाचित्र देते हैं, जिसके देखनेसे मनुष्योंके वैकासिक इतिहासके कालका दृश्य नेत्रोंके सामने आ जाता है। रेखाके आनुपातिक विभागपर ध्यान नहीं दिया गया है, अतः केवल समयपर ही ध्यान देना चाहिये।

—६००००० ई० पू० } पिथेकन्थ्रोपस् एरक्टस् का समय
—५५०००० प्लाइओसीन कालकी समाप्ति और प्लाइस्टोसीन कालका आरम्भ
—५००००० प्रथम हिमयुगका समय
—४००००० द्वितीय हिमयुगका समय
—१५०००० तृतीय हिमयुगका समय
—५०००० चतुर्थ हिमयुगका समय
—३५००० अर्वाग्वर्त्ती प्राचीन प्रस्तरकाल
—१५००० कृषिका युग

द्वितीय और तृतीय हिमयुगके मध्यमें अर्थात् दो लाख पचास हजार वर्ष ई० पू० हीडल वर्गीय मनुष्योंका सम्भावित समय है।

विक्रमसे एक लाख वर्ष पूर्वके लगभग उन मनुष्योंका सम्भावित समय है जिनकी भग्नास्थियाँ और कपाल आदिका पता पिल्टडाउन में चला है। इनका नाम इवोअन्थ्रोपस् अर्थात् 'मनुष्यकी उषा' रखा

१. Linnaeus. २. Buffon. ३. Lamarck. ४. Charles Darwin.

गया है। चतुर्थ हिमयुगके अनन्तर निअण्डर्थलीय मनुष्योंका समय है। अर्थात् निअण्डर्थलर (ड्यूसलूडार्फके निकट जर्मनी) में जो कपाल और भग्नास्थियाँ मिली हैं वह सम्भवत: उसी कालके मनुष्यकी सूचक हैं।

वास्तविक मनुष्यों (होमो सवाइन्स) का समय विक्रमसे लगभग बीस हजार वर्ष पूर्व है। उपर्युक्त पुस्तकमें उपकरणोंकी दृष्टिसे भी काल-का विभाग किया गया है।

मनुष्यजातिके उपविभाग

मानववंशकी उत्पत्ति हो जानेके उपरान्त शनैः शनैः शीत, उष्ण, और अनुष्णाशीत, तथा वात और आतप आदि बाह्य परिस्थितियोंके कारण, भिन्न भिन्न देशोंमें रहनेवाले मनुष्योंके आकार और अवयव संस्थानोंमें बहुत अन्तर आगया। भिन्न भिन्न प्रदेशोंके रहनेवाले लोग विशेषतः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णके हो गये। इस चर्मगत भेदके अवान्तर भेद और भी बहुतसे हो सकते हैं। देशभेदसे ही किन्हीं-का मस्तक और सिर लम्बा होगया, मुखकी आकृति भी लम्बी होगयी, किन्हींका सिर तथा आनन गोल और ईषद् वर्त्तुल होगया। किसी प्रदे-शमें रहनेवाले पुरुषोंकी आँखें भूरी, किसी किसी प्रदेशके निवासियों-की आँखे नीली, कञ्जी और काली होगयीं। किन्हीं लोगोंकी नाक छोटी और चपटी होगयी तथा किन्हींकी नासिका लम्बी और उन्नत होगयी। कोई लम्बे, कोई नाटे तथा कोई प्र-हनु और कोई अव-हनु होगये। शरीराकृतिके इन बाह्य अभिव्यञ्जनोंको प्रधानतः दो प्रकारका कह सकते हैं—(१) व्यवस्थित अभिव्यञ्जन (२) अव्यवस्थित अभि-व्यञ्जन। व्यवस्थित अभिव्यञ्जनोंको अंग्रेजीमें डेफिनिट[१] अथवा 'अंथ्रा-पामेट्रिक फिजिकल कैरेक्टर्स' कहते हैं और अव्यवस्थित अभिव्यञ्जनों-को इन्डेफिनिट[२] फिजिकल कैरेक्टर्स कहते हैं। शरीरका वर्ण, बाल और आँख इत्यादिकी बनावट अव्यवस्थित अभिव्यञ्जन हैं। व्यवस्थित

१. Definite or Anthropometric physical characters.

२. Indefiinite physical characters.

अभिवाञ्जनोंमें शीर्षकी आकृति एवं नासिकाकृति ही मुख्य हैं। कपालविद्याके विशेषज्ञोंका मत है कि शरीरके वर्णादिकी अपेक्षा कपाल चिरकालमें भी अत्यल्प ही परिवर्त्तित होता है।

शीर्षकी बनावट तीन प्रकारकी मानी गयी है। इसके विभागके लिये शीर्षके अग्रभागमें मस्तकके सर्वोच्चस्थानसे[१] शीर्षके पृष्ठभागमें सर्वोन्नतस्थान (ल्यूडीं) तककी लम्बाई, और शीर्षके मध्य भागकी अधिकसे अधिक चौड़ाई नाप ली जाती है। मान लिया कि शीर्षकी लम्बाई सौ यव प्रमाण है, तो अस्सी यव प्रमाण तक चौड़ाई अर्थात् यदि लम्बाईकी अपेक्षा न्यूनातिन्यून ४/५ चौड़ाई हो तो इस प्रकारके शीर्षोंको आयतशीर्ष कहेंगे। अंग्रेजीमें इसे ब्राचीसेफलिक[२] कहते हैं। लम्बाई और चौड़ाईके आनुपातिक सम्बन्धके लिये पारिभाषिक शब्द कापालिक संस्थिति अथवा सेफलिक इण्डेक्स,[३] है। अस्सीसे लेकर पचहत्तर प्रतिशतकतक जिनके सिरोंकी लम्बाई और चौड़ाईका अनुपात होगा वे मध्यशीर्ष अथवा मेसो[४] सेफलिक कहलायेंगे। जिनके सिरोंकी लम्बाई और चौड़ाईका अनुपात प्रतिशतक पचहत्तरसे न्यून होगा वे लम्बशीर्ष अथवा डालिको[५] सेफलिक कहलायेंगे। शीर्षाकृतिकी भिन्नता जातिगत भेदको सूचित करनेके लिये बहुत दृढ़ प्रमाण है। इसी शीर्षाकृतिके रखनेवाले लम्बशीर्ष स्कैण्डीनेवियन लोगोंका आयत-शीर्ष केल्ट और स्लाव लोगोंसे भेद सूचित होता है। नीग्रो और मङ्गोल आदिके भेदोंके लिये भी यह विशेष आधार है। नासिकाके नापनेका प्रकार भी लगभग पूर्ववत् ही है। नासिकाकी ऊँचाई तथा चौड़ाई-का आनुपातिक सम्बन्ध नासिका संस्थितिके द्वारा जाना जा सकता है। इसे अंग्रेजीमें नेसल इण्डेक्स[६] कहते हैं। यदि किसी व्यक्तिकी नासिका जिस परिमाणमें ऊँची है उसी परिमाणमें वह चौड़ी भी होवे, जैसा कि बहुधा द्रविड़ जातिके पुरुषोंमें दृष्टिगोचर होता है, तो उसकी

---

१. Glabella. २. Brachy-cephalic. ३ Cephalic Index.
४. Meso or Mesati-cephalic. ५. Dolicho cephalic.
६. Nasal Index

नासिका संस्थितिको सौ प्रतिशतक समझना चाहिये। नासिकाकृतियोंके भी मुख्य तीन भेद हैं। (१) सुन्दर अथवा लघु नासिका अर्थात् लेप्टोराइन[१]। इस प्रकारकी नासिकाकी चौड़ाई उसकी ऊँचाईकी अपेक्षा न्यूनातिन्यून सत्तर प्रतिशतक कम होती है। (२) मध्य-नासिका अर्थात् मेसोराइन[२] इस प्रकारकी नासिकाओंकी चौड़ाई और ऊंचाईका अनुपात सत्तर प्रतिशतकसे लेकर पचासी प्रतिशतक तक होता है। (३) आयत नासिका अर्थात् प्लेटीराइन[३], इस प्रकारकी नासिकाओंकी चौड़ाई और ऊँचाईका अनुपात पचासी प्रतिशतकसे अधिक होता है। जातिगत भेदको प्रमाणित करनेके लिये नासिका-भेद भी दृढ़ आधार है। भिन्न भिन्न जातिके भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें इस नासिका संस्थितिमें तिरपनसे लेकर एक सौ बाइस तकका आन्तर्य दृष्टिगोचर हो चुका है। आर्य, द्रविड़ और मङ्गोल आदिको हम इन विशेष अभिव्यञ्जनोंके आधारपर ही भिन्न भिन्न वर्गोंमें विभक्त करते हैं।

पेरिसके प्रो० टापिनर्डने[४] ऊँचाईको भी चार कोटियोंमें विभक्त किया है। ५ फीट ७ इञ्च अथवा इससे लम्बोंको लम्बाकार[५] कहा है। ५ फीट ५ इञ्चसे लेकर ५ फीट ७ इञ्च तकके व्यक्ति जो मध्यममानसे अधिक ऊँचे हैं अति-मध्याकार[६] कहे जायँगे। ५ फीट ३ इञ्चसे लेकर ५ फीट ५ इञ्च तकके व्यक्ति अनु-मध्यमाकार[७] कहे जायँगे और ५ फीट ३ इञ्चसे छोटे व्यक्ति खर्वाकार[८] कहलायेंगे। बहुतसे लोगोंने इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए मनुष्य-जातिको तीन, चार अथवा पाँच बड़े भागोंमें विभक्त किया है। प्रधान उपविभागोंके सङ्करसे कल्पनातीत अवान्तर विभागोंका जन्म हो चुका है।

सम्भवतः सर्गारम्भमें यह सब भेद नहीं होंगे। मनुस्मृति आदिके देखनेसे विदित होता है कि सब मनुष्य मनुकी[९] ही सन्तान हैं। ब्रह्म-

---

१. Leptorrhine. २. Mesorrhine. ३. Platyrrhine.
४. Professor Topinard. ५. Tall Statures. ६. Above average
७. Below average. ८. Short Statures.
९. ऋग्वेदमें विवस्वान्के पुत्र यमको आदिमनुष्य तथा मनुष्योंका राजा

देव ही सबके पितामह हैं, इसलिये अमरकोशकार अमरसिंहने पितामह शब्दको ब्रह्माका पर्यायवाची ही मान लिया है। 'ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः' अमरकोशके इस श्लोकने ब्रह्माजीके अन्य नामोंके साथ 'पितामह' नामको इसी हेतुसे गुम्फित किया है कि स्वयम्भू ब्रह्माने तपस्या करके मनुको उत्पन्न किया। सब मनुष्य मनुके ही पुत्र हैं, इसीलिये मानव, मनुष्य, आदि अन्वर्थ संज्ञाओंसे इनका अभिलाप होता है। ब्रह्माजी इनके पितामह थे। अतः ब्रह्माजीका नाम ही पितामह पड़ गया। मनुस्मृतिके निम्न पदोंसे यह बात और अधिक विशद हो जाती है—

तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥

—मनु, अध्याय १

अर्थात्—उस विराट् पुरुषने स्वयं तपस्या करके जिस पुरुष विशेषको उत्पन्न किया, उस मनुको ही इस सबका स्रष्टा जानो। प्रजाओंको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले मैंने अति कठिन तप करके प्रजाओंके रक्षक दश स्वामी उत्पन्न किये—(१) मरीचि, (२) अत्रि, (३) अङ्गिरा, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) प्रचेता, (८) वसिष्ठ, (९) भृगु, (१०) नारद। इन्हीं दश रक्षकोंने पुनः उत्तरकालीन मानव वंशको यथाक्रम उत्पन्न किया।

कालान्तरमें इस एक मानवजातिके और बहुतसे कल्पित अवान्तर भेद हो गये। यह अवान्तर विभाग लाक्षणिक हैं, निसर्गसिद्ध

कहा है। अवस्ता और उसकी टीका जेण्डके अनुसार विवह्नतका पुत्र यिम प्रथम मनुष्य है। बाइबिलके अनुसार ऐडम (आदम) प्रथम मनुष्य है। यह केवल संज्ञाओंका भेद है।

नहीं। अवान्तर विभागोंकी आधारशिला शोणित-गत तथा भाषागत ऐक्य एवं अनैक्यपर प्रतिष्ठित है। जाति-विज्ञानके पण्डित अर्थात् इथनालाजिस्ट और भाषाविज्ञानके पण्डित अर्थात् फाइलालाजिस्टका मत इन अवान्तर विभागोंके विषयमें एक जैसा नहीं है। इनके मत कहीं कहीं सदृश हैं और कहीं कहीं पृथक्। भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे सभी आर्यभाषाभाषी पुरुष आर्य कहलायेंगे। परन्तु जातिविज्ञानके पण्डित आर्यभाषाभाषी लोगोंको भी अनार्य जातिका कह सकते हैं। उनकी दृष्टिमें जातिनिर्धारणके लिए भाषागत ऐक्यका मूल्य अत्यधिक नहीं है।

मानवविज्ञान, भूविज्ञान, उद्‌भिद्‌विज्ञान आदिके सहयोगसे भाषाविज्ञान किसी अभ्रान्त परिणामपर पहुँच सकता है। केवल एक बातका ही अवलम्बन करके तत्त्व निर्णय कर लेना आधुनिक विचारकों-की प्रक्रियाके विरुद्ध है। वर्त्तमान समयकी प्रचलित भाषाओं एवं वर्त्तमान समयकी जीवित जातियोंके मूलका अनुसन्धान करनेवाले विद्वानोंका प्रायः यही मत है कि सम्पूर्ण भाषाओं और सम्पूर्ण जातियोंका मूल एक ही है। सब भाषाएँ और सब जातियाँ मूलभूत-स्कन्धपर आकर उसी भांति मिली हुई प्रतीत होती हैं जैसे बरगद वृक्षकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण तथा नीचे और ऊपरको फैली हुई एवं कालान्तरमें स्वयं भी स्कन्ध रूपमें परिणत हुई शाखाएँ एक-प्रकृतिक मालूम पड़ती हैं। भाषागत तथा जातिगत किंवा शोणितगत एकतापर विचार करनेवाले विद्वानोंने इन अवान्तर विभागोंकी संज्ञाएँ अपने अपने शास्त्रोंमें पृथक् भी रखी हैं परन्तु उससे इस विषयके विचारमें कोई तात्त्विक परिवर्त्तन नहीं आता।

प्रथम समयके विचारकोंने सेमेटिक, हमेटिक और जफेटिक यह तीन विभाग किये[1]। पुनः (१) आर्य जाति, (२) सेमेटिक जाति, (३) तूरानियन जाति, इन तीन भागोंमें मानव-जातिको विभक्त किया गया। भाषागत भेदसे भी उस समय यही तीन भेद माने गये थे।

१. नार्डिक, अल्पाइन और आइबीरियन जाति विभाग प्रागैतिहासिक कालका है।

इनके और भी उपविभाग हैं। उनके मतानुसार जर्मनी, स्वीडन, नार्वे, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, इटली, यूनान, ईरान और भारतवर्षके रहनेवाले प्रधानतया आर्य जातिके ही हैं। इनको भी शुद्ध आर्यवंशका ही मानना भ्रमपूर्ण होगा। इन सबमें कब और कितनी मात्रामें साङ्कर्य हुआ इसकी विवेचना कर तत्त्वावधारण कर लेना कृच्छ्र साध्य कार्य है।

सेमेटिक जातिमें अक्कदके लोग, असीरियाके असुर लोग, फिनीशियाके पणिक् अथवा वणिक् लोग, अरब और अबीसीनियाके लोग, नोआबाइट, हिब्रू आदि माने जाते हैं।

जेनेसिसके अनुसार शेम[१] के वंशधर सेमेटिक जातिके और हम[२] के वंशधर हमेरिक जातिके समझने चाहिये। इन्हीं मूल पुरुषोंके नामपर सेमेटिक और हमेटिक जातियोंका नामकरण-संस्कार हुआ है।

भाषागत परिवर्त्तनोंके साथ शोणितगत परिवर्त्तनका साम्य सर्वत्र एकसा नहीं है। इसलिये कई जातियोंके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कोई बात नहीं कही जा सकती। बहुत स्थलोंमें तो यथार्थ बात भी प्रत्यक्षके विरुद्ध प्रतीत होने लगती है।

इसके लिये एक दो निदर्शन ही पर्याप्त होंगे। जेनेसिस[३] के अनुसार एलम्[४] भी शेमकी सन्तान है परन्तु एलेमाइट भाषाका सेमेटिक भाषाओंसे सादृश्य नहीं है अतः भाषागत भेदसे इन्हें भिन्न जातिका मानना चाहिये।

जेनेसिसके अनुसार कनान[५] हमकी सन्तान है, परन्तु भाषागत भेदों और शोणितगत भेदोंके आधारपर कनाइट सम्प्रति सेमेटिक जातिके माने जाते हैं। जेनेसिसमें सम्भवतः मिश्रके केश (नुबिया) और बैबिलोनियाके कश (कस्साइट प्रदेश[६]) के सादृश्यको देख कर बैबिलोनिया वालोंको हमेटिक मान लिया है। परन्तु आजकलके लोगोंको विश्वास है कि वे अर्द्ध सेमेटिक थे।

---

१. Shem. २. Ham. ३. Genesis. ४. Elam. ५. Canaan.
६. The Kassite country.

मिश्र देशवासियोंको सेमेटिक माना जाय अथवा नहीं, यह अभी विचाराधीन ही है। इस प्रकारके मतभेद अवान्तर विभागोंके सम्बन्धमें यत्र तत्र अद्यावधि भी हैं।

मध्य एशिया और चीन आदिमें बसनेवाले लोग प्रधानतः तूरानियन जातिके हैं। इन तीनों जातियोंमें आर्य जाति और हमेटिक जातिका वंश अधिक विस्तृत है। सेमेटिक जातिकी भी अपेक्षा आर्य जातिका विस्तार अधिक है।

इन लोगोंकी आदि भूमिके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। आधुनिक पाश्चात्य पण्डितोंके मतानुसार (१) मध्य एशिया, (२) स्वीडेनसे लेकर काकेशस तकके अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रदेश, (३) उत्तरीय यूरप, (४) उत्तर मेरुके निकटके कई देश आर्योंके आदि निवास-स्थानकी प्रथम कोटिमें सन्निविष्ट किये जाते हैं। संस्कृतके कुछ पण्डितोंने—जिनमें स्वामी दयानन्द और आर्यविद्यासुधाकर-ग्रन्थकार यज्ञेश्वरजी चिमणा मुख्य समझने चाहिये—तिब्बतको आर्योंका आदि वासस्थान कहते हैं। इनकी युक्ति संस्कृत साहित्यके कोश-ग्रन्थोंपर अवलम्बित है। मुण्डकोपनिषद्के प्रारम्भमें कहा है कि 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' अर्थात् देवताओंमें सबसे पहिले ब्रह्मदेव उत्पन्न हुए। ब्रह्मदेवके पुत्र मनु थे। मनुकी सन्तान मानव हैं। देवताओंका वासस्थान स्वर्गभूमि है। स्वर्गके पर्य्यायवाची शब्दोंमें 'त्रिविष्टप्', शब्दभी अमरकोश आदि ग्रन्थोंमें मिलता है। इस त्रिविष्टप्का ही अपभ्रंश तिब्बत शब्द है। अतः स्वर्गभूमि तिब्बत ही देवभूमि है। वही मनुष्योंका आदि जन्मस्थान समझना चाहिये। यह इनकी युक्ति है।

अन्य पक्षावलम्बी भी लगभग ऐसी युक्तियाँ अपने पक्षकी सिद्धिमें प्रस्तुत करते हैं, औरोंकी युक्ति इस युक्तिकी अपेक्षा अधिक पुष्ट है, इसके लिए कोई विनिगमना नहीं। उनकी युक्तिमें भी काल्पनिक अंश पर्याप्त है। पहिले यूरप और एशियाके मध्यमें समुद्र था। वह समुद्र शनैः शनैः शुष्क होने लगा। सागरगर्भस्थ भूमि शनैः शनैः उत्तोलित होने लगी। अब भी बैकाल झील, कास्पियन सागर, काला सागर

आदि उसी महासागरके अवशिष्ट भाग उस समयका स्मरण दिलाते हैं। इस नवोत्तोलित भूमिके ऊपर किसी जगह आर्योंका आदि वासस्थान था। जब जीविकार्थ अपेक्षित साधनोंकी न्यूनताका उन्हें अनुभव हुआ, तब वे इतस्ततः देश-देशान्तरोंमें आहारादि अन्वेषणके लिए फैलने लगे। जो लोग पश्चिमकी ओर गये उनके चार मुख्यभेद हो गये—(१) स्लाव, जो कि रूस आदि देशोंमें रहते हैं, (२) ट्यूटन अर्थात् जर्मन, यह लोग जर्मनीके उत्तर तथा दक्षिणमें दूर दूर तक फैले हुए हैं, (३) केल्ट, यह लोग स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड आदिमें फैले हुए हैं और (४) ग्रीक-रोमन, यह लोग इटली, यूनान आदिमें फैले हैं। पूर्वकी ओर आनेवाली शाखाके हिन्दू और पारसी दो मुख्य भेद हो गये।

इन सब संज्ञाओंको लाक्षणिक समझना चाहिये। शरीरकी बनावट, अवयव-संस्थानोंके आरोह और अवरोह एवं आनाह-परिणाह, भास्वर शुक्ल और अभास्वर शुक्ल तथा शुभ्र और बभ्रु वर्णोंके आधारपर यह भिन्न भिन्न संज्ञायें रख ली गयी हैं।

साम्राज्य-विस्तारकी कामना और आहारार्थ परिभ्रमण आदि नानाविध कारणोंसे इन सबमें वर्णसङ्करता आचुकी है। अब तो 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति' वैयाकरणोंके इस नियमके अनुसार जहाँपर जिन लक्षणोंकी प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है वहाँ उसी प्राचुर्यके आधारपर व्यपदेश सङ्केत केवल व्यवहारार्थ रख लिया जाता है।

आर्य जातिकी भाँति सेमेटिक जातिके आदि वासस्थानपर विचार करनेवालोंने पाँच स्थानोंको इनका आदि स्थान स्वीकार किया है। वान क्रेमर[१]ने लोगोंका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट किया कि इनका आदि वासस्थान जेहूँ और सेहूँ नदियोंके मध्यमें कहींपर था, वहाँसे प्रस्थान कर यह मैसोपोटामियाकी समुन्नत भूमिमें आये। पुनः बैबिलोनिया आदिमें ही बस गये। उनका कथन है कि सम्पूर्ण सेमेटिक भाषाओंमें उष्ट्रका पर्यायवाची शब्द एकसा ही है। खजूर और शुतु-

१ Von Kremer.

मुर्रोके पर्यायवाची शब्द भिन्न भिन्न हैं। अतः अरब अथवा अफ्रीका और सीरिया तथा मैसोपोटामियाके मध्यका अमरु प्रदेश जिसे बाण-मुख अथवा शङ्कुमुख[1] शिलालेखोंमें उरु लिखा है—इस जातिके वास-स्थानका दावा सुन्दरतापूर्वक नहीं कर सकेंगे। इस विषयके यही मत हैं। प्राचीन और प्रागैतिहासिक विषयके विवेचकोंको अपने मतकी पुष्टिके लिए थोड़ा बहुत आश्रय मिल ही जाता है[2]। तूरानियन लोगों-का भी विवेचन करनेवाले सर्वांशमें एकमत नहीं हैं।

प्रिचार्डने 'नेचुरल हिस्ट्री आव् मैन'[3] में यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार की है कि मानव-जातिके कल्पित उपविभाग यथार्थ और सन्तोषप्रद नहीं हैं। केवल सामान्य व्यवहारकी सिद्धिके लिए यह नाना विभाग उपादेय हो सकते हैं। जे० एफ० ब्लूमन बकने १७८१

---

१. Cuneiform Inscription.

२. इसके लिए उदाहरणोंकी कमी नहीं है।

(क) कस्साइट लेखमें एक नाम सूरिअस (Suras) मिला। इसका सूर्य शब्दसे बहुत सादृश्य है अतः मेयर महोदयका अनुमान है कि कस्सु लोग पहिले मीडिआ के रहनेवाले थे, वहाँसे उनको आर्योंने पश्चिमकी ओर भगाया।

(ख) अवस्ताकी भाषाका वैदिक भाषासे बहुत स्पष्ट सादृश्य है परन्तु ऋग्वेदके समयकी अपेक्षा जरदुश्तका समय बहुत पीछेका है। जरदुश्तका समय (६६०–५८३ ई० पू०=६०३–५२६ वि० पू०) अधिक मान्य है। इस भाषा-सादृश्यके आधारपर कुछ लोगोंका साहस इस बातके अनुमान करनेका हो जाता है कि या तो ऋग्वेदका समय जरदुश्तके समयकी ओर खींच कर लाया जाय अथवा जरदुश्तका समय ऋग्वेदके समयकी ओर खींचकर ले जाया जाय।

(ग) सुमेरियन लोग वस्तुतः द्रविड थे। उन्होंने पश्चिममें जाकर अपनी सभ्यता-का प्रसार किया (Ancient History of Near East by Hall) यदि यही मत ठीक हो तो विक्रमसे पाँच सहस्र वर्ष पूर्व इनकी सभ्यता एशिया माइनरमें पहुँची।

(घ) मुण्डा भाषाभाषी आकारसे द्रविड प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी भाषा आष्ट्रिक वंशकी है अतः इसमें भी खींचातान होती है कि उनको द्रविड माना जाय अथवा नहीं।

३. Prichord:—Natural History of Man.

ई० (१८३८ वि०) में मनुष्यजातिको पाँच बड़े भागोंमें विभक्त किया था। उन विभागोंसे पूर्ण सन्तुष्ट न होकर अन्य विद्वानोंने प्रकारान्तरसे भी यह विभाग किये। तथापि ब्लूमन बकके ही विभागोंका अद्यावधि अधिक प्रसार है। इसके मतके अनुसार (१) काकेशियन[१], (२) मङ्गोलियन[२], (३) इथियोपियन[३], (४) अमेरिकन[४], और (५) मलाया[५]—यह पाँच बड़े विभाग मानव-जातिके किये जा सकते हैं। इस वर्गीकरणमें प्रधानतया वर्ण अर्थात् रङ्गपर ही दृष्टि रखी गयी है। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें सम्पूर्ण मानवोंको पञ्चजन कहा है। निरुक्तमें यास्कने मनुष्य शब्दके निर्वचन-प्रसङ्गमें ऋग्वेदका वह मन्त्र उद्धृत किया है। उसका अन्तिम खण्ड निम्न भाँति है—

'पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्'

इस पञ्चजनकी व्याख्याके समय यास्कने प्राचीन कई मुनियोंके मत उद्धृत किये हैं। उन मतोंपर विचार करनेसे यही प्रतीत होता कि पञ्चजन और पञ्चकृष्टयः आदि शब्दोंके द्वारा किया गया वर्णविभाग मनुष्य-जातिके रङ्गके आधारपर था। श्वेत, रक्त, पीत, और कृष्ण वर्णोंका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दोंसे अभिलाप किया गया है। निषाद संज्ञक पाँचवाँ भेद है।

इसकी विस्तृत मीमांसाका यह अवसर नहीं है। ब्लूमन बकने इस वर्गीकरणको व्यवस्थित करते समय इनके जिन विशिष्ट अभिव्यञ्जनोंको विभेदक माना है उनके अनुसार अरब और स्वीडेनके रहनेवाले लोग भिन्न जातिके नहीं अपितु एक जातिके ही सिद्ध होते हैं। इस विभागमें अमेरिकन लोगोंको मलायावर्गस्थ लोगोंसे पृथक् रखा गया है। इस पर लोगोंने समुचित शङ्का की है। यदि अरब और स्वीडेनके लोग एक जातिके हो सकते हैं तो अमेरिकन तथा मलायावर्गस्थ लोग एक कोटिमें क्यों नहीं रखे जा सकते? अरब तथा

१. Caucasian. २. Mongolian. ३. Ethiopian. ४ American. ५. Malay.

स्वीडेनके लोगोंमें जितना अन्तर है उसकी अपेक्षा कहीं न्यून अन्तर अमेरिकन और मलायावर्गस्थ लोगोंमें है।

इस वर्गीकरणकी अपेक्षा हक्सलेके वर्गीकरणको प्राणिविद्या-विशारद अधिक शुद्ध समझते हैं। हक्सलेने मानव-जातिके चार बड़े भाग किये हैं (१) आस्ट्रेलिआइड[1], (२) नीग्रोइड[2], (३) मङ्गोलाइड[3], और (४) जन्थोक्रोइक[4]।

यह प्रधानतः यथाक्रम (१) रक्त, (२) कृष्ण, (३) पीत, और (४) श्वेत वर्णके समझे जा सकते हैं। जन्थोक्रोइक अर्थात् भास्वर शुक्ल[5] का एक और उपभेद मेलनोक्रोइक अर्थात् अभास्वर शुक्ल[6] भी है। वर्त्तमान मानव-जाति[7] सङ्करवर्णकी ही समझी जानी चाहिये अथवा मानव-जाति स्वभावतः एकही जाति है, यह सब भेद आनुषङ्गिक हैं।

डा० राबर्ट मुनरो[8] ने ब्रिटिश असोशिएशनके अन्थापालाजिकल (मानवविज्ञानसे सम्बद्ध) विभागके सम्मुख अपने अभिभाषणमें १८९३ ई० (१९५० वि०) में कहा था कि ट्रिनिल[9] (जावा), निअण्डर्थल[10] (जर्मनी), स्पाई[11] (बेलजियम), ला नौलेट[12] (बेलजियम), शिप्क[13] (बाल्कन प्रायद्वीप), ओल्मो[14] (इटली), प्रेडमर्ट[15] (बोहेमिआ), अर्जेण्टाइना और ब्राजील (दक्षिणीय अमेरिका) आदि स्थानोंमें उपलब्ध नरकपालों और कङ्कालोंकी वैज्ञानिक समीक्षा करने पर भिन्न भिन्न कालके तथा भिन्न भिन्न देशोंके मनुष्योंकी शरीराकृतियोंके प्रबलभेदका सरलतासे अनुमान किया जा सकता है।

---

१. Australioid. २. Negroid. ३. Mongoloid. ४. Zanthocroic. ५. Fair whites. ६. Dark whites. ७. महाभारत शान्तिपर्वके श्लोकोंमें यह बात बहुत स्पष्ट कर दी गयी है। न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतांगतम्॥ कामभोगप्रियास्तीक्ष्णा क्रोधनाः प्रियसाहसाः। त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतांगताः॥ इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजाः वर्णान्तरं गताः॥
८. Dr. Robert Munro. ९. Trinil. १०. Neanderthal. ११. Spy. १२. La Nawlette. १३. Shipka. १४. Olmo. १५. Predmert.

उस समयके नरकपालोंसे आजकलके नरकपालोंका भी बहुत भेद है। वर्त्तमानकालके मनुष्योंके नरकपालों और अवयव-संस्थानोंमें भी परस्पर स्पष्ट भेद दृष्टिगोचर हो रहा है। इस भेदके सादृश्य और पार्थक्यको ध्यानमें रखते हुए इन बड़े विभागोंके अन्तःपाती अन्य उपविभाग भी हैं।

काकेशियन जातिके जो दो विभाग हक्सलेने किये हैं उनके सामान्य लक्षण यह हैं। जन्थोक्रोइक अर्थात् भास्वर शुक्लवर्णके पुरुषोंका चर्म प्रायः अन्य वर्णके धब्बोंसे हीन होता है। इनकी आँखें नीली अथवा भूरी होती हैं। इनके बाल भूसेके रङ्गसे लेकर बादामी रङ्ग तकके होते हैं। इनको वे स्वयं सुनहले रङ्गका कहते हैं। अङ्ग्रेजी काव्योंमें भी ये स्वर्णवर्णके ही कहे गये हैं। इनके मस्तिष्ककी बनावट देशभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारकी है। इनका वास प्रधानतया उत्तरीय यूरपमें है। परन्तु उत्तरीय अफ्रीकामें तथा पूर्व हिन्दुस्तानतकमें इस जातिके लोग फैले हुए हैं।

दक्षिण और पश्चिमकी ओर इन लोगोंका सम्मिश्रण मिलनोक्रोइक लोगोंसे अर्थात् अभास्वर शुक्लवर्णवालोंसे हो जाता है। पूर्वोत्तरकी ओर इनका सम्मिश्रण मङ्गोलाइड लोगोंसे हो जाता है।

मिलनोक्रोइक अर्थात् अभास्वर शुक्लवर्णके लोगोंका चर्म उन लोगोंकी अपेक्षा कुछ नीलिमायुक्त होता है। इनकी आँखें भी काली और कुछ भूरी होती हैं। बाल भी इनके उन लोगोंकी अपेक्षा कुछ कृष्णिमा लिये होते हैं। इनमें आयरलैण्ड और स्काटलैण्डके केल्टस् लोग तथा स्पेन, यूनान और अरब आदिके लोगोंकी गणना की जाती है। भारतवर्षके भी आर्यवंशीय पुरुष इसी श्रेणीके भीतर रखे जाते हैं। इसका क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। भूरी जातिके पोलिनीशियन, मओरी, समोअन आदि लोगोंको भी इसी श्रेणीमें रख लिया जाता है।

यदि लापलैण्डसे स्यामतक रेखा खींची जाय तो उसके पूर्वमें अधिकतर मङ्गोल जातिके लोगोंका ही वास होगा। यह काकेशस जातिके पुरुषोंकी अपेक्षा कुछ नाटे कदके होते हैं। इनका वर्ण कपासी

अथवा जाफरानी होता है। इनके बाल तने हुए, कुछ काले रङ्गके होते हैं। भौंह प्रायः नहीं होती। नाक छोटी और चपटी होती है। कपाल कुछ चौड़ा होता है। चीनी, जापानी, तिब्बती, बर्मी, तथा फिन और लाप आदि इस जातिमें परिगणित किये जाते हैं। एस्किमो और फ्यूजियन लोग यद्यपि बहुत अंशोंमें इन मङ्गोल जातिके पुरुषोंसे भिन्न हैं तथापि अमेरिकन विभागकी अपेक्षा मङ्गोलसे इनका अधिक सादृश्य है, अतः यह भी मङ्गोल जातिमें सम्मिलित किये जाते हैं।

नीग्रो अथवा कृष्ण जातिके लोग प्रधानतः अफ्रीकामें सहाराके समीप तथा मेडागास्कर और अण्डमान आदि टापुओंमें हैं। इनका वर्ण काला और भूरा होता है। इनके बाल और आँख आदि अवयव भी प्रधानतः कृष्ण वर्णके होते हैं। इनका मस्तिष्कस्थान अति सङ्कुचित होता है। ओंठ बड़े और भारी तथा लटकते हुए होते हैं। इनके दाँत भी बड़े होते हैं। अक, बटवा, और वोचुआ आदि जातियाँ इस विभागके भीतर गिनी जाती हैं।

आस्ट्रेलियाके आदिवासियोंको द्रविड़ और काकेशस जातिके मध्यका अर्थात् इन दोनोंके समुदित लक्षणोंवाला समझना चाहिये।

एशिया, यूरप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों तथा अन्य छोटे छोटे द्वीपोंमें बसनेवाली जातियोंके यही प्रधान उपविभाग हैं। इन जातियोंके सम्मिश्रणसे बहुतसी सङ्कर जातियाँ बन जाती हैं। इस सङ्करके विस्पष्टीकरणके लिए हम केवल एक देश—भारतका—विवेचन पर्याप्त समझते हैं।

भारतवर्षमें प्रधानतः सात अवान्तर विभागोंके मनुष्य बसते हैं—

(१) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके लोग तथा बलोच, ब्राहुई, अफगान इत्यादि प्रायः तुर्क-ईरानी[१] विभागके हैं।

(२) पञ्जाब, राजपूताना, काश्मीरके रहनेवाले लोग तथा जाट, खत्री, और राजपूत प्रायः भारतीय आर्य[२] विभागके हैं।

---

१. Turko—Iranian. २. Indo—Aryan

(३) मरहट्टा ब्राह्मण और कुनबी तथा कुर्गके रहनेवाले लोग प्रायः शक-द्राविड़[१] विभागके हैं।

(४) युक्तप्रान्त, विहार तथा राजपूतानाके कुछ भागके लोग प्रायः आर्य-द्राविड़[२] विभागके हैं।

(५) पूर्वीय बङ्गालके ब्राह्मण, कायस्थ, मुसल्मान आदि तथा आसाम और बङ्गाल खासके रहनेवाले मङ्गोल-द्राविड[३] विभागके हैं।

(६) हिमालयके पूर्वोत्तर भागमें रहनेवाले लोग, दार्जिलिङ्ग और सिक्किमके लेप्चा लोग, नेपालके लिम्बु, मुर्मी, और गुरुङ्ग आदि तथा आसामके बोदो और बर्मी इत्यादि मङ्गोल[४] विभागके हैं।

(७) छोटानागपुरके[५] सन्थाल, मलाबारके पनियम लोग, लङ्का, मद्रास, दक्षिण हैदराबाद आदिके रहनेवाले प्रायः द्रविड़[६] बिभागके हैं।

कुछ लोगोंका विचार[७] है कि काले रङ्गके, लम्बे सिरवाले, चपटी नाकके नाटे द्रविड लोग ही भारतवर्षके आदि निवासी हैं। हक्सलेके मतानुसार भारतके द्रविड और आष्ट्रेलियाके आदिनिवासी एक ही जातिके हैं। आष्ट्रेलियाके आदिवासियोंकी भाषाके कुछ शब्दोंका द्रविड जातिकी भाषाके साथ सादृश्य मिल जानेसे उपर्युक्त विचारको एक और आश्रय मिल गया। कुछ विद्वानोंने अनुमान किया कि एशिया तथा अफ्रीका और आष्ट्रेलियाको संयुक्त करनेवाला एक और महादेश प्राचीन कालमें था, अब उसकी सत्ता नहीं है। उसका कल्पित नाम लेमुरिआ है। इस लेमुरिआ महादेशके कारण एक ओर तो भारत मेडागास्कर और अफ्रीकासे मिला हुआ था और दूसरी ओर आष्ट्रेलियासे। उस समय द्रविड जाति भारत और आष्ट्रेलियामें थी। यदि अफ्रीकाके नीग्रो लोगोंको भी इसी जातिका मान लिया जाय तो भी कुछ हानि नहीं।

१. Scytho—Dravidian.
२. Aryo—Dravidian.
३. Mongolo—Dravidian or Bengali.
४. Mongoloid.
५. मुण्डा भाषाएँ आस्ट्रिकवंशकी कही जाती हैं, भाषाके आधारपर इन्हें द्रविड़ कहना असङ्गत हो जाता है।
६. Dravidian.
७. वस्तुतः आर्य और द्रविड यह कल्पित भेद हैं। दोनों ही अर्थात् आर्य और द्रविड भारतके ही आदिनिवासी हैं।

इन लोगोंके कपालोंकी तुलना करते हुए सर विलियम टर्नरने उक्त अनुमानका प्रत्याख्यान किया। उनका मत है कि द्रविड लोग अण्डमान और फिलिपाइन्सके लोगोंकी जातिके हैं। आष्ट्रेलियावाले इस जातिसे भिन्न जातिके हैं। अद्यावधि टर्नरका ही पक्ष मान्य समझा जाता है।

सर विलियम हण्टरने इन द्रविड लोगोंके दो विभाग किये हैं। एक विभागमें मुण्डा भाषाओंको बोलनेवाले कोल आदि हैं। आजकल यह प्रधानतया छोटानागपुरमें बसे हुए हैं। दूसरे विभागमें तामिल वर्गकी भाषाओंको बोलनेवाले खास द्रविड हैं। कोल लोगोंने पूर्वोत्तरकी सीमासे भारतमें प्रवेश किया। द्रविड लोग पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तसे भारतमें आये। इस अनुमानका मुख्य आधार बलूचिस्तानकी ब्राहुई भाषा है। ब्राहुई भाषाका तामिल जातीय भाषाओंसे सादृश्य है। इससे अनुमान किया गया है कि इन द्रविड लोगोंका वहाँसे ही विस्तार हुआ, अतएव इनकी भाषाका बीज ब्राहुई भाषामें परम्परासे अबतक अवशिष्ट है। कोल लोग पूर्वोत्तरकी सीमासे आये हैं—इस पक्षके खण्डनमें कई युक्तियाँ दी गयी हैं। सबसे प्रबल युक्ति यह है कि पूर्वोत्तरकी सीमासे आये हुए लोग मङ्गोलवर्गके होने चाहिये, वहाँसे इस वर्गके लोगोंका आगमन केवल कल्पना ही कल्पना है। अधिक युक्तिसङ्गत यही प्रतीत होता है कि कोल और द्रविड एक ही जातिके हैं। मध्यवर्त्ती शिष्ट समाजके कारण इन दोनोंका पार्थक्य होगया।

कुछ लोगोंका मत है कि आर्य भी भारतवर्षके आदिनिवासी नहीं हैं। मध्यएशिया, अथवा स्कैण्डेनेविया, अथवा लिथुआनिया आदिसे प्रस्थान करते हुए यह लोग पूर्वकी ओर बढ़े। एक शाखा ईरानकी ओर चली गयी। पुनः उसके भी अवान्तर भेद होगये। दूसरी शाखा भारतकी ओर आयी। उस समय भारतमें प्रवेश करनेका मार्ग आजकी अपेक्षा कहीं कठिन था। उस दुर्गम मार्गको पार करके सपरिवार आना बहुत कठिन था। अतः आर्य लोग भारतमें अपरिवार आये। शनैः शनैः द्रविड लोगोंसे उनका सम्बन्ध बढ़ गया। आर्योंने द्रविड

लोगोंकी कन्याओंसे यहीं विवाह किया। उनकी सन्ततिने आर्य-द्रविड वंशको जन्म दिया।

डा० हार्नलेका मत[१] है कि उचित भूमिका अन्वेषण करते हुए कुछ आर्य पुनः गिलगिट और चित्राल आदिहोते हुए सपरिवार आये। यह लोग प्राचीन कालके मध्यदेश अर्थात् मेरठ, दिल्ली आदि तक फैल गये। कुछ समय उपरान्त इन्होंने वेदोंका सङ्ग्रह किया। वर्ण-व्यवस्था और समाज-व्यवस्थाके वर्त्तमान नियमोंकी भी नींव इसी समय रखी गयी।

डा० ग्रियर्सनने[२] भी तुलनात्मक भाषाविज्ञानके आधारपर डा० हार्नलेके मतकी पुष्टि की है। इस सम्मिश्रणसे आर्यद्रविड़ जातिकी उत्पत्ति हुई।

पुनः इस सङ्कर जातिमें शक आदि और जातियाँ भी समय समय-पर मिलती रहीं। शक (सीदियन) लोगोंने भारतके ऊपर आक्रमण कर भारतके कुछ भागमें अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इनके सम्मिश्रणसे भी भारतमें एक नवीन जातिका प्रादुर्भाव हुआ। शकलोगोंके भारत-प्रवेशका सङ्क्षिप्त विवरण निम्नभाँति है। जब ईरानमें अकेमेनियन[३] राजाओंका राज्य था उस समय जेहूँ नदी तथा बाल्कश-झीलके मध्यवर्त्ती भूभागमें एक जातिका बास था। चीनी लोग इस जातिको स्से[४] नामसे पुकारा करते थे। चीनी लोगोंने इस जातिका जो वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि बाह्लीक देशके यूनानी[५] राजाओंके राज्यकालमें इन लोगोंने दक्षिणी चीन, सागडिआना और ट्रेन्साक्जिआनाकी ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। उस समय मध्य एशियाकी शक्तिशालिनी हूणजातिने अपने पार्श्ववर्त्ती यूचीलोगोंपर[६] आक्रमण किया। हूणजातिसे आक्रान्त होने पर यूची-

---

१. Dr. Hoernle's Theory.

२. Dr. Grierson's Chapter on Language in the Report on the Census of India, 1901. ३. Achaemenian kings.

४. Sse. ५. Graeco-Bactrian. ६. Yuch-chi.

लोगोंने इन शक अथवा सीदियन[1] लोगोंपर आक्रमण कर पुनः इन्हें इनके अभिजनकी ओर खदेड़ा। इन शक लोगोंने बाह्लीकके[2] यूनानी राजाओंपर आक्रमण कर दिया। पह्लव (पार्थियन) लोगोंने बहुधा शकलोगोंका साथ दिया। अन्ततोगत्वा बाह्लीकमें इन शकलोगोंका आधिपत्य होगया।

यूचीलोगोंने इन शक (रूसे अथवा सीदियन) लोगोंपर यहाँ भी आक्रमण किया। शकलोग बाह्लीकको छोड़कर सीसतान (सेजिस्तान), अर्कोशिआ आदिकी ओर चले आये। इस प्रदेशका नाम भी इनके आगमनके उपरान्त शकस्थान होगया। यहाँपर लगभग सौ वर्षतक यह लोग आरामसे रहे। पुनः २५ ई० पू० (३२ वि०) में यूचीलोगोंने इनपर यहाँभी आक्रमण कर दिया। यह लोग शकस्थानको छोड़कर बलूचिस्तान होते हुए पञ्जाबमें आगये। यह यूचीलोग बादमें तुषार (तोखारी) नामसे प्रख्यात हुए हैं। १३० ई० पू० (७३ वि० पू०) से लेकर लगातार पाँच सौ वर्षतक इन यूची अर्थात् तोखारी (तुषार) लोगोंका मध्य एशियामें अक्षुण्ण प्रभुत्व रहा। भारतवर्षके उत्तर-पश्चिममें भी इनका आतङ्क था। हिन्दुस्तानके रहनेवाले इनलोगोंको तुरुष्क कहा करते थे।

इन यूचीलोगोंकी एक और उपजाति थी। उसका सरदार कैड-फाइसिज़ था। वह अपनेको कुशान वंशका कहता था। अतः कुशान लोगोंके प्रभावके समय यूची नाम गौण पड़ गया। शकस्थानसे भाग-कर आये हुए शक लोगोंके भिन्न भिन्न दलोंने तक्षशिला, मथुरा, सिन्ध और मालवा तथा सुराष्ट्रमें चिरकाल तक राज्य किया। मथुरा, तक्ष-शिला आदिके शक उत्तरीय क्षत्रप (सत्रप) कहलाते थे। काठिया-वाड़, गुजरात, कोंकण, मालवा, और सिन्धके शक पश्चिमीय क्षत्रप (सत्रप) कहलाते थे।

शकराज नहपानको आन्ध्र देशके राजाने परास्त कर मार डाला।

---

१. सीदियन लोगोंका मूल स्थान दक्षिणी रूस है। ("एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका" में 'पर्शिया' शब्द देखिए।)   २. Bactriana.

परन्तु इसके पौत्र रुद्रदामन्‌ने आन्ध्र देशके राजा पुलुमायीके साथ अपनी पुत्री दत्तमित्राका विवाह करके भी पुनः अपने जामातापर आक्रमण कर उसे १४५ ई० (२०२ वि०) में मार डाला। इन शक राजाओंमें रुद्रदामन् अधिक प्रभावशाली हुआ है। पुनः ४०० ई० के लगभग शकारि विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) ने (३७५–४१३ ई०) इनका पूर्ण पराभव कर दिया।

उधर इनके आक्रमणकारी यूची लोगोंने भी भारतवर्षमें प्रवेश कर गान्धार राज्यकी नींव रखी। इस राज्यकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी।

जैसे इन यूची लोगोंने शक लोगोंपर आक्रमण किया था, ठीक उसी भाँति कुछ काल बाद हूण जातिने पुनः यूची लोगोंपर आक्रमण किया। हूण लोगोंको चीनी लोग एफ्थालाइट[1] अथवा ये–था–इ–लिटो नामसे पुकारते थे। 'हूण' यह नाम भारतीयोंका रखा हुआ है। जब हूण लोगोंपर चीनके युअन-युआन लोगोंने आक्रमण किया तब यह खीव, बाह्लीक आदि होते हुए भारत तक आ पहुँचे। इन्होंने शाकल (स्यालकोट) में अपनी राजधानी स्थापित की। इनके सरदार-का नाम चीनी भाषामें लेलिह[2] (लखन उदयादित्य) है। लेलिहके पुत्र तोरामान (५४७–५७२ वि०) तथा इसके उत्तराधिकारी मिहिर-कुल (५७२–६०१ वि०) के प्रभावके सम्मुख मालवा और मगधके राज्य विकम्पित हो उठे थे। इन्होंने प्राचीन गुप्त राज्यका बहुतसा भाग भी जीत लिया था। अन्तमें महाप्रतापी यशोधर्मदेवने हूणलोगोंको परास्त किया।

इन आक्रमणकारियोंका सम्पूर्ण दल इसी देशमें बस गया। इनके वाससे यहाँके आदि-वासियोंकी मिश्रित जातिमें मिश्रणकी मात्रा और भी बढ़ गयी।

३२६–३२५ ई० पू० (२६९–२६८ वि० पू०) महाप्रतापी सिकन्दर-ने भारतपर आक्रमण किया। तक्षशिलाके तत्कालीन राजा अम्भीकी

---

१. Ephthalites or Ye-tha-i-Lito. २. Laelih.

विभीषणताने सिकन्दरको विजयी होनेमें सहायता दी, अतः पुरुराजा (पोरस) परास्त हुआ।

तथापि सिकन्दरके उपरान्त चन्द्रगुप्तने यूनानियोंके प्रभावको सर्वथा लुप्त कर दिया। इतिहाससे हमें विदित है कि सैल्यूकसने अपनी पुत्रीका विवाह सम्राट् चन्द्रगुप्तके साथ कर दिया था। सम्भवतः इस प्रकारके वैवाहिक सम्बन्ध और भी हुए होंगे। इस प्रकारके सम्मिश्रणोंका भी अल्पमात्रामें प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

भारतवर्षके जातिगत अथवा शोणितगत परिवर्त्तनोंके कारणोंकी मीमांसा स्थालीपुलाक न्यायसे की गयी है। इसी प्रकारके सम्मिश्रणोंके कारण समस्त विश्वकी मानव-जाति परस्पर साङ्कर्यको प्राप्त होचुकी है। इस एक मानवजातिके अवान्तर विभाग प्रधान अभिव्यञ्जनोंके आधारपर बुद्धिवैशद्यार्थ तथा व्यवहारकी सरलताके लिए कर लिये गये हैं।

रुद्रदेव शास्त्री

भारतवर्षकी जातीय भूमियाँ[1]

प्रस्तावना

१. *विषयका महत्व और स्वरूप*—जिस जनतामें अपने सामूहिक जीवनकी स्पन्दना और राष्ट्रीय चेतना न हो, उसे जैसे आसानीसे ठुकराया जा सकता है वैसे ही उसे शतरञ्जके पासोंकी तरह चाहे जिधर उठाकर रक्खा या फेंका और लद्दू बैलकी तरह चाहे जिधर जोतकर हाँका जा सकता है। भारतवर्षका और-उसके विभिन्न अङ्गोंका सामूहिक चैतन्य सदियोंसे क्षीण हो चुका है, और इसीलिये उसकी मनमानी कतरब्योंत की गयी है। राष्ट्रीय मूर्च्छाकी अवस्थामें जिस प्रकार समूचे भारतमें एक जीवनकी उग्र लहर प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार उसके प्रत्येक अङ्गमें भी वही निर्जीवता और आत्मविस्मृति झलकती है। ज्यों ज्यों वह मूर्च्छा दूर होकर उसमें नया जीवन आ रहा है, त्यों त्यों वह राष्ट्र अपने स्वरूपको भी अधिक अधिक स्पष्ट रूपमें पहचान रहा है। और जब वह अपने अन्दर फिरसे जीवनकी एक लहर अनुभव करने और अपने स्वरूपको फिरसे पहचानने लगता है, तब सबसे पहले उसे यह सूझ पड़ता है कि भारतवर्षका विद्यमान सरकारी प्रान्तों और रियासतोंमें बँटवारा अस्वाभाविक, कृत्रिम, कामचलाऊ, बेसिर-पैरका और अस्थायी है—वह उसके प्राकृतिक और जातिकृत अङ्ग-विभागको सूचित नहीं करता। सन् १९२१ में इसी भावके आवेशमें मैंने लिखा था—'बम्बई इलाक़ा', 'मद्रास इलाक़ा' और 'पूर्वी बङ्गाल' ये सब मायामय, अवास्तविक वस्तुएँ हैं, जो फूँकसे बन

१. शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली लेखककी पुस्तक 'भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा' तथा 'भारतभूमि और उसके निवासी' से

सकती और फूँकसे उड़ सकती हैं। ये चीजें कल बनी थीं, और कल नष्ट हो जायँगी। ये न किसी प्राकृतिक और न किसी जातीय इकाई-को सूचित करती है। बङ्गालीके मनमें "बङ्ग आमार, जननी आमार, धात्री आमार" के लिए जो भाव होते हैं, क्या वे कभी "आसाम और पूर्वी बङ्गाल" के लिए हो सकते हैं? गुजराती जिस तरह "जय जय गरवी गुजरात" गा सकता है, क्या वह उसी तरह "बम्बई इलाके" के गीत भी गा सकता है? बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्र जीवित सत्ताएँ हैं, पूर्वी बङ्गाल और बम्बई इलाक़ा निर्जीव चीजें। निर्जीव चीजोंके जोड़से सजीव भारतवर्ष नहीं बन सकता। बम्बई और मद्रास इलाक़े शुष्क वस्तुएँ हैं और इन शुष्क चीजोंके जोड़से जब एक भारत-वर्षकी रचना करके दिखाई जाती है, तब उस कल्पनामें केवल अङ्ग्रेजोंका भारतवर्ष आता है। गुजरात और महाराष्ट्र, कर्णाटक और कूर्मांचल जिनकी जन्मभूमि है, जब उन्हें मालूम होगा कि इन्हीं सबके समूहका नाम भारतवर्ष है, तब उनकी कल्पना-दृष्टिमें भारतवर्षका स्वभाविक स्वरूप—स्वाधीन सहोदर जातियोंका एक स्वे-च्छाकृत सङ्गठन—अङ्कित हो जायगा जिसमें बम्बई, मद्रास, और दूसरे इलाके उन्हें सामयिक अस्थायी विभाग मालूम होंगे।[1]

इसपर बर्लिनसे अध्यापक विनयकुमार सरकारने मुझे उन्हीं दिनों एक चिट्ठीमें लिखा '"हमें सर्वथा नयी वस्तु और नयी पद्धतिकी रचना करनी है"—आपकी इस रायपर हर एक हिन्दुस्तानीको ध्यान देना चाहिये, कमसे कम शिक्षकोंको। "बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्र जीवित सत्ताएँ हैं, पूर्वी बङ्गाल और बम्बई इलाका निर्जीव चीजें हैं" इस मतपर ख्याल रखनेसे ही पक्का राष्ट्रविज्ञान बन सकेगा।'

तबसे अबतक भारतवर्षके उस स्वाभाविक स्वरूपको समझनेके जतनमें मैं लगातार लगा रहा हूँ। सन् १९२० में पहले पहल मैंने यह अनुभव किया और तबसे अबतक मेरी यह धारणा दिन-ब-दिन दृढ़तर होती गयी है कि भारतवर्षके स्वाभाविक अङ्गोंको समझे बिना

---

१. प्रभा, सितम्बर १९२१, पृ० १४६।

उस समूचे देशको भी समझा नहीं जा सकता; उन अङ्गोंको जाने बिना उसके इतिहास या उसके जीवनके किसी भी पहलूका ठीक अध्ययन करना असम्भव है।

इस बीच देशके राष्ट्रीय आन्दोलनमें भी यह प्रश्न दिन-ब-दिन जोर पकड़ता गया है। आन्ध्र, कर्णाटक, उड़ीसा प्रान्तोंमें अपनी अपनी प्रान्तीय एकताके लिए आज खासी छटपटाहट है, 'मध्य प्रान्त' और 'युक्त प्रान्त' वाले भी अपने प्रान्तोंके ठीक नाम और ठीक रूप खोजनेको बेचैन हैं। बङ्गालकी एकताका आन्दोलन तो अब इतिहासकी बात हो चुका, वह भारतवर्षके राष्ट्रीय पुनर्जीवनके पहले स्पन्दनोंकी सूचना था; और महाराष्ट्रवाले अपनी एकताको इतना सुदृढ़ समझते हैं कि कई रियासतों और प्रान्तोंमें बट जाना शायद उनके विचारमें उसे तोड़ नहीं सकता। हालमें सीमा-प्रान्तके पठानोंमें अपनी पश्तो भाषापर ध्यान देने और उसका भण्डार भरनेके लिए एक नयी उमङ्ग जगी है। भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंकी यह बेकली सूचित करती है कि वे वस्तुतः जीवित सत्ताएँ हैं—ऐसी जातियोंकी भूमियाँ हैं जिन्हें उनके समूचे इतिहासके प्रवाहने एक व्यक्ति सा बना दिया है और जो भारतीय जनताके मनमें—उसकी अर्धसुप्त चेतनामें—अङ्कित हो चुकी हैं। इसी कारण एक बार भूलकर भी वह उन्हें फिर आसानीसे याद करने और चीन्हने लगी है।

जातीय भूमियों अथवा स्वाभाविक प्रान्तोंकी बुनियाद प्राकृतिक और जातिकृत है—अथवा अधिक स्पष्ट शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि भारतवर्षके प्राकृतिक और जातिकृत विभागोंको ही हम उसकी जातीय भूमियाँ कहते हैं। प्राकृतिक विभाग मनुष्यकी दृष्टिसे लगभग सनातन हैं; जातिकृत विभाग उनके अनुसार तथा जातिके समूचे पिछले जीवन या इतिहासकी उपज हैं और उसकी प्रवृत्तिको सूचित करते हैं। इसी कारण भारतवर्षका अध्ययन उन्हींके आधारपर ठीक हो सकता है। प्राचीन इतिहास और विद्यमान स्थितिकी बारीक छानबीनसे फिर हम इस नतीजेपर पहुँचते हैं कि पुराने जातीय विभाग,

अर्थात् आरम्भिक कालकी जातियोंकी बस्तियाँ या उपनिवेश[1] अथवा 'जनपद' और आजकलके भाषाकृत विभाग परस्पर खूब मिलते हैं। यह मेल फिर प्राचीन जनपदोंके स्थायी स्वरूपको सिद्ध करता है। भाषाओंकी सीमाएँ जहाँ अतीत कालकी जातीय सीमाओंको सूचित करती हैं, वहाँ भविष्यका जातीय पुनरुत्थान भी जातीय भाषाओंके पुनरुद्धारपर अवलम्बित है। इस प्रकार इस समूची विवेचनामें भारतवर्षकी भाषाओं और बोलियोंकी सीमाओं और उनके परस्पर-सम्बन्धोंकी पड़तालसे हमें विशेष वास्ता पड़ेगा।

सबसे पहले हमें खालिस भौगोलिक दृष्टिसे देशके विभागोंको देखना होगा। उसके बाद हम इतिहास और भाषा-पड़तालकी मददसे उनका जातीय भूमियोंमें बँटवारा करेंगे। आजकलके सरकारी प्रान्त-विभागमें जिस प्रकार भारतवर्षके आन्तरिक विभागोंकी अन्धाधुन्ध काटछाँट की गयी है, उसी प्रकार उसके सीमान्तपर भी कुछ बाहरी प्रदेश टाँक लिये गये हैं, और कुछ असल भारतीय प्रदेश आज अङ्ग्रेजोंके भारतकी सीमासे बाहर हैं; इसीलिये भारतवर्षकी स्वाभाविक सीमाओंको भी हमें सावधानीसे आँकना होगा। एक तो पहाड़ी प्रदेशोंकी बनावट वैसे ही पेचीदा होती है, दूसरे हिमालय और हिन्दूकुश आदि उत्तरी पहाड़ भारतवर्षकी ठीक सीमाओंपर हैं, इसी कारण उनकी बनावटपर हमें विशेष ध्यान देना होगा।

पहला खण्ड

भारतवर्षके भौगोलिक विभाग और प्रदेश

२. *चार मुख्य विभाग*—भारतवर्षके पूरब, दक्खिन और पच्छिममें आधी परिक्रमा समुद्रने की है और उत्तर तरफ़ बाकी आधी पर्वत-मालाने। इन सीमाओंके बीच समूचे देशके चार [2]मुख्य भौगोलिक

---

१. उपनिवेश और निवेश शब्द इस अर्थमें हमारे वाङ्मयमें बहुत पुराने हैं। नमूनेके लिए देखिये, मारकण्डेय पुराण, ५७–३८।

२. "भारतभूमि और उसके निवासी" ('भारतीय इतिहासका भौगोलिक आधार', दूसरा सं०), पृ० २४–२७

विभाग हैं—(१) उत्तर भारतीय मैदान, (२) विन्ध्यमेखला, (३) दक्खिन, और (४) हिमालय-हिन्दूकुश अथवा उत्तरके 'मर्यादापर्वत'। इनमेंसे प्रत्येकके प्रदेशोंका हम अलग अलग विचार करेंगे।

३. *उत्तर भारतीय मैदानके प्रदेश*—हिमालय-हिन्दूकुशकी छाँह-के नीचे नीचे उत्तर भारतका विशाल विस्तृत मैदान चला गया है। वह दो बड़े प्रस्रवण-क्षेत्रोंसे बना है, एक गङ्गाके और दूसरे सिन्धके। दोनोंके बीच राजपूतानाकी मरुभूमि और आड़ावला ('अरवलीपर्वत') का जङ्गल है। उस मरुभूमि और उन पहाड़ियोंके उत्तर तरफ़ कुरुक्षेत्रके बाँगर (निर्जल सूखी ऊँची जमीन) की तङ्ग गर्दनने जमनाके खादरको सतलजके खादरसे जोड़ दिया है, और इस प्रकार उन दोनोंके मिलनेसे उत्तर भारतका एक ही विशाल मैदान[1] हो जाता है।

इस मैदानके फिर कई टुकड़े आसानीसे अलग अलग दीख पड़ते हैं। ठीक उत्तर-पूरबी छोरपर ब्रह्मपुत्रके पच्छिम-पूरब प्रवाहका काँठा स्पष्ट एक अलग प्रदेश है, उसीका नाम आसाम है। फिर गङ्गा-काँठे-के तीन स्पष्ट हिस्से दिखाई देते हैं—जहाँ गङ्गा-जमना दक्खिन-पूरब-वाहिनी हैं वह गङ्गा-काँठेका उपरला प्रदेश है, जहाँ वह ठीक पूरब वाहिनी हो गयी है वह बिचला प्रदेश है, और जहाँ फिर समुद्रकी ओर मुँह फेर कर उसने अपनी बाहें फैला दी हैं वह गङ्गाका मुहाना है। गङ्गा और ब्रह्मपुत्रका मुहाना एक ही है, उसीका पुराना नाम समतट है, उत्तर भागमें गङ्गा और ब्रह्मपुत्रके बीचका प्रदेश वरेन्द्र है, समतटके पूरबका मैदानका टुकड़ा ख़ास वङ्ग है, और उसके पच्छिमका राढ़; राढ़, वरेन्द्र, वङ्ग और समतट मिलाकर बङ्गाल बनता है।

१. प्राचीन भारतमें भी हम समूचे उत्तर भारतीय मैदानको एक गिननेका विचार पाते हैं। पालिवाङ्मयमें उसका नाम है—जम्बुदीपतल (जम्बु-द्वीप-तल), देखिये जातक (फॉसबोल-संस्करण) जि० ३, पृ० १५९; जि० ४, पृ० १५३ (अङ्ग्रेजी अनुवादकने यहाँ 'तल' का अर्थ नहीं समझा); जि० ४, पृ० ४६८। जम्बुद्वीप पालिमें सदा भारतवर्षका ही नाम होता है।

उधर सिन्ध-सतलज-मैदानके दो स्पष्ट टुकड़े हैं। जहाँ सिन्धु-नदने अपनी पाँचों भुजाएँ फैलायी हैं, वह पञ्जाब है; जहाँ उन सबका पानी सिमट कर अकेले सिन्धमें आ गया है, वह सिन्ध है।

कुरुक्षेत्रके बाँगरको आधा सतलजके और आधा जमनाके खादर-में गिन लें, तो समूचे उत्तर भारतीय मैदानके उक्त प्रकार छः हिस्से हुए—सिन्ध, पञ्जाब, उपरला गङ्गा-काँठा, बिचला गङ्गा-काँठा, बङ्गाल और आसाम।

४. *विन्ध्य-मेखलाके प्रदेश*—गङ्गा-जमना मैदानके दक्खिन विन्ध्य-मेखलाके पहाड़ हैं। उनके पच्छिमी छोरसे आड़ावलाकी जो बाँह उत्तर तरफ़ बढ़ी हुई है, उसे भी पुराने जमानेसे विन्ध्यमेखलामें ही गिना जाता है। विन्ध्यमेखलाके दक्खिन फिर तापीकी घाटी तथा वर्धा-वेणगङ्गा और महानदीका उतार ढाल सूचित करते हैं। उस ढालकी रेखा विन्ध्यमेखलाकी दक्खिनी सीमा है और उसे दक्खिन भारतसे अलग करती है। उस रेखा और उत्तर भारतीय मैदानके दक्खिनी छोरके बीच समूचा देश विन्ध्यमेखलामें सम्मिलित है। इस प्रकार गुजरातके रम्य मैदानकी भी, जो विन्ध्यमेखलाके पहाड़ोंकी बगलमें रह जाता है, और जो न उत्तर भारतमें है न दक्खिनमें, गिनती विन्ध्य-मेखलामें ही होती है।

भौगोलिक दृष्टिसे विन्ध्यमेखलाके पच्छिमसे पूरब गुजरातके अतिरिक्त पाँच टुकड़े हैं। पहला राजपूताना-जो चम्बल नदीसे पच्छिम-का आड़ावलाके चौगिर्दका प्रदेश है। थरकी मरुभूमि उसका पच्छिमी छोर है जो उसे सिन्धसे अलग करता है। 'थर' सिन्धी शब्द है, राज-स्थानीमें उसी मरुभूमिको ठाट कहते हैं, और वह ठाट भी पच्छिमी राजपूताने या मारवाड़का अङ्ग है। लूनी नदीका अकेला काँठा और पूरब तरफ बनासकी घाटी भी उसीमें सम्मिलित हैं। दूसरा मालवा-का पठार, अर्थात् चम्बलसे सिन्ध तकका प्रदेश, तथा उसके ठीक दक्खिन नर्मदाकी बिचली घाटी और सातपुड़ा-शृङ्खलाका पूरबी भाग बुरहानपुरके ऊपर तक। आड़ावलाके सिवाय असल विन्ध्य-

मेखलाका सबसे पच्छिमी खण्ड मालवा ही है। राजपूताना और मालवाकी बगलमें गुजरात है। तीसरा प्रदेश बुन्देलखण्ड है जिसमें बेतवा ढसान और केनकी घाटियाँ, नर्मदाकी उपरली घाटी और पचमढ़ीसे अमरकण्टक तक सातपुड़ा शृङ्खलाका हिस्सा सम्मिलित है—उसकी पूर्वी सीमा टोंस नदी है। उसके पूरब सोन नदीकी घाटी, जहाँ वह पच्छिमसे पूरब बहती है, बघेलखण्ड है। बघेलखण्डके दक्खिन मेकल-शृङ्खलाके अमरकण्टक पहाड़की छाँहमें महानदीके उपरले प्रवाहपर छत्तीसगढ़का नीचा पठार है। बघेलखण्ड-छत्तीसगढ़को मिला कर हम विन्ध्यमेखलाका चौथा प्रदेश कहते हैं। उसके पूरब पारसनाथ पर्वत तक झाड़खण्ड या छोटानागपुर है जो उस मेखलाका पाँचवा प्रदेश है।

उत्तर और दक्खिन भारतको मिलानेवाले रास्ते विन्ध्यमेखलामेंसे गुजरते हैं। राजपूताना, मालवा और बुन्देलखण्डमेंसे प्राचीनकालसे उस प्रकारके रास्ते चलते रहे हैं, और इस कारण उन प्रदेशोंका भी बड़ा महत्त्व रहा है। मालवा तो मानो दक्खिनकी गर्दन है। किन्तु बनारसके पूरब बिहारसे यदि दक्खिन जाना हो तो सीधे दक्खिन मुँह कर झाड़खण्ड पार करनेके बजाय उसके पूरब घूम कर बङ्गालसे तटके साथ साथ जाना सुगम होता है। इसी कारण झाड़खण्ड उत्तर-दक्खिनके मुख्य रास्तोंकी पहुँचके सदा बाहर रहा है; और यही कारण है कि भारतवर्षकी सबसे आरम्भिक जङ्गली जातियाँ सभ्यताकी छूतसे बची हुई उसमें अब तक अपनी आरम्भिक जीवनचर्याके अनुसार रहती आती हैं।

५. *दक्खिनके प्रदेश*—दक्खिन भारतको कृष्णानदीने दो स्पष्ट हिस्सोंमें बाँट दिया है। कृष्णाके उत्तर पच्छिमी और पूर्वी घाटोंका अन्तर बहुत है, उसके दक्खिन वे दोनों क्रमशः उठते और नजदीक आते हुए अन्तमें नीलगिरिपर एक दूसरेमें मिल जाते हैं।

कृष्णाके उत्तर भागके फिर तीन हिस्से होते हैं। सह्याद्रिने पूरब ढलते हुए अपनी कई भुजाएँ आगे बढ़ा दी हैं जो गोदावरी और

कृष्णाकी अनेक धाराओंको एक दूसरेसे अलग करती हैं। पूरबी घाट-के उत्तरी अंशमें महेन्द्र पर्वत है, जो महानदी और गोदावरीके बीच जल-विभाजक है। छत्तीसगढ़की गर्दन उसे विन्ध्य मेखलाके मेकल पर्वतसे जोड़ती हुई वेण गङ्गा और महानदीके पानियोंको बाँटती जाती है। इस प्रकार गोदावरी और महानदीके प्रस्रवण-क्षेत्र एक दूसरेसे अलग होते हैं। गोदावरीके समूचे प्रस्रवण-क्षेत्रको हम सह्याद्रिके पूर्वी ढालके साथ गिन सकते हैं; और उसके पूरब महेन्द्र पर्वतके चौगिर्द प्रदेश तथा महानदी-काँठेको उससे अलग।

महेन्द्रगिरिके बाद पूरबी घाटकी शृङ्खलामें कृष्णाके दक्खिन श्रीशैल या नालमलै पर्वत है। उसके उत्तर मूसी नदीकी घाटी हैदराबाद या गोलकुण्डाके जिस पठारमेंसे गुजरी है वह पच्छिमी और पूरबी घाटके बीच पड़ता है। नासिकके नीचे थलघाटसे अहमदनगर होती हुई सह्याद्रिकी जो बाँहीं मञ्जीरा और भीमाके बीचसे पूरब बढ़ी है, उसकी पूरबी ढाँगों और गोलकुण्डा-पठारके बीच उतार है। उस उतारके पूरब प्रदेशको अर्थात् गोलकुण्डाके पठार, नालमलै पर्वतके प्रदेश और गोदावरी-कृष्णाके मुहानेको मिलाकर एक प्रदेश कहा जा सकता है। महेन्द्रगिरि और मयूरभञ्ज-केन्दूझरके पहाड़ोंके चौगिर्द तथा बीचका प्रदेश उड़ीसा था, यह तेलङ्गण है, और दोनोंके पच्छिम-का हिस्सा महाराष्ट्र है।

कृष्णाके दक्खिन पूरबी और पच्छिमी घाटोंके निकट आ जानेसे मैसूर या कर्णाटकका ऊँचा अन्तः प्रवण पठार बन गया है—जो उस विभागके पश्चिमार्धको सूचित करता है। सह्याद्रिकी पूरबी ढाँगोंके, मैसूर पठारके, नालमलै पर्वतके और मूसी-पठारके बीच भीमा, कृष्णा और तुङ्गभद्राकी घाटियाँ चारों तरफसे घिर गयी हैं, और अन्तमें नालमलै या श्री शैलके चरणोंको धोते हुए कृष्णाकी धारा बड़ा गहरा रास्ता काट कर उस घेरेके बाहर निकली है। ये घिरी हुई घाटियाँ, विशेष कर कृष्णा और तुङ्गभद्राके बीचका दोआब, दक्खिन भारतके उत्तरार्ध और दक्षिणार्धके राज्योंके बीच सदा लड़ाईका कारण बनी रही हैं।

कर्णाटकका पठार महाराष्ट्रसे अधिक ऊँचा है, लेकिन उसके दक्खिन छोरपर दोनों घाटोंके मिल जानेके बाद एकाएक पहाड़ोंका ताँता समाप्त होकर मैदान आ जाता है। उस मैदानके दक्खिन फिर आनमलै और एलामलै पर्वत हैं। मलै तामिल शब्द है जिसका अर्थ है पर्वत। उसीका संस्कृत रूप मलय इन विशेष पर्वतोंका नाम हो गया है।

कर्णाटक-पठारकी पूरब तरफ वड़ (उत्तरी) पैरण्णार नदीसे नीचे-की मैदानकी खुली पट्टी चोलमण्डल तट या द्रविड देश है; आनमलै और एलामलै पर्वतोंके पच्छिमका तट केरल है, और वे पर्वत तथा वह तट भी द्रविड देशका ही अंश है। नीलगिरि और आनमलैके बीच मैदानका जो फ़ीता केरलको कावेरी-काँठेसे मिलाता है वही पाल-घाटका राजपथ है।

द्रविड देशको रामेश्वरम्‌के आगे सेतुबन्धकी चट्टानोंका सिलसिला समुद्र पार सिंहलद्वीपसे लगभग जोड़े हुए है। सिंहलद्वीप स्पष्टतः दक्खिन भारतका एक पृथक् प्रदेश है।

इस प्रकार दक्खिन भारतमें कुल छः प्रदेश हैं—महाराष्ट्र, उड़ीसा, तेलङ्गण, कर्णाटक, द्रविड और सिंहल।

६. *उत्तरी सीमान्त और उसके प्रदेश*—देशकी सीमा बनाने-वाले पहाड़ोंको हमारे देशकी प्राचीन परिभाषाके अनुसार मर्यादा-पर्वत कहना चाहिए[1]।

अ. पर्वत-शृङ्खलायें—भारतवर्षके सब मर्यादा-पर्वतोंमेंसे हिमा-लय मुख्य है। भारतवर्षके उत्तर छोरपर वह एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चला गया है। उत्तर-पूरब और उत्तर-पच्छिमके मर्यादा-पर्वत भी उसके साथ जुड़े हुए हैं। स्पष्टताकी खातिर आजकलकी परिभाषामें ब्रह्मपुत्र और सिन्ध नदियोंके दक्खिनी मोड़ोंको उसकी पूरबी और पच्छिमी सीमा माना जाता है। हिमालय शब्द मुख्यतः उन दोनोंके बीच सनातन हिमसे ढकी उस परम्पराके लिए बर्त्ता जाता है जिसमें

१. मार्कण्डेय पुराण, ५४, २६; श्रीमद्भागवत, ५, १६, ६–१०।

नङ्गा पर्वत, नुनकुन, बन्दरपूँछ, केदारनाथ, नन्दादेवी, धौलगिरि, गोसाँईथान, गौरीशङ्कर, काञ्चनजङ्गा, चुमलारी आदि प्रसिद्ध पहाड़ हैं। वह बड़ी हिमालय-शृङ्खला या हिमालयकी गर्भशृङ्खला है। उसके और उत्तर भारतीय मैदानके बीचकी पहाड़-पहाड़ियोंको दो और शृङ्खलाओंमें बाँटा जाता है, जिन्हें क्रमसे भीतरी या छोटी हिमालय-शृङ्खला और बाहरी या उपत्यका-शृङ्खला कहते हैं, और जिन्हें असल हिमालयकी निचली सीढ़ियाँ कहना चाहिए। भीतरी शृङ्खलाका नमूना कश्मीरकी परिपञ्चाल शृङ्खला, कांगड़ा-कुल्लूकी धौलाधार आदि हैं। उपत्यका-शृङ्खलाका अच्छा नमूना शिवालक पहाड़ियाँ हैं।

हिमालयकी गर्भ-शृङ्खला बीच बीचमें टूटी हुई है। नदियोंकी घाटियाँ उसके आरपार चली गयी हैं। भारतवर्षकी मुख्य नदियोंमेंसे केवल चिनाब, व्यास, जमना और तिस्ता उसमेंसे निकली हैं, बाकी उसके नीचे या ऊपरसे। उसके पीठ पीछे उसके बराबर कई और पहाड़ोंकी शृङ्खलायें चली गयी हैं। साधारण बोलचालमें उनका बड़ा अंश भी हिमालय ही कहलाता है, पर भूगोल-शास्त्रियोंने उनके दूसरे दूसरे नाम रखे हैं।

इनमेंसे पहली वह है जिसमें गङ्गाकी मूल धाराओंके स्रोत हैं। घाघराकी मूल धारा कर्णालीके दाहिने हिमालयकी गर्भशृङ्खलासे फट कर वह उसके बराबर पच्छिम-पच्छिम उत्तर गङ्गा और सतलजके पानीको बाँटती और फिर सतलजके पार जङ्स्कर नदी तक रुपशू और जङ्स्कर प्रदेशोंके बीचोबीच सतलज और सिन्धके पानीको बाँटती चली गयी है। उसका नाम जङ्स्कर-शृङ्खला रखा गया है। कामेत पहाड़ उसीमें है। बदरिकाश्रम जिस घाटीमें है, वह हिमालयके उस पार उसकी जड़में है। इसी प्रकार कई और घाटियाँ भी।

उसके पीछे एक और लम्बी शृङ्खला है जो गिल्गितके दक्खिन शुरू हो लदाख प्रदेशमें सिन्धके दाहिने और फिर बायें होती हुई, सतलजको रास्ता दे कर, मानसरोवरके दक्खिनसे ब्रह्मपुत्रके दाहिने दाहिने जाती हुई चुमलारी चोटीपर हिमालयमें जा मिली है। उसे

लदाख-शृङ्खला कहते हैं। घाघरा, गण्डक और कोसीके स्रोत उसमें हैं, और उनके और ब्रह्मपुत्रके बीच वही जल-विभाजक है। मुक्तिनाथका प्रसिद्ध तीर्थ हिमालयके उस पार तथा उसीके चरणोंमें है।

सुप्रसिद्ध कैलाश पर्वत एक और शृङ्खलाको सूचित करता है, जो लदाख-शृङ्खलाके भी उत्तर है। पूरब तरफ वह ब्रह्मपुत्रके बायें बायें काठमाण्डूके करीब सीधे उत्तर तक पहुँची है। उसके आगे भी एक और शृङ्खला, जिसे उसीका बढ़ाव कहना चाहिए, ल्हासाके उत्तरसे ब्रह्मपुत्र घाटीके बायें लगातार चली गयी है। पच्छिम तरफ लदाख-शृङ्खलाके बराबर पहले गारतङ और सिन्ध नदियोंके दाहिने किनारे, फिर पङ्गोङ झील तक, और आगे श्योक नदीके मोड़के बाद कारकोरम-शृङ्खलाके साथ सटी हुई हुंज़ा नदीके सामने तक वह जा निकली है।

तिब्बतके विस्तृत निर्जन वृक्षहीन पठार चाङ थङ्को जैसे हिमालय लदाख और कैलाश-शृङ्खलायें दक्खिन तरफ थामे हुए हैं, वैसे ही क्युनलुन-शृङ्खला उत्तर तरफ और चीनके सीमान्त पहाड़ पूरब तरफ। पच्छिमी छोरपर दक्खिन-उत्तरवाली शृङ्खलायें एक दूसरेके नजदीक आ गयी हैं, और वहाँ कारकोरम या मुज़ताग-शृङ्खला भी कैलाश और क्युनलुन-शृङ्खलाओंके बीच आ गयी है। ब्रह्मपुत्रके स्रोतके सीधे उत्तर उसका पूर्वी छोर है, जहाँ वह चाङ थङमें ढल गयी है। सिन्धकी उत्तरी धारा श्योक और चीनी तुर्किस्तानके रस्कम दरियाके बीच वही जलविभाजक है किन्तु हुंज़ा नदी उसके उत्तर लगडम्बाश पामीरसे निकलकर उसे बीचोबीच काटती हुई उतरी है। रस्कम या यारकन्द नदीको, जो कारकोरमके उत्तरी चरण धोती है, जरकशाँ भी कहते हैं, उसका चीनी नाम सी-तो प्राचीन संस्कृत नाम सीताका रूपान्तर है। उसके स्रोतके पूरब तिब्बत और पच्छिम पामीर हैं। उसीकी घाटी मुज़ताग और क्युनलुन शृङ्खलाओंको भी एक दूसरेसे अलग करती है।

भारतवर्ष और तिब्बतकी पारस्परिक सीमा ठीक कहाँ है? यह आसानीसे कह दिया जाता है कि हिमालय भारतवर्षकी उत्तरी सीमा है, पर ऊपरकी विवेचनासे स्पष्ट हुआ होगा कि आधुनिक परिभाषामें

जिसे हिमालयकी गर्भ-शृङ्खला कहा जाता है वह जहाँ बीच बीचमें टूटी हुई है वहाँ कई भारतीय घाटियाँ उसके उस पार भी निकल गयी हैं। प्राचीन भारतवासियोंकी हिमालयकी ठीक परिभाषा न जाने क्या थी, किन्तु वे गङ्गाके स्रोतको भारतवर्षकी उत्तरी सीमा मानते थे[1]। वे स्रोत आजकलकी परिभाषामें जङ्स्कर-शृङ्खलायें हैं। इस प्रकार उस शृङ्खलाको हिमालयकी गर्भ-शृङ्खलाकी केवल आवृत्ति मानते हुए हम हिमालयकी हिमरेखाको भारतवर्षकी प्रायः ठीक उत्तरी सीमा कह सकते हैं।

इ. प्रदेश—(१) हजारा, कश्मीर, कष्टवार, दार्वाभिसार,—

सिन्ध और कृष्णगंगा-जेहलम नदियोंके बीच हिमालयका सबसे पश्चिमी ज़िला हज़ारा है जिसका प्राचीन नाम उरशा था। वह रावलपिण्डीके सीधे उत्तर और पामीरके सीधे दक्खिन है। कुहार नदीकी घाटी उसमें उत्तर दक्खिन सीधा रास्ता बनाये हुए है।

कश्मीरी लोग जेहलम नाम नहीं जानते, वे उसे व्यथ (वितस्ता)[2] कहते हैं। व्यथकी चक्करदार उपरली घाटी ही वह कश्मीर है जिसके विषयमें कविने कहा है—

अगर फ़िरदौस बर-रूए ज़मीं अस्त
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त !

अर्थात् यदि ज़मीनके तख्तेपर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है! हिमालयकी गर्भ-शृङ्खलासे एक बाँही फूटकर व्यथ और कृष्णगङ्गाका पानी बाँटती हुई पूरबसे पच्छिम जाकर दक्खिन मुड़ गयी है—वही भीतरी शृङ्खलाके हरमुक (हरमुकुट) और काजनाग पहाड़ हैं। कुछ और पूरबसे एक और बाँही गर्भ-शृङ्खलासे दक्खिन उतरी है जिसके शुरूमें अमरनाथ तीर्थ है। वह अमरनाथ-शृङ्खला व्यथके दक्खिन-पूरबी अन्तिम स्रोतोंका घेरा करती उत्तर-पच्छिम घूम गयी है और आगे पीर-पञ्चाल-शृङ्खला कहलाती है। भीतरी शृङ्खलाके यही सब पहाड़ कश्मीरकी ८४ मील लम्बी २५ मील चौड़ी घाटीको चारो तरफसे घेरे हुए हैं।

१. वायुपुराण, १, ४५, ८१। २. कोष्ठोंमें प्राचीन संस्कृत नाम हैं।

कश्मीरकी बस्ती गर्भ-शृङ्खला तक नहीं पहुँचती। हरमुक-शृङ्खला के उत्तर कृष्णगङ्गाकी जो घाटी है वह ठेठ कश्मीरमें नहीं है। वह दर्दिस्तान (दरद देश) का दक्खिनी छोर है। दरद देशकी बस्तियाँ गर्भ-शृङ्खलाके उसपार सिन्धकी घाटीमें, और फिर सिन्ध पार गिल्गित और हुञ्ज़ा घाटियों तक चली गयी है। दरद देश इस प्रकार हिमालयके भारतीय प्रदेशोंको उत्तर-पच्छिमी सीमान्तके भारतीय प्रदेशोंके साथ जोड़ता है, और उसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

अमरनाथ-शृङ्खलाके पूरब-उत्तरसे दक्खिन मरुवर्द्वान (मरुद्वृधा) नदीकी घाटी है जो कष्टवार (काष्ठवाट) पर चिनाबकी मुख्य घाटीमें जा खुली है। मरुवर्द्वान और कष्टवार घाटियोंमें भी कश्मीरी भाषा बोली जाती है।

जेहलम और चिनाबके बीच कश्मीरकी उपत्यका प्राचीनकालका प्रसिद्ध अभिसार देश है, और चिनाब तथा रावीके बीचकी उपत्यका दार्व। दार्वाभिसारका नाम पुराने वाङ्मयमें प्रायः एक साथ आता है। अभिसार अब छिभाल कहलाता है, और उसमें पुञ्छ, राजौरी, भिम्भर रियासते हैं। दार्वका नाम अब डुगर है, और उसमें जम्मू तथा बल्ला-वर (वल्लापुर) की बस्तियाँ हैं।

डुगरके ऊपर भीतरी शृङ्खलाकी धौलाधार[1] का पच्छिमी छोर है। धौलाधारके उस पार, डुगर और कष्टवारके बीच, भद्रवा (भद्रावकाश) प्रदेश है, जो बोली और जनतामें आधा कश्मीरी है।

(२) काङ्ड़ासे कनौर,—सतलजके पूरब टोंसके स्रोतपर गर्भ-शृङ्खलासे फूट कर, सतलज, व्यास और रावीको रास्ता देती हुई चिनाबके सामने तक धौलाधार चली आयी है। उसकी उपत्यकामें रावी और व्यासके बीच काङ्ड़ा प्रदेश है, जो सतलज-व्यासके द्वाबे[2] सहित प्राचीन कालमें त्रिगर्त्त देश कहलाता था। द्वाबेका उपरला किनारा बाहरी शृङ्खलाकी शिवालक और सोलासिङ्गी पहाड़ियोंसे बना

१. धार माने शृङ्खला। २. सतलज-व्यासके दोआबका ठीक पंजाबी उच्चारण द्वाबा है, और केवल द्वाबा कहनेसे वही दोआब समझा जाता है।

है, जिनकी फन्नोंसे होशियारपुर ज़िला और बिलासपुर उर्फ़ कहलूर रियासत तथा सतलजकी बायीं कोहनीमें नलगढ़ रियासत बनी है। सोलासिङ्गी और धौलाधारके बीच ब्यासकी घाटीमें मण्डी और सतलजकी घाटीमें सुकेत रियासत है।

धौलाधार और गर्भ-शृङ्खलाके बीच रावी और चिनाबकी उपरली घाटियाँ हैं। रावीकी वह घाटी ही सुप्रसिद्ध चम्बा प्रदेश है। कष्टवार-के ऊपर चिनाब अब तक अपने संस्कृत नाम चन्द्रभागासे पुकारी जाती है। उसकी उपरली घाटी तथा उसकी दो मूल धाराओं—भागा और चन्द्राका—प्रदेश लाहुल है। चन्द्रा बारा लाचा जोतपर गर्भ-शृङ्खलासे उतरी है, उसके बायें बायें वह शृङ्खला भी दक्खिन घूम गयी है, और ब्यासको जन्म देती हुई सतलज तक जा बढ़ी है। ब्यासके उपरले स्रोतोंका प्रदेश कुल्लू (कुलूत) है। वह लाहुलके दक्खिन और चम्बाके पूरब-दक्खिन है; काङ्गड़ा और मण्डीसे उसे धौलाधार अलग करती है।

उसकी पीठपर गर्भ-शृङ्खला जैसे क़रीब क़रीब उत्तर-दक्खिन चली गयी है, वैसे उत्तर-शृङ्खलाके परले किनारेको स्पीती नदी धोती गयी है। स्पीतीकी घाटी, जो गर्भ-शृङ्खला और जङ्स्कर-शृङ्खलाके बीच है, सतलजकी जिस उपरली घाटीमें जा खुली है, उसे कनौर या बशाहर कहते हैं। मैंने अपने एक अन्य लेखमें[1] सिद्ध किया है कि वही प्राचीन किन्नर-देश है। कनौरको भीतरी शृङ्खलाकी सतलज-घाटी अर्थात् सुकेतसे धौलाधार अलग करती है; गर्भ-शृङ्खला उसके बीचों बीच गुज़री है, और जङ्स्कर-शृङ्खला उसकी पीठपर है। स्पीती और उपरला कनौर हिमालय पारके भारतीय प्रदेश हैं।

कश्मीरसे कनौर तक हिमालयके उसपार सिन्धकी उपरली घाटीमें लदाख, जङ्स्कर, रुपशू, हानले और चुमूर्ति—ये सब तिब्बती प्रदेश

---

१. पटना ओरियण्टल कान्फ्रेंस, १९२० में भेजा लेख—रघुज़ लाइन आफ़ कौन्क्वेस्ट एलौङ्ग इण्डियाज़ नौदर्न बौर्डर (रघुका उत्तर-दिग्विजय)। "भारतभूमि और उसके निवासी" के परिशिष्टमें भी उसका विचय किया गया है।

क्रमसे एक दूसरेके दक्खिन-पूरब हैं। चुमूर्तिके बाद गुगे है जिसके और कनौरके बीच सुप्रसिद्ध शिपकी दर्रा है। गुगे ङरी-खोर्सुम या ङरी-के तीन प्रदेशोंमेंसे सबसे पच्छिमी है। कैलाश पर्वत और मानसरोवरके चौगिर्दका तिब्बती प्रान्त ङरी है। पूरब तरफ़ वह मुक्तिनाथके उत्तर तक भारतीय सीमाके साथ साथ चला गया है। भारतवर्षके पहाड़ी जो उसमें व्यापार करने जाते हैं, उसे हूणदेश कहते हैं।

(३) क्युंठलसे कुमाऊँ—कनौरके नीचे सतलज और टोंसके बीच क्युँठल[1] (शिमला), बघाट (डगशई—कसौली), जुब्बल और सरमौर प्रदेश हैं। बघाटकी उपत्यकामें कालकाके पाससे घग्घर (दृषद्वती) निकली है, और सलौरकी उपत्यकामें साधौराके पाससे सरसुती (सरस्वती)। टोंसके पूरब जौनसार-बावर प्रदेश और उसके नीचे देहरादूनकी उपत्यका है। उनके पूरब भागीरथीसे पिण्डर तक गङ्गाकी सब धाराओंका प्रदेश गढ़वाल है। भागीरथी गङ्गाकी गौण तथा अलखनन्दा मुख्य धारा है। भागीरथीका स्रोत गङ्गोत्री ठीक गर्भ-शृङ्खलामें है, पर उसकी उपरली धारा जान्हवीका ऊपर जङ्स्कर-शृङ्खलामें। अलखनन्दाकी दो मूल धारायें विष्णुगङ्गा और धौली गङ्गा जहाँ जोशी मठपर मिली हैं, वह घाटी भी हिमालयके ठीक गर्भमें है; उसके ऊपर विष्णुगङ्गा और धौलीगङ्गाकी घाटियाँ गर्भ-शृङ्खला और जङ्स्कर शृङ्खलाके बीच हैं। विष्णुगङ्गा घाटीके ही सिरपर बदरिकाश्रम है।

मैदानमें गङ्गाके पूरब रामगङ्गा है, किन्तु पहाड़में उसके स्रोत गङ्गा-की पूरबी धारा पिण्डरके नीचे ही रह जाते हैं। पिण्डरके स्रोतके केवल तीन मील पूरब घाघराकी पहली धारा सरजूका स्रोत है, वहाँसे धौलगिरि तक सवा दो सौ मील लम्बाईमें तमाम घाघराका प्रस्रवणक्षेत्र है।

---

१. स्वाभाविक भौगोलिक या जनताकृत भाषाकृत प्रदेशोंका ब्यौरा दिया जा रहा है, न कि आजकलके शासनकी इकाइयोंका। जैसे, क्युँठलसे अभिप्राय क्युँठली बोलीका क्षेत्र न कि क्युँठल रियासत, चम्बासे चमियाली बोलीका क्षेत्र।

गढ़वालके पूरब कुमाऊं या कूर्माचल प्रदेश है, जिसे पिण्डरका उपरला प्रवाह, रामगङ्गा और उसकी धारा कोसीको तथा सरजूकी घाटियाँ सूचित करती हैं। उसकी पूरबी सीमा घाघरामें मिलनेवाली काली या शारदा नदी है। काली ऊपर तीन धाराओंसे बनी है—गौरी-गङ्गा, धौलीगङ्गा और काली; वे तीनों जङ्स्कर-शृङ्खलासे निकली हैं; उनकी घाटियाँ कुमाऊँमें हैं।

मान सरोवरसे कनौर तक सतलजकी उपरली तिब्बती धारा कालीसे टौंसतक सब नदियोंका उत्तर तरफ घेरा करती गयी है। जौनसार, गढ़वाल और कुमाऊँसे जमना, गङ्गा और कालीकी घाटियों-की अन्तिम बस्तियोंके आगे हिमालय और जङ्स्कर-शृङ्खलाके घाटोंको लाँघकर ऊरीकी उस सतलज-घाटी और उसके आगे सिन्ध-घाटी तक कई एक रास्ते चलते हैं।

(४) नेपाल—धौलगिरि तक नेपाल राज्यका पच्छिमी चौथाई अंश है जिसे नेपालवाले बैसी अर्थात् बाईस राजाओंका प्रदेश कहते हैं। उसके बीचोबीच घाघराकी मुख्य धाराकी शाखायें फैली हुई हैं। घाघराके स्रोत गङ्गाके स्रोतोंके और ऊपर लदाख-शृङ्खलामें हैं, जिसके दूसरी तरफ़ ब्रह्मपुत्रके स्रोत भी हैं। इसीलिए घाघराकी घाटियोंने ब्रह्मपुत्रकी घाटी तक पहुँचनेको सीधे रास्ते बनाये हैं।

धौलगिरिसे गोसाँईथान तक गण्डककी धारायें फैली हैं जो सब त्रिवेणी घाटके ऊपर मिल गयी हैं। वह सप्तगण्डकी अथवा चौबीसी (२४ राजाओंका) प्रदेश है, और उसमें पाल्या, गोरखा आदि बस्तियाँ हैं। गोरखपुर और पाल्यासे सीधे उत्तर काली गण्डककी घाटी धौलगिरिके पूरबसे हिमालय पार कर गयी है; मुक्तिनाथ और कागबेनी उस घाटीके हिमालय पारके हिस्सेको सूचित करते हैं। गण्डककी और धारायें भी हिमालय पारसे उतरी हैं, और उनमेंसे विशेषकर त्रिशूली गण्डकका रास्ता तिब्बत जानेके पुराने राजपथोंमें से है।

सप्तगण्डकीके पूरब २६ मील लम्बी, १६ मील चौड़ी ठेठ नेपाल

दून[1] है, जिसमें विष्णुमती और मनोहराका बागमतीके साथ सङ्गम होता है। काठमाण्डू, पाटन और भातगाँव इसी दूनकी बस्तियाँ हैं। इस दूनके पूरब काञ्चनजङ्घा तक नेपाल राज्यका पूरब चौथाई या सप्तकौशिकी प्रदेश है, जिसमें कोसीकी अनेक धारायें, जिनमेंसे सनकोसी, दूधकोसी और अरुण मुख्य हैं, फैली हुई हैं।

बागमतीके श्रोत भीतरी शृङ्खलामें हैं, न कि गर्भशृङ्खलामें। इसीलिए नेपाल दूनसे हिमालय पार जानेके रास्ते गण्डक या कोसीकी घाटियों द्वारा ही हैं। सनकोसी उर्फ़ भोटिया कोसीकी घाटी द्वारा तिब्बत जानेका रास्ता पुराना प्रसिद्ध राजपथ है। इन नदियोंकी घाटियाँ तिब्बतके चोङ प्रान्तमें पहुँचाती हैं जो ङरीके पूरब ब्रह्मपुत्र घाटीका नाम है और जिसमेंसे गुज़रनेके कारण ब्रह्मपुत्र चाङ्पो कहलाता है। शिगर्चे उसकी मुख्य बस्ती है।

(५) सिकिम, भूटान, आसामोत्तर प्रदेश;—काञ्चनजङ्घाके पूरब हिमालयका पानी गङ्गाके बजाय ब्रह्मपुत्रमें जाता है। तिस्ताकी घाटियोंका प्रदेश जो नैपालके ठीक पूरब लगा है सिकिम है। उसीके निचले छोरमें दार्जिलिङ्ग—तिब्बतियोंका दोर्जे-लिङ या वज्र-द्वीप—है। सिकिमके पूरब भूटान—तिब्बतियोंका डुगपुल्य या बिजलाका देश—है। उसमें ब्रह्मपुत्रमें मिलनेवाली अनेक धारायें फैली हैं। उनमेंसे तोरसा उर्फ़ अमो-चू, रइदाक उर्फ़ चिन-चू, सङ्कोश और मनास गर्भ-शृङ्खलासे निकली हैं, प्रत्युत मनासकी एक धारा तो और ऊपरसे। अमो-चू की घाटी या चुम्बी घाटी गर्भ-शृङ्खलाकी जड़ तक पहुँचती है। उसके ठीक दूसरी तरफ चाङ्पोकी सहायक न्यङ नदीकी घाटी है, जिसमें ग्याञ्चे शहर है। आजकल भारतसे तिब्बत जानेका मुख्य रास्ता चुम्बी घाटी और न्यङ घाटी द्वारा ही है।

---

१. हिन्दी दून शब्द संस्कृत द्रोणीसे बना है, जो उस अर्थको ठीक ठीक प्रकट करता है जिसके लिए हिन्दीमें घाटी शब्द बर्ता जाता है। 'घाटी' का मुख्य अर्थ असलमें घाटा है; देखिये—"भारत भूमि और उसके निवासी" परिशिष्ट ३। द्रोणी शब्दके लिए दे०—मार्कण्डेय पुराण ५५, १४; वायु पु० प्रथम खण्ड, ३६, ३३, ३७, १–३; ३८, १।

सङ्कोशकी उपरली घाटीमें भूटानकी राजधानी पुनका है। मनास-की सबसे पूरबी धारा तोवाङ-च्चू भूटानके पूरब तोवाङकी घाटीसे आती है। उसके प्रदेशको मोनपुल भी कहते हैं।

तोवाङके पूरब चार छोटी छोटी जातियोंके प्रदेश हैं, जिन्हें आसामकी उत्तरी सीमापर रहनेके कारण आसामोत्तर जातियाँ कहा जाता है। इनमेंसे पहले अका या अङ्का, और दूसरे दफ़ला लोग हैं। दफलाके पूरब सुबनसिरि नदीपर, जो हिमालयके पीछेसे घूमकर आती है, मीरी लोग, और फिर उनके पूरब दिहोङ्ग नदीके अर्थात् ब्रह्मपुत्रके उत्तर-दक्खिन प्रवाहके दोनों तटोंपर अबोर लोग हैं; अबोर-मीरी मिला कर एक जाति हैं। अबोर-मीरीके पूरब सदियाके उत्तर लोहित घाटीके पहाड़ोंमें मिश्मी लोग रहते हैं।

७. उत्तर *पूरबी सीमान्त*—हमने ब्रह्मपुत्रके दक्खिन-मोड़को हिमालयकी पूरबी सीमा कहा था। किन्तु हिमालयकी बड़ी शृङ्खला सुबन-सिरीके पच्छिम ही टूट गयी है, यद्यपि अगले पहाड़ोंको भी उस शृङ्खलाका पूरबी बढ़ाव कहा जा सकता है। आसामका मैदान ब्रह्म-पुत्रके कुछ पूरबतक बढ़ा हुआ है, और वह उत्तर-पूरब तथा दक्खिन तरफ़ जिन पहाड़ोंसे घिरा हुआ है वे लोहित नदीके पूरबसे दक्खिन घूमे हैं। प्राचीन भारतवासी लौहित्यको भारतवर्षका पूरबी छोर मानते थे, उसके पूरबसे हिमालयके पूरबी बढ़ावने अपनी एक बाँह नामकिङ पर्वतके रूपमें दक्खिन-पच्छिम बढ़ा दी है। पतकोई और नागा पहाड़ उसीका आगे बढ़ाव सूचित करते हैं। भारतवर्षकी सीमान्त-रेखा उनका दामन पकड़े हुए मणिपुरके पहाड़ोंके कुछ अन्दर तक पहुँचती और वहाँसे लुशेई पहाड़ियों और चटगाँवकी पहाड़ियोंके आँचलके साथ समुद्रपर जा उतरती है। ब्रह्मपुत्र और सुरमाके काँठोंको इरावती और चिन्दविनके काँठोंसे जो पर्वत-शृङ्खला अलग करती है, उसके अन्दर वह विशेष नहीं घुसी, उसके पच्छिमी आँचलके ही साथ वह चली गयी है। इसी कारण इस तरफ़के सीमान्तपर कोई भारतीय पहाड़ी प्रदेश नहीं हैं, और चटगाँव, त्रिपुरा तथा मणिपुरके पहाड़ोंमें

यदि कुछ अंश तक भारतीय भाषा और जनताने प्रवेश किया है, तो उतने अंश तक उस पहाड़ी आँचलको आसाम या बङ्गालका अंश माना जा सकता है। किन्तु खासी-जयन्तिया और गारो पहाड़ियोंके रूपमें नागा पहाड़की जो एक बाँह पच्छिम बढ़ी दीखती है, वह सीमान्तके पर्वतोंमें शामिल नहीं है। उसके और नागा पहाड़के बीच उतार है जहाँ कपिली और धनसिरी नदियोंने अपनी घाटियाँ काट रखी हैं।

उत्तर-पूरबी सीमान्तके छोटे पहाड़ोंको लाँघ कर हिन्दचीनी प्रायद्वीपकी नदियोंके काँठोंमें जानेवाले कई प्राचीन प्रसिद्ध रास्ते हैं। बङ्गाल-आसामके मैदानकी तीन नोकें सीमान्तके पहाड़ोंके अन्दर बढ़ी हुई हैं, जिस कारण वे रास्ते स्पष्टतः तीन वर्गोंमें बँटते हैं। एक चटगाँवसे तटके साथ साथ आगे जानेवाले, दूसरे जो सुरमा-काँठेसे मणिपुर लाँघ कर चिन्दविन काँठेमें निकलते हैं और आगे पूरब या दक्खिन, तीसरे वे जो आसामसे पतकोई शृङ्खलाके पच्छिम या पूरब छोर होते हुए चिन्दविन या इरावतीकी उपरली घाटियोंमें निकल कर वहाँसे दक्खिन या पूरब बढ़ते हैं। आसामके पूरब तिब्बतके दक्खिन-पूरबी छोरमें इरावती, साल्वीन, मेकौङ और लाल नदी (सोङ कोई) की उपरली घाटियाँ एक दूसरेसे बहुत ही नज़दीक हैं, और उन्हीं नदियोंके निचले काँठोंसे बरमा, स्याम, कम्बुज और आनाम देश, अर्थात् समूचा हिन्दचीनी बना है। आसामसे आनेवाला रास्ता इस प्रकार हिन्दचीनीकी नदियोंके रास्तोंकी उपरली जड़को आ पकड़ता है।

८. *उत्तर पच्छिमी सीमान्त और उसके प्रदेश*—अ. दरदिस्तान और बोलोर—हमने गङ्गाके स्रोतवाली हिमालयकी हिमरेखाको भारतवर्षकी उत्तरी सीमा कहा था। किन्तु पच्छिमी छोरपर भारतकी सीमा उस हिमरेखाको लाँघ गयी है। हिमालयकी सबसे पच्छिमी चोटी नङ्गा पर्वत है। उससे दक्खिन-पूरब हिमालयकी धार धार आते हुए दूसरी बड़ी चोटी नुनकुनसे चालीस मील पहले एक बड़ा उतार है। वह उतार

प्रसिद्ध ज़ोजी-ला अर्थात् ज़ोजी घाटा[1] है। उसके पच्छिम भारतकी उत्तरी सीमा हिमालयके साथ नहीं जाती। उसी ज़ोजी-लापर गर्भ-शृङ्खलासे वह हरमुक शृङ्खला फूटी है जो कश्मीरकी उत्तरी सीमा है। हम देख चुके हैं कि हरमुक और गर्भ-शृङ्खलाके बीच दरद-देशकी बस्तियाँ हैं, और वे बस्तियाँ गर्भ-शृङ्खलाके उस पार सिन्ध-घाटीमें, और सिन्ध पार गिल्गित और हुञ्ज़ाकी घाटियोंमें भी हैं।

दरदिस्तानकी दक्खिन-पूरबी और तिब्बतकी दक्खिन-पच्छिमी नोकें भी ज़ोजी-लापर ही मिलती हैं। वहाँसे दरद देशकी सीमान्त-रेखा आजकल खलचे तक उत्तर-पूरब जाकर सिन्ध और शिओकके बीच लदाख शृङ्खलाके साथ पच्छिम घूम जाती है। उसके उत्तर लदाख और कैलास शृङ्खलाओंके बीच बोलौर या बाल्तिस्तान—कश्मीरियों का 'छुख बुटुन'—छोटा तिब्बत—है। उसके दक्खिनसे पच्छिम घेरा करते हुए वह सीमान्त-रेखा बुञ्जी किलेके सामने उत्तरमुख हो लदाख शृङ्खला और सिन्धको पारकर कैलाश शृङ्खलाके पच्छिमी छोरसे हुञ्ज़ा घाटीके ऊपर चढ़ते हुए कारकोरम शृङ्खलाका पच्छिमी आँचल काटकर तागदुम्बाश पामीरको जा छूती है। बोलौरमें तिब्बती लोग आठवीं शताब्दी ई० के शुरूमें आये थे, उससे पहले वह प्रदेश भारतीय था। और तब भारतवर्षकी सीमान्तरेखा ज़ोजी-लासे सिन्धघाटी तक जाकर आगे शायद आजकलसा चक्करदार रास्ता न बनाती, प्रत्युत सीधे उत्तर शिओककी घाटीसे कारकोरम जोत पारकर सीता (रस्कम दरिया) की घाटी होती हुई तागदुम्बाश पामीरको जा लगती थी[2]।

---

१. किसी पहाड़की शृङ्खलाके नदीकी घाटी या किसी और कारणसे कटे होने या कटासा मालूम होनेसे जो आर-पार रास्ता बन जाता है, उसे दर्रा कहते हैं। जहाँ पहाड़की रीढ़में किसी नीची गर्दनकी सी जगहसे एक तरफ़ चढ़कर दूसरी तरफ़ रास्ता उतरता है, उस जगहको अफ़गानिस्तानमें गर्दन या कोतल, गढ़वाल-कुमाऊँमें घाटा, राजस्थानमें घाटी और काङ्गड़ा-कुल्लूमें जोत कहते हैं। तिब्बती शब्द 'ला' के भी माने वही हैं।

२. इस बातकी पूरी विवेचना मैंने "रघुज़ लाइन औफ़ कौन्क्वेस्ट......", तथा "भारत भूमि और उसके निवासी" परिशिष्ट १ (२-३) में की है।

दरदिस्तान इस प्रकार कश्मीरको पामीरसे जोड़ देता है। ताग-दुम्बाश पामीरपर मुज़्ताग़की पच्छिमी जड़ है और वहीं हिन्दू-कुशकी पूरबी जड़ भी। वहींसे सरीकोल पर्वत उत्तर तरफ़ चला गया है। दरदिस्तानकी पच्छिमी बस्तियाँ—गिल्गित, यासीन, यस्तूच आदि—हिन्दू कुशके ठीक नीचे तक पहुँची हैं।

इ. पच्छिम गान्धार, काष्कार और कपिश—हम देख चुके हैं कि जेहलम और सिन्ध नदियोंके बीच दरद देशके नीचे हज़ारा या उरशा प्रदेश है। सिन्धके पच्छिम स्वात (सुवास्तु)[1], पञ्जकोरा (गौरी) और कुनार नदियाँ उसके करीब समानान्तर बहकर काबुल (कुभा) में मिलती हैं। सिन्ध और स्वातके बीचके दोआबका निचला अंश यूसूफ़ज़ई तथा उपरला बुनेर है; बुनेरके पच्छिम पञ्जकोरा-स्वातका दोआब 'स्वात' कहलाता है। फिर पञ्जकोरा-स्वात और कुनारके बीच-के दोआबका निचला अंश बाजौर तथा उपरला दीर है। इन सबको मिलाकर पञ्जाबी लोग 'याग़िस्तान' अर्थात् अराजक देश कहते हैं। वही प्राचीन पश्चिम गान्धार देश है, जिसकी राजधानी पुष्करावतीके खँडहर अब स्वात-काबुल-सङ्गम पर प्राङ्ग और चारसद्धाकी बस्तियोंमें हैं। स्वात नदीकी घाटीही प्राचीन उड्डीयान प्रदेश थी जो पश्चिम गान्धारका एक ज़िला था।

बुनेर, स्वात और दीरके ऊपर सिन्ध, स्वात और पञ्जकोरा तीनों-की घाटियाँ कोहिस्तान[2] कहलाती हैं। कुनार नदी ऊपर चितराल या काष्कार तथा और ऊपर दरद देशमें यारखूं कहलाती है। उसके स्रोत तागदुम्बाश पामीरके करीब ही हैं। कोहिस्तानके पच्छिम हिन्दूकुशसे ठीक साथ सटी हुई उसकी घाटी चितराल या काष्कार[3] ही कहलाती

१. कोष्ठोंमें प्राचीन संस्कृत नाम दिये गये हैं।

२. कोहिस्तानका साधारण अर्थ है पहाड़ी देश। काबुल शहरके उत्तर-पच्छिम भी एक कोहिस्तान है, और सिन्धी लोग अपने खीरथर-प्रदेशको भी कोहिस्तान कह डालते हैं।

३. "रघुज़ लाइन औफ़ कौन्केस्ट" तथा "भारत भूमि और उसके निवासी" में मैंने यह सम्भावना दिखलायी है कि वही प्राचीन कारस्कर देश है।

है। उस घाटीके सामने हिन्दूकुश पार करनेके लिए प्रसिद्ध दोरा जोत है।

दोरासे हिन्दूकुशकी धार धार पच्छिम-दक्खिन चलते जायँ तो आगे प्रसिद्ध खावक घाटा आता है जिसके नीचे पञ्जशीर नदी उतरी है। खावक और दोराके बीच हिन्दूकुशके चरणोंका काबुल नदी तकका प्रदेश काफ़िरिस्तान या प्राचीन कपिश देश है। गान्धार और उसके बीच सीमा कुनार नदी है। कुनारसे काफ़ी दूर पच्छिम अलीशाङ्ग नामकी छोटीसी धारा है, उसके काबुलके साथ सङ्गमका प्रदेश लम्गान या प्राचीन लम्पाक है। वह कपिशाका दक्खिन पच्छिमी छोर है। कपिशके पच्छिम और दक्खिन ठेठ अफ़गानिस्तान है।

उ. पामीर, बदख्शां, बलख—दरदिस्तान, काष्कार और काफ़िरिस्तानका उत्तरी ढासना हिन्दूकुश-शृङ्खलासे बना है। उस शृङ्खलाकी मुख्य रीढ़ तागदुम्बाश पामीरसे पच्छिम-दक्खिन मुँह किये काबुल शहरके पच्छिम बामिया घाटीतक चली गयी है। उसके आगे कोहे-बाबा और बन्दे बाबा नामकी शृङ्खलाओंने ऊँचे पहाड़ोंकी उस परम्पराको हेराततक पहुँचा दिया है। पामीरसे हेराततक मानो एक ही शृङ्खला है। वही प्राचीन ईरानियोंका उपरिशएन—श्येनकी उड़ानसे भी ऊँचा—पहाड़ है।

उस शृङ्खलाके उत्तर तरफ़ पूरबसे पच्छिम क्रमसे पामीर, बदख्शां और बलख प्रदेश हैं। हम देख चुके हैं कि हिन्दूकुश और मुस्ताग़के जोड़के करीबसे सरीकोल पर्वत-शृङ्खला सीधे उत्तर तरफ़ चली गयी है। चीनी बौद्ध यात्रियोंने सरीकोलका जो नाम लिखा है, वह संस्कृत 'कबन्ध' का रूपान्तर जान पड़ता है। उसके बराबर पूरब पूरब कन्दर या काशगर शृखङ्ला है। वह दुहरी शृङ्खला पामीरोंकी धुरी है, उसके दोनों तरफ पामीर फैले हैं। उसके पच्छिम आमू नदी की और पूरब यारकन्द काशगर नदियोंकी अनेक धारायें उतरती हैं। पामीरका अर्थ किया जाता है—पाए-मीर—पर्वतोंके चरण; वे

उन्हीं नदियोंकी लम्बी घाटियाँ हैं जो सरीकोलकी रीढ़से चक्करदार ढालोंमें घूमती हुई नीचे चली जाती हैं।

सरीकोलके पूरब-दक्खिन सोता (यारकन्द दरिया) में मिलनेवाली कारचुकुर नदीकी घाटी ही तागदुम्बाश पामीर है। हिन्दूकुश, सरीकोल और मुज़ताग जैसे उसपर मिलते हैं, वैसे ही अफ़गानिस्तान, रूस और चीन राज्योंकी सीमायें भी। उसके पूरब चीनी तुर्किस्तान है, जिसमें इतने भारतीय अवशेष मिले हैं कि विद्वान् लोग दूसरी शताब्दी ई० पू० से आठवीं शताब्दी ई० तकके लिए उसे 'उपरला भारत'[१] पुकारते हैं। आजकल तागदुम्बाश पामीरपर चीन और हुञ्ज़ा-राज्य दोनोंका दावा है। उसके और हुञ्ज़ा-घाटीके बीच केवल किलिक जोत है जो सालभर खुली रहती है।

तागदुम्बाशके पच्छिम वखजीर जोत उसे आबे-वखाँकी घाटी पामीर-ए-वखाँ से मिलाती है। पामीर-ए-वखाँ हिन्दूकुशके ठीक उत्तर सटा हुआ है। आमू दरियाका संस्कृत नाम वंक्षु था, और उसकी यह धारा तथा उसके उद्गमका प्रदेश अब तक वखाँ कहलाता है। वह अब अफ़गान राज्यमें है। उसके उत्तर छोटा पामीर भी अफ़गान सीमामें है। छोटे पामीरके उत्तर बड़ा पामीर है जिसमें आमूकी दूसरी धारा आबे-पञ्जाके रास्तेमें ज़ोर कुल (विक्टोरिया) झील बन गयी है। उसके उत्तर अलीचूर, घुन्द, सरेज़, रङ्गकुल और कारकुल या खरगोश पामीर रूसकी सत्तामें हैं। सरेज़ पामीर आमूकी एक और बड़ी शाखा मुर्गाब या अक्सूकी दून है। रङ्गकुल झील जिसके नामसे रङ्गकुल पामीरका नाम पड़ा है, पुराने बौद्ध यात्रियोंका नागह्रद है।

पामीरोंके पठारके पच्छिम बदख़्शां, और उसके पच्छिम बलख प्रदेश है। पच्छिमी पामीर, बदख़्शां और बलख तीनोंका दक्खिनी ढासना हिन्दूकुश-बन्दे बाबा हैं, और तीनों आमूकी धाराओंके प्रदेश हैं।

आबे-पञ्जाको आजकल आमूकी मुख्य धारा माना जाता है। उसने पामीरोंसे निकल कर जो बड़ा उत्तरी घेरा किया है, वह पामीर

१. सरिन्दिया, Serindia.

और बदख़्शांके बीच सीमा है। बदख़्शां उस घेरेके अन्दर है। वह हिन्दूकुशके उत्तरी ढालका पठार है। कुन्दूज़ नदी उसकी पच्छिमी सीमा है। बदख़्शांके दृश्य भी बिलकुल पामीरोंके से हैं। वे दोनों प्रदेश प्राचीन तुखार देश या तुखारिस्तानके मुख्य अङ्ग थे। अन्यत्र मैंने यह सिद्ध किया है कि उन्हींका पुराना नाम कम्बोज देश था[1]।

अक्सू नदी या अक्साब आबे-पञ्जामें उसके उत्तरी मोड़के उत्तरी छोरसे कुछ ही पहले मिली है। उस मोड़के कुछ ही आगे वक्ष या वक्षाब नामकी एक और धारा आमूमें मिलती है। फिर उस मोड़के पाससे अर्थात् पामीर-पठारके उत्तर-पच्छिमी छोरसे सीधे पच्छिम बोखारा प्रान्तकी तरफ़ ज़रफ़्शां पर्वत-शृङ्खला बढ़ी हुई है, और ज़रफ़्शां नदी उसके चरणोंके धोवनको और आगे जाकर आमूमें मिलाती है। ज़रफ़्शां-शृङ्खला और बदख़्शां-पठारके बीच आमूको अपना खादर फैलानेके लिए बड़ी तङ्ग जगह मिली है।

बदख़्शांके पच्छिम और ठेठ अफ़गानिस्तानके उत्तर बलख या प्राचीन वाह्लीक प्रदेश है। उसमें बन्दे-बाबाके उत्तरी चरणोंसे आमूका मैदान और भी दूर है, और उनके बीच छोटी पर्वत-शृङ्खलायें उस केन्द्रिक शृङ्खलाकी निचली सीढ़ियोंकी तरह आ गयी हैं। बन्दे-बाबाके लगभग समानान्तर पूरबी हिस्सेमें कोहे-चङ्गड़ और पच्छिमी हिस्सेमें बन्दे-तुर्किस्तान नामकी शृङ्खलायें हैं जिनके पच्छिमी अञ्चलको मुर्गाब धोता है। इन समानान्तर शृङ्खलाओंके बीच एक ढलता अन्तःप्रवण—अर्थात् दोनों छोरसे ऊँचा, बीचमें नीचा—पठार बन गया है। कोहे-चङ्गड़के उत्तर फिर वैसाही एक और नीचा पठार है जिसका उत्तरी छोर एलबुर्ज पहाड़ी है। उस पहाड़ीके नीचे ताशकुर्गान और बलख नदियाँ आमूके खादरको सूचित करती हैं। बन्दे-तुर्किस्तानके उत्तर चोल इलाकेकी रेतीली टिब्बियाँ हैं, और फिर आमूका खुला मैदान।

ऋ. अफगानिस्तान—काबुल शहरके पच्छिम बामियाँ घाटीपर

---

१. "भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा", "रघुज़ लाइन ऑफ कोन्क्वेस्ट" तथा "भारतभूमि और उसके निवासी" परिशिष्ट १ (१)।

जहाँ हिन्दूकुश और कोहे-बाबाके कन्धे जुड़ते हैं, वहाँ एक भारी केन्द्रिक जलविभाजक है। काबुल नदी उसके पूरब, हरीरूद पच्छिम, हेलमन्द दक्खिन और कुन्दूज़ उत्तर उतरी है। उन सब नदियोंकी उपरली घाटियाँ अफ़गानिस्तामका केन्द्र हैं।

वहाँसे पश्चिमी छोरतक अफ़गानिस्तानकी केन्द्रिक पर्वत-शृङ्खला ने अपनी अनेक लम्बी बाँहियाँ दक्खिन-पच्छिम बढ़ा दी हैं, जो हेलमन्दकी विभिन्न धाराओंकी घाटियोंको एक दूसरेसे और फ़रारूद-की घाटीसे अलग करती हैं। कन्दहार और केटाके बीचकी ख्वाजा अमरान शृङ्खला भी उन्हीं बाँहियोंकी दिशामें है।

अफ़गानिस्तानमें उस केन्द्रिक पर्वत-शृङ्खलासे दूसरे दर्जेका पहाड़ सफ़ेद कोह है। उसने भी अपने पच्छिमी छोरसे दो बाँहियाँ दक्खिन-पच्छिम बढ़ायी हैं, जिनमेंसे दूसरी लम्बी बाँही हेलमन्द और सिन्धके बीच जलविभाजक है। सफ़ेद कोह और उसकी बाँहियाँ केन्द्रिक शृङ्खला और उसकी बाँहियोंके घेरेके अन्दर हैं, उसी प्रकार सुलेमान पहाड़ सफ़ेद कोह और उसकी बाँहोंके घेरेमें।

सुलेमान शृङ्खलाकी गिनती मर्यादा-पर्वतों अर्थात् सीमान्तके पहाड़ोंमें किसी प्रकार नहीं की जा सकती। ठीक ठीक कहें तो सफेद कोह भी मर्यादा-पर्वत नहीं है। वे दोनों केवल सीमान्त प्रदेशोंके पहाड़ हैं। सुलेमानके पीठ पीछे बराबर शीनग़र शृङ्खला चली गयी है और उसके पीछे फिर टोबा और काकड़ शृङ्खला। उस तिहरी दीवारको बीचो बीच काट या घेर कर अनेक पच्छिमी धारायें सिन्ध नदीमें अपना पानी लाती हैं। सुलेमान और शीनग़र शृङ्खलायें दूर तक दक्खिन जानेके बाद अन्तमें ज़रा पच्छिम और उत्तर लहराकर घूम गयी हैं। टोबा-काकड़-शृङ्खलाका रुख़ शुरूसे ज़रा दक्खिन लहरके साथ पच्छिम है। उसका पच्छिमी छोर ख्वाजा अमरानको करीब जा छूता है। ख्वाजा अमरानके खोजक घाटेसे सुलेमान-शीनग़रके अन्तिम मोड़के सामने बोलान दर्रा तक जो रास्ता गया है वह अफ़गानिस्तान-की दक्खिनी सीमाको सूचित करता है।

उस सीमाके उत्तर तरफ सफ़ेद कोहके उत्तर तक और उत्तर पच्छिम तरफ हरीरूदकी घाटीतक ऊँचा तिकोना पहाड़ी पठार असल अफ़गानिस्तान है। भूगोल और इतिहासकी दृष्टिसे वह भारतवर्षका स्वाभाविक अङ्ग है। उसके पूरबी अंशका सब पानी सिन्ध नदीमें जाता है। उसका पच्छिमी अंश हेलमन्द, फ़रारूद और हरीरूद-की घाटियोंसे बना है। किन्तु जहाँ उन घाटियोंके आगे वे नदियाँ खुले-में निकल आयी हैं, वे प्रदेश ठेठ अफ़गानिस्तानमें नहीं हैं। कन्दहारसे हेरात तक पहाड़ोंके चरणोंके नीचे नीचे जो रास्ता गया है उसे अफ़-गानिस्तानकी पच्छिमी सीमा कहना चाहिये। उसके नीचे सीस्तान प्रदेश ठेठ अफ़गानिस्तान और भारतवर्षका अंश नहीं है, और हेरातके प्रदेशको भी फ़ारिसका ही हिस्सा मानना चाहिये। बन्दे-बाबाके उत्तरी ढालका प्रदेश जो उसके और बन्दे-तुर्किस्तानके बीच है, फीरोज़कोही या कर्जिस्तान कहलाता है और उससे अफ़गान लोग अपना पुराना सम्बन्ध मानते हैं।

इधर काबुल नदी काफ़िरिस्तान और ठेठ अफ़गानिस्तानके बीच बहुत कुछ सीमाका काम करती है। लमग़ानके दक्खिन उस नदी और सफ़ेद कोहके बीच जलालाबादके चौगिर्द निग्रहार (प्राचीन नगरहार) का प्रसिद्ध प्रदेश है। जनता, भाषा और इतिहासकी दृष्टिसे उसका भी कपिश और पच्छिम गान्धारसे अधिक सम्बन्ध है।

किन्तु काबुल नदीका उपरला पानी निश्चयसे अफ़गान-देशका है। वह नदी काबुल शहरके पच्छिम सङ्गलख पहाड़से, जो अफ़गानिस्तानके केन्द्रिक जलविभाजकका पूरबी छोर है, निकलती है। उसमें उत्तरसे सबसे पहले मिलनेवाली धारा पञ्जशीर है जो चरीकरके उत्तर पच्छिम-पूरबसे आनेवाली दो धाराओं—घोरबन्द और पञ्जशीरके सङ्गमसे बनती है। वे दोनों धारायें हिन्दूकुशके ठीक चरणोंको धोती आती हैं, पञ्जशीरका उद्गम खावक घाटेके पास और घोरबन्दका बामियाँ घाटीके नज़दीक है। बामियाँ सुर्खाबकी एक धारा है, और सुर्खाब तथा अन्दराब ये दो धारायें घोरबन्द तथा पञ्जशीरके ठीक बराबर हिन्दू-

कुशके उत्तरी चरणोंको धोते हुए परस्पर मिल कर कुन्दूजमें उसी तरह जा मिलती हैं जैसे पञ्जशीर काबुलमें। स्पष्ट है कि उत्तर तरफ़से अफ़गानिस्तानमें आनेवाले रास्ते सुर्खाब-अन्दराबकी घाटियोंसे हिन्दू-कुशपर चढ़ कर काबुल, घोरबन्द या पञ्जशीरकी घाटियोंमें उतरते हैं। अन्दराब-सुर्खाब और पञ्जशीर-घोरबन्दके बीच सुप्रसिद्ध खावक, काओशां और चहारदर जोत हैं। बामियाँ और घोरबन्दके बीच केवल शिबर घाटा है। और बामियाँ तथा काबुलके स्रोतोंके बीच अफ़गानिस्तानके केन्द्रिक जलविभाजकको ईराक और अनाई जोतों द्वारा लाँघा जाता है। इस प्रकार घोरबन्द और पञ्जशीर घाटियाँ, तथा उनके और काबुल नदीके बीचका दोआब मानो अफ़गानिस्तानकी गर्दन हैं। जनताकी दृष्टिसे भी वे उसीके अन्तर्गत हैं; यद्यपि यह सम्भव है कि पुराने इतिहासमें वे घाटियाँ कई बार कपिश देशमें रही हों।

लृ. कलात और सिन्ध-कोहिस्तान—ख़्वाजा अमरान और दर्रा बोलानके दक्खिन कलातकी अधित्यका है जिसके दक्खिनसे खीरथर और हालार शृङ्खलायें—एक पूरब, दूसरी पच्छिम—समुद्रकी तरफ़ बढ़ी हुई हैं। उन शृङ्खलाओंके बीच और कलात अधित्यकाके नीचे हाब, पुराली और हिङ्गोल नदियाँ सीधे उत्तरसे दक्खिन अपनी घाटियाँ बिछाये हैं, जिनके मुहानोंपर थोड़ा मैदान भी बन गया है। खीरथर शृङ्खलाकी सीधी बियाबान दीवारमें चार सौ मील तक एकमात्र नाम लेने लायक दर्रा मूला नदीका काटा हुआ है, जो पिछले इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध रहा है।

आजकल ये प्रदेश ब्रिटिश भारतके बलोचिस्तान प्रान्तमें हैं। वह प्रान्त एक बनावटी रचना है और उसका नाम एक भ्रमजनक नाम है। उसका उत्तर-पूरबी हिस्सा केटा, झोब, लोरालाई—भौगोलिक दृष्टिसे और जनताकी दृष्टिसे अफ़गानिस्तानके पठारका अङ्ग है। उसके दक्खिनी भागका पच्छिमी अंश असलमें बलोचिस्तान है, पर वह समूचा बलोचिस्तान नहीं, क्योंकि बलोचिस्तान या बलोच देशका मुख्य अंश फ़ारिसके राज्यमें है। बलोच लोग उस प्रदेशमें भी कुर्दि-

स्तानसे ग्यारहवीं शताब्दी ई० में आये थे। सोलहवीं शताब्दी ई० में वे वहाँसे भारतीय सीमाके अन्दर घुसने लगे, और कलात अधित्यका तथा उसके दक्खिन हिङ्गोल, पुराली और हाब नदियोंके काँठोंको लाँघते हुए सिन्ध और पञ्जाबके सीमान्तोंपर भी जा बसे। उनकी जो बस्तियाँ उन प्रान्तोंकी सीमापर, विशेषकर सिन्धके मैदानके उत्तरी बढ़ाव कच्छी गन्दावमें हैं, उनके विषयमें हम आगे विचार करेंगे। किन्तु कलात और उसके दक्खिनकी नदियोंके काँठे बलोचों-के प्रवेशके बावजूद भी जनताकी दृष्टिसे अभी तक भारतीय हैं। इसलिए उनके पच्छिमका असल बलोचिस्तान जहाँ भारतवर्षका भाग नहीं है, वहाँ कलात और उसके दक्खिनकी नदियोंके प्रदेश भारतवर्षके परम्परागत अङ्ग हैं। हाब, पुराली और हिङ्गोल नदियाँ खीरथरके पच्छिम क्रमसे समुद्रमें गिरती है। पुरालीके काँठेमें बेला शहर है जो इस प्रदेश—लास बेला—की प्रधान बस्ती है। हिङ्गोल नदीके पच्छिम तटपर प्राचीन हिङ्गुलाज तीर्थ है[1]।

इस प्रदेशमें भारतवर्षकी सीमान्त रेखा ख्वाजा अमरानसे कलात अधित्यकाके पच्छिमी छोर होती हुई हिङ्गोल घाटीके साथ रास (अन्तरीप) मलानपर समुद्रसे आ लगती है।

(अपूर्ण)

जयचन्द्र विद्यालंकार।

---

१. हिंगुलाज तीर्थके विषयमें देखिये—देवी भागवत पुराण ७, ३८, ६; तथा ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण, कृष्णजन्म खण्ड ७६, २१। अब भी कराचीसे ऊँटोंपर चढ़कर हिन्दू तीर्थयात्री वहाँ जाते हैं।

मेरी तिब्बत-यात्रा

(गतांकसे आगे)

कुत्ती के लिये प्रस्थान

बीस मईको दस बजेसे पहिले ही हम भोट-राज्यकी सीमामें प्रविष्ट हो गये। यहाँ भोटिया-कोसी नदीपर लकड़ीका पुल है, यही नेपाल और भोटकी सीमा है। पुल पार करते ही चढ़ाईका रास्ता शुरू होता है। नमकका मौसम होनेसे आने-जानेवाले गोर्खा लोगोंसे रास्ता भरा पड़ा था। बीच बीचमें एकाध भोटियोंके घर भी मिलते थे। सभी घरोंमें यात्रियोंके ठहरनेका प्रबन्ध था। उनके लिए मक्केकी शराब सदा तैयार रहती थी। गृहस्थोंके लिए यह पैसा पैदा करनेका समय है। चारों ओर घना जङ्गल होनेसे रात-दिन धूनी जलती ही रहती है। यात्रियोंके झुण्ड मलमूत्रका उत्सर्ग कर रास्तेके किनारेकी भूमिको ही नहीं बल्कि चैत्यों और माणियोंकी परिक्रमाओंको भी गन्दा कर देते हैं। उस दिन दोपहरका भोजन हमने रास्तेमें एक यल्मोके घरमें किया। यह पति-पत्नी यल्मोसे आकर यहाँ बस गये हैं।

अब हम बड़े मनोहर स्थानमें जा रहे थे। चारों ओर उत्तुङ्ग शिखरवाले, हरियालीसे ढँके पहाड़ थे जिनमें जहाँ तहाँ झरनोंका कलकल सुनाई देता था। नीचे फेन उगलती कोसीकी वेगवती धार जा रही थी। नाना प्रकारके पक्षियोंके मनोहर शब्द सारी घाटीको जादूका मुल्क सिद्ध कर रहे थे। इस सारे ही आनन्दमें यदि कोई डर था, तो वह जगह जगह उगे बिच्छूके पौधोंका। इस समय डुक्‌पा लामाको ढोनेवाला कोई न था। इसलिये उन्हें बार बार बैठना पड़ता था। हमें भी जहाँ तहाँ इन्तजारी करनी पड़ती थी। हमारे बुद्धगयाके परिचित मङ्गोल भिक्षु लोब्-सङ्-शे-रब् (=सुमति-

प्रज्ञ) भी आज साथ चल रहे थे। चढ़ाई यद्यपि कहीं कहीं दूर तक थी, तो भी मैं खाली हाथ था, इसलिये कुछ कष्ट मालूम न होता था। दोपहरके बाद हमारा रास्ता छोटे छोटे बाँसोंके जङ्गलमेंसे जा रहा था।

चार बजेके करीब हम डामृग्रामके सामने आ पहुँचे। यहाँपर एक चट्टी सी बसी थी। लोगोंको मालूम हो गया कि डुक्पा लामा आ रहे हैं। उन्होंने पहिलेसे ही इन्तिज़ाम कर रखा था। उनके आते ही स्त्री-पुरुष शिर नवानेके लिए आगे बढ़े। लामा अपना दाहिना हाथ उनके सिरपर फेर देते थे।

कुछ लोग धूप जलाकर भी आगे आगे चल रहे थे। रास्तेसे हटकर एक कालीन बिछाया गया, जिसके सामने प्याला रखनेकी एक छोटी चौकी रखी गयी। बैठते ही चाय आयी। मैंने तो छाछ पसन्द किया। डुक्पा लामाको चावल और नेपाली मुहरोंकी भेंट चढ़नी शुरू हुई। उन्होंने मन्त्र पढ़ पढ़कर लाल पीले कपड़ेकी चिटोंको बाँटा। आध घण्टेमें यह काम समाप्त होगया और हम आगे बढ़े। धीरे धीरे हम कोसीकी एक छोटी शाखापर आये, जिसकी धार घोर कोलाहल करती बड़े ऊँचेसे वहाँ गिर रही थी। यहाँ लोहेकी जञ्जीरोंपर झूलेका लम्बा पुल था जो बीचमें जानेपर बहुत हिलता था। बहुतोंको तो पार होनेमें डर मालूम होता था। हमारे साथका गुमाजू नेपाली लड़का बहुत मुश्किलसे पार हुआ। इस पुलकी रक्षाके लिए रङ्ग बिरङ्गी झण्डियों वाला देवता स्थापित है।

पुलके पास ही डाम् गाँव है। ऊपर नीचे खेत भी हैं। गाँवमें बीस-पचीस घर हैं। घर अधिकतर पत्थरकी दीवारोंके हैं और लकड़ीके पटरोंसे छाये हुए हैं। मकान दो-तल्ले तिन-तल्ले हैं। कुछ ही ऊपर देवदारुका जङ्गल है। इसलिये छाने, पाटने सभीमें देवदारुकी लकड़ीका उपयोग किया गया है। यहाँ हमारे ठहरानेके लिए एक खास मकान पहिलेसे ही तैयार किया गया था। नमकके समय सभी घरवालोंको यद्यपि नमकवालोंके ठिकानेमें नफा था, तो भी

लामाका डर और सम्मान कम चीज़ न थी। गाँवमें घुसते ही यहाँ भी डुक्-पा लामाको सिर छुआनेके लिए नर-नारी दौड़ने लगे। मकानपर पहुँचने पर तो आदमियोंसे घर भर गया। दो-तल्लेपर हम लोगोंको टिकाया गया। डुक्-पा लामाके लिए मक्खनमें शराब बघारी गयी। हम लोगोंके लिए मक्खन डालकर अच्छी चाय तैयार हुई।

रातको ही रिन्-चेन्ने कह दिया था कि कलसे अवलोकितेश्वरका महाव्रत आरम्भ होगा। सब लोग व्रत रखने जा रहे थे। मैंने कहा, मैं भी व्रत रखूँगा। यह व्रत तीन दिनका होता है। पहिले दिन दोपहरके बाद नहीं खाते, दूसरे दिन मौन और निराहार रहते हैं, तीसरे दिन पूजा मात्र की जाती है। व्रतके साथ मन्त्र-जाप और पाठ होता है। पचासों दीपक जलाना, सत्तू और मक्खनके तोर्मा (=बलि) बनाकर सजाना आदि होता है। अनेक बार सैकड़ों साष्टाङ्ग दण्डवतें भी करनी पड़ती हैं। अवलोकितेश्वरके इस व्रत (=न्यू मे) में शराब और मांसकी सर्वथा मनाई है। दूसरे दिन दोपहरको चावलका भोजन हुआ। सबके साथ मैंने भी सैकड़ों साष्टाङ्ग दण्डवतें कीं। इन दण्डवतोंसे मैं तो थक गया। झूठ मूठकी परेशानी कौन उठावे सोच दूसरे दिन सबेरे ही मैंने सत्तू और चाय ग्रहण कर ली। दोपहरको एक भोटिया सज्जन मुझे अपने घर लेगये। वहाँ उन्होंने मुर्ग़ीके अण्डेकी नमकीन सेवइयाँ तैयार करायी थीं। भोजनके बाद उनसे नाना विषयोंपर बात होती रही। यह ल्हासामें रह चुके हैं। इन्होंने वर्षोंतक चीनकी सीमापरके खाम् प्रदेशमें रहकर अध्ययन किया है। गोर्खा भाषा भी अच्छी तरह जानते हैं। तीसरे दिन वैशाखकी पूर्णिमा थी। हमारे पूर्व परिचित सज्जनने आज बुद्धोत्सव मनाया। उनसे मालूम हुआ कि इस दिन सारे भोटमें बुद्धोत्सव मनाया जाता है।

इन तीन दिनोंमें लोगोंकी भेंट-पूजा भी समाप्त हो गयी। चौबीस मईको नाश्ता कर हम आगे चले। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर हम देवदारु-कदिबन्धमें पहुँच गये। नदीके दोनों तरफ इधर उधर देवदारुके ही वृक्ष दिखाई देते थे। दो बजेसे पहिले ही हम चिना गाँवमें पहुँचे।

यह एक बड़ा गाँव था। लोगोंको खबर पहिलेसे ही मिल गयी थी। यहाँ डुक्पा लामाका स्वागत बाजे-गाजेसे हुआ। आसनपर बैठते बैठते दर्जनों थाल चावल, नेपाली मुहरों, तथा खाता (=चीनका बना सफेद रेशमी कपड़ा जो मालाके स्थानपर समझा जाता है) के साथ आगया। शामको रिन्चेन्ने कहा—गुरुजी यहाँ तीन दिन और पूजा करेंगे। यह बीच बीचका रुकना मुझे बुरा तो मालूम होता था लेकिन उपाय ही क्या था। सौभाग्यसे गाँववालोंने लामासे रहनेका आग्रह नहीं किया। अन्दाजसे मालूम हुआ कि देनेवाले असामी अपनी अपनी पूजा चढ़ा चुके हैं। पहर भर रात गये, रिन्-चेन्ने कहा कि कल चलना होगा। उसकी यह बात मुझे बहुत ही मधुर मालूम हुई।

दूसरे दिन आठ-नौ बजेके क़रीब हम चले। खाली हाथ होनेसे मैं बीच बीचमें आगे बढ़ जाता था। अभी भी हमारे चारों ओर देव-दारुका जङ्गल था। कहीं कहीं कुछ छोटी छोटी गायें चरती दिखाई पड़ती थीं। आगे एक नया घर मिला। घरसे जरा आगे बढ़कर मैं पीछेवालोंकी प्रतीक्षा करने लगा। देर तक न आते देख घरमें गया। घरवालोंको मैंने बतलाया कि डुक्पा लामारेन्पो-छे आ रहे हैं। फिर क्या था, उन्होंने भी झट चाय डालकर पतीली आगपर चढ़ा दी। लामाके आते ही मैंने कहा कि चाय तैयार हो रही है। गृहपतिने प्रणाम कर नये घरमें लामाकी पधरावनी करायी। घरके एक कोनेमें पानीका छोटासा चश्मा निकल आया था। लामाने उसके महात्म्यपर एक वक्तृता दी। यहाँ भी एक थाली चावल और कुछ मुहरें मिलीं। थोड़ी देरमें मक्खन डालकर गाढ़ी चाय बनी। सबने चाय पीकर आगे क़दम बढ़ाया।

दोपहरके बाद देवदारुके वृक्ष छोटे होने लगे। वनस्पति भी कम दिखलाई पड़ने लगी। अन्तमें नदीकी धारको रोके विशाल पर्वत-भुजा दिखाई पड़ी। इसके पार होते ही हरियालीका साम्राज्य विलुप्त सा हो गया। अब बहुत ही छोटे छोटे देवदारु रह गये थे। घास भी

उतनी न थी। चार बजेके क़रीब हम चक्-सुम् गाँवके पास पहुँचे। सुमति-प्रज्ञ पहिले ही गाँवमें पहुँच चुके थे। वह मक्खन डाल गर्म चाय बनवा कर अगवानोंके लिए आये। मुझसे कुछ देर बाद और लोग भी पहुँच गये। सब लोग एक एक दो दो प्याला चाय पीकर फिर आगे चले। यहाँ ऊपर नीचे बहुतसी चमरी गायें (=याक्) चरती दिखाई पड़ीं। मालूम हुआ, यह वनस्पतियोंका अन्तिम दर्शन है। वर्ष दिन बाद ही मुझे फिर आँखभर हरियाली देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

चक्-सुम् गाँव भी ख़ासा बड़ा है। यहाँ गाँवसे नीचे नदीके पास गर्म पानीके दो चश्मे हैं, इसलिये इसे छू-कम् (=गर्म पानी) भी कहते हैं। यहाँ सबसे अच्छे मकानमें लामाजीको ठहराया गया। रातको लकड़ीकी मशाल जला कर हम गर्म चश्मेमें स्नान करने गये। मेरे साथी सभी नङ्गे नहा रहे थे। उस समय तो ख़ैर रात थी। दूसरे दिन जब मैं दिनमें भी नहाने गया, तो देखा कि भोटिया लोग स्त्रियों-के सामने नग्न नहा रहे हैं। वस्तुतः उसके देखनेसे तो मालूम होता था कि यदि सर्दीका डर न होता, तो यह लोग भी काङ्गोके हब्शियों-की तरह नङ्गे घूमा करते।

ग्राम बड़ा था; पूजा अभी काफ़ी नहीं आयी थी। इसलिये डाम्से आये भद्रपुरुष यद्यपि लामाके ढोनेके लिए आदमीका प्रबन्ध कर थोड़ा आगे जानेके विचारसे ही रवाना हुए थे, लेकिन उनके जाते ही लामाने कह सुन कर उस आदमीको दूसरे दिनके लिए चलनेको राज़ी कर लिया। वह दिन लामाने गर्म पानीमें स्नान करने, गर्म गर्म शराब पीने, भक्तोंका भाग्य देखने तथा मन्त्र-तन्त्रके उपदेश करनेमें बिताया।

छब्बीस मईको चक्सुम्से हम लोग रवाना हुए। यहाँ मैंने रिन्-चेन्से माँग कर भोटिया भिक्षुओंका कपड़ा पहिन लिया। तो भी रह रह कर कलेजेमें ठण्डी हवाका झोंका पहुँच जाता था। आज नेनम्में पहुँचना है। ऐसा न हो कि यहाँसे लौटना पड़े। चक्सुम्से थोड़ाही

आगे पहुँचने पर वनस्पतियाँ लुप्त हो गयीं। आस-पास नङ्गे पहाड़ थे। कहीं कहीं दूर दूरपर उगी छोटी छोटी घासोंको विशालकाय चमरियाँ चर रही थीं। रास्तेमें दो जगह हमें बर्फके ऊपरसे भी चलना पड़ा। दोपहरकी चाय हमने जिस घरमें पी, वहाँ आग कण्डेसे जलायी गयी। लकड़ी यहाँ दुर्लभ हो गयी थी। अब रास्ता उतना कठिन न था। दाहिनी तरफ बर्फसे ढँकी रुपहली गौरीशङ्करकी चोटी दिखाई पड़ती थी। कुत्ती (नेनम्का नेपाली नाम) के एक मील इधर ही डुक्पा लामाके चढ़नेके लिए घोड़ा आगया। आज तो उन्हें ढोनेके लिए आदमी मिल गया था, इसलिये उन्होंने सवारी न की। कुछ अनुचर आगे भेजे गये। मुझे भी लामाने उनके साथ आगे जानेको कहा। किन्तु मैंने लामाके साथ ही जानेका आग्रह किया। दिलमें तो दूसरा ही डर लग रहा था। अन्तमें वह भी समय आ गया, जब पाँच बजेके करीब हम कुत्तीमें दाखिल हुए। नई माणीकी प्रतिष्ठाके लिए लामाके पास चावल आये। उन्होंने "सुप्रतिष्ठ वज्र स्वाहा" करके माणीके चारों ओर चावल फेंक दिया। हम लोगोंको एक अच्छे मकानमें ठहराया गया। पहुँचते ही हमारे लिए गर्म चाय और लामाके लिए घीमें छौंकी शराब तैयार मिली। लामाके ही कमरेमें मेरे लिए भी आसन लगाया गया।

राहदारीकी समस्या

डुक्पा लामाको लप्-चीमें एकान्त-वासके लिये जाना था। लप्ची तिब्बतके महान् तान्त्रिक कवि और सिद्ध जे-चुन् मिला-रे-पाके एकान्त-वासका स्थान है। इसीलिये भोटिया लोग इसे बहुत ही पवित्र मानते हैं। डुक्पा लामा शेष जीवन वहीं बितानेके लिए जा रहे थे। अभी मालूम हुआ कि लप्-चीके रास्तेवाले "ला" (दर्रा) पर बर्फ पड़ गयी है, इसलिये वह अभी जा नहीं सकते थे। कुत्ती भी अच्छा खासा क़स्बा है; और आजकल नमकका मौसिम होनेके कारण दूर दूरके आदमी आये हुए थे; इसलिये भी अभी कुछ दिनतक उन्हें यहीं

विश्राम करना था। कुत्तीमें पहुँचनेके दूसरे ही दिन मैंने अपने साथ आये आदमीको नेपाली तेरह मुहरें (=५ रु० ४॥ आना) दे दीं। ताता पानीतक आनेके लिए उसे चार मुहर देना ही निश्चय हुआ था। उस हिसाबसे उसे चार ही मुहर और मिलनी चाहिये। वह अपनी मेहनतका मूल्य उतना थोड़े ही लगा सकता था, जितना कि मैं समझता था; इसीलिये वह बहुत सन्तुष्ट हुआ और सबका नमक ख़रीद लाया।

बरसात अब आनेवाली थी। इससे पूर्वके दो तीन मासोंमें कुत्तीका रास्ता लोगोंसे भरा रहता है। नेपाली लोग चावल, मकई या दूसरा अनाज लेकर कुत्ती पहुँचते हैं, और भोटिया लोग भेड़ों तथा चमरियोंपर नमक लाद कर पहुँचते हैं। कुत्तीमें अनेक दूकानें नेपाली सौदागरोंकी हैं। यह नमक और अनाज खरीद लेते हैं। कोई कोई सीधे भी अनाजसे नमक बदल लेते हैं। नमकके अतिरिक्त भोटिया लोग सोडा भी लाते हैं। यह सभी चीजें तिब्बतकी कुछ झीलोंके किनारे मिलती हैं। इनके ऊपर कुछ राज-कर भी है। गोर्खा लोग तो घरोंमें जहाँ तहाँ ठहर जाते हैं; लेकिन भोटियोंके पास सैकड़ों चमरियाँ होती हैं, इस वजहसे वह बाहर ही ठहरते हैं।

जिस दिन मैं कुत्ती पहुँचा, उस दिन कुछ नेपाली सौदागर भी शीगर्ची (टशी-ल्हुन्-पो) जानेके लिए कुत्तीमें थे। इस रास्तेसे शीगर्ची, ल्हासा जानेवाले नेपाली लोग यहींसे घोड़ा किरायेपर करते हैं। यहाँसे घोड़ेका किराया टशी-ल्हुन्-पो तकका ४०,४५ 'साङ्' के करीब था; रुपयेका मूल्य उस समय लगभग डेढ़ साङ्के था। एक ही घोड़ा शुरूसे आखिर तक नहीं जाता। जगह जगह घोड़े बदले जाते हैं। इसी किरायेमें घोड़ेवाला खाना-पीना भी देता है। मैंने और मेरे साथियोंने बहुत कोशिश की कि किसी तरह इन्हीं नेपाली सौदागरोंके साथ चले जावें, किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया।

चारों ओर निराशा ही मालूम हो रही थी। इधर डुक्पा लामाकी पूजाके लिए बराबर लोग आते रहते थे। चावलों और खातोंका ढेर

लगता जा रहा था। हर थालीके साथ कुछ नेपाली मुहरें भी अवश्य आती थीं। कोई कोई मांस और अण्डा भी लाते थे।

२९ मईको डुक्पा लामाको जोङ्-पोन् (=जिला मजिस्ट्रेट) का बुलावा आया। मेरे साथियोंमें किसी किसीने मुझे भी चलनेको कहा। कहा—लदाखी कर देंगे। भला मैं कहाँ 'आ बैल, मुझे मार' करने जा रहा था। वह लोग डुक्पा लामाके साथ गये। जोङ्-पोन् डुक्पा लामाका नाम पहिले ही सुन चुका था। उसने बड़ी खातिर की। डुक्पा लामाने भी भाग्य-भविष्य देखा और कुछ मन्त्र-पूजा की। शामको लोग लौट आये। उनसे मालूम हुआ इस वक्त एक ही जोङ्-पोन् है, दूसरा जोङ्-पोन् मर गया है। उसकी स्त्री फिलहाल कुछ काम देखती है। अभी नया जोङ्-पोन् नहीं आया है। तिब्बतमें हर गाँवमें मुखिया (=गोवा) होते हैं। इनके ऊपर इलाके इलाकेका जोङ्-पोन् (=जिला-अफ़सर) होता है। जोङ्का अर्थ क़िला है, और पोन्का अर्थ 'अफ़सर'। जोङ् अधिकतर पहाड़की छोटी टेकरीपर बने हैं। कुत्तीके पास ऐसा कोई पहाड़ न होनेसे जोङ् नीचे ही है। प्रदेशके छोटे बड़े होनेके अनुसार जोङ्-पोन्का दर्जा छोटा बड़ा होता है। हर जोङ्-में दो जोङ्पोन् होते हैं, जिनमें एक गृहस्थ और दूसरा साधु हुआ करता है। कहीं कहीं इसका अपवाद भी देखा जाता है, जैसे आज कल यहाँ कुत्तीमें ही। जोङ्-पोन्के ऊपर दलाईलामाकी गवर्नमेण्ट-का ही अधिकार है। न्याय और व्यवस्था दोनोंमें ही जोङ्-पोन्का अधिकार बहुत है। एक तरह उन्हें उस प्रदेशका राजा समझना चाहिये। प्रायः सारेही जोङ्-पोन् ल्हासाकी ओरके होते हैं। उनमें भी अधिकांश दलाई लामाके कृपापात्रोंके सम्बन्धी या प्रेमी होते हैं। जिस जोङ्-पोन्की जगह आजकल ख़ाली है, उसके ख़िलाफ़ इस प्रदेशकी प्रजाके कुछ लोग ल्हासा पहुँच गये थे। उन्होंने दर्बारमें अपनी दुःख-गाथा सुनायी। सर्कारकी नजर अपने ख़िलाफ़ देखकर, कहते हैं, वह जोङ्-पोन् ल्हासाकी नदीमें डूब मरा।

भोटमें व्यापारके लिए जानेवाले नेपाली राजाज्ञाके अनुसार

अपनी स्त्रियोंको नहीं ले जा सकते, इसीलिये प्रायः सभी नेपाली भोटिया स्त्री रख लेते हैं। यह स्त्रियाँ बड़ी ही विश्वास-पात्र होती हैं। भोटके कुछ स्थानोंमें नेपालियोंको विशेष अधिकार प्राप्त हैं; जिनके अनुसार नेपाली प्रजाका मुकदमा नेपाली न्यायाधीश ही कर सकता है। इस न्यायाधीशको नेपाली लोग "डीठा" कहते हैं। केरोङ्, कुत्ती, शीगर्ची, ग्याञ्ची, और ल्हासामें नेपाल सर्कारके 'डीठा' हैं। ल्हासामें सहायक डीठा तथा राजदूत भी रहता है। ग्याञ्चीमें भी नेपालका राजदूत है। भोटिया स्त्रीसे उत्पन्न नेपालीका पुत्र नेपालकी प्रजा होता है और कन्या भोट सर्कारकी प्रजा होती है। ऐसी सन्तानको नेपाली लोग "खचरा" कहते हैं। इस खचरा सन्तान तथा उसकी माँका कुछ भी हक़ पिताकी सम्पत्तिमें नहीं होता। पिता जो खुशीसे दे दे, वही उनका हक़ है। इसपर भी जिस अपनपौके साथ यह अपने नेपाली पिता या पतिके कार-बारका प्रबन्ध करती हैं, वह आश्चर्यजनक है।

३० मई तक हम सब उपाय सोच कर हार गये। कोई प्रबन्ध आगे जानेका न हो सका। कुत्तीके पासवाली नदीपर पुल है; यहीं राह-दारी (=लम्-यिक्=पासपोर्ट) देखनेवाला रहता है। इसके पार होने पर आगे या-लेप्में एक बार और राह-दारी देखी जाती है। जब सब तरफ़से मैं निराश हो गया, तो सोचा कि अब मङ्गोली भिक्षु सुमति-प्रज्ञके साथ ही जानेका प्रबन्ध करना चाहिये। सुमति-प्रज्ञ अब भी कुत्तीमें ठहरे थे। उनसे मैंने कहा कि मुझे अपने साथ ले चलिये। वह बड़े खुश हुए, और बोले कि मैं कल लम्-यिक् लाऊँगा, और कलही हम लोग यहाँसे चलेंगे। वह तो निश्चिन्त थे, किन्तु मुझे अब भी बड़ा सन्देह था। मैंने एक भारतीय साधु बाबाको भी देखा, जो दो माससे यहीं ठहरे हुए थे, न आगे जा सकते थे, न पीछे लौट सकते थे। ख़ैर, एक बार हिम्मत करनेकी ठान ली। उसी रात एक नेपाली सौदागरके घरमें डुक्पालामाको भूत-प्रेत हटाने और भाग्य बढ़ानेके लिए पूजा करनेका बुलावा था। मैं भी साथ गया। अनेक स्त्री-पुरुष और बच्चे जमा हुए थे। दीपककी धीमी रोशनीमें मनुष्यकी

जाँघकी हड्डीका बीन बाजा, जुड़ी खोपड़ीपर मढ़ा डमरू तथा दूसरी इसी प्रकारकी भयावनी सामग्री लेकर डुक्पालामा और उनके चेले पूजा-स्थानपर बैठे। चिराग और भी धीमा कर दिया गया। पूजा करनेवालोंको पर्देमें कर दिया गया। उन्होंने मन्त्र-पाठ शुरू किगा। बीच बीचमें डमरूकी कड़खती आवाज, तथा चन्द महीनोंके बच्चेके करुणापूर्ण रोदन जैसे हड्डीके बीनके शब्द सुनाई पड़ते थे। ऐसे वायुमण्डलमें मन्त्र-मुग्ध न होना सबका काम नहीं है। यह पूजा आधी रातके बाद तक होती रही। पूजाके बाद फिर पूजाके जलसे नर-नारियों और बच्चोंका अभिषेक हुआ। इसके बाद सब लोग सोनेके लिए आसनपर गये।

३१ मईको सबेरे मैं तो यात्राकी आवश्यक चीजोंको जमा करनेमें लगा और सुमति-प्रज्ञको लम्-यिक्के लिए छोड़ रखा। मेरे पास उस समय साठ या सत्तर रुपये थे। मैंने तीस रुपयेका नोट अलग बाँधकर, बाकीमेंसे कुछका सामान खरीदा और कुछका भोटिया टङ्का भुनाया। इस समय कुत्तीमें रुपयेका भाव नौ टङ्का था। सिक्का सभी आधे टङ्का वाला (=छी-के) मिला। सर्दीके ख्यालसे यहाँ चार रुपयेका एक भोटिया कम्बल भी लिया। डाम्के सज्जनने, जो यहाँ आ चुके थे, एक ऊनी पीली टोपी दी। कुछ चूड़ा, चावल, चीनी, चाय, सत्तू और मसाला भी खरीद कर बाँधा। चूँकि अब सब चीजें अपनी ही पीठपर लादकर चलना था, इसलिये उन्हें थोड़ा ही थोड़ा खरीदा। डुक्-पालामाने मेरे लिए एक परिचय-पत्र भी दे दिया। इसी समय सुमति-प्रज्ञ भी दोनों आदमियोंके लिए लम्-यिक् लेकर चले आये। दो माससे अधिककी घनिष्ठताके कारण मेरे सभी साथियोंको मित्र-वियोगका दुःख हुआ। डुक्पालामाने भी बड़ी सहृदयताके साथ अपनी मङ्गल-कामना प्रकट की। उन्होंने कुछ चाय तथा दूसरी चीजें भी दीं।

टशी-गङ्की यात्रा

ढोनेकी लकड़ी (=खुर्-शिङ्) के बीचमें सामान बाँधकर, पीठपर ले, हाथमें लम्बा डण्डा लिये दोपहरको एक बजेके करीब हम दोनों

कुत्तीसे निकले। पुलपर पहुँचते देर न लगी। उस समय वहाँ कोई लम्-यिक् भी देखनेवाला न था। साधारण लकड़ी पाटकर पुल बनाया गया है। पार होकर थोड़ा ऊपर चढ़ना पड़ा। ज़िन्दगीमें आज यह पहिलेही पहल बोझा उठाकर चलना पड़ा था, इसलिये चढ़ाईकी कड़ुआहटके बारेमें क्या कहना था। रह रहकर ख्याल आता था, मनुष्यको इसका भी अभ्यास करके रखना चाहिये। ज़राही चढ़ाईके बाद हम कोसीकी दाहिनी मुख्य-धारके साथ साथ ऊपर चढ़ने लगे। रास्ता साधारण था। बोझ बीस-पच्चीस सेरसे ज्यादा न था, तो भी थोड़ीही देरमें कन्धा और जाँघ दुखने लगे। सुमति-प्रज्ञ अपने ३०, ३५ सेरके बोझके साथ मज़ेमें बातें करते चल रहे थे। मुझे तो उस समय बातें भी सुननेमें कड़वी मालूम हो रही थीं। नदीकी घाटी काफ़ी चौड़ी थी, किन्तु कहीं वृक्ष नहीं थे। रास्तेमें एकाध घर भी दिखाई पड़े, लेकिन वह देखनेमें पत्थरके ढेरसे मालूम होते थे। जहाँ तहाँ कुछ जोते हुए खेत भी थे।

डाम्के सज्जन लप्-ची जा रहे थे। आज वह सबेरे ही कुत्तीसे चल चुके थे, उन्हें आज टशी-गङ्में रहना था। सुमति-प्रज्ञकी भी सलाह आज वहीं रात्रिवास करनेकी हुई। सन्ध्याके क़रीब फर्-क्येलिङ् मठ (=गुम्बा) दिखाई पड़ा। गुम्बाके पहिले ही एक छोटासा गाँव आया। हमने वहाँसे किसी आदमीको बोझा ले चलनेके लिए लेना चाहा, किन्तु कोई भी तैयार न हो सका। वहाँसे फिर गुम्बामें पहुँचे। बाहरसे देखनेमें यह बहुत सुन्दर मालूम होती है। भिक्षुकोंकी सङ्ख्या ३०, ४० से ज्यादा नहीं है। सामान बाहर रखकर हम देवदर्शनके लिए गये। बुद्ध, बोधिसत्त्व, महायान और तन्त्रके नाना देवी-देवताओंकी सुन्दर मूर्तियाँ, नाना प्रकारके सुन्दर चित्रपट, तथा ध्वजा आदि अखण्ड दीपके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे। मठमें जेचुन्-मिलाके सामने बर्तनमें छङ् (=कच्ची शराब) देखकर मैंने सुमति-प्रज्ञसे पूछा—यह तो गे-लुक्-पा-(=पीली टोपीवाले लामाओंके सम्प्रदाय) का मठ है, फिर क्यों यहाँ शराब है? उन्होंने बतलाया कि

जे-चुन्-मिला सिद्ध पुरुष हैं। सिद्ध-पुरुष और देवताओंके लिए गे-लुक्-पा लोग भी शराबको मना नहीं करते। मनाही सिर्फ़ अपने पीनेकी है। मन्दिरसे बाहर आने पर हमारे लिए चाय बन कर आ गयी थी। आँगनमें बैठकर हमने एक दो प्याले चाय पी। भिक्षुओंने निवास-स्थान पूछा। सुमति-प्रज्ञ ल्हासा डेपुङ्के गुम्बाके थे ही, और मैं था लदाखका। हमलोगोंने कहा कि ग्य-गर् (=भारत) दोर्जे-दन् (=बुद्ध गया) से तीर्थ करके हम ल्हासा जा रहे हैं।

मैं इस समय थक गया था। कुत्तीसे हमलोग यद्यपि पाँच ही मीलके करीब आये थे तो भी मेरे लिए एक क़दम आगे चलना कठिन मालूम होता था। उस समय वहाँ टशी-गङ्का एक लड़का था। उसने बतलाया, डामके कुशोक् (=साहेब) टशी-गङ्में पहुँच कर ठहरे हुए हैं। सुमति-प्रज्ञने वहाँ चलनेको कहा। मैंने भी सोचा कल शायद आदमीका कोई प्रबन्ध हो जाय, इस आशासे चलना स्वीकार कर लिया। मठपर ही अँधेरा हो चला था। हमलोग लड़केके पीछे पीछे हो लिये। नदीके किनारे किनारे कितनी दूर जाकर, हम पुलसे उस पार गये। कितनी ही देर बाद बोये खेत मिले, जिससे विश्वास हो चला, अब पासमें जरूर कोई गाँव होगा। थोड़ी देर आगे बढ़ने पर कुत्ते भूँकने लगे। मालूम हुआ, गाँव है, लेकिन हमारा गन्तव्य गाँव थोड़ा आगे हैं। अन्तमें जैसे तैसे करके डामके सज्जनके ठहरनेकी जगहपर पहुँचे।

उस समय वह लोहेके चूल्हेमें आग जलाकर थुक्पा (=चावलकी पतली खिचड़ी) पका रहे थे। हमको देख कर बड़े प्रसन्न हुए। जल्दीसे मेरे लिए आसन बिछा दिया। मैं तो बोझेको अलग रख आसनपर लेट गया। चाय तयार थी, थोड़ी देरमें थुक्पा भी तयार हो गया। फिर मैंने दो-तीन प्याला गर्मागर्म थुक्पा पिया। फिर चाय पीते हुए अगले दिनके प्रोग्रामपर बातें शुरू हुईं। सुमति-प्रज्ञने कहा—लप्-ची जे-चुन्-मिलाका सिद्ध-स्थान है, चा-छेन्-बो (=महातीर्थ) है, हम भी इनके साथ वहाँ चलें।

लप्-ची जानेके लिए हमें इस सीधे रास्तेको छोड़ कर एक बड़े "ला" (दर्रे) को पार कर पूर्वकी ओर तुम्बा कोसीकी घाटीमें जाना पड़ता था। वहाँसे फिर दो "ला" पारकर तब तिङ्-री जाना पड़ता था। रास्तेमें एक ज़ोङ् भी था। इन सारी कठिनाइयोंको देखते मेरा दिल तो ज़रा भी उधर जानेको न था, किन्तु वैसा कहकर नास्तिक कौन बनता। उन्होंने बोझा ढोनेके लिए आदमीका भी प्रबन्ध कर देनेके लिए कहा; फिर मेरे पास बहाना ही क्या था। अन्तमें मुझे भी स्वीकृति देनी पड़ी। निश्चय हुआ कि कल भोजन कर यहाँसे चलेंगे।

दूसरे दिन भोजन करके दोपहरके क़रीब हम लोग टशी-गङ्से लप्-चीकी ओर रवाना हुए। मैं ख़ाली-हाथ था, इस लिये चलनेमें बड़ा फुर्तीला था। धीरे धीरे हम ऊपर चढ़ते आ रहे थे। घण्टे, डेढ़ घण्टेकी यात्राके बाद बूदा-बाँदी शुरू हुई। ऊनी पोशाक होनेसे भोटिया लोग वहाँकी वर्षासे डरते नहीं। आगे एक जगह रास्ता ज़रा सा तिर्छो ढालू पर्वत-पार्श्वपरसे था। मिट्टी भी इसपर नर्म थी। रह रह कर कुछ मिट्टी-पत्थर भी ऊपरसे कई सौ फुट नीचेकी ओर गिर रहे थे। मुझे तो इस दृश्यको देखकर रोमाञ्च हो गया—रह रह कर यह ख़याल होता था कि कहीं इस मिट्टी-पत्थरके साथ मैं भी न कई सौ फुट नीचेके खड्डमें चला जाऊँ। मेरे साथी दनादन बोझा उठाये पार हो रहे थे। मुझे सबसे पीछे देखकर एक साथीने हाथ पकड़ कर पार करना चाहा, लेकिन उधर मैं अपनेको निर्भय भी प्रकट करना चाहता था। ख़ैर, किसी प्रकार जीपर खेल कर उसे पार किया। हिचकिचानेका कारण अपने ढीले भोटिया जूतेके ऊपर थोपा।

और ऊपर चलने पर बूँदकी जगह छोटे छोटे इलाइचीदानेकी सी सफ़ेद नर्म बर्फ पड़ने लगी। हम लोग बे-पर्वाह आगे बढ़ रहे थे। दो बजेके समय हम "ल्हर्से" (=दर्रेके नीचे टिकावकी जगह) पर पहुँच गये। अब बर्फ रूईके छोटे छोटे फाहेकी तरह गिरने लगी। साथियोंमें कुछ लोग तो चमरियोंके सूखे कण्डे जमा करने लगे, और कुछ लोग पत्थरोंसे रस्सियोंको दबाकर छोलदारी खड़ी करने

लगे। यहाँ हम चौदह-पन्द्रह हजार फुटसे ऊपरही रहे होंगे। बर्फकी वर्षा भी बढ़ती जा रही थी; जिससे सर्दी बढ़ती जा रही थी। किसी प्रकार छोलदारी खड़ी कर बीचमें भाथीकी सहायतासे कण्डेकी आग जलायी गयी। लोग चारों ओर घेर कर बैठ गये। चाय डालकर पानी चढ़ा दिया गया। उस वक्त आगको भी सर्दी लग रही थी। धीरे धीरे सारी भूमि बर्फसे ढँकती जा रही थी। छोलदारीपरसे बर्फको रह रह कर गिराना पड़ता था। बड़ी देरमें मुश्किलसे चाय तैयार हुई। उस वक्त मक्खन डालकर चायको कौन मथे। मक्खनका टुकड़ा लोगोंके प्यालोंमें डाल दिया गया; और बड़ी कलछीसे चायका नमकीन काला पानी बाँटा जाने लगा। कुशोक् (=भद्र पुरुष) के पास छोटा बिस्कुट तथा नारङ्गी-मिठाई भी थी, उन्होंने उसे भी दिया। आगकी उस अवस्थामें थुक्पा पकाना तो असम्भव था, इसलिये सबने थोड़ा थोड़ा सत्तू खाया। मैंने चायमें डालकर थोड़ा चूड़ा खाया।

धीरे धीरे अँधेरा हो चला। कुशोक्ने अपनी लालटेन जलवायी; और मुझे "बोधि-चर्यावतार" से कुछ पढ़नेको कहा। मेरे पास संस्कृतमें "बोधि-चर्यावतार" की पुस्तक थी। कुशोक्को भोटियामें सारे श्लोक याद थे। मैं संस्कृत श्लोक कह कर, अपनी टूटी-फूटी भोटिया भाषामें उसका अर्थ करता था; फिर कुशोक् भोटियामें श्लोक कह कर उसे समझाते थे। इस प्रकार बड़ी राततक हमारी धर्म-चर्चा होती रही। उसके बाद सभी लोग सिमिट सिमिट कर उसी छोटी छोलदारीके नीचे लेट रहे। सर्दीके कारण मैलकी दुर्गन्ध तो मालूम न होती थी; किन्तु सबेरा होते होते मुझे विश्वास होने लगा कि मेरे जुओंमें कई सौकी वृद्धि हुई है। देखनेमें कुछ असाधारण मोटे ताजे लाल "छुपा" (=भोटिया चपकन) के हाशियेमें छिपे पाये गये। बर्फ रात भर गिरती ही रही। छोलदारी परसे कई बार बर्फको झाड़ना पड़ा।

प्रातःकाल उठकर देखा तो सारी भूमि, जो कि कल नङ्गी थी, आज एक फुटसे भी अधिक बर्फसे ढँकी हुई है। बर्फसे पिघल कर

बहती पतली धारमें जाकर हाथ-मुहँ धोया। आगके लिए तो कण्डा अब मिलने ही वाला न था। खानेके लिए कुछ बिस्कुट और थोड़ी मिठाई मिली। सुमति-प्रज्ञने नीचे ऊपर चारों ओर श्वेत हिम-राशिको देख कर आपही आकर मुझसे कहा—यहाँ जब इतनी बर्फ है, तो "ला"-पर तो और भी होगी। और अभी हिमवर्षा हो ही रही है; इसलिये हमें लप्-ची जानेका इरादा छोड़ देना चाहिये। मैं तो यह चाहता ही था। अन्तमें कुशोक्से कह कर हमने बिदाई ली। उन्हें तो लप्-ची जाना था। अब फिर मुझे अपना बोझा लादना पड़ा। रास्ता बर्फसे ढँक गया था, घाटीके सहारे अन्दाज़से हमलोग नीचेकी ओर उतर रहे थे। उतराईके साथ साथ बर्फकी तह भी पतली होती जा रही थी। अन्तमें बर्फ-रहित भूमि आ गयी। अब बर्फकी जगह छोटी छोटी जलकी बूँदें बरस रही थीं। दस बजेके करीब भीगते भागते हम दोनों फिर टशी-गङ्में पहुँचे। आसन "गोबा" (= मुखिया) के घरमें लगाया। मुखियाने अगले पड़ाव तकके लिए बोझा ले चलनेवाले आदमीका प्रबन्ध कर देनेको कहा। इस प्रकार २ जूनको टशी-गङ्में ही रह जाना पड़ा। हम दोनोंके जूतेका तला फट गया था, इसलिये मुखियाके लड़केसे कुछ पैसा देकर नया चमड़ा लगवाया। दिनको चमरीके छाछमें सत्तू मिलाकर खाया, तथा चाय पी, रातको भेड़की चर्बी डालकर सुमति-प्रज्ञने थुक्-पा तैयार किया। पीछे मालूम हुआ कि कुशोक्की पार्टीके कुछ लोग रास्ता न पा बर्फ-की चका-चौंधसे अन्धे होकर लौट आये। सुमति- प्रज्ञने कहा—हम लोगोंकी भी यही दशा हुई होती, यदि आगे गये होते।

"थोङ्"-ला पार कर लङ्कोरमें विश्राम

चाय-सत्तू खाकर, आदमीके ऊपर सामान लाद ३ जूनको सात-आठ बजेके क़रीब हम रवाना हुए। रास्ता उतराई और बराबरका था; उसपर मैं बिलकुल खाली, और सुमति-प्रज्ञका बोझा भी हल्का था। आदमीके लिए एक-डेढ़ मन बोझा तो खेल सा था। आगे चल

कर कोसीके बायें किनारे मुख्य रास्ता भी आ मिला। ग्यारह बजेके करीब हम तर्ग्ये-लिङ् गाँवमें पहुँच गये। सुमति-प्रज्ञ चौथी बार इस रास्तेसे लौट रहे थे। इसलिये रास्तेके पड़ावोंपर जगह जगह उनके परिचित आदमी थे। यहाँ भी मुखियाके घरमें ही हमने आसन लगाया। गृह-पत्नी पचास वर्षके ऊपरकी एक बुढ़िया थी, किन्तु गृह-पति उससे बहुत कम उम्रका था। तिब्बतमें ऐसा अकसर देखनेमें आता है। मुझे तो पहिले उनका पति-पत्नीका सम्बन्ध ही नहीं मालूम हुआ। जब गृहपतिने गृह-पत्नीके बालोंको खोल दिया, और उनके धोये जाने पर चाङ् प्रदेशके धनुषाकार शिरोभूषणको केशोंमें सँवारनेमें मदद दी, तब पूछने पर असल बात मालूम हुई।

सुमति-प्रज्ञ वैद्य, तान्त्रिक, और रमल फेंक कर भाग्य बतलानेवाले थे। चाय पीकर वह गाँवमें घूमने गये। थोड़ी देरमें आकर उन्होंने मुझे साथ चलनेके लिए कहा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह पचास वर्षकी एक धनाढ्य बाँझ स्त्रीको, सन्तान होनेके लिए यन्त्र देने जा रहे हैं। उनको भोटिया अक्षर लिखना नहीं आता था। इसलिये मेरी जरूरत पड़ी। मैं सुनकर हँसने लगा। मैंने कहा—बुढ़िया पर ही आपको अपना यन्त्र आजमाना है। उन्होंने कहा—वहाँ मत हँसना, धनी स्त्री है, कुछ सत्तू-मक्खन मिल जायगा; और जो कहीं तीर लग गया, तो आगेके लिए एक अच्छा यजमान हो जायगा। मैंने कहा—तीर लगनेकी बात तो जाने दीजिये; हाँ! तत्कालको देखिये। घरके दर्वाजेके भीतर गये। लोहेकी जञ्जीरमें बँधा खूँ-ख्वार महाकाय कुत्ता ऊपर टूटने लगा। खैर! घरका छोटा लड़का अपने कपड़ेसे कुत्तेका मुहँ ढाँक कर बैठ गया, और तब हम सीढ़ीपर चढ़ने पाये। सुमति-प्रज्ञने गृहपत्नीको, औषध, यन्त्र और पूजामन्त्र दिया। गृह-पत्नीने दो सेर सत्तू, कुछ चर्बी और चाय दी। वहाँसे लौट कर हम अपने आसनपर आये।

दूसरे दिन सबेरे आदमीके साथ आगे चले। यहाँ गाँवोंके पास भी वृक्ष न थे। खेत अभी अभी बोये जा रहे थे। लाल ऊनके गुच्छोंसे

सुसज्जित बड़े बड़े चमरोंके हल खेतोंमें चल रहे थे। कहीं कहीं हल-वाहे गीत भी गा रहे थे। दोपहरके क़रीब हम या-लेप् पहुँचे। या-लेप्से थोड़ा नीचे पुरानी नमककी सूखी झील है। या-लेप्में पुराना चीनी क़िला है। थोड़ी दूरपर नदीके दूसरे किनारेपर भी कच्ची दीवा-रोंका एक टूटा क़िला है। चीनके प्रभुत्वके समय या-लेप्के क़िलेमें कुछ पल्टन रहा करती थी। कुछ सर्कारी आदमी रहते तो आज भी हैं, किन्तु क़िला श्रीहीन मालूम होता है। घर और दीवार बेमरम्मत से दिखाई पड़ते हैं। एक परिचित घरमें सत्तू खाया और चाय पी। सुमति-प्रज्ञने गृह-पत्नीको बुद्ध-गयाकी प्रसादी—कपड़ेकी चिट—दी। लम्यिक् (=राहदारी) की कोई खोज न थी, इसलिये वहीं एक आदमीको ठेकानेपर पहुँचानेके लिए कह कर दे दिया। गाँवसे बाहर निकलते ही एक बड़ा कुत्ता हड्डी छोड़कर हमारी ओर दौड़ा। इन अत्यन्त शीतल स्थानोंके कुत्तोंको जाड़ेमें लम्बे बालोंकी जड़में मुलायम पशम उग आती है; जिससे उनपर सर्दीका प्रभाव नहीं होता। गर्मीमें यह पशम बालोंसे साँपकी केचुलकी भाँति निकल निकल कर गिरने लगती है। आजकल गर्मीकी वजहसे उसकी भी पशमकी छल्ली गिर रही थी। ख़ैर, हमलोग तीन थे। कुत्तेसे डर ही क्या? या-लेप्से प्रायः तीन मील आगे जाने पर ले-शिङ् डोलमा-गुम्बा नामक भिक्षुणियोंका विहार दाहिनी ओर कुछ हटकर दीख पड़ा। अब नदीकी धार बहुत ही क्षीण हो गयी थी। थोड़ा आगे जाकर नदीको पार कर हम दूसरे किनारेसे चलने लगे। यहाँ दूर तक जोते हुए खेत थे; जिनमें छोटी छोटी नहरों द्वारा नदीका सारा पानी लाया जा रहा था। कुछ दूर और आगे जाकर हम थो-लिङ् गाँवमें पहुँचे। गाँवमें बीस पचीस घर हैं। यह स्थान समुद्र-तलसे बारह-तेरह हज़ार फ़ुटसे कम ऊँचा न होगा। तग्र्ये-लिङ्से यहीं तकके लिए आदमी किया था। पहिले वह अपने परिचित घरमें ले गया। जब कभी राज-कर्मचारी तथा दूसरे बड़े आदमी आते हैं तो वह इसी घरमें ठहराये जाते हैं। हमें यह सुनसान बड़ा घर पसन्द न आया। अन्तमें सुमति-प्रज्ञ अपने परि-

चितके घर ले गये। यह गाँवके बीचमें था। कुछ स्त्री-पुरुष धूपमें बैठे ताना करते, और सूत कातते थे। सुमति-प्रज्ञने जाते ही "जू-दम्-ज" (आगन्तुकका सलाम) किया। उनके परिचित कई आदमी निकल आये। अन्तमें एक घरमें हमारा आसन लगा। घर दो-तल्ला था। चारों ओर कोठरियाँ थीं। धुँआ निकलनेके लिए भट्ठीकी छतमें बड़ा छेद था।

सुमति-प्रज्ञने चाय निकाल कर गृह-पत्नीको पकानेको दी। गृहपत्नी मुँह-हाथपर तेल मिले काजलकी एक मोटी तह जमी हुई थी, वही हालत उनके ऊनी कपड़ोंकी भी थी। उन्होंने झट उसे कई मुँहोंके चूल्हेपर पानी डाल कर चढ़ा दिया, और भेंड़की लेंड़ी झोंक कर भाथीसे आग तेज़ करना शुरू किया। चाय खौलने लगी। तब उसमें ठण्डा पानी मिलाया गया। और लकड़ीके लम्बे चोंगेमें चायका पानी डाल कर नमक डाला; फिर सुमति-प्रज्ञने एक लोंदा मक्खनका दिया। मक्खन डाल कर आठ-दस बार मथानी घुमायी गयी, और चाय मक्खन सब एक हो फेन फेंकने लगा। वस्तुतः यह चाय मथनेकी एक दो-ढाई हाथ लम्बी पिचकारी सी होती है जिसका एक ही ओरका खुला हिस्सा ढक्कनसे बन्द रहता है। मथानीको नीचे ऊपर खींचनेसे हवा भीतर जाती है, उससे और पिचकारीकी भीतरी गोल चिप्पीसे भी चाय और मक्खन जल्द एक हो जाते हैं।

यहाँसे हमें "थोङ्"-ला (= थोङ् नामक दर्रा = जोति = पीर) पार करना था। आदमी ले चलनेकी अपेक्षा दो घोड़े लेना ही हमने पसन्द किया। यहाँसे लङ्-कोरके लिए अठारह टङ्के (= दो रुपये) पर हमने दो घोड़े किराये पर किये। दूसरे दिन आदमीके साथ घोड़ेपर सवार हो हम आगे चले। इस बहुत ही विस्तृत घाटीमें—जिसके दोनों ओर वनस्पति-हीन अधिकतर मिट्टीसे ढँके पर्वतोंकी छोटी शृङ्खला थी—कोसीकी क्षीण-धारा धीमी गतिसे बह रही थी। रास्तेमें कई जगह हमें पुराने उजड़े घरों और ग्रामोंके चिह्न मिले। कुछकी दीवारें तो अब भी खड़ी थीं। मालूम होता है, पहिले

यह घाटी बड़ी आबाद थी। तब तो कोसीकी धार भी बड़ी रही होगी, अन्यथा इन विस्तृत खेतोंको वह सींच कैसे सकती। गाँवमें सुना था कि पिछले साल थोङ्-लाके रास्तेमें दो यात्रियोंको किसीने मार डाला। भोटमें आदमीकी जान कुत्तेकी जानसे अधिक मूल्यवान् नहीं। राज-दण्डके भयसे किसीकी रक्षा नहीं हो सकती। सुमतिप्रज्ञ इस विषयमें बहुत चौकन्ने थे।

ज्यों ज्यों हम ऊपर जा रहे थे, वैसे वैसे घाटी सँकरी होती जाती थी। अन्तमें हम "ल्हर्से" (= "ला" के नीचे खान-पान करनेका पड़ाव) पर पहुँचे। कुछ लोग पहिले ही "ला" के उस पारसे इधर आकर वहाँ चाय बना रहे थे। भोटमें भाथी अनिवार्य चीज है। उसके बिना कण्डों और भेड़की लेंड़ियोंसे जल्दी खाना नहीं पकाया जा सकता; बाज वक्त तो कण्डे गीले मिलते हैं, जो भाथीके सहारे ही जलाये जा सकते हैं। हमारे पास भाथी न थी, इस लिये हमने अपनी चाय भी दूसरोंकी चायमें मिला दी। फिर घोड़ोंको तो थोड़ा चरनेके लिए छोड़ दिया गया, और हम लोग चाय पीने और गप करनेमें लग गये। मालूम हुआ, "ला" पर बर्फ़ नहीं है। इन आये हुए लोगोंका मुँह पुराने ताँबेका सा हो गया था। तिब्बतमें "जोत" (=ला") पार करते समय शरीरका जो भी भाग खूब अच्छी तरह ढँका नहीं रहेगा, वही काला पड़ जायेगा; और यह कालापन एक-डेढ़ हफ्ते तक रहता है।

चाय पीनेके बाद हमलोग फिर घोड़ेपर सवार हुए। अब चढ़ाई थी, तो भी कड़ा न थी, या यह कहिये कि हम दूसरोंकी पीठपर सवार थे। आगे चलकर घाटी बहुत पतली हो गयी। वह नदीकी धार-मात्र रह गयी, जिसमें जगह जगह और कहीं कहीं लगातार पुराने बर्फकी सफेद मोटी तह जमी हुई थी। हमारा रास्ता कभी नदीके इस पारसे था, कभी उस पारसे। फिर धार छोड़कर दाहिनी ओर तिर्छी पहाड़ीपर भूल-भुलइयाँ करते हम चढ़ने लगे। घोड़े रह रहकर अपने आप रुक जाते थे, जिससे मालूम होता था कि हवा बहुत हल्की है। अन्तमें हमें काले, पीले, सफेद कपड़ोंकी झण्डियाँ दिखाई पड़ीं।

मालूम हुआ "ला" का शिखर आ गया। भोटमें हर "ला" का कोई देवता होता है। उसके पास आते ही लोग घोड़ेपरसे उतर जाते हैं, जिसमें देवता नाराज न हो जाय। हम भी उतर गये। सुमति-प्रज्ञ और दूसरे भोटियोंने "शो शो-शो" कह देवताकी जय मनायी। इस "ला" पर खड़े हो हमने सुदूर दक्षिण ओर दूर तक हिमाच्छादित पहाड़ियोंको देखा, यही हिमालय है। और तरफ भी पहाड़ ही पहाड़ देखे, किन्तु उनपर बर्फ न थी। दूसरी ओरकी घाटीमें अवश्य कहीं कहीं थोड़ी बर्फ देखी। यहाँसे अब उतराई शुरू हुई। मेरा घोड़ा सुस्त था, और मैं मार न सकता था, इसलिये मैं थोड़ी ही देरमें पिछड़ गया। सुमति-प्रज्ञ दूसरे भोटियोंके साथ आगे बढ़ गये। रास्तेमें आदमी भी न मिलता था, इस प्रकार धीरे धीरे चलते, कभी कभी आसपासकी बस्तियोंमें पूछते, उन लोगोंके पहुँचनेके तीन घण्टेके बाद चार बजे मैं लङ्कोर पहुँचा। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि सुमति-प्रज्ञ बहुत खफ़ा हुए।

(क्रमशः)

राहुल सांकृत्यायन

विविध विषय।

मौलिक अधिकार-समितिकी रिपोर्ट

एक समय था जब योरपमें राजा स्वेच्छाचारी थे और प्रजाका कोई अधिकार नहीं माना जाता था। उस समय यह कहा जाता था कि राजाको ईश्वरकी ओरसे अपनी प्रजापर इच्छानुसार शासन करनेका अधिकार प्राप्त है और प्रजाका कर्तव्य है कि वह राजाज्ञाके अनुसार सदा आचरण करे। उस युगके पुरोहित, धर्माधिकारी, दार्शनिक पण्डित तथा क़ानूनके विद्वानोंका मत था कि राजाओंका विरोध करना एक महान् अपराध है। उस समयकी राजकीय पद्धतिमें राष्ट्रीयताको कोई स्थान न था, राज्य करनेवाले राजकुलोंका स्वार्थ ही राज्यकी सीमाको निर्धारित करता था और शासनके सञ्चालनमें जनताकी इच्छाओंपर ध्यान नहीं दिया जाता था। ऐसी स्थितिका विरोध करनेके लिये योरपमें कई क्रान्तियाँ हुई और कई नूतन विचारोंने जन्म लिया। स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्वकी स्थापनाके लिये फ्रांसकी राज्यक्रान्ति हुई। रूसोने अपनी शिक्षामें समताके सिद्धान्तकी घोषणा की। धीरे-धीरे विचार-स्वातन्त्र्यका अधिकार स्वीकार किया जाने लगा। लोकतन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई। जिस प्रकार रूसोने समताके सिद्धान्तका प्रचार किया, उसी प्रकार मैज़िनीने राष्ट्रीयताका प्रचार किया। राष्ट्र-भावनाने धीरे-धीरे योरपके सब देशोंमें अपना अधिकार जमा लिया। आजके संसारमें राष्ट्रीयता और लोकतन्त्रवादका आधिपत्य है। एशियाके देशोंमें आज यही दो भावनाएँ प्रधान रूपसे काम कर रही हैं। यद्यपि आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेको

स्वतन्त्र है और वह लोकाचार, बहुमत तथा अधिकारि-वर्गके मतका भी खुले तौरसे विरोध कर सकता है तथापि औद्योगिक क्रान्तिके फल-स्वरूप संसारमें पूँजीपति तथा मजदूरोंका जो सङ्घर्ष चल रहा है उसके कारण एक नयी समस्या विकट रूपमें उपस्थित हो गयी है और अनुभव यह बतलाता है कि लोकतन्त्रमें भी राज्यके सारे अधिकार एक समुदाय-के हाथमें ही रहते हैं और पूँजीपति जनताके लाभके लिये नहीं वरन् अपने स्वार्थको सिद्ध करनेमें इन अधिकारोंका उपयोग करते हैं। जिस समय समता तथा लोकतन्त्रके सिद्धान्तोंका उपक्रम हुआ, उसी समय कुछ विचारशील महानुभावोंका इस ओर भी ध्यान गया कि धनका बटवारा भी समताके सिद्धान्तके अनुसार होना चाहिये। इस विचार-पद्धतिको साम्यवाद कहते हैं। पर इस विचारको उस समय प्रसारके लिये अवकाश न मिल सका। समय अनुपयुक्त था। पहिले तो अमीर-ग़रीबका प्रश्न उस समय इतना जटिल नहीं था जितना कि आज पूँजीवादकी असाधारण उन्नतिके कारण हो गया है। दूसरे, उस समय विचार-स्वातन्त्र्यकी प्रतिष्ठा तथा प्रजाके अधिकारोंकी रक्षाके लिये ही समाजको अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ी थी। पर आज लोगोंका सन्तोष केवल राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रसे ही नहीं होता है। आज लोग यह चाहने लगे हैं कि धनका बटवारा भी इस प्रकारसे होना चाहिये जिसमें ग़रीब और अमीरका भेद ही मिट जावे और यदि यह भेद पूरी तरहसे न मिटाया जा सके तो कमसे कम इस भेदको जहाँ तक कम किया जा सके कम किया जावे। नवीन रूसने तो मजदूर और किसानोंका राज्य ही क़ायम कर दिया है। पर अन्य देश जो वर्गवादको नहीं मानते वह भी इस विचार-धारासे प्रभावित हुए हैं। जो राष्ट्र साम्यवादके कट्टर विरोधी हैं उनको भी विवश होकर अपनी इच्छाके विरुद्ध कुछ ऐसे कार्य करने पड़े हैं जिनके लिये साम्यवादी जोर देते थे।

एशियाके जिन परतन्त्र राष्ट्रोंको अपनी स्वतन्त्रताके लिये आज साम्राज्यवादियोंका विरोध करना पड़ रहा है, उनको विवश होकर समय-समय पर आर्थिक योजनाओंकी घोषणा करनी पड़ती है जिनके

द्वारा वह अपने देशवासियोंको विश्वास दिलाते हैं कि स्वतन्त्र होने पर नवीन शासन-पद्धतिमें उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर की जावेंगी और जो अन्याय और अत्याचार आज श्रमजीवियोंपर हो रहे हैं वह दूर किये जावेंगे और उनकी वर्तमान दशामें सुधार किया जावेगा। इसका मुख्य कारण यह है कि साम्राज्यवादका सफलताके साथ विरोध करनेके लिये सामान्य जनताकी सहानुभूति और सहायताकी परम आवश्यकता है और सामान्य जनताकी सहायता प्राप्त करनेका सरल और एक मात्र उपाय यही है कि आप उसके दु:खोंको दूर करने और उसके सुख-की वृद्धि करनेका आश्वासन दें। शुद्ध राष्ट्रीयताके भावसे वह इस दर्जे तक प्रभावित नहीं की जा सकती कि वह केवल राष्ट्रीयताके आदर्शके लिये अपना सर्वस्व त्याग दे। योरपीय देशोंके विभिन्न राज-नैतिक दल भी अधिकार पानेके लिये ऐसी घोषणा समय-समय पर किया करते हैं। योरपके प्रत्येक देशमें इस समय साम्यवादी दल पाया जाता है।

एशियाके देशोंमें चीनका उदाहरण हमारे सामने है। यद्यपि सन् १९११ में क्रान्ति द्वारा वहाँ प्रजातन्त्रकी स्थापना की गयी थी पर उनका यह प्रयत्न पूर्ण रूपसे उस समय सफल न हो सका; क्योंकि क्रान्तिकारियोंके पीछे सामान्य जनताकी शक्ति नहीं थी। उन्होंने धीरे-धीरे अपनी कमजोरीका अनुभव किया। चीनियोंने सन् १९२४ में अपनी राष्ट्रीय संस्था 'कुओमिनताङ्ग' का पुनः सङ्गठन किया। 'कुओमिनताङ्ग' ने अपनी नयी नीतिकी घोषणा की। इस घोषणा द्वारा उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वह साधारण जनताकी आर्थिक उन्नति तथा शिक्षाका भी ध्यान रखते हैं। इस घोषणा द्वारा उन्होंने यह सूचित किया कि जनताको परस्पर मिलने और सङ्गठित होने, अपने अपने धर्म-विश्वासके अनुसार आचरण करने तथा लेख या भाषण द्वारा विचारों-के प्रकट करनेकी पूरी स्वतन्त्रता रहेगी; सर्वसाधारणकी शिक्षाके लिये विशेष रूपसे उद्योग किया जावेगा; किसानोंकी आजीविकाका समुचित प्रबन्ध होगा और मजदूरोंके हितोंकी रक्षाके लिये एक विशेष क़ानून

बनाया जावेगा; रेल आदि उद्योग-व्यवसायका प्रबन्ध राष्ट्रकी ओरसे होगा; स्त्री और पुरुषके समानाधिकार होंगे और उनमें कोई भेद नहीं किया जावेगा; गवर्नमेंट भूमि सम्बन्धी क़ानून बनावेगी; जमीनके मालिक जमीनकी क़ीमत गवर्नमेंटको बतलानेके लिये बाध्य होंगे; इसी क़ीमतके लिहाज़से गवर्नमेंट जमीनका कर निश्चित करेगी और आवश्यकता होने पर उस क़ीमतपर जमीन ख़रीद भी सकेगी।

'कुओमिनताङ्ग' के पुनः सङ्गटनके बाद चीनमें अपूर्व राष्ट्रीय जागृति हुई। मजदूर और किसान राष्ट्रीय आन्दोलनमें अधिकाधिक सङ्ख्यामें सम्मिलित होने लगे। चीनकी जो उन्नति इधर हुई है उसकी गति बहुत तीव्र है और यह उन्नति केवल नवीन नीतिके कारण ही हो सकी। भारतवर्षका राष्ट्रीय आन्दोलन अब तक प्रायः मध्यम श्रेणीके लोगों तक ही सीमित रहा। सामान्य जनताकी सहानुभूति हमारे आन्दोलनके साथ अवश्य रही है पर उसने राष्ट्रीय आन्दोलनमें गत वर्षके पूर्व उस प्रकारसे भाग नहीं लिया था जिस प्रकार मध्यम श्रेणीके लोग अब तक लेते आ रहे हैं। किसान और मजदूरोंके भविष्यके सम्बन्धमें हमारी कोई नीति नहीं थी। इस त्रुटिके कारण राष्ट्रीय आन्दोलनमें बल नहीं आया था। काङ्ग्रेसके लिये अब अपनी नीतिकी घोषणा करना अनिवार्य हो गया था। इसलिये करांचीमें काङ्ग्रेसने एक प्रस्ताव द्वारा जनताके अधिकार तथा साम्पत्तिक, सामाजिक और शासन-सम्बन्धी सुधारोंकी घोषणा की और इस प्रस्तावमें उचित परिवर्तन, संशोधन या परिवर्द्धन करनेके लिये कतिपय सज्जनोंकी एक उपसमिति बना दी जिसने २५ जूनको अपनी रिपोर्ट दी। कमेटीने प्रस्तावको जो रूप दिया है उसके कुछ अंश हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

१. भारतके प्रत्येक नागरिकको स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने, स्वतन्त्रता-पूर्वक परस्पर मिलने, सङ्गठित होने तथा ऐसे कामोंके लिये, जो क़ानून और आचार-नीतिके विरोधी न हों, एक स्थानपर शान्तिपूर्वक और बिना हथियारके एकत्र होनेका अधिकार होगा।

२. सरकारी नौकरियों, अधिकारके पदों या सम्मानके सम्बन्धमें तथा किसी व्यवसाय या पेशेके स्वीकार करनेके सम्बन्धमें अपने धर्म, जाति, विश्वास या लिङ्ग-भेदके कारण कोई व्यक्ति या कोई नागरिक अयोग्य न समझा जायगा।

३. सरकार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षाका प्रबन्ध करेगी।

४. अल्प-सङ्ख्यक समुदाय तथा देशके विभिन्न भाषा-मूलक अंशोंकी संस्कृति, भाषा और लिपिकी रक्षा की जावेगी।

५. उद्योग-धन्धोंमें काम करनेवाले मज़दूरोंके हितोंकी रक्षा सरकार करेगी और उन्हें उपयुक्त क़ानून तथा अन्य उपायों द्वारा पर्याप्त मज़दूरी, काम करनेकी स्वास्थ्यकर परिस्थिति, परिश्रमके लिये परिमित घंटे और मालिक और मज़दूरोंके झगड़ोंको तय करनेके लिये उपयुक्त साधन प्राप्त करानेका बन्दोबस्त करेगी; तथा वृद्धावस्था, बीमारी और बेकारीमें सहायता मिलनेका प्रबन्ध भी सरकार ही करावेगी।

अपने हितोंकी रक्षाके लिये सङ्घ क़ायम करनेका अधिकार श्रमिकोंको होगा। कम उम्रके लड़कोंसे कारख़ानों और खानोंमें काम न लिया जावेगा। स्त्री-श्रमिकोंकी विशेष आवश्यकताओंपर ध्यान दिया जावेगा।

६. भूमि-करकी प्रणालीमें सुधार किया जावेगा और वर्तमान लगान और मालगुज़ारीमें वास्तविक छूट देकर और अलाभकर भूमिका लगान बिलकुल माफ़ करके वर्त्तमान बोझको यथार्थ रूपमें हलका किया जावेगा। निर्धारितसे अधिक आय होने पर आय-कर भी लिया जावेगा।

७. क़र्ज़दार किसानोंकी मदद करानेका काफ़ी प्रबन्ध किया जावेगा और अधिक सूदख़ोरी बन्द कर दी जावेगी।

८. प्रधान उद्योग-धन्धों, खानों, रेलों, जहाज़ों तथा सार्वजनिक आयात-निर्यातके अन्य साधनोंपर सरकारका अधिकार होगा।

९. सरकार स्वयं या स्थानिक संस्थाओं द्वारा इसका प्रबन्ध करेगी कि देहातोंमें रहनेवालोंकी स्थितिमें सुधार हो, इसके लिये वह देहातोंमें रहनेवालोंके लिये स्वास्थ्यकर मनोरञ्जन, वयस्क व्यक्तियोंकी शिक्षा

प्राप्त करनेकी सुविधा, कृषिमें वृद्धि और सुधार, हाथ-कताई और हाथ-बुनाई तथा अन्यान्य देशी कला-कौशलका पुनर्जीवन और उन्नति आदिका प्रबन्ध करेगी तथा गाँवोंकी सफ़ाई, वहाँ पीने योग्य पानी पहुँचाने और डाक्टरी सहायता आदिका प्रबन्ध करनेके लिये एक प्रभावोत्पादक कार्य-क्रम स्वीकार करेगी।

प्रस्ताव चार भागोंमें बाँटा गया है। पहिले भागमें नागरिकोंके मौलिक अधिकार तथा कर्तव्योंका निर्देश किया गया है, दूसरे भागमें श्रमजीवियोंके सम्बन्धमें, तीसरे भागमें टैक्स और खर्चके सम्बन्धमें कुछ निश्चय दिये गये हैं और चौथे भागमें एक आर्थिक और सामाजिक कार्य-क्रमका उल्लेख किया गया है। प्रस्तावके पहिले और दूसरे भागकी तुलना यदि हम जर्मनीके नये शासन-विधान (११ अगस्त, १९१९) के दूसरे भागसे करें तो हमको दोनोंमें बहुत समानता मिलेगी। जर्मनीके नये कान्स्टीट्यूशनके दो भाग हैं। पहिले भागमें रायख़ (Reich) का सङ्गठन और उसके कार्य दिये गये हैं। दूसरे भागमें जर्मनी-निवासियोंके मौलिक अधिकार और कर्तव्योंका निर्देश है। शासन-विधानोंमें प्रायः अधिकारोंका ही उल्लेख पाया जाता है; कर्त्तव्योंका निर्देश नहीं होता। जर्मनीके शासन-विधानके समान ही कमेटी द्वारा स्वीकृत प्रस्तावमें भी अधिकारोंके साथ-साथ कर्तव्योंका भी उल्लेख किया गया है। सबकी भाषा, लिपि और संस्कृतिकी रक्षाका नियम जातीयताके विरोधको शमन करनेके लिये रखा गया है। साम्यवादियोंने विभिन्न जातियों तथा संस्कृतियोंके परस्पर विरोधको दूर करनेका यही उपाय निर्धारित किया है। जर्मनीके कांस्टीट्यूशनने भी विदेशी भाषा बोलनेवालोंका अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने तथा अबाधित रूपसे अपनी जातीय उन्नति करनेका अधिकार सुरक्षित रखा है।

जर्मनीके शासन-विधानमें एक नियम यह भी है कि प्रत्येक जर्मनको परिश्रम कर आजीविका उपार्जन करनेका अवसर दिया जावेगा। जहाँ किसीको काम नहीं मिल रहा है या काम नहीं दिलाया जा सकता

वहाँ राज्यको उसकी जीविकाका प्रबन्ध करना होगा (नियम १६३)। वहाँ औद्योगिक सङ्गठन शासन-तन्त्रका एक अङ्ग है और इस सङ्गठनमें प्रत्येक मजदूरका स्थान है। कर्तव्योंके सम्बन्धमें भी कुछ नियम दिये गये हैं। प्रत्येक जर्मनका कर्तव्य है कि क़ानूनके अनुसार स्टेट तथा स्थानीय शासकोंकी सहायता करे और बिना पुरस्कार लिये क़ानून द्वारा निर्दिष्ट पदोंका कार्य सम्पादित करे। १८ वर्षकी अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक जर्मन मजबूर है (नियम १४५)। प्रत्येक जर्मनका कर्तव्य है कि समाजके कल्याणके लिये अपनी बौद्धिक तथा शारीरिक शक्तियोंका उपयोग करे (नियम १६३)। यद्यपि काङ्ग्रेसके प्रस्तावमें मौलिक अधिकार तथा कर्तव्यका शीर्षक दिया गया है तथापि निश्चयोंको देखनेसे नहीं मालूम होता कि किसी खास कर्तव्यका निर्देश किया गया है। जर्मनीके शासन-विधानसे इस प्रकारके नियमोंका ले लेना ज्यादा अच्छा होता।

कमेटीके प्रस्तावके सम्बन्धमें मतभेदके लिये बहुत गुञ्जाइश है। कुछ लोगोंके मतमें यह निश्चय बहुत साधारण हैं और कुछ लोग इन्हीं निश्चयोंको क्रान्तिकारी समझते हैं। पर आलोचना करते समय हमको ध्यानमें रखना चाहिये कि काङ्ग्रेस किसी वर्गविशेषकी संस्था नहीं है। यह एक राष्ट्रीय संस्था है और इसे सब वर्गोंको यथाशक्ति साथ ले चलनेका प्रयत्न करना है। हम इसे कम महत्वकी बात नहीं समझते कि काङ्ग्रेसने ऐसी घोषणा तो की। भविष्यके सम्बन्धमें सूचना और मन्तव्योंका प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है जिसमें लोगोंको मालूम हो जावे कि नवीन पद्धतिमें उनका क्या स्थान होगा। ऐसा करनेसे क्रान्तिके सफल होनेके समय धोखा भी नहीं रहेगा और उद्देश्योंका जनतामें प्रचार करनेसे यह लाभ भी होगा कि यदि कुछ लोग उस समय शक्तिका दुरुपयोग करना चाहेंगे तो जनता उनको ऐसा करनेसे रोकेगी। हम इस घोषणाका स्वागत करते हैं और हमको यह कहते प्रसन्नता होती है कि काङ्ग्रेसने जो आर्थिक योजना बनायी है वह कुओमिनताङ्गकी योजनासे अधिक स्पष्ट और उन्नतिशील है।

इस लेखमें हमारा विचार इस प्रस्तावकी आलोचना करना नहीं है। हम तो केवल एक आर्थिक। योजनाकी आवश्यकता बतलाना चाहते थे। जब काङ्ग्रेसने एक बार इसके महत्वको समझ लिया तब यह आशा की जाती है कि आगे चलकर इस योजनामें धीरे धीरे सुधार हो जावेगा।

नरेन्द्रदेव

   

शाही मज़दूर कमीशन

२ जुलाई सन् १९२९ ईसवीको शाही फरमानके द्वारा एक मजदूर कमीशन मुक़र्रर किया गया था। इस कमीशनको काम यह सौंपा गया था कि वह बृटिशभारतके कल-कारखानों और चायके खेतोंपर काम करनेवाले मजदूरोंकी हालत—उनकी तन्दुरुस्ती, काम करनेकी क्षमता और रहन-सहनकी अवस्था तथा मालिकों और मजदूरोंके बीचके ताल्लुक़ातके सम्बन्धमें जाँच करे और अपनी सिफारिशें पेश करे। कमीशनके सदस्योंकी कुल सङ्ख्या १३ थी। श्री जे० एच० ह्विटले तो उसके अध्यक्ष थे। शेष सदस्योंके नाम ये हैं—श्री वी० एस०। श्रीनिवास शास्त्री, सर एलिस विक्टर सैसून, सर इब्राहिम रहमतुल्ला, सर अलेक्जेण्डर राबर्टसन मरी, श्री एण्ड्रयू गोर्ले क्लाऊ, श्री कबीरूउद्दीन अहमद, श्री घनश्यामदास बिड़ला, श्री जानक्लिफ, श्री नारायण मल्हार जोशी, दीवान चमनलाल और श्री बी० एम० ले पुअर पावर। कमीशनकी रिपोर्ट, उसकी नियुक्तिके पूरे दो वर्ष बाद, गत २ जुलाईको प्रकाशित हो गयी। इसपर सर इब्राहिम रहमतुल्लाके अतिरिक्त सभी सदस्योंके हस्ताक्षर हैं। किन्तु सर विक्टर सैसून और श्री कबीरुद्दीन अहमदने कुछ बातोंमें अन्य सदस्योंके साथ अपना मतभेद प्रकट करते हुए अलग अलग एक नोट भी लिखा है। सर इब्राहिम रहमतुल्ला १७ जनवरीको भारतीय व्यवस्थापक सभाके

अध्यक्ष निर्वाचित होनेके कारण आगे कमीशनके कार्यमें योग न दे सके और इसी कारण रिपोर्टपर उनके हस्ताक्षर नहीं हैं।

रिपोर्ट लिखनेके पहले कमीशनने मजदूरोंकी हालतकी जाँच करनेके लिये समस्त भारतवर्ष, बर्मा और सीलोनके अतिरिक्त इङ्गलैण्ड-का भी दौरा किया। उसकी १२८ सार्वजनिक और ७१ खानगी बैठकें हुई जिनमें ८३७ व्यक्तियोंकी गवाहियाँ सुनी गयीं। लन्दन, बम्बई और कोलम्बोके बीचके फ़ासलेके अलावा केवल भारतवर्षमें कमीशनने १६ हजार मीलका दौरा किया। कमीशनकी सहायताके लिये भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारोंकी ओरसे सहायक कमिश्नर और कुछ सहायक महिलाएँ भी नियुक्त कर दी गयी थीं। समस्त कार्यके सम्पादनमें लगभग साढ़े दस लाख रुपये खर्च हुए हैं।

कमीशनकी लगभग छः सौ पृष्ठोंकी विस्तृत रिपोर्टको अभी हमें केवल सरसरी निगाहसे देखनेका मौक़ा मिला है। किन्तु उतनेसे ही हम यह कह सकते हैं कि बृटिश भारतीय कल-कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी अवस्थापर प्रकाश डालनेके लिये इस रिपोर्टमें काफ़ी सामग्री है। उसकी सिफ़ारिशोंके सम्बन्धमें विचार करते समय सबसे पहले खटकनेवाली बात है सर विक्टर सैसूनका मतभेद-सूचक नोट। आपका मुख्य मतभेद कमीशनकी तीन सिफ़ारिशोंके साथ है—

(१) मजदूरोंकी हालत सुधारनेके सम्बन्धमें, (२) कामके घण्टे ६० से घटाकर ५४ करनेके सम्बन्धमें, और (३) आसामके चायके खेतोंमें मजदूरीकी कमसे कम शरह निश्चित कर देनेके सम्बन्धमें।

पहले मतभेदके सम्बन्धमें उनकी दलील यह है कि देहातोंमें रहनेवालोंकी सङ्ख्या दिनपर दिन इतनी बढ़ती जा रही है कि खेतीके पेशेसे उनका निर्वाह नहीं होता। ऐसे लोगोंको कल-कारखानोंमें काम मिल जाता है। अगर इन्हें मजदूरी ज्यादा दी जाय तो उस कारखानेमें पैदा होनेवाली चीजें महँगी बिकेंगी और इस प्रकार थोड़ेसे मजदूरोंके फ़ायदेके लिये समस्त देशके खरीदारोंको एक प्रकारका कर देना पड़ेगा। दूसरेके सम्बन्धमें आपका कहना है कि जब किसी कारखानेकी

आमदनी इतनी बढ़ जाय कि वहाँ मजदूरी बढ़ानेकी गुञ्जाइश मालूम होने लगे, तब यह वृद्धि प्रत्यक्ष रूपसे रुपये-पैसेके रूपमें न करके कामके घण्टे कम कर देने चाहियें। तीसरेके सम्बन्धमें आपका कहना है कि अगर अन्य स्थानोंमें मजदूरीकी कमसे कम शरह निश्चित करनेकी जरूरत नहीं है तो आसामके चायके खेतोंमें भी नहीं है। आपकी इन दलीलोंका विस्तृत उत्तर रिपोर्टमें ही मौजूद है। पर उसके सम्बन्धमें हम यहाँ कुछ न कहते हुए केवल इतना लिखना चाहते हैं कि कमीशनकी जिन सिफारिशोंपर सर विक्टरका मतभेद है, वे आजसे बहुत पहले ही अमलमें आनी चाहिये थीं और अन्य देशोंमें आ रही हैं। मजदूरीकी शरह बढ़ाने अथवा कामके घण्टे कम करनेसे चीजोंके महँगी होनेका भय दिखलाना अनुचित है। साधारण दृष्टिकोण तो यही है कि मजदूरोंको उतना अंश मालिकोंकी आमदनीमेंसे मिलना चाहिये। वस्तुतः इस समय वाजिब तौरपर मजदूरोंको जितना मिलना चाहिये उतना उन्हें न देकर मालिक लोग अपनी आमदनी बढ़ाये हुए हैं।

यदि हमें एक ओर यह आश्चर्य होता है कि कमीशनकी इन सर्वथा न्याययुक्त सिफारिशोंसे भी अलग जाकर सर विक्टरने क्यों इस प्रकारका नोट लिखा तो दूसरी ओर इस बातपर भी आश्चर्य होता है कि कमीशनने श्री कबीरुद्दीन अहमदको एक भिन्नमत-सूचक नोट लिखनेका मौक़ा क्यों दिया। उनकी रायको स्वीकार क्यों नहीं किया? आपने जहाजों तथा नदियोंपर चलनेवाले बोटोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी दशा सुधारनेके सम्बन्धमें कुछ सिफारिशें की हैं जिनका शीघ्रसे शीघ्र कार्यान्वित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

मजदूरोंको रखने और उन्हें निकालने, उनके कामके घण्टे तथा उनके स्वास्थ्य आदिके सम्बन्धमें वर्तमान अवस्थाका परिचय कराते हुए कमीशनने जिन सुधारोंकी सिफारिश की है वे बहुत जरूरी हैं। इसी प्रकार मजदूरोंके सङ्गठन, ट्रेड यूनियन, और मजदूरोंकी ऋण-समस्याको हल करनेके उपायोंके सम्बन्धमें कमीशनकी सिफारिशें

महत्वपूर्ण हैं। पर दो महत्वपूर्ण प्रश्नोंको, जो मज़दूरोंसे—और आजकलकी स्थितिमें भारतके मज़दूरोंसे—विशेष कर सम्बन्ध रखते हैं, कमीशनने टालसा दिया है। पहला प्रश्न बेकार मज़दूरोंके लिये दूसरे सभ्य देशोंकी तरह कोई ऐसी योजना तयार करना है जिससे कि बीमा आदि उपायों द्वारा उनको बेकारीके समय कमसे कम निर्वाह मात्र मिल सके। कमीशनने इस बातको केवल माना ही नहीं है पर इसपर जोर भी दिया है कि भारतके मज़दूर अधिक सङ्ख्यामें ऐसे लोग हैं जिनका पेशा पहले खेती नहीं रहा है; और इसलिये बेकारीके समय उनके लिये कोई सहायक पेशा नहीं रहता। फिर भी किसी ऐसी योजनाके सोचनेका प्रयत्न नहीं किया, जिससे कि यह महत्वपूर्ण प्रश्न हल हो जाय, वरन् एक बहुत पुरानी दलील देकर—कि बीमा आदि सम्बन्धी हिसाब-किताबकी दिक्कतोंके कारण इस सवालका तय करना सम्भव नहीं है—इस प्रश्नको छोड़ दिया है। साथ ही यह भी राय दी है कि बेकारोंको सहायता देनेका भार गवर्नमेण्टपर होना चाहिये। यह एक ऐसी सिफ़ारिश है जिसका गवर्नमेण्टकी आर्थिक स्थितिको देखते हुए कार्यान्वित होना असम्भव ही दिखलाई पड़ता है और इस प्रश्नके सम्बन्धमें कोई सिफ़ारिश न होनेके बराबर है।

दूसरा प्रश्न हर व्यवसायमें कमसे कम मज़दूरी निश्चित करनेके सम्बन्धमें है। दूसरे देशोंमें ऐसे क़ानून बहुत पहले बन चुके हैं। उन देशोंके मज़दूरोंका सङ्गठन और आर्थिक अवस्था भारतके मज़दूरोंसे कहीं अच्छी है। इसलिये यहाँ मज़दूरी तय करनेकी और भी अधिक ज़रूरत है। इस प्रश्नको कमीशनने यह कहकर छोड़ दिया है कि इसके सम्बन्धमें और अनुसन्धानकी ज़रूरत है। दो सालका समय और क़रीब साढ़े दस लाख रुपया ख़र्च करके भी कमीशनने इस प्रश्नको दूसरे कमीशनके लिये क्यों छोड़ दिया यह समझमें नहीं आता। इसको वह अच्छी तरहसे तय कर सकता था। भारतकी यह सतत और आवश्यक माँग रही है कि यहाँके मज़दूरोंको जीवनके लिये ज़रूरी मज़दूरी मिलनी चाहिये और इस साल काङ्ग्रेसने भी अपने

मूल स्वत्वों सम्बन्धी प्रस्तावमें इसको शामिल कर दिया है। हर देशवासीका यह मौलिक अधिकार है कि उसको काफी खाना और कपड़ा मिलना चाहिये; लेकिन कमीशनने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया है।

इन बातोंके होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि यदि कमीशनकी सिफ़ारिशोंपर अमल किया जाय तो भारतीय मज़दूरोंकी दुरवस्था, जिसकी शुरूआत अँग्रेज़ोंके ही समयमें हुई है और जिसपर कमीशनने अच्छी तरहसे प्रकाश डाला है, बहुत हद तक सुधर सकती है।

कमीशनने अपना काम कर दिया है। अब यह देखना है कि गवर्नमेण्ट उसकी सिफ़ारिशोंपर अमल करके उसपर व्यय किये गये १०½ लाख रुपयोंको कहाँ तक न्यायोचित साबित करती है।

क. ख. ग.